सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१

(१८८४-जून १८९६)

सत्यमेव जयते

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

श्रद्धांजलि

महात्मा गांधीका उद्देश्य किसी जीवन-दर्शनका विकास करना या किन्हीं मान्यताओं अथवा आदर्शोंकी प्रणाली निर्मित करना नहीं था। शायद उन्हें ऐसा करनेकी न तो इच्छा थी, न अवकाश ही। तथापि सत्य और अहिंसामें उनका दृढ़ विश्वास था और सामने उपस्थित समस्याओंमें इनके व्यावहारिक प्रयोगको ही उनकी शिक्षा और जीवन-दर्शन कहा जा सकता है।

शायद ही कोई राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, कृषि व श्रम-सम्बन्धी, औद्योगिक या अन्य ऐसी समस्या हो, जिसपर उन्होंने विचार नहीं किया, और जिसे अपने ही निजी ढंगसे उन सिद्धान्तोंके अन्दर रहकर नहीं निबटाया जिन्हें वे मूलभूत और तात्त्विक मानते थे। व्यक्तिगत जीवनकी छोटी-छोटी, तफसीलों —— आहार, पोशाक तथा दैनिक कामकाजसे लेकर जातिप्रथा और अस्पृश्यता-जैसी बड़ी-बड़ी उन समस्याओं तक जो शताब्दियोंसे भारतीय जीवनका न केवल अटूट बल्कि धर्मसम्मत अंग भी बनी हुई थीं —— से सम्बन्धित जीवनका शायद ही कोई ऐसा पहलू हो, जिसे उन्होंने प्रभावित नहीं किया और अपने साँचेमें नहीं ढाला।

उनके विचार आश्चर्यजनक रूपसे ताजा होते थे। उनमें परम्परा या प्रचलित रीतियोंकी कोई बाधा नहीं होती थी। इसी तरह छोटी और बड़ी समस्याओंको निबटानेकी उनकी पद्धति भी कम अनोखी नहीं थी। ऊपरी तौरपर देखनेपर वह विश्वासजनक न होनेपर भी अन्ततः सफल सिद्ध होती थी। स्पष्ट ही उनके स्वभावमें कट्टरताकी तो गुंजाइश ही नहीं थी। नये-नये अनुभवोंसे प्राप्त होनेवाले नये ज्ञानसे अपने-आपको वंचित रखना उनके लिए सम्भव नहीं था। और इसी कारण वे ऊपरी पूर्वापर-संगतिके हठी भी नहीं थे। सच तो यह है कि उनके विरोधियों और कभी-कभी उनके अनुयायियोंको भी उनके कुछ कार्योंमें परस्पर-विरोध दिखलाई पड़ता था; किन्तु गांधीजी बात समझने और माननेको इतने तैयार रहते थे और उनमें नैतिक साहस इतना असाधारण था कि अगर एक बार उन्हें यह विश्वास हो जाता कि जो काम उन्होंने किया है वह त्रुटिपूर्ण है तो वे अपनी भूल सुधारने और सार्वजनिक रूपसे यह घोषित कर देनेमें कि उनसे भूल हुई थी, कभी संकोच नहीं करते थे। हमने अकसर देखा है कि वे साथियोंको अपने निर्णयों और कार्योंकी वस्तुपरक तथा निष्पक्ष आलोचना करनेको कहते थे। इसमें आश्चर्य नहीं कि उनके कुछ कार्य कभी-कभी उनके ही प्रशंसकोंको पहेली-जैसे मालूम होते थे और उनके आलोचकोंको चक्करमें डाल देते थे।

ऐसे पुरुषको ठीक तरहसे समझनेके लिए उनकी शिक्षाओं और जीवन घटनाओं-को व्यापक तथा समग्र रूपमें देखना बिलकुल जरूरी है। उनकी जीवनकथाकी रूपरेखा-मात्रका, या उसके किसी अंशको पृथक् करके उसका ही अध्ययन कर लेना

भ्रमोत्पादक सिद्ध हो सकता है। इससे न उस महापुरुषके प्रति न्याय होगा, न स्वयं पाठकके प्रति। यही मुख्य कारण है कि इतने बड़े पैमानेपर गांधीजीके लेखोंके संग्रहका काम उठाना आवश्यक जान पड़ा। मुझे बताया गया है कि इस ग्रंथमालाके पचाससे अधिक खण्ड होंगे। गांधीजीकी यह विशेषता ही इसके प्रकाशनका मूल कारण समझिए।

इस ग्रंथमालाको प्रकाशित करनेका भार उठाकर भारत सरकारके सूचना और प्रसारण मंत्रालयने महात्मा गांधीके — उनकी शिक्षाओं, उनके विश्वासों और उनके जीवन-दर्शनके अध्ययनके लिए वह आधार प्रदान कर दिया है जो नितान्त आवश्यक था। अब जिम्मेदारी विद्यार्थियों और विचारकोंकी होगी कि वे उस कामको पूरा करें, जिसे करनेका महात्मा गांधीने कभी प्रयत्न ही नहीं किया। इस तरह सारी सामग्री उपलब्ध हो जानेसे वे उनके जीवन-दर्शन, उनकी शिक्षाओं, उनके विचारों व कार्य-क्रमों और जीवनमें उठनेवाली अगणित समस्याओंपर उनके विचारोंको, तर्कसंगत तथा दार्शनिक ढंगसे और विभिन्न शीर्षकों तथा श्रेणियोंमें विभाजित करके, प्रबंधके रूपमें प्रस्तुत करनेमें समर्थ होंगे। उनकी जीवन-योजनामें छोटी और बड़ी बातों, संसारव्यापी महत्त्वकी और परिमित व्यक्तिगत महत्त्वकी समस्याओं — सबके लिए स्थान था। यद्यपि उन्हें जीवन-भर बड़े-बड़े राजनीतिक प्रश्नोंसे उलझे रहना पड़ा, फिर भी उनके लेखोंका एक बहुत बड़ा भाग सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक और भाषा-सम्बन्धी समस्याओंसे सम्बन्ध रखता है।

वे पत्र-व्यवहारमें बहुत नियमित थे। ऐसा पत्र शायद ही कोई हो, जिसके विचारपूर्ण उत्तरकी आवश्यकता रही हो और उन्होंने खुद ही उत्तर न दिया हो। व्यक्तियोंके नाम ऐसे पत्र, जिनमें उन व्यक्तियोंकी निजी और वैयक्तिक समस्याओंकी चर्चा होती थी, उनके पत्र-व्यवहारका एक बड़ा अंग रहा। उनके जवाब वैसी ही समस्याओंवाले दूसरे व्यक्तियोंके मार्ग-दर्शनके लिए मूल्यवान हैं। अपने जीवनमें दीर्घ-कालतक उन्होंने शीघ्रलिपिक या मुद्रलेखककी मदद नहीं ली। उन्हें जो-कुछ लिखना होता था, वे अपने हाथसे लिखते थे। इस तरहकी मददके अनिवार्य बन जानेपर भी वे बहुत-सा लेखन अपने हाथसे ही करते रहे। जब उनकी दाहिने हाथकी अँगुलियाँ लिखते-लिखते थक जातीं तब जीवनकी उत्तरावस्थामें उन्होंने बायें हाथसे लिखनेकी कलाका अभ्यास किया। यही उन्होंने कातनेमें भी किया। इस तरह खानगी पत्र-व्यवहार, जो उनके लेखनका अधिकांश है, जनसाधारणके दैनिक जीवनकी समस्याओंपर लागू होनेवाली उनकी शिक्षाओंका एक महत्त्वपूर्ण और सारगर्भित अंग बन गया।

अगर कभी कोई ऐसा पुरुष हुआ जिसने जीवनको सम्पूर्ण रूपमें देखा और जिसने अपने-आपको सम्पूर्ण मानवजातिकी सेवामें निछावर कर दिया, तो वह निश्चय ही गांधीजी थे। उनकी विचारधाराका संबल श्रद्धा और सेवाके उच्च आदर्श थे तथा उनके कार्य और प्रत्यक्ष शिक्षाएँ सदा एकान्त नैतिक और अत्यन्त व्यावहारिक विचारों-से प्रभावित होती थीं। लोकनेताकी हैसियतसे अपने लगभग साठ वर्षके सारे सेवा-कालमें उन्होंने अपने विचारोंको कभी सामयिक सुविधाओंके अनुसार नहीं बदला।

दूसरे शब्दोंमें, उन्होंने कभी उचित साध्यके लिए अनुचित साधनोंका प्रयोग नहीं किया। साधन चुननेमें वे इतनी अधिक सूक्ष्मतासे काम लेते थे कि साध्यकी सिद्धि भी साधनोंके गुण-दोषके अधीन हो जाती थी, क्योंकि उनका विश्वास था कि उचित साध्य अनुचित साधनोंसे प्राप्त नहीं किया जा सकता; और अनुचित साधनोंसे प्राप्त उद्देश्य तो उचित साध्यका विकृत रूप ही होगा।

उनके लेखों और भाषणोंके इस संग्रहका महत्त्व स्पष्टतः असन्दिग्ध और स्थायी है। इसमें उस विभूतिके अनुपम मानवीय और अत्यन्त कर्मठ सार्वजनिक जीवनकी छः दशाब्दियोंके शब्द उपलब्ध हैं — ऐसे शब्द, जिन्होंने एक अनोखे आन्दोलनको रूप दिया, परिपुष्ट किया और सफलता तक पहुँचाया; ऐसे शब्द जिन्होंने संख्यातीत व्यक्तियोंको प्रेरणा दी और प्रकाश दिखाया; ऐसे शब्द, जिन्होंने जीवनका एक नया ढंग खोजा और दिखाया; ऐसे शब्द, जिन्होंने उन सांस्कृतिक मूल्योंपर जोर दिया, जो आध्यात्मिक तथा सनातन हैं, समय और स्थानकी परिधिके परे हैं और सम्पूर्ण मानवजाति तथा सब युगोंकी सम्पत्ति हैं। इसलिए, उनको संचित करनेका प्रयत्न शुभ है।

उनकी कार्य-पद्धति मनुष्यमें मनुष्यके प्रति आत्माको स्फुरित कर देनेवाले इस विश्वासकी घोषणा है कि मनुष्यकी आध्यात्मिक सिद्धिमें नैतिक भावना निहित है ही। उनकी कल्पनाकी स्वाधीनता कोरे कानूनों और राजकीय निर्णयोंसे प्राप्त नहीं की जा सकती, न वह केवल वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगतिसे ही प्राप्त हो सकती है। कोई भी समाज सच्चे अर्थमें स्वतंत्र तभी हो सकता है जब वह अपनेको स्वतंत्रता के लिए अनुशासनबद्ध करे। ऐसे अनुशासनका आरम्भ व्यक्तिको अपने-आपसे करना आवश्यक है। जहाँतक भारतका राष्ट्रीय जीवन उनके विचारोंसे प्रेरित और उनके विचारोंके साँचेमें ढला रहेगा वहाँतक वह स्फूर्तिका स्रोत बना रहेगा। जहाँतक स्वतन्त्र भारत उनके विचारोंको कार्यान्वित करेगा और उनसे उत्तरोत्तर उच्च समन्वय सिद्ध करता जायेगा, वहाँतक वह संस्कृतिकी मर्यादा विस्तृत करने और एक नई परम्परा स्थापित करनेमें सफल होगा।

अबतक उनके बहुत-से विचार पूर्णतः आत्मसात नहीं किये गये हैं। यह तो माना जाता है कि समाज-व्यवस्थाके किसी भी उन्मुक्तिकारी स्वरूपका निर्णय इस बातसे किया जाना चाहिए कि वह अपने सदस्योंको किस अंशतक प्रत्यक्ष स्वतन्त्रता प्रदान करती है; परन्तु इस वस्तुस्थितिको पर्याप्त मात्रामें नहीं समझा गया कि संगठनका — चाहे वह औद्योगिक हो, चाहे सामाजिक या राजनीतिक — जितना केन्द्रीकरण होता है, उससे उसी हदतक व्यक्तिकी स्वतन्त्रता घटती है। मध्यमार्गका स्वर्ण-नियम खोजना और अपनाना अभी शेष है। उनके अर्थशास्त्रको बहुधा, आवश्यकतासे कम उत्पादनके साथ न सही, आत्मनिग्रहके साथ तो जोड़ ही दिया जाता है। उनके अनुशासनकी बातकी खिचड़ी नीरस और सौन्दर्यहीन कठोर नैतिकताके साथ पका दी जाती है। अपनी जरूरतें थोड़ी और सीमित रखकर उन्होंने पूर्ण और समृद्ध जीवन व्यतीत किया और अपने निजके रहन-सहनमें अपने विश्वासोंके सत्य होनेका प्रदर्शन

किया किन्तु श्रद्धा क्षीण मनोंको वह एक उदात्त आदर्श ही प्रतीत होता रहा। उन्हें उसके आचारमें उतारनेकी सम्भावना दिखाई नहीं पड़ी। हमें इसी रोशनीमें उनके आश्रममें रहनेवालोंके नियमों और उन व्रतोंको समझना है, जिन्हें प्रतिदिन सुबह-शाम प्रार्थनाके समय दुहराया जाता था। वे थे: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, निर्भयता, सर्वधर्म-समभाव, अस्पृश्यता-निवारण और अपने कर्त्तव्य-पालनमें स्वदेशीकी भावनाका प्रयोग।

मैं अपनी बात इस आश्वासनके साथ समाप्त करूँगा कि जो भी गांधीजीकी जीवन-सरितामें, जैसी कि वह इस ग्रंथमालामें प्रकट हुई है, डुबकी लगायेगा, निराश नहीं होगा। क्योंकि उसमें एक ऐसा खजाना समाया हुआ है, जिससे हरएक व्यक्ति अपनी शक्ति और श्रद्धाके अनुसार, जितना चाहे उतना ले सकता है।

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली
१६ जनवरी, १९५८

राजेन्द्रप्रसाद

प्रस्तावना

महीनेभरमें गांधीजीके जीवनका अन्त हुए दस साल पूरे हो जायेंगे। उम्रके पक जानेपर भी उनमें भरपूर जीवन-शक्ति थी और काम करनेकी उनकी शक्ति अपार थी। अचानक एक हत्यारेके हाथों उनका अन्त हो गया। भारत हतप्रभ और दुनिया दुःखी हो गई और हम लोगोंके लिए, जिनका उनसे ज्यादा निकट सम्बन्ध था, उस धक्के और उस दुःखको सहना कठिन हो गया। फिर भी, ऐसे शानदार जीवनका शायद यही एक योग्य अन्त था; उन्होंने मरकर भी मानो उसी कामको पूरा किया, जिसमें वे अपने जीवन-काल-भर लगे हुए थे। उम्रके साथ-साथ शरीर और मनसे उनका धीरे-धीरे ढलना हममें से किसीको अच्छा न लगता। इस तरह वे आशा और सफलताके एक दमकते हुए सितारेकी भाँति उस राष्ट्रके पिताके रूपमें जिये और मरे जिसे उन्होंने आधी सदीतक गढ़ा था और सिखाया था।

जिन लोगोंको उनके बहुत-से कामोंमें से कुछमें उनके साथ रहनेका सौभाग्य रहा है, उनके लिए वे सदा नौजवानोंकी-सी शक्तिके प्रतीक बने रहेंगे। हमें उनकी याद किसी बूढ़े आदमीके रूपमें नहीं बल्कि एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें आयेगी जो वसन्तकी संजीवनी शक्ति लेकर नये भारतके जन्मका प्रतिनिधि बना। उस नई पीढ़ीके लिए, जिसका उनसे निजी लगाव नहीं हो पाया, वे एक गाथा बन गये हैं, और उनके नाम और कामके साथ न जाने कितनी कहानियाँ जुड़ गई हैं। जीवन-कालमें तो वे बड़े थे ही, मरनेपर और भी बड़े हो गये हैं।

मुझे खुशी है कि भारत सरकार उनके लेखों और भाषणोंका पूरा संग्रह प्रकाशित कर रही है। यह निहायत जरूरी है कि उन्होंने जो-कुछ लिखा और कहा है, उसका एक पूरा और प्रामाणिक संग्रह तैयार किया जाये। उनके काम अनेक थे, और उन्होंने लिखा भी बहुत है। इसलिए ऐसा संग्रह तैयार करना अपने-आपमें ही बहुत बड़ा काम है। और इसे पूरा करनेमें कई साल लग सकते हैं। लेकिन इसे करना हमारा कर्त्तव्य है — खुद अपने प्रति और आगे आनेवाली पीढ़ियोंके प्रति।

ऐसे संग्रहमें महत्त्वकी और बिना महत्त्वकी या आकस्मिक चीजोंका मिल-जुल जाना अनिवार्य है। फिर भी, कभी-कभी आकस्मिक शब्द ही आदमीके विचारोंपर ज्यादा रोशनी डालते हैं, बनिस्बत बहुत सोचे-विचारे हुए लेख या कथनके। कुछ ही चुनने और छाँटनेवाले हम कौन होते हैं? हम उनकी सारी बातें सामने रख दें। उनके लिए जिन्दगी एक समूची चीज थी एक बहुरंगी झीने बुने हुए वस्त्रकी भाँति। किसी बच्चेसे दो शब्द बोल लेना, किसी पीड़ितको हलकेसे सहला देना उनके लिए उतनी ही बड़ी बात थी, जितनी कि ब्रिटिश साम्राज्यको चुनौती देनेका कोई प्रस्ताव।

श्रद्धाकी पूरी भावनासे हम इस कामको उठायें, ताकि आगे आनेवाली पीढ़ियोंको कुछ झाँकी मिले हमारे इस प्यारे नेताकी, जिसने अपने प्रकाशसे हमारी पीढ़ीको आलोकित किया; और जिसने हमें राष्ट्रीय स्वतन्त्रता ही नहीं दिलाई, बल्कि हमें एक ऐसी दृष्टि भी दी, जिससे हम उन गहरे गुणोंको पहचानें, जो आदमीको बड़ा बनाते हैं। आनेवाले युगोंके लोग अचरज करेंगे कि किसी जमानेमें एक ऐसे महा-पुरुषने हमारी भारत-भूमिपर पग रखे थे और अपने प्रेम और सेवासे हमारी जनता-को ही नहीं, बल्कि सारी मनुष्य-जातिको शराबोर किया था।

मैं यह दार्जिलिंगमें लिख रहा हूँ, और विशाल कंचनजंगा सामने ऊँचा खड़ा हुआ है। आज सवेरे मैंने गौरीशंकर —— एवरेस्ट —— की झलक देखी थी। मुझे ऐसा लगा कि गौरीशंकर और कंचनजंगाकी प्रशान्त शक्ति और नित्यता कुछ अंशोंमें गांधीजीमें भी विद्यमान थी।

जवाहरलाल नेहरू

दार्जिलिंग,
२७ दिसम्बर, १९५७

सामान्य भूमिका

भारत सरकारने सम्पूर्ण गांधी वाङ्मयके प्रकाशनका यह आयोजन राष्ट्र-स्वातन्त्र्य-शिल्पीके प्रति राष्ट्रका ऋण चुकानेकी भावना-मात्रसे नहीं बल्कि इस दृढ़ विश्वाससे किया है कि भावी पीढ़ियोंके लिए महात्माजीके तमाम भाषणों, लेखों और पत्रोंको एक स्थानपर एकत्र करके छाप रखना जरूरी है।

इस ग्रंथमालाका मंशा गांधीजीने दिन-प्रतिदिन और वर्ष-प्रतिवर्ष जो-कुछ कहा और लिखा, उस सबको एकत्र करना है। उनके सेवाव्रतका विस्तार आधी शताब्दी तक रहा और उसने हमारे देशके अलावा दूसरे अनेक देशोंको भी प्रभावित किया। जीवन-समस्याओंकी जितनी विविधतापर उन्होंने ध्यान दिया उससे अधिकपर बहुत कम महापुरुषोंने दिया है। जिन लोगोंने उनको सशरीर इस पृथ्वीपर विचरण करते हुए, प्रत्येक क्षण अपने विश्वासोंको कार्यरूप देते हुए देखा है, उनका कर्त्तव्य है कि वे आनेवाली पीढ़ियोंको उनकी शिक्षाओंकी समृद्ध विरासत शुद्ध और, जहाँतक हो सके, पूर्ण रूपमें सौंप जायें — उनपर उन पीढ़ियोंका यह ऋण है, जिन्हें महात्माजीकी उपस्थिति और उदाहरणसे शिक्षा लेनेका मौका नहीं मिल सकता।

गांधीजीके लेख, भाषण और पत्र लगभग ६० वर्षके अत्यन्त कर्मठ सार्वजनिक जीवन — १८८८ से १९४८ तकके हैं। वे दुनियाके विभिन्न भागों, खास तौरसे तीन देशों — भारत, इंग्लैंड और दक्षिण आफ्रिकामें बिखरे हुए हैं।

लेख और भाषण केवल उन थोड़ी-सी पुस्तकोंमें ही नहीं हैं जो उन्होंने लिखी हैं, या जो उनके जीवन-कालमें प्रकाशित हुई थीं। वे धूल खाती हुई फाइलों, सरकारी कागज-पत्रों तथा रिपोर्टों (ब्ल्यू बुक्स) और पुराने अंग्रेजी, गुजराती तथा हिन्दी समाचारपत्रोंके ढेरोंमें भी हैं। उनके पत्र बड़े और छोटे, धनी और गरीब, सब जातियों और धर्मोंके असंख्य व्यक्तियोंके पास सारी दुनियामें फैले हुए हैं। ऐसी सारी सामग्रीको नष्ट हो जाने या खो जानेके पहले ही एकत्र कर लेना जरूरी है।

निस्सन्देह, उनके लेखों और भाषणोंके अनेक संग्रह या, अधिक ठीक कहा जाये तो, संकलन मौजूद हैं। उनका प्रकाशन विशेष उल्लेखनीय रूपमें नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबादने स्वयं गांधीजीके स्थापित किये हुए न्यासके अन्तर्गत किया है। ये प्रकाशन बहुमूल्य तो हैं, परन्तु इनमें से अधिकतर गांधीजीके भारतीय कार्यकाल और मुख्यत: उनके 'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' जैसे साप्ताहिकोंमें प्रकाशित सामग्रीतक ही सीमित हैं। इसके अतिरिक्त, वे अधिकतर, विषयवार संकलित किये गये हैं। फलत: कभी-कभी उनमें लेखों या भाषणोंके इष्ट विषय-सम्बन्धी अंशमात्र दे दिये गये हैं और अन्य अंशोंको छोड़ दिया गया है।

जहाँतक पत्रोंका सम्बन्ध है, गांधी स्मारक निधिने जितने उसे मिल सके उतने एकत्र करके और उनके फोटो निकलवाकर बहुत बड़ी सेवा की है। परन्तु उन्हें अबतक प्रकाशित नहीं किया गया। उसके एकत्र किये हुए पत्रोंकी संख्या हजारोंतक

पहुँच चुकी है। फिर भी अभी बहुत-से और पत्रोंको एकत्र करना और सबको प्रकाशित कर देना शेष है।

इस तरह, गांधीजीके सारे लेखों, भाषणों और पत्रोंको, वे उनके जीवनके किसी भी कालके और कहीं भी उपलब्ध क्यों न हों, एकत्र करने और सबको पूरे-पूरे तथा तिथि-क्रमसे प्रकाशित कर देनेका कोई प्रयत्न अबतक नहीं किया गया। यह कार्य खानगी तौरपर काम करनेवाले व्यक्तियों या संस्थाओंके साधनोंके परे था। फलतः भारत सरकारने इसे उठा लिया है।

गांधीजीने दक्षिण आफ्रिकाके आरम्भिक कालमें भी लेखों, भाषणों और पत्रोंके रूपमें जो सामग्री प्रस्तुत की थी उसकी मात्रा भी बहुत बड़ी है। सम्भवतः इस कालसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री लगभग एक दर्जन खण्डोंमें पूरी होगी। साधारण अनुमानके अनुसार, सम्पूर्ण ग्रंथमाला सत्तरसे भी अधिक खण्डों की हो सकती है।

इसके अतिरिक्त, उनकी वाणी एक ही भाषातक सीमित नहीं थी। उन्होंने गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी — तीन भाषाओंमें लिखा और भाषण दिये हैं। फलतः सम्पादकोंका काम केवल संग्रह करनेका नहीं है, बल्कि गुजराती और हिन्दीसे अंग्रेजीमें तथा गुजराती और अंग्रेजीसे हिन्दीमें — जिन दो भाषाओंमें ग्रंथमाला प्रकाशित की जायेगी — शुद्ध अनुवाद करनेका भी है। काम इस कारण भी उलझा हुआ है कि गांधीजीके जीवनका जो आरम्भिक भाग दक्षिण आफ्रिकामें व्यतीत हुआ था, उसकी सामग्री भारतके बाहर — लंदनके औपनिवेशिक कार्यालयके कागज-पत्रोंमें और स्वयं दक्षिण आफ्रिकामें पड़ी हुई है। दक्षिण आफ्रिकाके मूल साधन-सूत्रोंकी सुलभता अपेक्षाकृत कठिन है। गांधीजीने सरकारी अधिकारियोंको जो-कुछ लिखा था, उसके अलावा 'इंडियन ओपिनियन' में भी बहुत लिखा था। 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' और 'हरिजन' में उनके बादके लेखोंसे भिन्न, 'इंडियन ओपिनियन'के लेखोंमें उनका नाम नहीं छपता था। उनके लेखोंको पहचानने और प्रमाणित करानेमें सम्पादकोंको श्री हेनरी एस० एल० पोलक और श्री छगनलाल गांधीसे बहुमूल्य सहायता मिली है। इन दोनों महानुभावोंका न केवल 'इंडियन ओपिनियन' से वरन् दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके दूसरे कामोंसे भी घनिष्ठ सम्बन्ध था।

कामके स्वरूपको देखते हुए इस संग्रहको पूर्ण अथवा अन्तिम माननेका दावा नहीं किया जा सकता। आगेकी खोजसे ऐसे कागज-पत्रोंका पता चल सकता है जो अभी प्राप्य नहीं हैं। पूर्णता लानेके लिए अनिश्चित कालतक रुके रहना उचित न होता। इसमें सुधार करनेका कार्य भविष्यके लिए ही छोड़ देना उचित है। फिर भी, हालमें जो भी सामग्री मिल सकती है उस सबको इकट्ठा करने और परखनेका तथा छोटी-छोटी टिप्पणियोंके साथ, ताकि मूलको समझनेमें पाठकोंको मदद मिले, प्रकाशित कर देनेका प्रत्येक प्रयत्न किया जा रहा है। अगर कोई सामग्री इतने विलम्बसे मिली, कि उसे उपयुक्त खण्डमें शामिल करना सम्भव ही न हो, तो उसे अलग प्रकाशित करनेका विचार है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सामग्रीको तारीखोंके क्रमसे रखा जायेगा। एक तारीखकी सारी सामग्री — वह लेख, भाषण या पत्र, कुछ भी हो — एक साथ

दी जायेगी। विभिन्न वर्गकी सामग्रीको विभिन्न ग्रंथमालाओंमें प्रकाशित करनेके बदले इस व्यवस्थाको पसन्द करनेका मुख्य कारण यह है कि वैसा पृथक्करण कृत्रिम होता। गांधीजीने अकसर किसी एक ही विषयकी चर्चा एक अवधि विशेषके अपने लेखों, भाषणों और पत्रों — सबमें की है। वे जीवनको समूचे रूपमें देखते थे, अलग-अलग विभागोंमें नहीं। अपने विचार प्रकट करनेका जो भी माध्यम — लेख, भाषण या पत्र — उन्होंने चुना, उसके कारण उनके विचारोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। अगर ये सब एक ही पुस्तकमें एक-दूसरेके साथ ठीक तिथि-क्रमसे रखे जायें तो पाठकोंको अधिक पूर्ण चित्र मिलेगा कि गांधीजी कैसे काम करते थे और कैसे विभिन्न प्रश्नोंको, जैसे-जैसे वे उठते, निबटाया करते थे। ऐसा होनेपर ये पुस्तकें गांधीजीके उस मानसके वैभवको प्रकट करेंगी, जो भारी सार्वजनिक महत्त्वके प्रश्नोंका निर्वाह करते हुए भी व्यक्तियोंकी गहरी निजी समस्याओंमें कम निरत नहीं रहता था। उन्हें एक स्वतन्त्र ग्रंथमालामें प्रकाशित कर देनेकी अपेक्षा व्यक्तिगत पत्रोंको सार्वजनिक प्रश्नोंसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीके बीच रखनेसे गांधीजीके व्यक्तित्वकी छवि अधिक सच्ची और पूर्ण रूपमें प्राप्त होती है।

ग्रंथमालाका उद्देश्य यह है कि जहाँतक सम्भव हो, गांधीजीके मूल शब्द ही प्रकाशित किये जायें। इसलिए उनके भाषणों, मुलाकातों और चर्चाओंकी वे रिपोर्टें छोड़ दी गई हैं, जो प्रामाणिक नहीं मालूम हुईं। उनके कथनोंकी परोक्ष रिपोर्टें भी शामिल नहीं की गईं। तथापि, जहाँतक भाषणोंका सम्बन्ध है, उनकी ऐसी रिपोर्टें ले ली गई हैं, जिनकी प्रामाणिकता सन्देहके परे थी। यदि किसी भाषणकी प्रत्यक्ष रिपोर्ट छापी ही नहीं गई या यदि किसीसे ऐसी जानकारी मिलती है जो दूसरे रूपमें उपलब्ध है ही नहीं, तो उसकी भी परोक्ष रिपोर्ट शामिल कर ली गई है। गांधीजीने जो कागजात या पत्र खालिस तौरपर अपने पेशेके सिलसिलेमें बैरिस्टरकी हैसियतसे लिखे थे और जो कागज-पत्र बिलकुल नित्य जीवनके ढर्रेके थे तथा जिनका जीवन-चरित-सम्बन्धी कोई महत्त्व नहीं था, उन्हें भी छोड़ दिया गया है।

इस आयोजनका आरम्भ फरवरी १९५६ में किया गया था। इसके सूत्रपातका श्रेय श्री पुरुषोत्तम मंगेश लाडको है, जो उस समय भारत सरकारके सूचना और प्रसारण मंत्रालयके सचिव थे और जिन्होंने, मार्च १९५७ में अपनी असामयिक मृत्युके पूर्व, इस कार्यकी नींव रखनेमें मदद की थी।

ग्रंथमालाका नियन्त्रण और निर्देशन एक परामर्श-मण्डलके अधीन है, जिसके प्रथम सदस्य थे: श्री मोरारजी र० देसाई (अध्यक्ष), श्री काकासाहब कालेलकर, श्री देवदास गांधी, श्री प्यारेलाल नैयर, श्री मगनभाई प्रागजी देसाई, श्री जी० रामचन्द्रन, श्री श्रीमन्नारायण, श्री जीवनजी डा० देसाई और श्री पुरुषोत्तम मंगेश लाड।

सन् १९५७ में श्री देवदास गांधी और श्री पुरुषोत्तम मंगेश लाडका देहान्त हो गया। सन् १९५८ में श्री रं० रा० दिवाकर परामर्श-मण्डलमें शामिल हुए। सन् १९६६ में श्री जीवनजी डा० देसाईके स्थानपर श्री ठाकोरभाई देसाई नियुक्त किये गये। सन् १९६७ में पुनर्गठित परामर्श-मण्डलके सदस्य हैं: श्री मोरारजी र० देसाई

(अध्यक्ष), काकासाहब कालेलकर, श्री रं० रा० दिवाकर, श्री प्यारेलाल नैयर, श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', श्री शान्तिलाल हरजीवन शाह, निदेशक, प्रकाशन विभाग और प्रधान सम्पादक।

सामग्री एकत्र करनेके कामकी व्यवस्था और ग्रन्थोंके सम्पादनका कार्य एक प्रधान सम्पादकको सौंपा गया है। श्री भारतन् कुमारप्पा प्रधान सम्पादक नियुक्त किये गये थे। सन् १९५७ में उनके देहान्तके बाद, परामर्श-मण्डलने श्री जयरामदास दौलतरामको प्रधान सम्पादक बननेके लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने अक्तूबर, १९५९ में त्यागपत्र दे दिया और प्रोफेसर कृष्ण स्वामी स्वामिनाथनने फरवरी, १९६० में प्रधान सम्पादकके पदका कार्य-भार सँभाला था।

दो उप-प्रधान सम्पादक —— अंग्रेजीके लिए श्री चि० ना० पटेल और हिन्दीके लिए श्री भवानीप्रसाद मिश्र —— प्रधान सम्पादककी सहायता करते हैं। सम्पादकों और अनुवादकोंके नाम हैं: श्री खु० ने० वास्वाणी, श्री गोविन्द व्यास, श्री आनन्दीलाल तिवारी, श्री गणेश दत्तात्रेय गद्रे, श्री अभ यआत्मा शिरोमणि, श्रीमती लक्ष्मी त्रिपाठी श्री जगदीशप्रसाद उनियाल, शं० कल्याण सुन्दर और श्री रमेश नारायण तिवारी।

सहायक सम्पादकों, शोध तथा संदर्भ सहायकों और उप-सम्पादकोंकी एक टोली इनकी सहायता करती है।

उप-प्रधान सम्पादक, सम्पादकों और अनुवादकोंके रूपमें समय-समयपर इसमें योग देनेवालोंके नाम हैं: श्री उल्लाल रत्नाकर राव (उप-प्रधान सम्पादक —— अंग्रेजी, १९५६–६९), श्री रामचन्द्र कृष्ण प्रभु (सम्पादक —— भाषण, १९५६–५८), श्री मनुभाई कल्याणजी देसाई (सम्पादक —— गुजराती, १९५६–६०), श्री सीताचरण दीक्षित (सम्पादक —— हिन्दी, १९५६–६४), श्री पाण्डुरंग गणेश देशपाण्डे (सम्पादक —— पत्र, १९५६–६६), श्री रतिलाल मेहता (सम्पादक —— गुजराती, १९५७–५८), श्री माधव प्रसाद (सम्पादक —— भाषण, १९५९–६४), श्री श्रीनाथ सिंह (अनुवादक —— हिन्दी, १९५९–६३), श्री चक्रवर्ती लक्ष्मी नरसिंहन (प्रूफ संशोधक, १९६०–६५), श्री रामसिंह (अनुवादक —— हिन्दी, १९६०–६७), श्री ना० कु० देसाई (अनुवादक —— गुजराती, १९६२–६७) और श्री प्रभाकर रामराव कैकिनी (अनुवादक —— गुजराती, १९५९–६९)।

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१

(१८८४-जून १८९६)

इस खण्डकी भूमिका

इस खण्डमें गांधीजीके जीवनके प्रारम्भिक कालकी सामग्री दी जा रही है। यह काल सम्पादकोंके लिए सबसे कठिन रहा। इससे अधिक सक्रिय बादवाले भागमें गांधीजी विदेशोंमें रहे थे। इंग्लैंडमें वे पढ़ते थे और दक्षिण आफ्रिकामें शुरू-शुरूमें बैरिस्टरकी हैसियतसे गये थे। फलतः इस कालकी मूल सामग्री भी मुख्यतः इन्हीं दोनों देशोंमें उपलब्ध थी।

सौभाग्यसे गांधीजीने इस कालकी कुछ सामग्री सुरक्षित रखी थी और उसे वे भारत ले आये थे। उसमें निम्नलिखित वस्तुएँ थीं: उनके पत्र-व्यवहारकी कार्बन-नकलें, पत्रों और स्मरणपत्रोंके हस्तलिखित मसविदे, प्रार्थनापत्रों और उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाओंकी टाइप की हुई या छपी प्रतियाँ, दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रोंकी कतरनें और दक्षिण आफ्रिकाकी कुछ सरकारी रिपोर्टें, जिनमें उनके कुछ पत्र, प्रार्थनापत्र और वक्तव्य छपे थे।

फिर भी, गांधीजीने अपनी लिखी हुई सब वस्तुएँ सुरक्षित नहीं रखी थीं। उन्होंने हिन्दू धर्मके मूल तत्त्वोंपर कुछ लिखा था। उसकी चर्चा करते हुए अपनी गुजराती पुस्तक 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' (१९५०, पृष्ठ २७८)में उन्होंने कहा है: "ऐसी तो कितनी ही चीजें मैंने अपने जीवनमें फेंक दी हैं, या जला डाली हैं। इन वस्तुओंका संग्रह करनेकी जरूरत जैसे-जैसे मुझे कम मालूम होती गई और जैसे-जैसे मेरी सक्रियताका क्षेत्र बढ़ा, वैसे-वैसे मैं इन्हें नष्ट करता गया। इसका मुझे पछतावा नहीं है। इन वस्तुओंका संग्रह मेरे लिए भार-रूप और बहुत खर्चीला हो जाता। मुझे इनको संचित करनेके साधन जुटाने पड़ते। यह मेरी अपरिग्रही आत्माके लिए असह्य होता।"

लंदन और दक्षिण आफ्रिकामें जो सरकारी तथा अन्य कागज-पत्र उपलब्ध हैं, उनसे शोध-सहायक हमारे लिए सामग्री एकत्र कर रहे हैं। गांधीजी स्वयं अपने साथ दक्षिण आफ्रिकासे जो सामग्री ले आये थे उसमें जो-कुछ कमी थी उसे इस सामग्रीसे पूरा कर लिया गया है।

दक्षिण आफ्रिकासे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीमें अनेक प्रार्थनापत्र और स्मरणपत्र सम्मिलित हैं, जो गांधीजीने वहाँके भारतीय समाजकी ओरसे भेजे थे। उनपर गांधीजीके नहीं, बल्कि समाजके प्रतिनिधि नेताओं या नेटाल भारतीय कांग्रेस अथवा ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन जैसी संस्थाओंके पदाधिकारियोंके हस्ताक्षर हैं। फिर भी उनके मसविदे गांधीजीके ही बनाये हुए हैं। उनके २५ सितम्बर, १८९५ के पत्रसे (जो इस खण्डमें २६७ पृष्ठपर दिया गया है) यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उसमें उन्होंने कहा है: ". . . अनेकानेक प्रार्थनापत्रोंका मसविदा बनानेकी जिम्मेदारी पूरी-पूरी मुझपर है," लॉर्ड रिपनको जुलाई १८९४ में भेजे गये प्रार्थनापत्रके बारेमें इसका

प्रमाण भी मौजूद है। उसपर गांधीजीने नहीं, दूसरोंने हस्ताक्षर किये हैं, परन्तु गांधीजीने अपनी 'आत्मकथा' (गुजराती, १९५२, पृष्ठ १४२) में कहा है: "इस प्रार्थनापत्रके पीछे मैंने बहुत मेहनत उठाई। इस विषयका जो-जो साहित्य मेरे हाथ लगा वह सब मैंने पढ़ डाला।"

यद्यपि गांधीजी १८९४ से कुछ वर्षोंतक नेटालमें रहे थे, फिर भी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यसे, जिसे बादमें ट्रान्सवाल कहा जाने लगा, भेजे गये कुछ प्रार्थनापत्र भी इस खण्डमें शामिल कर दिये गये हैं। इन्हें गांधीजीके लिखे हुए माननेका कारण यह है कि उन्होंने अपने दक्षिण आफ्रिकावासका पहला वर्ष — अर्थात् १८९३ और १८९४ का कुछ-कुछ भाग — ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरियामें बिताया था और उन्हें वहाँके भारतीयों तथा उनकी समस्याओंका अच्छा परिचय हो गया था। उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' (गुजराती, १९५२, पृष्ठ १२६) में लिखा है: "अब प्रिटोरियामें शायद ही कोई भारतीय ऐसा रहा होगा, जिसे मैं जानता न होऊँ, या जिसकी परिस्थितिसे मैं परिचित न होऊँ।" उन्होंने यह भी कहा है (आत्मकथा, गुजराती, पृष्ठ १२७): "मैंने सुझाया कि एक मण्डल स्थापित करके भारतीयोंके कष्टोंका इलाज अधिकारियोंसे मिलकर, अर्जी आदि देकर करना चाहिए; और यह वादा भी किया कि मुझे जितना समय मिलेगा उतना बिना किसी वेतनके इस कार्यके लिए दूँगा।" इसलिए, यद्यपि गांधीजी इसके बाद नेटालमें रहे फिर भी बिलकुल सम्भव है कि ट्रान्सवालके भारतीयोंने अपने प्रार्थनापत्र उनसे ही लिखवाये हों। वे नेटालमें रहे हों या ट्रान्सवाल-में, सारे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी समस्याओंमें उनकी गहरी दिलचस्पी थी; और उन्होंने ऑरेंज फ्री स्टेट तथा केप प्रदेश जैसे दूसरे हिस्सोंके और, यहाँतक कि रोडेशियाके भी भारतीयोंकी समस्याओंके बारेमें लगातार लिखा है, हालाँकि वे इन प्रदेशोंमें रहे कभी नहीं।

तथापि, यह कह देना जरूरी है कि भारतीयोंके भेजे सभी प्रार्थनापत्र गांधीजीके लिखे हुए नहीं हैं। कुछ प्रार्थनापत्र तो वे गांधीजीके दक्षिण आफ्रिका पहुँचनेके पहले ही भेज चुके थे। स्पष्ट है कि ये प्रार्थनापत्र यूरोपीय वकीलोंने पेशेके तौरपर उनके लिए लिख दिये होंगे। ऐसा होते हुए भी, बिलकुल सम्भव है कि जैसे ही गांधीजी उनकी समस्याओंमें गहरी दिलचस्पीके साथ रंगभूमिपर आये वैसे ही भारतीयोंने अपने सारे प्रार्थनापत्र उनसे ही लिखवाने शुरू कर दिये हों। श्री हेनरी एस० एल० पोलक और श्री छगनलाल गांधीका भी यही मत है। ये दोनों महानुभाव सन् १९०४के आसपाससे दक्षिण आफ्रिकामें रहकर गांधीजीके साथ काम करते थे। जितने दिन गांधीजी वहाँ रहे, ये भी उनके साथ ही थे।

दो कागजात और भी हैं, जिन्हें गांधीजीके हस्ताक्षर न होनेपर भी इस खण्डमें शामिल कर दिया गया है। वे हैं — नेटाल भारतीय कांग्रेसका संविधान और उसकी पहली कार्यवाही। नेटाल भारतीय कांग्रेसकी स्थापना गांधीजीने ही की थी और वे उसके पहले मन्त्री थे। उसके संविधानका मसविदा गांधीजीके ही हस्ताक्षरोंमें लिखा प्राप्त हुआ है।

उपोद्घात

उपलब्ध प्रमाणोंके अनुसार, गांधीजीने पहला प्रार्थनापत्र १८९४ में लिखा था। बादमें तो, मालूम होता है, उन्होंने प्रार्थनापत्र लिखनेका ताँता ही बाँध दिया। अपने सार्वजनिक कार्यकी इस प्रारम्भिक अवस्थामें गांधीजीने अन्यायके निराकरणके लिए तथ्योंको प्रकाशित करने और तर्कोंके द्वारा अन्यायीकी सद्बुद्धि तथा अन्तरात्माको प्रभावित करनेका तरीका अपनाया था। दक्षिण आफ्रिकामें बारह वर्षतक इस पद्धतिका प्रयोग करनेके बाद ही वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि जब निहित स्वार्थवाले लोग तर्कको माननेसे इनकार करें तब सत्याग्रह या सीधी कार्रवाई करना जरूरी हो जाता है।

पाठकोंको स्मरण रहे कि इस खण्डमें जिस कालकी गतिविधियाँ दी गई हैं उसमें गांधीजी अपनी उम्रकी बीसीमें ही थे। उनके लेखों और भाषणोंसे उल्लेखनीय आत्मसंयम तथा सौम्यता, कठोर सत्यपरायणता और विरोधीके दृष्टिकोणके प्रति पूर्ण न्याय करनेकी इच्छाका परिचय मिलता है। उनके स्वभावमें ये गुण सारे जीवन उनके साथ रहे।

दक्षिण आफ्रिकी भारतीय समस्याकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

गांधीजी सन् १८९३ में दक्षिण आफ्रिका पहुँचे। उस समय वहाँ चार उपनिवेश थे — नेटाल, केप प्रदेश, ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट। इन उपनिवेशोंमें उन यूरोपीयोंके वंशजोंका राज्य था, जिन्होंने कथा-कहानियोंमें वर्णित भारतकी खोजमें भटकते हुए शुद्ध संयोगसे दक्षिण आफ्रिकाका पता पा लिया था। वे वहाँ बस गये थे। पहले-पहल तो उन्होंने पूर्व और पश्चिमके बीचोंबीच एक सुविधाजनक पड़ावके तौरपर और बादमें अपने स्थायी निवासस्थानके रूपमें उसका विकास किया था।

सन् १८९३ में वहाँ जिन गोरे लोगोंका प्रभुत्व था वे डच या बोअर और अंग्रेज थे। ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेटमें डचोंका और नेटाल तथा केप प्रदेशमें अंग्रेजोंका आधिपत्य था। अंग्रेजोंके रंगभूमिपर आने और १८०६ में केप प्रदेश तथा १८४३ में नेटालपर अपना कब्जा जमा लेनेके पहले डच लोग लगभग दो सौ वर्षोंसे उस देशमें प्रायः निर्विघ्न राज्य करते आ रहे थे। इन प्रदेशोंके हाथसे निकल जानेपर वे अन्दरकी ओर खिसक गये और उन्होंने ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेटपर कब्जा कर लिया। इस सबके बावजूद, ब्रिटिश लोग डच उपनिवेशोंमें और डच लोग ब्रिटिश उपनिवेशोंमें भी बने रहे।

इन दोनों समुदायोंके बीच लगातार संघर्ष होता रहता था। दोनों ही देशपर अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। आखिर वह संघर्ष बोअर युद्ध (१८९९-१९०२) में परिणत हुआ, जिसके फलस्वरूप साराका-सारा दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश साम्राज्यका अंग बन गया। ब्रिटिशोंका कहना था कि युद्ध करनेमें उनका मुख्य उद्देश्य डच क्षेत्रोंमें बसे हुए ब्रिटिश और भारतीय प्रजाजनोंको उनके समुचित अधिकार प्राप्त कराना था।

जब गांधीजी दक्षिण आफ्रिका पहुँचे, उस समय चारों उपनिवेश एक-दूसरेसे स्वतन्त्र थे। वे अपनी-अपनी स्वतन्त्र नीतिके अनुसार अपना कामकाज चलाते थे। उस समय लंदन-स्थित ब्रिटिश सरकार अपने प्रजाजनोंके हितोंकी रक्षाके लिए इन उपनिवेशोंमें अपने प्रतिनिधि रखती थी और कुछ हदतक इन सरकारोंकी नीतियोंका नियन्त्रण भी किया करती थी। परन्तु सन् १९१० में इन सब उपनिवेशोंने मिलकर ब्रिटिश झण्डेकी छत्रछायामें दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यकी स्थापना करके पूर्ण स्वायत्त-शासन प्राप्त कर लिया। इस समयसे ब्रिटिश सरकार भी इन उपनिवेशों और इनकी संयुक्त-सरकारके प्रति निर्हस्तक्षेपी नीतिका अनुसरण करने लगी। उसका कहना था कि दक्षिण आफ्रिका अब एक अधिराज्य (डोमिनियन) बन गया है इसलिए वह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलका एक स्वशासित सदस्य है, जिसे अपना कामकाज अपनी इच्छाके अनुसार चलानेकी स्वतन्त्रता है। अब ब्रिटिश साम्राज्यके एशियाई प्रजाजनोंकी शिकायतोंपर

विचार करना दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यके सपरिषद गवर्नर-जनरलका विषय बन गया और इस सम्बन्धमें दक्षिण आफ्रिकी सरकारकी नीतिको प्रभावित करनेकी क्षमता ब्रिटिश सरकारमें नहीं रह गई। परन्तु गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकामें रहते हुए अधिकांश समय ऐसी स्थिति नहीं थी।

कृषिके विकास और देशकी खनिज सम्पदाका लाभ उठानेके लिए इन उपनिवेशों-के गोरोंको मजदूरोंकी आवश्यकता पड़ी। आफ्रिकी लोगोंको उन्होंने नियमित और भरोसा करने योग्य मजदूर नहीं पाया, क्योंकि वे अपनी भूमिसे जो-कुछ मिलता था उसपर निर्वाह करके सन्तुष्ट रहते थे। और इसलिए उनमें से अधिकतर मजदूरीपर काम करनेको उत्सुक नहीं थे। अतएव ब्रिटिश उपनिवेशियोंने भारतके अंग्रेज शासकोंके साथ मिलकर भारतीय मजदूरोंको गिरमिट-प्रथा अथवा इकरारनामेके आधारपर दक्षिण आफ्रिकामें लानेका प्रबन्ध किया। इस तरहके मजदूरोंका पहला जत्था सन् १८६० में दक्षिण आफ्रिका पहुँचा। इन मजदूरोंको अधिकार था कि इकरारनामेकी अवधि समाप्त हो जानेपर वे चाहें तो भारत लौट जायें, या दक्षिण आफ्रिकामें ही रहकर पाँच वर्षकी दूसरी अवधिके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो जायें, अथवा सरकार वहीं उन्हें वापसी-किरायेके मूल्यकी भूमि दे दे और वे उसपर स्वतन्त्र नागरिकोंकी हैसियतसे बस जायें।

आम तौरपर ये मजदूर भारतके सबसे गरीब वर्गोंके लोग थे। इनको आरोग्यके नियमोंके अनुसार रहनेकी आदतें नहीं सिखाई गई थीं और ये अनेक दृष्टियोंसे पिछड़े हुए थे। इनके बाद, बहुत जल्दी ही, इनकी जरूरतोंको पूरा करनेके लिए भारतीय व्यापारी भी आ पहुँचे। यही दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय आबादीका आरम्भ था।

इस प्रकारके और मजदूरोंको भेजनेका इकरारनामा फिरसे नया करनेके पहले १८६९ में भारत सरकारने साफ-साफ शर्तें कर ली थीं कि इकरारनामेकी अवधिके बाद मजदूरोंको बराबरीका दर्जा दिया जाये, उन्हें देशके सामान्य कानूनके अनुसार रखा जाये और उनके साथ कोई कानूनी या प्रशासनिक भेद-भाव न बरता जाये। नेटाल सरकारने, जिसने ऐसे मजदूरोंकी माँग की थी, इन शर्तोंको स्वीकार किया था और बादमें, लंदन-स्थित ब्रिटिश सरकारने भी १८७५ में इनकी पुष्टि कर दी थी। इसके अलावा, ब्रिटिश महारानीने अपनी १८५८ की घोषणाके द्वारा 'हमारे भारतीय साम्राज्यके निवासियों' को उन्हीं अधिकारोंका आश्वासन दिया था, जो 'हमारी अन्य सब प्रजाओंको' प्राप्त हैं।

तथापि डच लोग भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकामें रहने देनेके सदा विरोधी रहे। वे चाहते थे कि एशियाई मजदूरोंको (चीनियों समेत) एक निश्चित अवधिके लिए लाया जाये और उसके बाद तुरन्त वापस भेज दिया जाये। उनकी इच्छा थी कि उनके उपनिवेश सिर्फ गोरोंके लिए रहें, जिनमें आफ्रिकी लोग अपने लिए अलग निश्चित किये गये क्षेत्रोंमें निवास करें।

अंग्रेजोंकी भी यही इच्छा थी। दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे यूरोपीय व्यापारियोंके समान ही, भारतीयोंको कृषि और व्यापार, दोनोंमें उन्होंने अपना जबर्दस्त प्रतियोगी

पाया था। भारतीय किसानोंने नये-नये फल और शाक-सब्जियाँ बोईं और सस्ती तथा भारी मात्रामें पैदा कीं। इस तरह उन्होंने गोरे किसानोंके भावोंको गिरा दिया। भारतीय व्यापारी कम खर्चमें गुजारा करते थे, नौकरों और साज-सामानपर नामचार को ही खर्च करते थे और सरलतासे डच तथा ब्रिटिश व्यापारियोंकी अपेक्षा सस्ते भावोंपर माल बेच सकते थे। इसलिए गोरोंको भय था कि अगर भारतीयोंको निर्बाध रूपसे देशमें आने दिया गया और उन्हें उनकी इच्छाके अनुसार भूमिपर या व्यापारमें बस जाने दिया गया, तो वे हमें निगल जायेंगे।

फलतः भारतीयोंपर अनेकानेक प्रतिबन्ध लगा दिये गये। इनमें से सबसे पहला डच उपनिवेश ट्रान्सवालमें १८८५ का अधिनियम ३ था। उसके द्वारा घोषित किया गया था कि एशियाई लोग डच नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते। उसके द्वारा जरूरी कर दिया गया कि 'स्वच्छताके कारणोंसे' भारतीय उन बस्तियोंमें रहें, जो उनके लिए खास तौरसे अलग कर दी गई हैं; वे उन बस्तियोंके अलावा दूसरी बस्तियोंमें अचल सम्पत्ति न रखें; और उनमें से जो लोग व्यापारके लिए आये हों वे शुल्क देकर सरकारी दफ्तरमें अपने नाम दर्ज करायें और परवाना प्राप्त करें।

यह कानून ट्रान्सवाल डच गणराज्य और सम्राज्ञीके प्रतिनिधियोंके बीच १८८४ के लंदन समझौतेकी धारा १४ के सरासर विरुद्ध था। उक्त धारामें घोषणा की गई थी कि 'वतनियोंके अतिरिक्त' सब लोगोंको ट्रान्सवाल गणराज्यके किसी भी भागमें प्रवेश करने, यात्रा करने, निवास करने, जमीन-जायदाद खरीदने और व्यापार करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता होगी और उनसे कोई ऐसा कर वसूल नहीं किया जायेगा, जो डच नागरिकोंसे वसूल न किया जाता हो। उपनिवेशमें निवास करनेवाले ब्रिटिश प्रजाजनोंके हितोंकी देख-रेख करनेके लिए ट्रान्सवालमें ब्रिटिश उच्चायुक्त मौजूद था। परन्तु ट्रान्सवालके सभी गोरे — चाहे वे डच हों या ब्रिटिश — उपनिवेशमें 'एशियाइयोंके आक्रमणके खतरे' की चीख-पुकार मचाकर आन्दोलन कर रहे थे। ब्रिटिश उच्चायुक्तने आन्दोलनके जोरके कारण ब्रिटिश सरकारको सलाह दी कि वह उक्त कानूनका विरोध न करे। इसपर लंदन-स्थित ब्रिटिश सरकारने अपना यह फैसला घोषित कर दिया कि वह इस भारतीय-विरोधी कानूनपर कोई आपत्ति नहीं करेगी।

सम्राज्ञी-सरकारने अपनी पहलेकी घोषणाओंके बावजूद, कि भारतीयोंको दूसरे ब्रिटिश प्रजाजनोंके बराबर ही अधिकार प्राप्त होंगे, अपनी नीति पलट दी इससे भारतीयोंके विरुद्ध भेद-भावके कानूनोंकी बाढ़का द्वार खुल गया। यह हालत सिर्फ डचोंके ट्रान्सवालमें ही नहीं, बल्कि अंग्रेजोंके नेटालमें भी हुई। और यह सब ऐसे समयपर हुआ जब कि ब्रिटिश सरकारको डच तथा ब्रिटिश उपनिवेशोंमें अपने प्रजाजनोंके संरक्षणका पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त था।

सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके खिलाफ प्रजातीय भेद-भाव बरता जाने लगा। रेलगाड़ियाँ, बसें, स्कूल और होटल, कोई भी स्थान भेदभावसे मुक्त नहीं रहा। उन्हें एक उपनिवेशसे दूसरे उपनिवेशमें परवानेके बिना जानेका अधिकार नहीं था। अंग्रेजोंके उपनिवेश नेटालमें, जहाँ भारतीयोंकी संख्या सबसे अधिक थी, १८९४ में

भारतीयोंका मताधिकार छीन लेनेका और इस तरह उनकी मान-मर्यादा गिरा देने तथा उन्हें राजनीतिक अधिकारोंके प्रयोगसे वंचित करनेका एक विधेयक करीब-करीब स्वीकार होनेपर आ गया था।

गांधीजी १८९३ के मई मासमें बैरिस्टरकी हैसियतसे अपने पेशे-सम्बन्धी कार्यके लिए दक्षिण आफ्रिका आये थे। १८९४ में जब वे अपना कानूनी कार्य समाप्त करके भारत लौटने ही वाले थे, उन्होंने समाचारपत्रोंमें इस विधेयककी चर्चा पढ़ी। उन्होंने अपने देशभाइयोंको, जिनमें से अधिकतर अशिक्षित थे, समझाया कि उनपर इस विधेयकका क्या असर पड़ेगा। इसपर भारतीयोंने उन्हें वहाँ रुककर उनकी मदद करनेके लिए राजी किया। इस अन्यायको और भारतीयोंकी अन्य शिकायतोंको दूर करानेके कार्यने उन्हें २१ वर्षसे अधिक, अर्थात् १९१४ तक, दक्षिण आफ्रिकामें रोके रखा।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम गांधी स्मारक निधि और संग्रहालयके आभारी हैं जिन्होंने हमें अपने पुस्तकालय व संग्रहालयके पुस्तक संग्रह, गांधीजीके पत्रोंकी फोटो-नकलें और अन्य अप्रकाशित कागजातका उपयोग करनेकी पूर्ण सुविधा दी। दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रोंकी कतरनें, सरकारी ब्ल्यू बुक्स, अपने दक्षिण आफ्रिकी वासके दौरान गांधीजी द्वारा समय-समयपर लिखे गये पत्र आदि बहुमूल्य सामग्रीके उपयोगकी सुविधा देनेके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक और स्मारक न्यासके आभारी हैं।

हमारे लंदन-स्थित प्रतिनिधिको अपने पुस्तकालय और पुराने कागजात सुलभ करनेके लिए हम लन्दनके उपनिवेश कार्यालय, ब्रिटिश म्यूजियम और लंदन वेजिटेरियन सोसाइटीके भी आभारी हैं।

अनुसन्धान और संग्रह सम्बन्धी सुविधाओंके लिए हम राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता; बम्बई और मद्रासके विभिन्न समाचारपत्रोंके कार्यालय; गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय; इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, नई दिल्ली; दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय (आफ्रिका सम्बन्धी विभाग), दिल्ली; यूनाइटेड स्टेट्स इनफॉर्मेशन सर्विसेज, दिल्ली और बम्बई; विश्वविद्यालय पुस्तकालय और एशियाटिक सोसाइटी, बम्बईके आभारी हैं।

लन्दन-सन्दर्शिकाकी पाण्डुलिपिके लिए हम श्री प्यारेलाल नैयरके आभारी हैं। इसके अतिरिक्त; 'आत्मकथा व सत्यना प्रयोगो'; 'दादाभाई नौरोजी: ग्रैंड ओल्ड मैन ऑफ इंडिया'; 'महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी'; 'महात्मा गांधी: अर्ली फेज'; और 'श्रीमद् राजचन्द्र' पुस्तकोंके प्रकाशक और निम्न-लिखित समाचारपत्र और पत्रिकाएँ हमारे धन्यवादके पात्र हैं: 'काठियावाड़ टाइम्स', 'टाइम्स ऑफ नेटाल', 'नेटाल एडवर्टाइजर', 'नेटाल मर्क्युरी', 'नेटाल विटनेस', 'वेजिटेरियन' और 'वेजिटेरियन मेसेंजर'।

पाठकोंको सूचना

इस खण्डमें कई स्मरणपत्र और प्रार्थनापत्र दिये जा रहे हैं। इनपर गांधीजीके हस्ताक्षर नहीं हैं, फिर भी इन्हें निःसन्देह गांधीजीने ही तैयार किया था। जिन बातोंके आधारपर इन्हें गांधीजी द्वारा लिखा गया माना है, उनका उल्लेख इस खण्डकी भूमिकामें थोड़े विस्तारसे कर दिया गया है। १९०३ में लिखे गये एक पत्रमें भी यह स्पष्ट कहा गया है कि १८९४-१९०१ के दरम्यान उपनिवेश-कार्यालयके सामने जो प्रार्थनापत्र आदि प्रस्तुत किये गये थे, उनमें से अधिकतर गांधीजीके तैयार किये हुए थे। (देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २९०)

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके निकट रखनेका प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, हमने मूलसे मिलान करके उनका उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है; जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हें मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशन की है। गांधीजीके लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार, और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें एस० एन० संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका सूचक है। इस सामग्रीकी फोटो-नकलें गांधी-स्मारक संग्रहालय, नई दिल्लीमें भी उपलब्ध हैं।

१८९३ से १९१४ तक दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजी द्वारा किये गये कार्यकी पृष्ठभूमि स्पष्ट करनेके लिए इस खण्डमें दक्षिण आफ्रिकाके वैधानिक तन्त्र सम्बन्धी एक टिप्पणी, दक्षिण आफ्रिकाका संक्षिप्त इतिवृत्त और नेटाल तथा दक्षिण आफ्रिकाका एक-एक मानचित्र दिया जा रहा है।

अन्तमें इस कालकी तारीखवार घटनाएँ और साधन-सूत्रोंकी सूची दी गई है।

इस नये संस्करणका आकार बदलकर वैसा ही कर दिया गया है, जैसा कि तीसरे खण्डके बादके खण्डोंका है।

विषय-सूची

चित्र-सूची

मानचित्र

१. स्वीकारोक्ति[1]

[१८८४]

मैंने पत्र लिखकर अपने हाथसे उन्हें दिया। पत्रमें सब दोष स्वीकार किया और उसका दण्ड माँगा। यह विनती की कि मेरे अपराधके लिए वे स्वयं दण्ड न भोगें। साथ-साथ मैंने प्रतिज्ञा भी की कि भविष्यमें फिर कभी ऐसा अपराध न करूँगा।[2]

[गुजरातीसे]
सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा

२. भाषण: आल्फ्रेड हाई स्कूल, राजकोटमें[3]

४ जुलाई, १८८८

मुझे आशा है कि दूसरे भी मेरा अनुसरण करेंगे और इंग्लैंडसे लौटनेके बाद हिन्दुस्तानमें सुधारके बड़े-बड़े काम करनेमें सच्चे दिलसे लग जायेंगे।

[गुजरातीसे]
काठियावाड़ टाइम्स, १२-७-१८८८

१. गांधीजी जब १५ वर्षके थे, उन्होंने अपने भाईका थोड़ा-सा कर्ज पटानेके लिए हाथके कड़ेसे कुछ सोना निकाल कर बेच दिया था। बादमें उन्होंने अपने पिताके सामने बात कबूल कर लेनेका निश्चय किया। पिताने मूक अश्रुओंके रूपमें उन्हें क्षमा प्रदान की। इस घटनाका उनके मनपर स्थायी प्रभाव पड़ा। उनके अपने ही शब्दोंमें, यह उनके लिए अहिंसाकी शक्तिका एक पदार्थ पाठ था।

गांधीजीके सबसे पहले पत्रका यही एक हवाला है। मूल पत्र उपलब्ध न होनेके कारण, **आत्मकथा**में उनकी ही लिखी हुई जो विवरणी मिलती है वह यहाँ उद्धृत की गई है।

२. **महात्मा गांधी: द अर्ली फेज**, (पृष्ठ २१२)के अनुसार, स्वीकारोक्तिका एक वाक्य यह था: "तो पिताजी अब आपकी नजरमें आपके बेटे और किसी आम चोरमें अन्तर नहीं रहा।"

३. गांधीजीके बैरिस्टरीकी शिक्षाके लिए इंग्लैंड जाते समय उनके सहपाठियोंने विदाई-समारोहका जो आयोजन किया था उसमें दिया हुआ यह भाषण ही शायद गांधीजीका सबसे पहला भाषण है। उसके सम्बन्धमें उन्होंने अपनी **आत्मकथा**में कहा है: "जवाबके लिए मैं कुछ लिखकर ले गया था। उसे भी मैं मुश्किलसे पढ़ सका। सिर चकराता था, शरीर कांपता था — बस इतना ही मुझे याद है" देखिए **सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा**, भाग १, अध्याय ११।

३. पत्र : लक्ष्मीदास गांधीको

लन्दन

शुक्रवार, ९ नवंबर, १८८८

कृपासागर, आदरणीय बड़े भाई श्री मुरब्बी लक्ष्मीदास करमचन्द गांधीकी सेवामें सेवक मोहनदास करमचन्दकी शिर-साष्टांग दण्डवत स्वीकार हो।

दो या तीन हफ्ते हो गये, आपका कोई पत्र नहीं आया। यह बड़े ताज्जुब और खेदकी बात है। कारण कुछ समझमें नहीं आता। शायद बीचमें थोड़े दिन मेरे पत्र न पहुँचनेसे ऐसा हुआ हो। लंदन पहुँचनेतक मेरा कोई पक्का मुकाम नहीं था, इसलिए पत्र लिखकर डाल नहीं सका। परन्तु इस प्रकार आपका पत्र न लिखना तो ताज्जुबकी बात है। इस दूर देशमें सिर्फ पत्रसे ही मिलाप होता है। इसलिए आपको यह क्या सूझा, समझमें नहीं आता। बहुत चिन्ता है। घरकी खैर-खबर पानेका मौका हफ्तेमें एक बार आता है। वह भी न मिले तो बड़ा दुःख होता है। खाली बैठे रहने पर तो सारा दिन इसी फिक्रमें बीतता है। आशा है कि आगे आप ऐसा हर्गिज नहीं करेंगे। हफ्तेमें एक कार्ड लिख देनेकी कृपा करेंगे तो भी बस होगा। परन्तु अगर इस तरह आप बिलकुल लिखेंगे ही नहीं, तो मेरी क्या दशा होगी, कह नहीं सकता। आपको ठिकाना मालूम न होता तो मुझे बिलकुल चिन्ता न होती। परन्तु आपके दो पत्र मिले, फिर बन्द हो गये —— यह खेदजनक है। मंगलवारको मैं इनर टेम्पलमें भरती हो गया था। अगले हफ्तेमें आपका पत्र आयेगा, यह सोचकर इस सप्ताह मैंने विस्तारपूर्वक पत्र नहीं लिखा था। अब आपका पत्र आनेपर सारे समाचार दूंगा। ठंड बहुत सख्त पड़ रही है। इससे ज्यादा पड़नेकी सम्भावना नहीं है। अलबत्ता, ज्यादा पड़ती तो है, मगर कभी-कभी। परन्तु इस सख्त ठंडमें ईश्वरकी कृपासे मांस मदिराकी जरूरत मालूम नहीं होती। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी तबीयत बहुत अच्छी है। बस, हाल इतना ही है। मातुश्रीकी सेवामें शिर-साष्टांग दण्डवत करें। भाभीको दण्डवत्।

महात्मा, खंड १; तथा गुजराती पत्रकी फोटो-नकलसे।

४. लन्दन-दैनन्दिनी[1]

लन्दन
१२ नवम्बर, १८८८

इंग्लैंड आनेका इरादा करनेके क्या कारण थे? बात अप्रैलके लगभग अन्तमें शुरू हुई। अध्ययनके लिए लंदन आनेके इरादेने जब प्रत्यक्ष रूप ग्रहण किया उसके पहले ही मेरे मनमें यहाँ आने और आखिर लंदन है क्या, अपनी यह जिज्ञासा तृप्त करनेका मंसूबा दबा पड़ा था। जब मैं भावनगर कालेजमें पढ़ रहा था, जयशंकर बूचसे मेरी मामूली बातें हुई थीं। बातोंके दौरानमें उन्होंने मुझे सलाह दी थी कि तुम तो सोरठके निवासी हो, इसलिए जूनागढ़ राज्यको लंदन जानेके लिए छात्रवृत्तिकी अर्जी दो। उस दिन मैंने उन्हें क्या जवाब दिया था, यह अब अच्छी तरह याद नहीं आता। ऐसा लगता है कि मैंने छात्रवृत्ति पाना असम्भव समझा होगा। उस [समय] से मेरे मनमें इस अंचलकी यात्रा करनेका इरादा जम गया था। मैं इस ध्येयको पूर्ण करनेके साधन खोजता रहा।

तेरह अप्रैल, १८८८ को मैं भावनगरसे छुट्टियाँ मनानेके लिए राजकोट गया। पन्द्रह दिनकी छुट्टियोंके बाद मेरे बड़े भाई और मैं पटवारीसे मिलने गये। लौटने पर मेरे भाईने कहा: "चलो, मावजी जोशीसे[2] मिल आयें।" इसलिए हम उनके यहाँ गये। मावजी जोशीने साधारण कुशल-प्रश्न करनेके बाद भावनगरमें मेरी पढ़ाईकी बाबत कुछ पूछताछ की। मैंने उन्हें साफ-साफ बताया कि मेरा पहले वर्षमें परीक्षा पास हो जाना मुश्किल ही है। मैंने यह भी कहा कि मुझे पाठ्यक्रम बहुत कठिन मालूम होता है। यह सुनकर उन्होंने मेरे भाईको सलाह दी कि वे, जैसे भी सम्भव हो, मुझे बैरिस्टरी पढ़नेके लिए लंदन भेज दें। उन्होंने बताया कि खर्च सिर्फ ५,००० रुपये आयेगा। "यह अपने साथ थोड़ी उड़दकी दाल ले जाये। वहाँ अपने लिए खुद कुछ खाना बना लिया करेगा। इससे कोई धार्मिक आपत्ति न होगी। यह बात किसीको बताओ मत। कोई छात्रवृत्ति पानेका प्रयत्न करो। जूनागढ़ और पोरबन्दर

१. जब गांधीजीके सम्बन्धी और साथी श्री छगनलाल गांधी १९०९ में पहली बार लंदन जा रहे थे, उस समय गांधीजीने उन्हें अपनी लंदनमें लिखी हुई दैनन्दिनी दे दी थी। दैनन्दिनी लगभग १२० पृष्ठोंकी थी। श्री छगनलालने १९२० में वह महादेव देसाईको दे दी थी। परन्तु देनेके पहले उन्होंने एक बहीमें मूल दैनन्दिनीके लगभग बीस पृष्ठोंकी नकल तैयार कर ली थी। शेष १०० पृष्ठोंमें इन बीस पृष्ठोंके समान सिलसिलेवार सामग्री नहीं थी, बल्कि १८८८ से १८९१ तकके लंदनवासमें दिन-प्रतिदिन जो घटनाएँ होती थीं उनका उल्लेख-मात्र था। श्री छगनलालकी यह प्रति मामूली संपादकीय सुधारोंके बाद यहाँ उद्धृत की जा रही है। गांधीजीने दैनन्दिनी अंग्रेजीमें लिखी थी। उसे लिखनेके समय वे केवल १९ वर्षके थे।

२. गांधी-कुटुम्बके मित्र, पुरोहित और सलाहकार।

दोनों राज्योंको अर्जी भेज दो। मेरे लड़के केवलरामसे[1] मिल लो और अगर तुम्हें आर्थिक सहायता पानेमें सफलता न मिले, और तुम्हारे पास भी रुपया न हो, तो अपना साज-सामान बेच डालो। परन्तु किसी भी तरह मोहनदासको लंदन तो भेज ही दो। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे स्वर्गवासी पिताकी प्रतिष्ठा बनाये रखनेका एकमात्र उपाय यही है।" मावजी जोशी जो-कुछ भी कहते हैं उसपर हमारे परिवारके सभी लोगोंको बड़ा भरोसा रहता है। और मेरे भाई तो स्वभावसे ही बड़े भोले हैं। उन्होंने मावजी जोशीसे मुझे लंदन भेजनेका वादा कर दिया। अब मेरे प्रयत्नोंकी बारी आई।

मेरे भाईने बातको गुप्त रखनेका जो वचन दिया था उसके बावजूद उसी दिन खुशालभाईसे[2] सब-कुछ कह दिया। बेशक, खुशालभाईने बात पसन्द की। शर्त इतनी ही थी कि मैं अपने धर्मका पालन कर सकूँ। उसी दिन मेघजीभाईको[3] भी बता दिया गया। वे प्रस्तावसे बिलकुल सहमत हो गये और उन्होंने मुझे ५,००० रुपये देनेकी तैयारी भी दिखाई। मुझे उनकी बातपर कुछ भरोसा हो गया था; परन्तु जब बात मेरी प्यारी माँके सामने प्रकट की गई तो उन्होंने मेरे इतने भोलेपनपर मुझे फटकार सुनाते हुए कहा कि समय आनेपर तुम्हें उनसे कुछ भी रुपया न मिलेगा। उनका खयाल तो यह था कि जानेका अवसर ही कभी नहीं आयेगा।

उस दिन मुझे केवलरामभाईके पास [जाना] था। मैं उनसे मिला। वहाँ मेरी बातचीत सन्तोषजनक नहीं रही। उन्होंने मेरे लक्ष्यको तो पसंद किया परन्तु कहा यह कि "तुम्हें वहाँ कमसे-कम दस हजार रुपये खर्च करने पड़ेंगे।" मेरे लिए तो यही एक बड़ा धक्का था, परन्तु उन्होंने आगे यह भी कहा — "अगर तुम्हारे मनमें कोई धार्मिक आग्रह हों तो उनको तुम्हें छोड़ देना होगा। तुम्हें मांस खाना पड़ेगा, शराब पिये बिना भी काम न चलेगा। उसके बिना वहाँ तुम जी नहीं सकते। जितना ज्यादा खर्च करोगे उतने ही ज्यादा होशियार बनोगे। यह बात बहुत महत्त्वकी है। मैं तुमसे साफ-साफ कहता हूँ। बुरा न मानना। पर देखो, तुम अभी बहुत छोटे हो। लंदनमें प्रलोभन बहुत हैं। तुम उनके फंदेमें फँस जाओगे।" मेरे मनमें इस बातचीतसे कुछ खिन्नता उत्पन्न हुई। परन्तु मैं एक बार इरादा कर लेनेपर उसे सरलतासे छोड़ देनेवाला आदमी नहीं हूँ। उन्होंने अपनी बात कहते हुए श्री गुलाम मुहम्मद मुंशीका उदाहरण दिया। मैंने उनसे पूछा कि क्या आप मुझे छात्रवृत्ति पानेमें कोई सहायता पहुँचा सकते हैं? उन्होंने नकारात्मक जवाब दिया और कहा — इसके अलावा और सब-कुछ बहुत खुशीसे करूँगा। मैंने अपने भाईको सब बातें बता दीं।

१. काठियावाड़के प्रमुख वकील।

२. गांधीजीके चचेरे भाई और दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहकर्मी श्री छगनलाल गांधी व श्री मगनलाल गांधीके पिता।

३. गांधीजीके चचेरे भाई।

अब मुझे अपनी प्यारी माँकी अनुमति प्राप्त करनेका काम सौंपा गया। मैं मानता था कि यह मेरे लिए कोई बहुत कठिन काम नहीं है। एक-दो दिन बाद मैं और मेरे भाई श्री केवलरामसे मिलने गये। उस समय वे बहुत कार्य-व्यस्त थे, फिर भी हमसे मिले। एक-दो दिन पहले मेरी उनके साथ जैसी बातें हुई थीं, वैसी ही बातें फिर हुईं। उन्होंने मेरे भाईको सलाह दी कि मुझे पोरबन्दर भेजें। प्रस्ताव मान लिया गया। फिर हम लौट आये। मैंने हँसी-हँसीमें अपनी माँके सामने बात छेड़ी। हँसीमें कही बात तत्काल ही गंभीरतासे स्वीकार कर ली गई और फिर मेरे पोरबन्दर जानेके लिए दिन तय किया गया।

दो या तीन बार मैंने जानेकी तैयारी की, परन्तु कुछ-न-कुछ कठिनाई मार्गमें आती गई। एक बार मैं झवेरचन्दके साथ जानेवाला था, परन्तु रवाना होनेके एक घंटे पहले एक गम्भीर आकस्मिक दुर्घटना हो गई। मैं हमेशा अपने मित्र शेख मह-ताबसे[1] झगड़ता रहता था। रवाना होनेके दिन मैं झगड़े-सम्बन्धी विचारोंमें बिलकुल डूबा हुआ था। रातको भजन-संगीतका कार्यक्रम था। मुझे उसमें बहुत मजा नहीं आया। रातको लगभग साढ़े दस बजे कार्यक्रम समाप्त हुआ और हम सब मेघजीभाई और रामीसे मिलने गये। रास्तेमें चलता-चलता एक ओर तो मैं लंदनकी धुनमें डूबा हुआ था, दूसरी ओर शेख महताबके खयालोंमें। इस धुनमें मैं अनजाने एक गाड़ीसे टकरा गया। मुझे चोट आई। फिर भी, चलनेमें मैंने किसीका सहारा नहीं लिया। मुझे लगता है, मेरा सिर चकरा रहा था और आँखोंके सामने बिलकुल अँधेरा छाया हुआ था। फिर हम मेघजीभाईके घरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ फिरसे मैं एक पत्थरसे ठोकर खा गया और मुझे चोट आई। मैं बिलकुल बेहोश हो गया था। उसके बाद क्या-क्या हुआ, इसका पता मुझे नहीं चला। उन्होंने मुझे बताया कि उसके बाद कुछ कदम चलनेपर मैं जमीनपर गिर पड़ा था। पाँच मिनटतक मुझे कोई होश नहीं था। उन्होंने समझा कि मैं मर गया। परन्तु भाग्यवश जहाँपर मैं गिरा था वहाँकी जमीन बिलकुल सपाट थी। आखिर मुझे होश आया और सबको खुशी हुई। माँको खबर दी गई। वे मुझे इस हालतमें देखकर बहुत दुःखी हुईं। मैंने कहा कि मैं बिलकुल अच्छा हूँ, फिर भी यह चोट मेरे लिए देरीका कारण बन गई। कोई मुझे जाने देनेको तैयार न हुआ। बादमें मालूम हुआ कि मेरी साहसी और अत्यन्त प्यारी माँ तो मुझे चले जाने देती, परन्तु उसे लोगोंके कहने-सुननेका डर हुआ। अन्तमें बड़ी कठिनाईसे कुछ दिनों बाद मुझे राजकोटसे पोरबन्दर जानेकी इजाजत मिली। रास्तेमें भी मुझे कुछ कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा।

आखिर मैं पोरबन्दर पहुँच गया, और सबको बहुत खुशी हुई। लालभाई[2] और करसनदास[3] मुझे घर ले जानेके लिए खाड़ी-पुलपर आये थे। अब, पोरबन्दरमें पहले

१. गांधीजीका बचपनका मित्र, जिसे सुधारनेका प्रयत्न उन्होंने वर्षोंतक किया, परन्तु सफल नहीं हुए।
२. गांधीजीके चचेरे भाई।
३. गांधीजीके बड़े भाई।

तो मुझे अपने चाचाकी अनुमति प्राप्त करनी थी; दूसरे, श्री लेलीको[1] कुछ आर्थिक सहायता पानेकी अर्जी देनी थी; और अन्तमें, अगर राज्यसे छात्रवृत्ति न मिले तो, परमानन्दभाईसे[2] कहना था कि वे मुझे कुछ रुपया दें। सबसे पहले मैंने चाचासे भेंटकी और उनसे पूछा कि उन्हें मेरा लंदन जाना पसन्द है या नहीं। जैसी कि मैंने अपेक्षा भी की ही थी, चाचाने स्वाभाविक रूपसे मुझसे लंदन जानेके फायदे गिनानेको कहा। मैंने अपनी शक्तिके अनुसार फायदे गिना दिये। तब उन्होंने कहा — "बेशक, इस पीढ़ीके लोग इसे बहुत पसन्द करेंगे, परन्तु जहाँतक मेरी बात है, मैं पसन्द नहीं करता। फिर भी, हम बादमें विचार करेंगे।" इस प्रकारके उत्तरसे मुझे निराशा नहीं हुई। कमसे-कम मुझे इतना तो सन्तोष हुआ कि कुछ भी हो, दिलसे वे बातको पसन्द करते हैं। और बादमें उनके कामसे सिद्ध हो गया कि मैंने जो सोचा था वह ठीक था।

दुर्भाग्यसे श्री लेली पोरबन्दरमें नहीं थे। सच ही है 'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।' श्री लेली जिलेके दौरेपर गये थे और वहाँसे लौटनेपर वे तुरन्त छुट्टीपर चले जानेवाले थे। मेरे चाचाने मुझे अगले रविवारतक उनकी प्रतीक्षा करनेकी सलाह दी। उन्होंने कहा, अगर वे तबतक न लौटे तो जहाँ-कहीं भी होंगे, वहाँ उनके पास तुम्हें भेज दूँगा। परन्तु मेरे सौभाग्यसे वे रविवारको जिलेके दौरेसे लौट आये। फिर तय हुआ कि मैं उनसे सोमवारको मिलूँ और तदनुसार मैं उनसे मिला। जीवनमें किसी अंग्रेज सज्जनसे मुलाकातका यह मेरा पहला ही अवसर था। इसके पहले मैंने अंग्रेजोंके सामने जानेका साहस कभी नहीं किया था। परन्तु लंदन जानेकी धुनने मुझे बेधड़क कर दिया था। मैंने गुजरातीमें उनके साथ थोड़ी-सी बातें कीं। वे बहुत जल्दीमें थे। वे मुझसे अपने बँगलेके ऊपरी खंडके जीनेपर चढ़ते-चढ़ते मिले। उन्होंने कहा कि पोरबन्दर रियासत बहुत गरीब है, इसलिए वह तुम्हें कोई आर्थिक सहायता नहीं दे सकती। फिर भी, उन्होंने कहा: पहले तुम भारतमें स्नातक बन जाओ; फिर मैं सोचूँगा कि तुम्हें कोई आर्थिक सहायता दी जा सकती है या नहीं। उनके ऐसे उत्तरसे मैं सचमुच बिलकुल निराश हो गया। मैंने उनसे ऐसे जवाबकी अपेक्षा नहीं की थी।

अब परमानन्दभाईसे पाँच हजार रुपये माँगनेकी बात रही। उन्होंने कहा, अगर तुम्हारे चाचा तुम्हारा लन्दन जाना पसन्द करें तो मैं खुशीसे रुपये दे दूँगा। मैंने इसे जरा कठिन ही समझा। परन्तु मैं चाचाकी अनुमति पा लेनेपर तुला हुआ था। मैं जब उनसे मिला उस समय वे किसी काममें व्यस्त थे। मैंने उनसे कहा — "चाचाजी, अब बताइए, आप मेरे लन्दन जानेके बारेमें सचमुच क्या सोचते हैं? मेरा यहाँ आनेका मुख्य उद्देश्य आपकी अनुमति हासिल करना ही है।" उन्होंने उत्तर दिया — "मैं अनुमति नहीं दे सकता। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मैं तीर्थ-यात्रा पर जा रहा हूँ? फिर अगर मैं कहूँ कि मुझे लोगोंका लन्दन जाना पसन्द है, तो

१. ब्रिटिश एजेंट, जो राजकुमारकी नाबालिगीके समय पोरबन्दर राज्यका प्रबन्ध करता था।
२. गांधीजीके चचेरे भाई।

क्या यह मेरे लिए शर्मकी बात न होगी? तो भी, तुम्हारी माता और भाईको पसन्द है तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है।" मैंने कहा — "परन्तु आप नहीं जानते कि अगर आप मुझे लंदन जानेकी इजाजत नहीं देते तो परमानन्दभाई मुझे आर्थिक सहायता नहीं देंगे।" मैंने ये शब्द कहे ही थे कि उन्होंने गुस्सेसे भरी आवाज-में कहा — "ऐसी बात है? छोकरे, तू क्या जाने, उन्होंने ऐसा क्यों कहा है। वे जानते हैं कि मैं तुझे जानेकी अनुमति कभी नहीं दूँगा। इसीलिए उन्होंने यह बहाना बनाया है। सच बात यह है कि वे कभी तुझे पैसेकी मदद नहीं करेंगे। मैं उन्हें मदद करनेसे नहीं रोकता।" इस प्रकार हमारी बात समाप्त हो गई। फिर मैं खुश होकर परमानन्दभाईके पास दौड़ा गया और मैंने उन्हें अपने और चाचाके बीच जो बात हुई थी वह शब्दशः कह सुनाई। उसे सुनकर वे भी बहुत नाराज हुए। लेकिन साथ-साथ उन्होंने मुझे ५,००० रुपये देनेका वादा भी किया। जब उन्होंने यह वादा किया तो मैं खुशीसे फूला नहीं समाया। मुझे इस बातसे और भी ज्यादा खुशी हुई कि उन्होंने अपने बेटेकी शपथ खाकर यह वादा किया। अब, उस दिनसे मैं सोचने लगा कि मेरा लंदन जाना पक्का है। थोड़े दिन पोरबन्दरमें ठहरा। मैं जितना ज्यादा ठहरा, मेरे जानेकी बात उतनी ही ज्यादा पक्की होती गई।

अब, मेरी गैरहाजिरीमें राजकोटमें जो-कुछ हुआ, वह इस प्रकार है। मेरा दोस्त शेख महताब, सचमुच बड़ा करिश्मेबाज है। उसने मेघजीभाईको उनके वादेकी याद दिलाई और मेरे दस्तखतसे एक जाली पत्र तैयार किया, जिसमें उसने लिखा कि मुझे ५,००० रुपयोंकी आवश्यकता है, आदि। वह पत्र उन्हें दिखलाया गया और वह मेरा ही लिखा हुआ मान लिया गया। यह पत्र पाकर उनका स्वाभिमान जाग उठा और उन्होंने मुझे ५,००० रुपये देनेका गम्भीरताके साथ वादा किया। मुझे इसकी कोई सूचना राजकोट पहुँचनेतक नहीं दी गई।

अब फिर पोरबन्दरकी बात। आखिर मेरी वापसीके लिए एक दिन निश्चित किया गया और मैं कुटुम्बके लोगोंसे विदा लेकर अपने भाई करसनदास और मेघजीके पिताके साथ — जो, सचमुच, कृपणताके अवतार ही थे — राजकोटके लिए रवाना हुआ। राजकोट जानेके पहले मैं मेज-कुर्सी आदि साज-सज्जा बेच देने और घरके किरायेका सिलसिला तोड़ देनेके लिए भावनगर गया। मैंने यह सब सिर्फ एक दिनमें कर लिया। अपने पड़ोसके मित्रों और दयालु घर-मालकिनसे मैं जुदा हुआ तो उनकी आँखोंसे आँसू टपकने लगे। मैं उनकी, अनूपरामकी और दूसरे लोगोंकी आत्मीयता कभी भूल नहीं सकता। यह सब करके मैं राजकोट पहुँचा।

परन्तु तीन वर्षके लिए बाहर जानेके पहले मुझे कर्नल वाट्सनसे[1] तो मिलना ही था। वे १९ जून, १८८८ को राजकोट आनेवाले थे। मेरे लिए तो यह समय बहुत ज्यादा था, क्योंकि मैं मईके आरम्भमें राजकोट पहुँच गया था। परन्तु लाचारी थी। मेरे भाईको कर्नल वाट्सनसे बहुत बड़ी आशा थी। सचमुच ये दिन बड़े कठिन गुजरे। रातको मुझे अच्छी तरह नींद तक नहीं आ पाती थी। रात-भर स्वप्न आते रहते

१. राजकोटमें नियुक्त काठियावाड़के पोलिटिकल एजेंट।

थे। कुछ लोग मुझे लंदन न जानेके लिए समझाते, कुछ जानेकी सलाह देते। कभी-कभी मेरी माँ भी न जानेको कहतीं। और बड़ी अजीब बात तो यह थी कि मेरे भाई भी अकसर अपना इरादा बदलते रहते थे। इसलिए मैं त्रिशंकुकी स्थितिमें था। परन्तु सब लोग जानते थे कि एक बार किसी चीजको शुरू करके मैं छोड़ूँगा नहीं। इसलिए वे सब शान्त रहे। इसी बीच मेरे भाईने मेघजीभाईके वादेके बारेमें उनका मन टटोलनेकी बात मुझसे कही। परिणाम अवश्य ही बिलकुल निराशाजनक हुआ और उस समयसे वे सदा शत्रुवत् व्यवहार करते रहे। वे हर किसीके सामने मेरी बुराई करते थे। परन्तु मैं उनके तानोंकी पूरी तरह उपेक्षा करता रहा। मेरी अत्यन्त प्यारी माँ को इसके लिए उनपर बहुत क्रोध आया और कभी-कभी वे बेचैन भी हो उठती थीं। परन्तु मैं सरलतासे उनको धैर्य बँधानेमें सफल हो जाता। और मुझे यह महसूस करके सन्तोष है कि मैं अकसर उनको शान्त कर पाता था। और जब-जब वे, मेरे लिए आँसू बहातीं, अकसर मैं उन्हें भरपूर हँसा तक पाता था। आखिर कर्नल वाट्सन आये। मैं उनसे मिला। उन्होंने कहा — "मैं इस बारेमें सोचूँगा।" मगर मुझे उनसे कभी कोई मदद नहीं मिली। यह कहते हुए मुझे अफसोस होता है कि उनके पाससे परिचयकी एक चिट्ठी पाना भी मेरे लिए कठिन हुआ। उन्होंने बड़े दर्प-भरे स्वरमें कहा था कि वह एक लाख रुपयेकी चीज है। अब तो सचमुच उसे याद करके मुझे हँसी आती है।

फिर, मेरी विदाईका एक दिन निश्चित हुआ। पहले यह तिथि चार अगस्त निश्चित की गई थी। अब सारा मामला नाजुक स्थितिमें पहुँच गया। मैं इंग्लैंड जानेवाला हूँ, यह समाचार अखबारोंमें छप गया था। कुछ लोग मेरे भाईसे मेरे जानेके बारेमें हमेशा पूछा करते थे। आखिरमें इस समय भाईने मुझसे जानेका इरादा छोड़ देनेके लिए कहा। मगर मैं तो माननेवाला नहीं था। तब वे राजकोटके ठाकुरसाहबसे[1] मिले और उन्होंने उनसे कुछ आर्थिक सहायता देनेका अनुरोध किया। परन्तु उनसे कोई सहायता नहीं मिली। फिर मैंने ठाकुरसाहब और कर्नल वाट्सनसे आखिरी बार मुलाकात की। पहलेसे एक फोटो प्राप्त हुई, दूसरेसे परिचयकी एक चिट्ठी। यहाँ इतना तो लिखना ही पड़ेगा कि इस समय मुझे जो जबरदस्त खुशामद करनी पड़ी उससे मेरे मनमें गुस्सा भर गया था। अगर मुझे अपने भोले-भाले भाईका खयाल न होता तो मैं ऐसी घोर खुशामदका आश्रय कदापि न लेता। आखिर १० अगस्तका दिन आया और मेरे भाई, शेख महताब, श्री नाथूभाई, खुशालभाई और मैं रवाना हुए।

मैं राजकोटसे बम्बईके लिए रवाना हुआ। वह शुक्रवारकी रात थी। मुझे मेरे स्कूलके साथियोंने एक मानपत्र दिया था। जब मानपत्रका उत्तर[2] देने खड़ा हुआ उस समय मैं बहुत उद्विग्न था। मुझे जो-कुछ बोलना था उसे आधा बोलनेके बाद मैं काँपने लगा। आशा है कि भारत लौटनेके बाद फिर वैसा न होगा। मुझे चाहिए कि भाषण देनेके पहले उसे लिख लिया करूँ। उस रातको मुझे विदा करनेके लिए बहुत-से

१. राजकोटके राजा।

२. देखिए पृष्ठ १।

लोग आये थे। सर्वश्री केवलराम, छगनलाल (पटवारी), व्रजलाल, हरिशंकर, अमूलख, मानेकचन्द, लतीब, पोपट, भानजी, खीमजी, रामजी, दामोदर, मेघजी, रामजी कालिदास, नारणजी, रणछोड़दास, मणिलाल उन लोगोंमें शामिल थे। जटाशंकर, विश्वनाथ आदिको भी उनमें शामिल किया जा सकता है। पहला स्टेशन था — गोंडल। वहाँ डाक्टर भाऊसे भेंट हुई और हमने कपूरभाईको अपने साथ ले लिया। नाथूभाई जेतपुर तक आये। ढोलामें हमें उस्मानभाई मिले और वे वढ़वान तक आये। वहाँ सर्वश्री नारणदास, प्राणशंकर, नरभेराम, आनन्दराय और ब्रजलाल विदाई देने आये थे।

मुझे २१ तारीखको बम्बईसे रवाना होना था। परन्तु बम्बईमें जो कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं वे अवर्णनीय हैं। मेरी जातिके लोगोंने मुझे आगे जानेसे रोकनेकी भरसक कोशिश की। लगभग सभी जानेके विरोधमें थे। और अन्तमें तो मेरे भाई खुशालभाई और स्वयं पटवारीने भी मुझे न जानेकी सलाह दी। परन्तु मैं उनकी सलाह माननेको तैयार नहीं था। फिर समुद्री मौसमका बहाना आड़े आया। और उससे मेरे जानेमें देरी हुई। इसके बाद मेरे भाई और दूसरे लोग मेरे पाससे चले गये। परन्तु मैं अकस्मात् ४ सितम्बर, १८८८ को बम्बईसे रवाना हो गया। इस समय सर्वश्री जगमोहनदास, दामोदरदास और बेचरदासने मेरी बड़ी मदद की। शामलजीका भी निस्सन्देह मैं बहुत आभारी हूँ और रणछोड़लालका[1] जो ऋण मुझपर है, मैं नहीं जानता उसके विषयमें क्या कहूँ; वह कोरे आभारसे तो बड़ी बात है। सर्वश्री जगमोहनदास, मानशंकर, बेचरदास, नारायणदास पटवारी, द्वारकादास, पोपटलाल, काशीदास, रणछोड़लाल, मोदी, ठाकुर, रविशंकर, फीरोजशाह, रतनशाह, शामलजी और कुछ अन्य लोग मुझे विदाई देनेके लिए 'क्लाइड' जहाजके अन्दर आये। इनमें से पटवारीने मुझे पाँच रुपये, शामलजीने भी उतने ही, मोदीने दो, काशीदासने एक, नारणदासने दो रुपये दिये। कुछ और लोगोंने भी दिये, परन्तु उनकी मुझे याद नहीं आती। श्री मानशंकरने मुझे चाँदीकी एक जंजीर दी और फिर वे सब तीन वर्षके लिए विदाई देकर चले गये। इस प्रसंगको समाप्त करनेके पहले मुझे इतना तो लिखना ही चाहिए कि जिस स्थितिमें मैं था, उसमें अगर कोई दूसरा आदमी होता तो उसे इंग्लैंड देख सकना नसीब न होता। जिन कठिनाइयोंका सामना मुझे करना पड़ा उनसे इंग्लैंड मेरे लिए साधारण स्थितिमें जैसा लगता उससे अधिक प्यारा लगने लगा है।

४ सितम्बर, १८८८

समुद्र-यात्रा। लगभग ५ बजे शामको जहाजका लंगर उठा। यात्राको लेकर मैं बहुत शंकित था, परन्तु सौभाग्यसे वह मेरे अनुकूल पड़ी। सारी यात्रामें मुझे प्रवास-जन्य कष्ट नहीं हुआ और न उलटियाँ हुईं। मेरे जीवनमें यह पहली जहाजकी यात्रा थी। मुझे यात्रामें बड़ा मजा आया। लगभग ६ बजे ब्यालूकी घंटी बजी। परिचारकने मुझे मेजपर जानेकी सूचना दी। परन्तु मैं गया नहीं। अपने साथ जो-कुछ लाया था वही

१. रणछोड़लाल पटवारीके साथ गांधीजीकी बड़ी घनिष्ठता थी। उनके साथ गांधीजीका पत्र-व्यवहार था और उनके पिताने गांधीजीको लंदन जानेके लिए आर्थिक सहायता दी थी।

मैंने खा लिया। श्री मजमूदारने पहली ही रातको जिस खुलेपनसे मेरे साथ बरताव किया उससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मेरे साथ ऐसे ढंगसे बातें कीं, मानो हमारी पहचान बहुत पुरानी हो। उनके पास काला कोट नहीं था इसलिए ब्यालूके लिए मैंने उन्हें अपना कोट दे दिया। वे मेजपर गये। उस रातसे मैं उन्हें बहुत चाहने लगा। उन्होंने अपनी चाबियाँ मुझे सौंप दीं और मैंने उसी रातसे उन्हें अपने बड़े भाईके समान मानना शुरू कर दिया। अदनतक हमारे साथ एक मराठा डाक्टर था। कुल मिलाकर वह एक अच्छा आदमी मालूम होता था। सो, दो दिनतक मैं उन फलों और मिठाइयोंपर रहा जो मेरे पास जहाजमें थीं। बादमें श्री मजमूदारने जहाजके कुछ लड़कोंके साथ यह प्रबन्ध कर लिया कि वे हमारे लिए भोजन बना दिया करें। मैं तो कभी भी ऐसा प्रबन्ध न कर पाया होता। एक अब्दुल मजीद थे, जो पहले दर्जेमें यात्रा कर रहे थे। हम सलून-यात्री थे। छोकरेका बनाया हुआ शामका भोजन हम खूब स्वादसे खाते थे।

अब थोड़ा-सा जहाजके बारेमें। मुझे जहाजकी व्यवस्था बहुत पसन्द आई। जब हम कोठरियों या सलूनोंमें बैठते हैं तो हमें यह भान नहीं रहता कि ये कोठरियाँ और सलून जहाजके हिस्से हैं। कभी-कभी हमें जहाजका चलना महसूस ही नहीं होता। मजदूरों और खलासियोंका कौशल तो सराहनीय है। जहाजमें बाजे थे। मैं अकसर पियानो बजाया करता था। ताश, शतरंज और ड्राफ्टकी जोड़ियाँ भी थीं। यूरोपीय यात्री रातको हमेशा ही कोई खेल खेला करते थे। छत यात्रियोंके लिए बड़ी राहतकी चीज होती है। कोठरियोंमें बैठे-बैठे अकसर मन ऊब उठता है। छतपर खुली हवा मिलती है। अगर आप निःसंकोची हों और जरूरी लियाकत रखते हों तो साथी यात्रियोंसे मिलजुल सकते हैं और उनसे बातचीत कर सकते हैं। जब आसमान साफ होता है तब दृश्य बड़ा सुहावना होता है। एक रातको, जब चाँदनी छिटकी हुई थी, मैं समुद्रका अवलोकन कर रहा था। चन्द्रका प्रतिबिम्ब पानीपर पड़ रहा था। लहरोंके कारण चन्द्रमा ऐसा दिखलाई पड़ता था मानो वह इधर-उधर डोलता हो। एक अँधेरी रातको, जब आसमान साफ था, तारोंके प्रतिबिम्ब पानीपर दिखलाई पड़े। उस समय हमारे चारों ओरका दृश्य बड़ा सुन्दर था। पहले-पहल तो मैं अनुमान ही नहीं कर सका कि यह सब क्या है। ऐसा लगता था मानो इतने-सारे हीरे बिखरे हुए हों। परन्तु यह तो मैं जानता ही था कि हीरे तैर नहीं सकते। फिर मैंने सोचा कि ये कोई कीड़े होंगे, जो रातको ही दीख पड़ते हैं। इन्हीं विचारोंमें डूबे हुए मैंने आसमानकी ओर देखा और फिर मैं समझा कि ये तो और कुछ नहीं, तारोंके प्रति-बिम्ब हैं। मैं अपनी भूलपर हँस पड़ा। तारोंकी ये परछाइयाँ आतिशबाजीकी कल्पना कराती हैं। जरा कल्पना कीजिए कि आप किसी बँगलेकी छतपर खड़े हुए हैं और अपने सामने छूटनेवाली आतिशबाजियाँ देख रहे हैं। मैं अकसर इस दृश्यका आनन्द लिया करता था।

कुछ दिनोंतक मैंने साथी-यात्रियोंसे बिलकुल बातचीत नहीं की। मैं हमेशा सुबह आठ बजे सोकर उठता था और दाँत साफकर, शौच आदिसे निबट कर स्नान

करता था। विलायती पाखानोंकी व्यवस्था भारतीय यात्रियोंको ताज्जुबमें डालनेवाली थी। वहाँ पानी नहीं होता, कागजके टुकड़ोंसे काम चलाना पड़ता है।

लगभग पाँच दिनतक समुद्र-यात्राका आनन्द लेनेके बाद हम अदन पहुँचे। इस बीच हमें कहीं भूमिका एक टुकड़ा या पहाड़की कोई रेखा भी दिखाई नहीं दी। हम सब समुद्र-यात्राके विरस एक-सुरेपनसे ऊब गये थे और जमीन देखनेको आतुर थे। आखिर छठवें दिन सवेरे हमें भूमि दिखलाई पड़ी। सब आनन्दित और प्रफुल्ल दीखने लगे। सुबहके लगभग ग्यारह बजे जहाजने अदनमें लंगर डाला। कुछ लड़के छोटी-छोटी नावें लेकर आ गये। वे बड़े अच्छे तैराक थे। कुछ यूरोपीयोंने पानीमें पैसे फेंक दिये। इन लड़कोंने गहरी डुबकियाँ लगाकर उन पैसोंको निकाल लिया। काश, मैं भी इस तरह तैर सकता! वह दृश्य बड़ा सुहावना था। लगभग आधे घंटेतक उसका आनन्द लेनेके बाद हम अदन देखने गये। मैं कह देना चाहता हूँ कि हमने उन लड़कोंको पैसे निकालते हुए सिर्फ देखा; खुद हमने एक पाई भी नहीं फेंकी। इस दिनसे हमें इंग्लैंडके खर्चकी कल्पना होने लगी। हम तीन व्यक्ति थे, और नावका भाड़ा दो रुपये देना पड़ा। किनारा तो मुश्किलसे एक मील रहा होगा। हम १५ मिनटमें किनारे पर पहुँच गये। बादमें हमने एक गाड़ी की। हम अदनकी एक-मात्र देखने लायक चीज पानीघर देखने जाना चाहते थे; परन्तु दुर्भाग्यसे समय हो गया और हम जा नहीं सके। हमने अदनका कैम्प देखा। अच्छा था। इमारतें अच्छी थीं। आम तौर पर दुकानें ही थीं। इमारतोंकी बनावट सम्भवतः वही थी जो राजकोटके बँगलोंकी और खास तौर पर पोलिटिकल एजेंटके नये बँगलेकी है। मैंने कोई कुआँ या ताजे पानीका कोई दूसरा स्थान नहीं देखा। शायद वहाँ ताजा पानी सिर्फ तालाबोंसे आता है। धूप बड़ी तेज थी। मैं पसीनेमें डूबा हुआ था। इसका कारण यह था कि हम लाल सागरसे बहुत दूर नहीं थे। मैंने एक भी पेड़ या हरा पौधा नहीं देखा और इससे मुझे और भी आश्चर्य हुआ। लोग खच्चरों या गधोंपर सवारी करते थे। अगर हम चाहते तो खच्चर किरायेपर ले सकते थे। कैम्प पहाड़पर है। जब हम लौटे तो नाववालोंने बताया कि जिन लड़कोंके बारेमें मैंने ऊपर लिखा है वे कभी-कभी घायल हो जाते हैं। समुद्रके जानवर कभी किसीके पैर और कभी किसीके हाथ काट लेते हैं। परन्तु फिर भी, वे लड़के इतने गरीब हैं कि अपनी छोटी-छोटी नावोंपर बैठ कर आ ही जाते हैं। हम तो उन नावोंपर बैठनेका साहस ही नहीं कर सकते। हममेंसे हरएकको एक-एक रुपया गाड़ी-भाड़ा देना पड़ा। लंगर १२ बजे दुपहरको उठा और हम अदनसे रवाना हो गये। परन्तु उस दिनसे हमें रोज ही धरतीका कोई-न-कोई हिस्सा दिखलाई देता रहा।

शामको हम लाल सागरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ गर्मी महसूस होने लगी। मगर वह मेरी समझमें, बम्बईमें कुछ लोग जैसी बताते थे, वैसी भून देनेवाली गर्मी नहीं थी। बेशक कोठरियोंमें वह असह्य थी। आप धूपमें रह नहीं सकते, कोठरीमें कुछ मिनट भी रहना पसन्द नहीं करेंगे; मगर छतपर हों तो आपको ताजी हवाके सुखद झकोरे मिलते ही रहेंगे। कमसे-कम मुझे तो मिले। करीब-करीब सभी यात्री

छतपर सोते थे, और मैं भी ऐसा ही करता था। प्रभात-सूर्यकी गर्मी भी आप नहीं सह सकते। छतपर आप हमेशा सुरक्षित रहते हैं। यह गर्मी लगभग तीन दिनतक रही। बादमें, चौथी रातको हम स्वेज नहरमें दाखिल हुए। स्वेजके दीप बहुत दूरसे दिखाई पड़ने लगे थे। लाल सागर कहीं तो बहुत चौड़ा था, कहीं बहुत सँकरा — इतना सँकरा कि हम दोनों ओरकी भूमि देख पाते थे। स्वेज नहरमें दाखिल होनेके पहले हम 'हेल्स गेट' से गुजरे। 'हेल्स गेट' बहुत सँकरा एक जल भाग है। यह दोनों ओर पहाड़ोंसे बँधा हुआ है। उसे 'हेल्स गेट' इसलिए कहा जाता है कि बहुत-से जहाज वहाँ टकराकर नष्ट हो जाते हैं। हमने लाल सागरमें एक नष्ट हुआ जहाज देखा था। स्वेजमें हम लगभग आधा घंटा ठहरे। अब लोगोंसे सुना कि हमें ठंड झेलनी होगी। कुछ लोगोंने कहा था कि अदनसे रवाना होनेके बाद तुम्हें शराबकी जरूरत पड़ेगी। मगर यह बात गलत निकली। अबतक मैं सह-यात्रियोंसे थोड़ी-थोड़ी बातचीत करने लगा था। कुछने कहा था कि अदनके आगे मांसकी जरूरत पड़ेगी, मगर ऐसा नहीं हुआ। अपने जीवनमें पहली बार मैंने अपने जहाजके आगे बिजलीकी रोशनी देखी। वह चाँदनी जैसी दिखाई पड़ती थी। उससे जहाजका सामनेका हिस्सा बड़ा सुन्दर लगता था। मुझे लगता है कि जो आदमी इसे किसी दूसरी जगहसे देखता होगा उसे यह और भी सुन्दर दिखलाई पड़ती होगी। यह बात ठीक वैसी ही है जैसे कि हम अपने शरीरके सौन्दर्यका इतना आनन्द नहीं ले सकते, जितना कि दूसरे ले सकते हैं; अर्थात्, हम उसे सराहनाकी दृष्टिसे देख नहीं सकते। स्वेज नहरकी रचना मेरी समझमें नहीं आई। सचमुच वह अद्भुत है। जिस आदमीने इसका निर्माण किया है उसकी प्रतिभाकी कल्पना मैं नहीं कर सकता। पता नहीं कैसे उसने यह किया होगा। यह कहना कि उसने प्रकृतिसे होड़ की है, बिलकुल ठीक ही है। दो समुद्रोंको जोड़ देना कोई सरल काम नहीं है। नहरसे एक समयमें सिर्फ एक जहाज निकल सकता है। इसके लिए कुशल मार्ग-दर्शनकी आवश्यकता होती है। जहाज बहुत धीमी गतिसे चलता है। हमें उसके चलनेका कोई भान नहीं होता। नहरका पानी बिलकुल गँदला है। मुझे उसकी गहराई नहीं मालूम। चौड़ी वह उतनी ही है जितनी रामनाथके पास आजी[1] नदी है। दोनों ओर आप आदमियोंको चलते-फिरते देख सकते हैं। नहरके पासकी जमीन ऊसर है। नहर फ्रांसीसियोंकी है। जहाजको मार्ग दिखानेके लिए इस्माइलियासे दूसरा मार्गदर्शक (पाइलट) आता है। फ्रांसीसी लोग नहरसे गुजरनेवाले हर जहाजसे कुछ रुपया वसूल करते हैं। यह आमदनी बहुत बड़ी होती होगी। जहाजके बिजलीके दीपकके अलावा लगभग २० फुटकी दूरीपर दोनों ओर और भी चिराग दिखाई देते हैं। ये चिराग अलग-अलग रंगोंके हैं। जहाज चिरागोंकी इन कतारोंको पार करके निकलता है। नहर पार करनेमें लगभग २४ घंटे लगते हैं। इस दृश्यकी खूबसूरतीका बखान करना मेरी ताकतके बाहर है। उसे देखे बिना आप उसका आनन्द नहीं पा सकते। पोर्ट सईद इस नहरके अन्तिम सिरेका बन्दरगाह है। पोर्ट सईदका अस्तित्व ही स्वेज नहरके कारण है। हमारा जहाज शामको वहाँ रुका।

१. राजकोटके पास।

वह एक घंटा ही वहाँ रुकनेवाला था, मगर इतना समय उस बन्दरगाहको देखनेके लिए बिलकुल काफी था। वहाँ ब्रिटिश सिक्कोंका प्रचलन था। भारतीय सिक्के बिलकुल बेकार हो गये। नावका भाड़ा ६ पेंस फी-सवारी था। एक पेंस एक आनेके बराबर होता है। पोर्ट सईदकी इमारतोंकी रचना फ्रांसीसी है। वहाँ फ्रांसीसी जीवनकी झलक मिल जाती है। हमने कुछ काफी-घर देखे। एकको देखकर पहले-पहल तो मैंने सोचा कि कोई नाटक-घर है, मगर वह तो काफी-घर निकला। उसमें एक ओर काफी, सोडा, चाय या अन्य पेय-पदार्थ मिलते हैं, दूसरी ओर गाना-बजाना होता है। कुछ स्त्रियाँ चिकारोंका[1] वृन्द-वादनकर रही थीं। बम्बईमें लेमनेडकी जो बोतल एक आनेसे भी कममें मिलती है उसकी कीमत इन काफी-घरोंमें — जिन्हें 'काफे' कहा जाता है — १२ पेंस होती है। कहा जाता है कि ग्राहकोंको गाना-बजाना मुफ्तमें सुननेको मिलता है। मगर सचमुच बात यह नहीं है। जैसे ही गाना-बजाना खत्म हुआ कि एक स्त्री रूमालसे ढँकी हुई एक तश्तरी लेकर हरएक ग्राहकके पास जाती है। मतलब यह होता है कि उसे कुछ दिया जाये और हम कुछ देनेके लिए बाध्य हो जाते हैं। हम 'काफे' में गये और उस स्त्रीको हमने ६ पेंस दिये। पोर्ट सईद विलासके केन्द्रके अलावा कुछ नहीं है। वहाँके स्त्री और पुरुष बड़े चालाक हैं। दुभाषिये आपको रास्ता दिखानेके लिए पीछे लग जायेंगे। मगर आप उनसे साफ-साफ कह दें कि हमें आपकी जरूरत नहीं है। पोर्ट सईद मुश्किलसे राजकोटके 'परा'[2]के बराबर होगा। हम सात बजे शामको पोर्ट सईदसे रवाना हुए।

हमारे सहयात्रियोंमें से एक श्री जेफरीज़ मुझपर बड़े मेहरबान थे। वे हमेशा मुझसे मेजपर जाकर खानेको कहा करते थे। मगर मैं नहीं जाता था। उन्होंने कहा था कि ब्रिंडिसी पहुँचनेके बाद तुम्हें ठंड मालूम पड़ेगी। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। तीन दिन बाद हम रातको ब्रिंडिसी पहुँचे। ब्रिंडिसीका बन्दरगाह बड़ा सुन्दर है। जहाज किनारे तक गया और हम लोग एक सीढ़ीसे — जो इसीलिए लगा दी गई थी — किनारे पर उतर गये। [अँधेरा] होनेके कारण मैं ब्रिंडिसीमें ज्यादा-कुछ नहीं देख सका। वहाँ सब लोग इतालवी भाषा बोलते हैं। सड़कें पत्थरोंसे पटी हुई हैं। गलियाँ उतार-चढ़ाव-वाली हैं। और उनपर भी पत्थरोंकी फर्शी है। दीपकोंके लिए गैसका उपयोग किया जाता है। हमने ब्रिंडिसीका स्टेशन देखा। वह उतना सुन्दर नहीं था, जितने सुन्दर बम्बई-बड़ौदा और सेंट्रल इंडिया रेलवेके स्टेशन हैं। परन्तु रेलके डिब्बे हमारे डिब्बों-से बहुत बड़े थे। यातायात वहाँ अच्छा है। अगर आप काले आदमी हैं तो जैसे ही ब्रिंडिसीमें उतरेंगे, कोई आदमी आपके पास आयेगा और कहेगा : "साहब, मेरे साथ आइए। एक बड़ी खूबसूरत लड़की है, साहब, — १४ बरसकी। मैं आपको उसके पास ले चलूँगा। भाव बहुत महँगा नहीं है, साहब!" आप एकदम चकरा जायेंगे। लेकिन शान्तिसे काम लीजिए और दृढ़ताके साथ उसको जवाब दे दीजिए कि हमें उस लड़कीकी जरूरत नहीं है। और उस आदमीसे चले जानेको कह दीजिए, आप सकुशल रहेंगे। अगर वह व्यक्ति आपको किसी तरह परेशान करे तो फौरन पासमें पुलिसका जो

१. फिडल्स।
२. गुजरातीमें, उपनगर।

आदमी हो उससे कहिए। या, तुरन्त किसी बड़ी इमारतमें, जो आपको दिखलाई देगी ही, घुस जाइए। हाँ, घुसनेके पहले इमारतपर लिखा हुआ नाम पढ़ लीजिए और यह निश्चय कर लीजिए कि वह सबके लिए खुली हुई है। यह आप तुरन्त समझ सकेंगे। वहाँके अरदलीको बताइए कि आप कठिनाईमें हैं। वह तुरन्त आपको उससे निकलनेका रास्ता बतायेगा। अगर आपमें काफी हिम्मत हो तो अरदलीसे कहिए कि वह आपको मुख्य अधिकारीके पास ले जाये और आप उसको सब बात बता दीजिए। बड़ी इमारतसे मेरा मतलब टामस कुक, हेनरी किंग या ऐसे ही किन्हीं दूसरे एजेंटोंकी इमारतसे है। वे आपकी हिफाजत करेंगे। उस समय कंजूसी न करें। अरदलीको कुछ दे दें। परन्तु इस जरियेका सहारा तभी लेना चाहिए जब आप अपने-आपको खतरेमें समझें। मगर ये इमारतें आपको सिर्फ समुद्र-तटपर ही मिलेंगी। अगर आप तटसे बहुत दूर हों तो पुलिसके आदमीको खोजिए। अगर वह न मिले तो फिर आपकी अन्तरात्मा ही आपकी सबसे अच्छी मार्ग-दर्शक होगी। हम तड़के ब्रिंडिसीसे रवाना हुए।

लगभग तीन दिन बाद हम माल्टा पहुँचे। जहाजने कोई दो बजे दुपहरको लंगर डाला। वहाँ वह लगभग चार घंटे ठहरनेवाला था। श्री अब्दुल मजीद हमारे साथ बाहर जानेवाले थे। परन्तु किसी तरह उन्हें बहुत देरी हो गई। मैं जानेको बिलकुल अधीर था। श्री मजमूदारने कहा, "क्या श्री मजीद की राह न देखें, हम अकेले चले चलें?" मैंने जवाब दिया "जैसा आप ठीक समझें। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" फिर हम दोनों ही चले गये। हमारे लौटनेपर अब्दुल मजीदने कहा, "मुझे बहुत अफसोस है कि आप लोग चले गये।" इसपर श्री मजमूदारने जवाब दिया, "ये गांधी अधीर हो गये थे। इन्होंने ही मुझसे कहा था कि आपके लिए न ठहरें।" मुझे श्री मजमूदारके इस तरहके बरतावसे सचमुच बहुत चोट लगी। मैंने उस आरोपको धो डालनेकी कोई कोशिश नहीं की, बल्कि चुपचाप उसे मंजूर कर लिया। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सारा आरोप अब्दुल मजीदसे सिर्फ इतना इशारा करके सरलतासे धोया जा सकता था कि अगर श्री मजमूदार सचमुच ही आपके लिए ठहरना चाहते थे तो बेहतर होता कि वे मेरे कहनेके अनुसार न करते। और मैं समझता हूँ कि श्री अब्दुल मजीदको विश्वास दिला देनेके लिए कि इस काममें मेरा हाथ नहीं था, इतना ही काफी होता। यद्यपि उस समय मेरा ऐसा कुछ इरादा नहीं था। फिर भी, उस दिनसे श्री मजमूदार मेरी निगाहमें बहुत गिर गये और उनके लिए मेरे दिलमें कोई सच्चा आदर नहीं रहा। इसके अलावा भी दो-तीन बातें हुईं, जिनसे मजमूदार दिन प्रतिदिन मुझे कम भाने लगे।

माल्टा एक दिलचस्प जगह है। वहाँ देखने लायक बहुत-सी चीजें हैं। मगर हमारे पास समय काफी नहीं था। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, श्री मजमूदार और मैं तटपर गये थे। वहाँ एक बड़ा ठग हमें मिला। हमें बहुत हानि उठानी पड़ी। हमने नावका नम्बर ले लिया और शहर देखनेके लिए एक गाड़ी की। ठग हमारे साथ था। लगभग आधा घंटा चलनेके बाद हम सेंट जॉन गिरजेमें पहुँचे।

गिरजाघर बड़ा सुन्दर बना था। वहाँ हमने कुछ प्रतिष्ठित लोगोंके अस्थिपंजर देखे। वे बहुत पुराने थे। जिस साथीने हमें गिरजाघर दिखाया था उसको हमने एक शिलिंग दिया। गिरजेके ठीक सामने सेंट जॉनकी प्रतिमा थी। वहाँसे हम शहरको चले। सड़कें फर्शदार थीं और उनके दोनों ओर लोगोंके पैदल चलनेके लिए फर्शदार पटरियाँ बनी थीं। टापू बहुत सुन्दर है। उसमें बहुत-सी शानदार इमारतें हैं। हम शस्त्रास्त्र-भवन देखने गये। यह भवन बड़ी सुन्दरतासे सजा हुआ था। वहाँ हमने बहुत पुराने चित्र देखे। उनमें सिर्फ रंग ही भरे हुए नहीं थे, बल्कि कशीदाकारी भी की गई थी। परन्तु कोई अनजान आदमी किसीके बताये बिना जान नहीं सकता कि उनमें कशीदाकारी भी है। वहाँ पुराने योद्धाओंके शस्त्रास्त्र रखे हुए थे। उनमें सभी देखने लायक हैं। मैंने तफसील लिख नहीं रखी, इसलिए उन सबके नाम याद नहीं हैं। परन्तु एक फौजी टोप था, उसका वजन तीस पौंड था। नेपोलियन बोनापार्टकी गाड़ी बड़ी सुन्दर थी। जिस आदमीने हमें भवन दिखाया उसे ६ पेंस इनाम देकर हम लौट पड़े। गिरजाघर और शस्त्रास्त्र-भवन देखते समय आदर-प्रदर्शनके लिए हमें अपने टोप उतार लेने पड़े थे। फिर हम उस ठगकी दूकानपर गये। उसने जबरन कुछ चीजें हमारे मत्थे मढ़ देनेका प्रयत्न किया। मगर हम कोई चीज खरीदनेको तैयार नहीं थे। आखिर श्री मजमूदारने २ शिलिंग ६ पेंसके माल्टाके चित्र खरीद लिये। यहाँ ठगने एक दुभाषियेको हमारे साथ कर दिया और वह खुद नहीं आया। दुभाषिया बहुत अच्छा आदमी था। वह हमें संतरा-बागमें ले गया। हमने बाग देखा। मुझे वह बिलकुल पसन्द नहीं आया। मुझे राजकोटका अपना सार्वजनिक पार्क उससे ज्यादा अच्छा लगता है। अगर मुझे कुछ देखने लायक मालूम हुआ तो वह था एक छोटे-से कुंडमें सुनहली और लाल मछलियाँ। वहाँसे हम शहर लौटे और एक होटलमें गये। श्री मजमूदारने कुछ आलू खाये और चाय पी। रास्तेमें हमारी भेंट एक भारतीयसे हुई। श्री मजमूदार बड़े बेधड़क आदमी थे, इसलिए उन्होंने उस भारतीयसे बातें कीं। ज्यादा बातें करनेपर मालूम हुआ कि वह माल्टाके एक दूकानदारका भाई है। हम फौरन उस दूकानमें गये। श्री मजमूदारने दूकानदारसे खूब बातें कीं। हमने वहाँ कुछ चीजें खरीदीं और दो घंटे उस दूकानमें बिता दिये। इससे हम माल्टाका बहुत-सा भाग देख नहीं पाये। हमने एक और गिरजाघर देखा। वह भी बहुत सुन्दर और देखने लायक था। हमें संगीत-नाटक-घर देखना था, पर उसके लिए समय नहीं बचा। उन सज्जनने श्री मजमूदारको अपने लंदनवासी भाईके नाम अपना कार्ड दिया और हम उनसे विदा लेकर वापस लौटे। लौटते समय वह ठग हमें फिर मिला और ६ बजे शामको हमारे साथ हो लिया। तटपर पहुँचनेपर हमने उसे, उस अच्छे दुभाषियेको और गाड़ीवानको पैसा दे दिया। नाववालेसे भाड़ेके बारेमें हमारी कुछ कहा-सुनी हो गई। नतीजा अलबत्ता उसके ही पक्षमें रहा। यहाँ हम खूब ठगे गये।

'क्लाइड' जहाज ७ बजे शामको रवाना हुआ। तीन दिनकी यात्राके बाद हम १२ बजे रातको जिब्राल्टर पहुँचे। जहाज सारी रात वहाँ रुका रहा। मेरी जिब्रा-

ल्टर देखनेकी बहुत इच्छा थी, इसलिए मैं सुबह जल्दी उठा और मैंने श्री मजमूदार-को जगाकर उनसे पूछा कि वे मेरे साथ तटपर जायेंगे या नहीं। उन्होंने कहा कि जायेंगे। तब श्री मजीदके पास जाकर मैंने उन्हें जगाया। हम तीनों तटपर गये। हमारे पास सिर्फ डेढ़ घंटेका समय था। तड़का होनेके कारण सब दूकानें बन्द थीं। कहा जाता है कि जिब्राल्टर तट-करसे मुक्त बन्दरगाह है, इसलिए वहाँ सिगरेट आदि धूम्रपानकी वस्तुएँ बहुत सस्ती मिलती हैं। जिब्राल्टर एक पहाड़ीपर बना हुआ है। शिखरपर किला है। मगर हम उसे देख नहीं पाये, इसका बहुत अफसोस रहा। मकान कतारोंमें हैं। पहली कतारसे दूसरी कतारमें जानेके लिए कुछ सीढ़ियाँ चढ़ना जरूरी होता है। मुझे वह बहुत पसन्द आया। रचना बहुत ही सुन्दर है। सड़कें पटी हुई हैं। समय न होनेसे हम जल्दी लौटनेके लिए लाचार थे। जहाज साढ़े आठ बजे सुबह रवाना हो गया।

तीन दिन बाद हम ११ बजे रातको प्लीमथ पहुँच गये। अब ठीक सर्दीका समय आ गया था। हरएक यात्री कहता था कि तुम लोग मांस और शराबके बिना मर जाओगे। मगर ऐसा हुआ तो नहीं। ठंड तो सचमुच बहुत थी। हमें तूफानकी सूचना भी दी गई थी, मगर हमें वह देखनेको मिला नहीं। दरअसल मैं उसे देखनेको बहुत उत्सुक था, मगर वह अवसर नहीं आया। रात होनेके कारण हम प्लीमथमें कुछ भी देख नहीं सके। घना कुहरा था। आखिरकार जहाज लंदनके लिए रवाना हो गया। २४ घंटेमें हम लंदन पहुँचे। जहाज छोड़कर हम टिलबरी रेलवे स्टेशनसे २७ अक्तूबर[१], १८८८ के ४ बजे सायंकाल विक्टोरिया होटलमें पहुँच गये।

शनिवार, २७ अक्तूबर[२], १८८८ से शुक्रवार, २३ नवम्बर

श्री मजमूदार, श्री अब्दुल मजीद और मैं विक्टोरिया होटलमें पहुँचे। श्री अब्दुल मजीदने विक्टोरिया होटलके आदमीसे कुछ शान दिखाते हुआ कहा कि वह हमारे गाड़ीवालेको मुनासिब किराया दे दे। श्री अब्दुल मजीद अपने आपको बहुत बड़ा समझते थे, लेकिन मैं यहाँ लिख दूँ कि वे जो कपड़े पहने हुए थे वे शायद होटलके उस छोकरेके कपड़ोंसे भी खराब थे। उन्होंने सामानकी भी कोई परवाह नहीं की और, जैसे कि लंदनमें बहुत दिनोंसे रह रहे हों, वे होटलके अन्दर चले गये। होटलके ठाट-बाट देखकर मैं चकरा गया। मैंने अपनी जिन्दगीमें इतनी शान-शौकत कभी नहीं देखी थी। मेरा काम चुपचाप अपने दोनों मित्रोंके पीछे-पीछे चलना भर था। सभी जगहोंमें बिजलीकी बत्तियाँ थीं। हमें एक कमरेमें ले जाया गया। श्री मजीद एकदम अन्दर चले गये। मैनेजरने उसी समय उनसे पूछा कि आपको दूसरा खंड पसन्द होगा या नहीं। श्री मजीदने रोजाना भाड़ेके बारेमें पूछताछ करना अपनी शानके खिलाफ समझकर कह दिया — हाँ। मैनेजरने फौरन प्रत्येकके नाम ६ शिलिंग रोजका बिल काटकर

१ और २. साधन-सूत्रमें तिथि २८ है। उस तिथिको रविवार था। स्पष्ट ही यह एक चूक है। गांधीजीने **सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १३ में लिखा है कि वह शनिवारके दिन लंदन पहुँचे थे, जो २७ अक्तूबरको पड़ता है।

एक छोकरेको हमारे साथ भेज दिया। मैं सारे समय मन ही मन हँसता रहा। अब हमें एक 'लिफ्ट' के जरिये दूसरे खंडमें जाना था। मैं नहीं जानता था कि लिफ्ट क्या है। छोकरेने कोई चीज छुई जिसे मैंने दरवाजेका ताला समझा। परन्तु, जैसा कि मुझे बादमें मालूम हुआ, वह एक घंटी थी, जो उसने लिफ्टके छोकरेको यह जतानेके लिए बजाई थी कि वह लिफ्ट ले आये। दरवाजा खोला गया और मैंने सोचा कि यह कोई कमरा है, जिसमें हमें कुछ देर ठहरना होगा। लेकिन हमें उससे दूसरे खंडमें ले जाया गया और इसपर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।[1]

अंग्रेजी प्रतिसे।

५. फ्रेडरिक लेलीको लिखे पत्रका मसविदा[2]

लंदन
दिसम्बर, १८८८

प्रिय महोदय,

आपको मेरा वह पत्र देखकर जो मैंने आपसे मिलनेका अवसर पानेपर आपको दिया था मेरा ध्यान आ जायेगा। आपने उसे सुरक्षित रखनेका वादा किया था।

उस समय मैंने इंग्लैंड आनेके लिए आपसे कुछ आर्थिक सहायता माँगी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश आप जानेकी जल्दीमें थे। इसलिए मुझे जो-कुछ कहना था वह सब कहनेके लिए काफी समय नहीं मिला।

मैं उस समय इंग्लैंड आनेके लिए बहुत अधीर था। इसलिए मेरे पास जो थोड़ा-बहुत पैसा था उसे लेकर मैं ४ सितम्बर, १८८८ को भारतसे रवाना हो गया। मेरे पिता हम तीनों भाइयोंके लिए जो कुछ छोड़ गये थे वह तो बहुत थोड़ा था। मेरे भाई बहुत कठिनाईसे मेरे लिए लगभग ६६६ पौंड निकाल सके। मैंने माना कि इतनी रकम लंदनमें तीन वर्ष रहनेके लिए काफी होगी। और मैं इंग्लैंडमें कानूनका अध्ययन करनेके लिए भारतसे रवाना हो गया। भारतमें रहते हुए मुझे मालूम हो गया था कि लंदनमें रहना और शिक्षा प्राप्त करना बहुत खर्चीला होता है। परन्तु यहाँ दो माह रहकर मैंने अनुभव किया है कि भारतमें जितना मालूम हुआ था खर्च उससे भी बहुत ज्यादा है।

यहाँ आरामसे रहने और अच्छी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए मुझे ४०० पौंडकी और जरूरत होगी। मैं पोरबन्दरका निवासी हूँ। ऐसी हालतमें वही एक स्थान है, जिससे मैं इस प्रकारकी सहायताकी अपेक्षा कर सकता हूँ।

राणा साहबके भूतपूर्व शासनमें शिक्षाको बहुत कम प्रोत्साहन दिया जाता था। परन्तु अब हमारा यह अपेक्षा करना स्वाभाविक ही है कि अंग्रेजोंके शासन-प्रबंधमें

१. शेष भाग उपलब्ध नहीं है।
२. गांधीजीने इसे अपने बड़े भाई लक्ष्मीदासके पास उनकी सम्मतिके लिए भेजा था।

शिक्षाको प्रोत्साहन मिलेगा। मैं उन लोगोंमें हूँ जो ऐसे प्रोत्साहनका लाभ उठा सकते हैं।

इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे कुछ आर्थिक सहायता देनेकी कृपा करेंगे और इस तरह मेरी बहुत बड़ी जरूरत पूरी करके मुझे आभारी बनायेंगे।

मैंने अपने भाई लक्ष्मीदास गांधीको [रकम] ले लेनेके लिए लिखा है। मैं उन्हें एक पत्र भेज रहा हूँ कि अगर जरूरी हो तो वे खुद आपसे मिल लें।

मुझे विश्वास है कि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करनेकी कृपा करेंगे।

परम आदरके साथ,

आपका,
मो० क० गांधी[1]

इसे मैंने तीन हफ्ते हुए लिख छोड़ा था, और इसपर विचार करता रहा हूँ। परन्तु अब इस बीचमें इस पत्रका जवाब आ जायेगा, ऐसा मानकर यह मसविदा आपको भेज रहा हूँ। इसमें मैंने पूरी मददकी माँग नहीं की है, क्योंकि वह अनुचित मानी जायेगी। साथ ही, वे यह भी सोचेंगे कि अगर हमारे भरोसे गया होता, तब तो मदद लिए बिना न जाता। इसलिए यहाँ आनेके बाद यह सोचकर कि ज्यादा पैसेकी जरूरत होगी, बाकी पैसेकी मदद माँगी है। बन्धन आदि स्वीकार करनेकी बात लिखी ही नहीं, क्योंकि वह लिखनेकी कोई जरूरत नहीं थी। थोड़ी मददके लिए बंधन स्वीकार करना ठीक नहीं। इसी तरह यदि . . .[2]

[अंग्रेजी व गुजरातीसे]
महात्मा, खंड १; तथा एक फोटो-नकलसे।

६. पत्र: कर्नल जे० डब्ल्यू० वॉट्सनको

[दिसम्बर, १८८८]

कर्नल जे० डब्ल्यू० वॉट्सन
पोलिटिकल एजेंट
काठियावाड़

प्रिय महोदय,

मुझे इस देशमें आये लगभग छः या सात सप्ताह हो गये हैं। इस बीच मेरा रहना-सहना ठीक तरहसे जम गया है और मैंने अपनी पढ़ाई काफी अच्छी तरह शुरू कर दी है। मैं अपनी कानूनी शिक्षाके लिए 'इनर टेम्पल' में भरती हुआ हूँ।

१. इसके बादका अंश गुजरातीमें है।

२. गुजरातीमें लिखा हुआ यह संदेश लक्ष्मीदास गांधीके नाम था। उपर्युक्त मसविदा इसके साथ भेजा गया था। पत्रका बाकी हिस्सा उपलब्ध नहीं है।

आप भली-भाँति जानते हैं कि इंग्लैंडमें रहन-सहन बहुत खर्चीला है। मुझे जो थोड़ा-सा अनुभव हुआ है उससे मैं देखता हूँ कि भारतमें रहते हुए मैंने जितना समझा था उससे भी खर्च बहुत ज्यादा है। आप जानते ही हैं कि मेरे साधन बहुत सीमित हैं। मेरा खयाल है कि मैं किसीकी सहायताके बिना तीन वर्षका पाठ्यक्रम पूरा नहीं कर सकूँगा। जब मैं सोचता हूँ कि आपको मेरे पिताजीसे बहुत स्नेह था और आपने उन्हें अपना मित्र माना था तो मुझे इसमें बहुत कम सन्देह होता है कि आप उनसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंमें भी वही दिलचस्पी रखेंगे। मुझे विश्वास है कि आप मुझे कोई ऐसी अच्छी मदद दिलानेकी भरसक कोशिश करेंगे, जिससे इस देशमें मुझे अपनी पढ़ाई पूरी करनेमें सहूलियत हो। इससे मेरी जबर्दस्त जरूरत पूरी होगी और मैं आपका बड़ा आभार मानूँगा।

कुछ दिन हुए मैंने डा० बटलरसे भेंट की थी। वे मुझपर बहुत मेहरबान हैं और उन्होंने वादा किया है कि वे जो भी मदद कर सकेंगे, करेंगे।

अबतक मौसम बहुत उग्र नहीं रहा। मैं बहुत मजेमें हूँ।

परम आदरके साथ,

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
महात्मा, खंड १; तथा एक फोटो-नकलसे।

७. भारतीय अन्नाहारी – १

भारतमें ढाई करोड़ (२५ मिलियन)[1] लोग निवास करते हैं। वे भिन्न-भिन्न जातियों और धर्मोंके हैं। इंग्लैंडके जो लोग भारत नहीं गये, या जिन्होंने भारतीय मामलोंमें बहुत कम दिलचस्पी ली है, उनका सामान्य विश्वास यह है कि सारे भारतीय जन्मसे ही अन्नाहारी अथवा निरामिषाहारी हैं। यह केवल आंशिक रूपमें सही है। भारतके निवासी तीन मुख्य वर्गोंमें बँटे हुए हैं। वे वर्ग हैं हिन्दू, मुसलमान और पारसी।

हिन्दू और भी चार मुख्य वर्णोंमें बँटे हुए हैं: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन सबमें सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो केवल ब्राह्मण और वैश्य ही शुद्ध अन्नाहारी हैं, परन्तु व्यवहारमें प्रायः सभी भारतीय अन्नाहारी हैं। कुछ लोग तो स्वेच्छासे अन्नका आहार करते हैं, परन्तु शेषके लिए अन्नाहार अनिवार्य है। इनमें से पहले वर्गके लोग मांस खानेके इच्छुक तो हमेशा रहते हैं, परन्तु वे गरीब इतने हैं कि मांस खरीद नहीं सकते। भारतमें हजारों लोगोंको केवल एक पैसा ($\frac{1}{3}$ पेंस) रोजपर गुजारा करना पड़ता है, इस वस्तुस्थितिसे मेरे कथनकी पुष्टि होगी। ये लोग सिर्फ रोटी और भारी कर-लदे नमकपर निर्वाह करते हैं; क्योंकि भारत जैसे दरिद्रता-ग्रस्त देशमें

१. मूल लेखमें '२५० मिलियन' की जगह '२५ मिलियन' ही दिया है, जो स्पष्टतः छपाईकी भूल है।

एक पैसेमें खाने योग्य मांस मिल जाना अगर बिलकुल असम्भव नहीं तो बहुत कठिन जरूर होगा।

अब इस प्रश्नका निर्णय हो जानेके बाद कि भारतमें अन्नाहारी लोग कौन हैं, स्वाभाविक प्रश्न यह उठेगा कि वे जिस अन्नाहार-सिद्धान्तका पालन करते हैं वह क्या है? पहले तो, भारतीयोंके अन्नाहारका अर्थ शाक-सब्जी, अंडों और दूधका आहार नहीं है।[1] भारतीय अर्थात् भारतीय अन्नाहारी मांस, मछली और मुर्गीके अलावा अंडे खानेसे भी परहेज करते हैं। उनका तर्क यह है कि अंडा खाना जीवहत्या करनेके बराबर है, क्योंकि यदि अंडेको छेड़ा न जाये तो स्पष्ट है कि उससे बच्चा पैदा होगा। परन्तु जिस तरह यहाँके कट्टर अन्नाहारी दूध और मक्खनसे भी परहेज करते हैं, वैसा भारतीय अन्नाहारी नहीं करते। उलटे, वे तो उन्हें फलाहार — उपवास — के दिनोंमें सेवन करने योग्य पवित्र वस्तुएँ मानते हैं। ये फलाहारके दिन हर पखवारेमें आते हैं और ऊँची जातियोंके हिन्दू सामान्य रूपसे इनका पालन करते हैं। उनका कहना है कि हम गायका दूध लेकर उसकी हत्या नहीं करते। गो-दोहनको तो भारतमें काव्य और चित्रकलाका विषय बना लिया गया है और, निश्चय ही उससे कोमलतम भावनाओंको भी धक्का नहीं पहुँच सकता, जैसा कि गो-वधसे पहुँचता है। यहाँ यह कह देना भी अनुचित न होगा कि हिन्दू लोग गायको पूजनीय मानते हैं और वधके हेतु गायोंका जो निर्यात किया जाता है उसे रोकनेके लिए एक आन्दोलन तेजीके साथ जोर पकड़ रहा है।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ७-२-१८९१

८. भारतीय अन्नाहारी – २

साधारणतः भारतीय अन्नाहारियोंका भोजन उनके अपने-अपने प्रदेशके अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। बंगालका मुख्य आहार चावल है, जब कि बम्बई प्रदेशका गेहूँ है।

आमतौरपर सारे भारतीय — और विशेषतः प्रौढ़ लोग और उनमें भी ऊँची जातियोंके हिन्दू दिनमें दो बार भोजन करते हैं। दोनों बारके भोजनके बीच जब-कभी प्यास लगती है, वे एक-दो गिलास पानी पी लेते हैं। पहली बारका भोजन वे लगभग दस बजे सुबह करते हैं। यह इंग्लैंडके शामके मुख्य भोजन (डिनर) के जैसा होता है। दूसरी बारका भोजन रातको लगभग आठ बजे किया जाता है। जहाँतक नामका सम्बन्ध है, वह इंग्लैंडकी ब्यालू (सपर) के समान होता है। परन्तु वह हलका आहार नहीं, भरपूर भोजन होता है। साधारणतः भारतके लोग छः बजे और इससे भी जल्दी चार या पाँच बजे सुबह जागते हैं। यह देखते हुए अनुमान किया जा

१. मूल लेखमें 'वी० ई० एम० डाएट' दिया है, जो शायद 'वेजिटेबल्स, एग्ज ऐंड मिल्क डाएट' का संक्षिप्त रूप है।

सकता है कि उन्हें कलेवाकी जरूरत पड़ती होगी। परन्तु, जैसा कि ऊपरके विवरण-से स्पष्ट हो गया होगा, वे कलेवा नहीं करते और न दुपहरका साधारण भोजन ही करते हैं। पर निस्सन्देह कुछ पाठकोंको आश्चर्य होगा कि वे अपने पहले भोजनके बाद नौ घंटोंतक कुछ भी खाये बिना कैसे रहते हैं। इसके दो उत्तर हो सकते हैं—पहला तो यह कि आदत, दूसरा निसर्ग है। कुछ लोगोंका धर्म यह आदेश देता है और कुछ लोगोंके धंधे तथा रीति-रिवाज उन्हें इसपर बाध्य करते हैं कि वे दिनमें दो बारसे ज्यादा भोजन न करें। दूसरे, कुछ स्थानोंको छोड़कर सारे भारतकी आबहवा बहुत गर्म है। यह उपर्युक्त आदतका कारण हो सकता है; क्योंकि इंग्लैंडमें भी देखा जाता है कि सर्दीके मौसममें भोजनकी जितनी मात्रा आवश्यक होती है उतनी ही गर्मीके मौसममें आवश्यक नहीं होती। इंग्लैंडमें जिस तरह भोजनका प्रत्येक पदार्थ अलग-अलग ग्रहण किया जाता है, वैसा भारतीय नहीं करते। वे अनेक पदार्थोंको एक-साथ मिला देते हैं। कुछ हिन्दुओंमें तो सब पदार्थोंको एक-साथ मिला लेना धर्म है। इसके अतिरिक्त, भोजनका प्रत्येक व्यंजन बड़े विस्तारपूर्वक बनाया जाता है। सच तो यह है कि भारतीय सादी उबली हुई शाक-सब्जियाँ खानेमें विश्वास नहीं करते। वे उनमें अच्छी खासी मात्रामें नमक, मिर्च, हल्दी, राई, लौंग और तरह-तरहके दूसरे मसाले डालकर उन्हें स्वादिष्ट बना लेते हैं। अंग्रेजीमें उन सारे मसालोंके नाम दवाइयोंके नामोंमें ही मिल सकते हैं; उनके बाहर पाना कठिन है।

पहले भोजनमें साधारणतः रोटियाँ या चपातियाँ, जिनके बारेमें बादमें अधिक लिखा जायेगा, थोड़ी-सी दाल, जैसे अरहर या सेम आदिकी, और अलग-अलग या एक-साथ पकी हुई दो या तीन हरी सब्जियाँ होती हैं। इसके बाद पानीमें पकी हुई और मसालोंसे स्वादिष्ट बनी दाल और चावल मिलाकर खाते हैं। अन्तमें कुछ लोग दूध या चावल या केवल दूध या दही या, विशेषतः गर्मीके दिनोंमें, छाँछ भी लेते हैं।

दूसरे भोजन या ब्यालूमें अधिकतर पहले भोजनके ही पदार्थ होते हैं। परन्तु उनकी मात्रा और शाक-सब्जियोंकी संख्या कम होती है। दूधका उपयोग अधिक मात्रामें किया जाता है। यहाँ पाठकोंको याद दिला दूँ कि यही भारतवासियोंका निश्चित भोजन नहीं है। यह भी नहीं सोचना चाहिए कि यही पदार्थ सारे भारतके और सब वर्गोंके आहारको सूचित करते हैं। उदाहरणके लिए, इन आहारोंमें मिठाई नहीं गिनाई गई, जब कि सम्पन्न वर्गोंमें हफ्तेमें एक बार तो मिठाई जरूर ही खाई जाती है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बम्बई प्रदेशमें चावलसे गेहूँ अधिक खाया जाता है, बंगालमें गेहूँसे अधिक उपयोग चावलका होता है। यही बात तीसरे अपवादके बारेमें भी है, जिससे यह नियम सिद्ध हो जाता है कि मजदूर-वर्गका आहार उपर्युक्त आहारसे भिन्न है। यदि सब प्रकारके आहारोंकी चर्चा की जाये तो बहुत विस्तार हो जायेगा और वैसा करनेसे, लेखकी सारी रोचकता समाप्त हो जानेकी आशंका है।

रसोईके कामोंमें मक्खन या यों कहिए कि घीका जितना उपयोग इंग्लैंड या सम्भवतः सारे यूरोपमें किया जाता है उससे भारतमें कहीं अधिक होता है। और

इस विषयमें कुछ अधिकार रखनेवाले एक डाक्टरके कथनानुसार, इंग्लैंडकी जैसी ठंडी आबहवामें मक्खनका बहुत उपयोग जैसा हानिकारक हो सकता है वैसा भारतकी जैसी गर्म आबहवामें नहीं हो सकता, फिर भले ही वह गुणकारी भी न हो।

शायद पाठक महसूस करेंगे कि आहारके उपर्युक्त प्रकारोंमें फलोंका, निस्सन्देह जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आहार है, अभाव खेदजनक और खटकनेवाला है। इसके अनेक कारणोंमें से कुछ ये हैं कि भारतीय फलोंका उचित महत्त्व नहीं जानते, गरीब लोगोंमें अच्छे फल खरीदनेका सामर्थ्य नहीं है और बड़े-बड़े शहरोंको छोड़कर शेष सारे भारतमें अच्छे फल प्राप्य नहीं हैं। हाँ, कुछ ऐसे फल जरूर हैं जो यहाँ नहीं पाये जाते और जिनका उपयोग भारतके सब वर्गोंके लोग करते हैं। परन्तु खेदकी बात है कि उनका सेवन अतिरिक्त आहारके रूपमें किया जाता है, भोजनके अंशके रूपमें नहीं। रासायनिक दृष्टिसे उनके गुणोंकी जानकारी किसीको नहीं है, क्योंकि उनके विश्लेषणका कष्ट कोई नहीं उठाता।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, १४-२-१८९१

९. भारतीय अन्नाहारी – ३

पिछले लेखमें चपातियों या रोटियोंकी बाबत "बादमें अधिक" लिखनेका वादा किया गया था। ये रोटियाँ आमतौरपर गेहूँके आटेकी बनाई जाती हैं। पहले गेहूँको हाथ-चक्कीमें पीस लिया जाता है। हाथ-चक्की यंत्रसे चलनेवाली मिल नहीं, गेहूँ पीसनेका बिलकुल सादा उपकरण होती है। गेहूँका यह आटा मोटी चलनीसे छाना जाता है, जिससे मोटा-मोटा चोकर अलग हो जाता है। हाँ, गरीब वर्गोंमें चालनेकी यह क्रिया नहीं की जाती। यह आटा ठीक वही तो नहीं होता जिसका उपयोग यहाँके अन्नाहारी करते हैं; फिर भी यहाँ मनमाने तौरपर काममें लाई जानेवाली 'सफेद डबलरोटी' के आटेसे कहीं अच्छा होता है। लगभग आधा सेर आटेमें चायका चम्मच-भर शुद्ध किया हुआ, अर्थात् उबालकर और छानकर ठंडा किया हुआ मक्खन मिला दिया जाता है। वैसे यह क्रिया, मक्खन ताज़ा हो तो, ग़ैर जरूरी है। फिर इसे काफी पानी डालकर आटेको हाथोंसे माड़कर एक-सी करके पिण्डी बना ली जाती है। बादमें इसकी टैंजियरके संतरेके बराबर छोटी-छोटी, समान आकार की लोइयाँ बनाई जाती हैं। इन लोइयोंको इसी कामके लिए खास तौरसे बने हुए लकड़ीके बेलनसे बेला जाता है और लगभग ६-६ इंच व्यासकी पतली, गोलाकार चकतियाँ [चपातियाँ] बनाई जाती हैं। प्रत्येक चपाती तवेपर [और फिर अंगारों पर] अलग-अलग अच्छी तरह सेंकी जाती है। इस प्रकार एक चपातीको सेंकनेमें पाँचसे लेकर सात मिनटतक लगते हैं। यह चपाती या रोटी मक्खन [घी] के साथ गर्म-गर्म खाई जाती है और बड़ी स्वादिष्ट होती है। इसे बिलकुल ठंडी हो

जानेपर भी खाया जा सकता है और खाया जाता है। अंग्रेजोंके लिए जैसा मांस है, भारतीयोंके लिए वैसी ही रोटी है — फिर भले ही भारतीय अन्नाहारी हों या मांसाहारी। लेखकके खयालसे, भारतमें मांसाहारी लोग भी मांसको स्वतंत्र आहारके रूपमें आवश्यक नहीं समझते, बल्कि यों कहें कि, रोटियाँ खानेमें मदद देनेवाली वस्तुके रूपमें, शाक-सब्जीके तौरपर खाते हैं।

यह है खुशहाल भारतीयोंके साधारण आहारकी रूपरेखा। यह रूपरेखा-मात्र ही है। अब एक सवाल पूछा जा सकता है — "क्या ब्रिटिश शासनसे भारतीयोंकी आदतोंमें कोई फर्क नहीं पड़ा?" जहाँतक भोजन और पेयोंका सम्बन्ध है, "हाँ" भी और "नहीं" भी। "नहीं" क्योंकि साधारण स्त्री-पुरुषोंने भी अपने मूल आहार और उनकी संख्या कायम रखी है। "हाँ" क्योंकि जिन लोगोंने थोड़ी-सी अंग्रेजी सीख ली है उन्होंने जहाँ-तहाँ कुछ अंग्रेजी आचार-विचार ग्रहण कर लिये हैं। परन्तु यह परिवर्तन भी बहुत दिखलाई नहीं पड़ता। परिवर्तन अच्छा है या बुरा, इसका निर्णय करनेका काम पाठकोंपर ही छोड़ना होगा।

यह वर्ग कलेवाकी जरूरतको मानने लगा है। कलेवामें मामूली तौरपर एक-दो प्याले चाय ही होती है। इससे हम "पेयों" के प्रश्नपर आ जाते हैं। तथाकथित शिक्षित भारतीयोंमें, मुख्यतः ब्रिटिश शासनके कारण, चाय-काफीका जो प्रचार हुआ है उसका कमसे-कम जिक्र करके हम आगे बढ़ सकते हैं। चाय-काफी तो अधिकसे-अधिक इतना ही कर सकती है कि थोड़ा-सा फालतू खर्च बढ़ा दे, और बहुत ज्यादा पीनेपर स्वास्थ्यमें सामान्य कमजोरी पैदा कर दे। मगर ब्रिटिश शासनकी जिन बुराइयोंको सबसे ज्यादा महसूस किया गया है, उसमें से एक है शराबका — मानव जातिके इस शत्रुका, सभ्यताके इस अभिशापका — विभिन्न रूपोंमें भारतमें आगमन। दूसरोंसे सीखी हुई इस आदतकी बुराईका अन्दाजा तब लगेगा जब पाठक जान लें कि धार्मिक निषेधके बावजूद यह शत्रु भारतके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक फैल गया है; क्योंकि मुसलमान तो अपने धर्मके मुताबिक, शराबकी बोतल छू लेने-मात्रसे ही नापाक हो जाता है और हिन्दुओंके धर्मने हर-एक रूपमें शराबके उपयोगका कठोर निषेध किया है। फिर भी खेद है कि सरकार उसे रोकनेके बजाय उसके प्रचारमें मदद और प्रोत्साहन देती-सी जान पड़ती है। भारतके गरीब लोग, जैसा कि सभी जगह होता है, इससे सबसे अधिक पीड़ित हैं। अपनी थोड़ी-सी कमाईको अच्छे भोजन और जरूरतकी दूसरी चीजोंपर खर्च करनेके बदले ये उसे शराबपर खर्च कर डालते हैं। गरीब ही वे अभागे लोग हैं, जो पी-पीकर अपने-आपको बरबाद कर लेते हैं और अकाल-मृत्यु मर जाते हैं तथा फिर उनके कुटुम्बको भूखों मरना पड़ता है; अगर ऐसे लोगोंके बाल-बच्चे हों तो वे अपनी इस कुटेवके कारण उनकी देख-रेख करनेके पवित्र कर्त्तव्य तककी परवाह नहीं कर पाते। यहाँ बैरोके भूतपूर्व सदस्य श्री केनकी[1]

१. विलियम स्प्रॉस्टन केन (१८४२-१९०३); ब्रिटिश संसद-सदस्य; कांग्रेस ब्रिटिश समितिकी भारतीय संसदीय उपसमितिके सदस्य; भारतमें स्वशासनके समर्थक; दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके साथ सहानुभूति रखते थे।

प्रशंसामें यह कहा जा सकता है कि वे इस बुराईके फैलनेके खिलाफ अब भी अपना धर्मयुद्ध सतत जारी रखे हुए हैं। परन्तु किसी उदासीन और सोई हुई सरकारकी अकर्मण्यताके खिलाफ एक मनुष्यकी शक्ति, फिर वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, कर ही क्या सकती है?

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २१-२-१८९१

१०. भारतीय अन्नाहारी – ४

अब पाठकोंको मालूम हो चुका है कि भारतमें अन्नाहारी कौन हैं और आम तौरपर वे क्या खाते हैं। इसके बाद, नीचे लिखे तथ्योंसे वे यह निर्णय कर सकेंगे कि अन्नाहारी हिन्दुओंके शरीर कमजोर होनेके बारेमें कुछ लोग जो तर्क करते हैं वे कितने निराधार और पोचे हैं।

भारतीय अन्नाहारियोंके बारेमें जो एक बात अकसर कही जाती है सो यह है कि वे शारीरिक दृष्टिसे बहुत दुर्बल हैं और, इसका अर्थ है कि अन्नाहार शारीरिक शक्तिके साथ मेल नहीं खाता।

अब, अगर यह सिद्ध किया जा सके कि भारतमें अन्नाहारी लोग भारतीय मांसाहारियोंसे — और यों कहिये कि अंग्रेजोंसे भी — अधिक हृष्ट-पुष्ट नहीं तो उनके बराबर जरूर हैं और, इसके अलावा, जहाँ-कहीं दुर्बलता देखनेमें आती है वहाँ उसका कारण निरामिष आहार नहीं, बल्कि कुछ और ही है, तो उपर्युक्त दलीलका सारा आधारभूत ढाँचा ही ढह जायेगा।

आरम्भमें यह स्वीकार करना होगा कि हिन्दू लोग साधारणतः इतने दुर्बल हैं कि वे अपनी दुर्बलताके लिए कुख्यात हो गये हैं। परन्तु कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति — भले ही वह मांसाहारी हो — जो भारत और उसके लोगोंको जरा भी जानता है, बता सकेगा कि इस लोक-विश्रुत दुर्बलताके अन्य अनेक कारण हैं, और वे लगातार बने रहकर लोगोंको कमजोर करते जा रहे हैं।

बाल-विवाहकी कुप्रथा ऐसा ही एक कारण है। उससे और भी खराबियाँ पैदा होती हैं। यह अगर अपने-आपमें सबसे महत्त्वपूर्ण नहीं, तो सबसे महत्त्वपूर्ण कारणोंमें से एक जरूर है। आम तौरपर जब बच्चे नौ बरसकी 'बड़ी उम्र' के हो जाते हैं, उनपर विवाहित जीवनकी बेड़ियाँ कस दी जाती हैं। बहुत-से तो और भी छोटी उम्रमें ब्याह दिये जाते हैं और कुछकी सगाई उनके जन्मके पहले ही कर दी जाती है। अर्थात्, एक स्त्री दूसरी स्त्रीसे वादा कर लेती है कि यदि मेरे लड़का और तुम्हारे लड़की हुई या मेरे लड़की और तुम्हारे लड़का हुआ तो हम दोनोंका विवाह कर देंगे। अलबत्ता, अन्तकी इन दोनों हालतोंमें विवाहकी रस्म बच्चोंके १०-११ वर्ष पूरे कर लेनेतक अदा नहीं की जाती। ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें १२ वर्षकी पत्नीके

१६-१७ वर्षके पतिसे सन्तानोत्पत्ति हुई है। क्या बलवानसे बलवान शरीरपर भी इन विवाहोंका बुरा असर नहीं पड़ेगा?

अब जरा कल्पना कीजिए कि इस प्रकारके विवाहोंसे उत्पन्न सन्तति कितनी दुर्बल होगी। फिर खयाल कीजिए कि उन चिन्ताओंका, जो ऐसे दम्पतीको ढोनी पड़ेंगी। मान लीजिए कि किसी ११ वर्षके बालकका विवाह लगभग उसी उम्रकी बालिकाके साथ कर दिया जाता है। अब, लड़का तो जानता ही नहीं कि पति बननेका अर्थ क्या है, उसे जानना चाहिए भी नहीं, फिर भी उसके एक पत्नी हो जाती है, जो जबरन् उसके गले मढ़ दी गई है। वह अपने स्कूल तो जाता ही है और स्कूलकी बेगारके साथ-साथ उसे अपनी बाल-पत्नीकी देखभाल भी करनी पड़ती है। उसका भरण-पोषण तो नहीं करना पड़ता, क्योंकि भारतमें विवाहित लड़कोंका अपने माता-पितासे अलग हो जाना जरूरी नहीं होता। हाँ, आपसमें बनती न हो तो बात अलग होती है। परन्तु भरण-पोषण छोड़कर उन्हें अपनी पत्नियोंके लिए सब-कुछ करना पड़ता है। फिर विवाहके लगभग छः वर्ष बाद, मान लीजिए, उसको लड़का हो गया। शायद उस समयतक उसकी पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई। और उसे सिर्फ अपने ही नहीं, बल्कि अपनी पत्नी और बच्चेके भी भरण-पोषणके लिए रुपया कमानेकी चिन्ता लग गई, क्योंकि वह अपना सारा जीवन अपने पिताके साथ व्यतीत करनेकी आशा तो नहीं कर सकता। और मान लिया जाये कि वह पिताके आश्रयमें रहता ही है, तो भी उससे इतनी अपेक्षा तो की ही जायेगी कि वह अपनी पत्नी और बच्चेके भरण-पोषणमें कुछ हाथ बँटाये। तब क्या अपने कर्त्तव्यका ज्ञान-मात्र ही उसके मनको खा-खाकर स्वास्थ्यको कमजोर न कर देगा? क्या कोई यह कहनेका साहस कर सकता है कि इससे तगड़ेसे तगड़ा शरीर भी बरबाद न हो जायेगा? परन्तु यह तर्क बखूबी किया जा सकता है कि जिसका उदाहरण दिया गया है, अगर वह लड़का मांसाहारी होता तो जितना पुष्ट रहा उससे अधिक पुष्ट रहता। इस दलीलका उत्तर उन क्षत्रिय राजाओंके जीवनसे मिल सकेगा, जो कि मांसाहार करते हुए भी व्यभिचारके कारण बहुत दुर्बल पाये जाते हैं।

फिर भारतके ग्वाले इस बातके अच्छे उदाहरण हैं कि जहाँ दूसरे प्रतिकूल तत्त्व काम नहीं करते, वहाँ भारतीय अन्नाहारी कितने मजबूत हो सकते हैं। भारतका ग्वाला भीमसेनी शरीर और बहुत अच्छे गठनवाला होता है। अपनी मोटी, मजबूत लाठीसे वह किसी भी तलवारवाले साधारण यूरोपीयका सामना कर सकता है। ग्वालोंकी ऐसी कहानियोंके उल्लेख मिलते हैं जिनमें उन्होंने अपनी लाठियोंसे ही शेरों और बाघोंको मारा या भगाया है। एक मित्रने एक दिन कहा था — "परन्तु यह उदाहरण तो उन लोगोंका है जो असभ्य और प्राकृतिक अवस्थामें रहते हैं। समाजकी वर्तमान नितान्त कृत्रिम अवस्थामें आपको सिर्फ गोभी और मटरसे कुछ अधिककी जरूरत है। आपका ग्वाला तो बुद्धिहीन है, वह किताबें नहीं पढ़ता, आदि।" इसका एकमात्र जवाब यह था, और है, कि अन्नाहारी ग्वाला मांसाहारी ग्वाले या गड़रियेसे अधिक मजबूत नहीं तो उसके बराबर तो होगा ही। इस प्रकार एक वर्गके

अन्नाहारी और उसी वर्गके मांसाहारीके बीच तुलना हो जाती है। यह तुलना शक्तिके साथ शक्तिकी है, शक्तिके साथ शक्ति और बुद्धिकी नहीं; क्योंकि मैं इस समय तो सिर्फ यह गलत सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ कि भारतीय अन्नाहारी अपने अन्नाहारके कारण शारीरिक दृष्टिसे कमजोर हैं।

कोई चाहे जो आहार ग्रहण करे, शारीरिक और मानसिक शक्तिका एक-साथ बराबर विकास होना तो असंभव मालूम होता है। हाँ, इसमें विरले अपवाद भले ही हों। क्षतिपूर्तिके नियमकी माँग यह होगी कि मानसिक शक्तिमें जितनी बढ़ती होती है, शारीरिक शक्तिमें उतनी घटती हो। सैमसन जैसा शरीरबलशाली व्यक्ति ग्लैडस्टन जैसा मेधावी नहीं हो सकता। और अगर यह दलील मान ली जाये कि समाजकी वर्तमान अवस्थामें अन्न या शाक-सब्जीके बदले किसी दूसरे आहारकी जरूरत है ही, तो क्या यह अन्तिम रूपसे साबित हो चुका है कि वह दूसरा आहार मांस ही है?

फिर, क्षत्रियोंका, भारतकी तथाकथित योद्धा जातिका उदाहरण ले लीजिए। वे तो निस्सन्देह मांसाहारी हैं, और उनमें बहुत ही कम लोग ऐसे हैं, जिन्होंने कभी तलवार चलाई है! मैं यह नहीं कहूँगा कि वे प्रजाति गत-रूपमें बहुत कमजोर हैं। बहुत पुराने जमानेमें क्यों जायें, जबतक पृथुराज और भीम और उनके जैसे सब लोगोंकी याद बनी है, तबतक कोई मूर्ख ही विश्वास दिलाना चाहेगा कि उनकी प्रजाति कमजोर है। परन्तु अब तो यह खेदजनक बात सच है कि उनका ह्रास हो गया है। सचमुच युद्ध-कुशल लोग तो, अन्य लोगोंके साथ-साथ पश्चिमोत्तर प्रदेशके[1] लोग हैं, जिन्हें 'भैया' कहा जाता है। वे गेहूँ, दाल और शाक-सब्जियों पर निर्वाह करते हैं। वे शान्तिके संरक्षक हैं। देशी सेनाओंमें उनकी संख्या बहुत बड़ी है।

उपर्युक्त तथ्योंसे आसानीसे समझा जा सकता है कि अन्नाहार हानिकारक तो है ही नहीं, उलटे शारीरिक स्वास्थ्यको बढ़ानेवाला है। और जो यह कहा जाता है कि हिन्दुओंकी शारीरिक दुर्बलताका कारण अन्नाहार है, वह केवल भ्रान्तिमूलक है।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, २८-२-१८९१

१. नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्स, ज वर्तमान उत्तरप्रदेश और आसपासके प्रदेशोंके कुछ हिस्से मिलाकर बनाया गया था।

११. भारतीय अन्नाहारी – ५

पिछले लेखमें हमने देखा कि हिन्दू अन्नाहारियोंकी शारीरिक कमजोरीका कारण उनका आहार नहीं, कुछ और ही है। हमने यह भी देखा कि जो ग्वाले अन्नाहारी हैं वे मांसाहारियोंके बराबर ही ताकतवर हैं। ग्वाला अन्नाहारियोंका एक बहुत अच्छा नमूना है, इसलिए उसके रहन-सहनका अवलोकन कर लेना लाभदायक होगा। परन्तु पहले पाठकोंको बता दिया जाये कि जो-कुछ आगे लिखा जा रहा है वह भारतके सब ग्वालोंपर नहीं, एक अमुक हिस्सेके ही ग्वालोंपर लागू होता है। जिस तरह स्काटलैंडके निवासियोंकी आदतें इंग्लैंडके निवासियोंकी आदतोंसे भिन्न हैं, ठीक वैसे ही भारतके एक हिस्सेमें रहनेवाले लोगोंकी आदतें दूसरे हिस्सेमें रहनेवाले लोगोंकी आदतोंसे भिन्न हैं।

तो, भारतीय ग्वाला आमतौरपर पाँच बजे सुबह सोकर उठता है। अगर वह भक्ति-भाववाला हो तो सबसे पहले ईश्वरकी प्रार्थना करता है। फिर हाथ-मुँह धोता है। यहाँ मैं पाठकोंको उस 'ब्रुश' का परिचय दे देनेके लिए, जिससे भारतीय अपने दाँत साफ करते हैं, थोड़ा-सा विषयान्तर कर लूँ। वह 'ब्रुश' और कुछ नहीं, 'बबूल' नामके एक काँटेदार पेड़की टहनी है। टहनीके लगभग एक-एक फुटके टुकड़े काट लिये जाते हैं। काँटे तो सब छील ही दिये जाते हैं। भारतीय उसके एक सिरेको चबाकर उसकी दाँत साफ करने लायक नरम कूँची बना लेते हैं। इस प्रकार वे रोजाना अपने लिए एक नया और घरमें बना 'ब्रुश' तैयार कर लेते हैं। जब वे अपने दाँतोंको घिसकर मोती जैसे उज्ज्वल कर लेते हैं, तब उस टहनीको चीरकर दो फाँकें करते हैं और एक फाँकको मोड़कर उससे अपनी जीभ खरोंचते या साफ करते हैं। शायद औसत दर्जेके भारतीयोंके दाँत मजबूत और सुन्दर होनेका कारण सफाईकी यह क्रिया ही है। कदाचित् यह कहना अनावश्यक होगा कि वे किसी दन्त-मंजनका उपयोग नहीं करते। बूढ़े लोग, जब उनके दाँत दतौनको चबाने लायक नहीं रहते, छोटी-सी हथौड़ी काममें लाते हैं। इस सारी क्रियामें २०-२५ मिनटसे ज्यादा समय नहीं लगता।

तो, अब फिर ग्वालेकी ओर लौटें। बादमें वह बाजरा (एक अनाज, जिसे आंग्ल-भारतीय भाषामें 'मिलेट' कहा जाता है और जिसका गेहूँके बदले या उसके अलावा बहुत उपयोग होता है) की मोटी रोटी, घी और गुड़का नाश्ता करता है। लगभग आठ-नौ बजे सुबह उन सब जनवरोंको लेकर, जो उसकी देखभालमें दिये जाते हैं चराने चला जाता है। चरागाह आमतौरपर उसके कस्बेसे दो या तीन मील दूर और पहाड़ी प्रदेशके किसी भू-खण्डमें होती है। उसपर लहलहाती हुई घास-पत्तियोंका हरा गलीचा बिछा होता है। इस प्रकार उसे प्राकृतिक दृश्योंके बीच ताजीसे-ताजी हवाका आनन्द लेनेका अनुपम अवसर मिलता है। जब जानवर इधर-उधर

घूमते होते हैं, वह अपना समय गानेमें या अपने साथीसे गप-शप करनेमें बिताता है। यह साथी उसकी पत्नी, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी भी हो सकता है। वह लगभग बारह बजे भोजन करता है, जो वह हमेशा अपने साथ ले जाता है। रोटियाँ तो उसमें हमेशा रहती हैं, साथ ही घी, एक सब्जी, या थोड़ी-सी दाल, या उसके बदले अथवा उसके अलावा कुछ अचार और तत्काल गायके थनसे दुहा हुआ ताजा दूध होता है। फिर दो या तीन बजेके लगभग अकसर वह किसी छायादार पेड़के नीचे कोई आधे घंटे नींद लेता है। यह थोड़ी-सी नींद उसे सूर्यकी कड़ी धूपसे कुछ राहत देती है। छः बजे वह घर लौटता है। सात बजे ब्यालू करता है, जिसमें कुछ गरम रोटियाँ और दाल या सब्जी होती है। ब्यालूकी समाप्ति चावल और दूध या चावल और छाँछसे की जाती है। फिर घरका कुछ काम-धाम करनेके बाद, जिसका मतलब अकसर तो अपने परिवारके लोगोंके साथ हँसी-खुशीकी बातें करना ही होता है, लगभग १० बजे रातको वह सो जाता है। वह या तो खुली जगहमें सोता है या किसी झोंपड़ीमें। झोंपड़ीमें कभी-कभी बहुत भीड़ होती है। उसका आश्रय वह सर्दी या वर्षामें ही लेता है। यह उल्लेखनीय है कि ये झोंपड़ियाँ देखनेमें तो बड़ी दीन-हीन मालूम पड़ती हैं और अकसर इनमें खिड़कियाँ भी नहीं होतीं, फिर भी ये कुन्द नहीं होतीं। ये ग्रामीण ढंगसे बनाई जाती हैं, इसलिए इनके दरवाजे हवा या आँधीसे रक्षाके लिए नहीं, बल्कि चोरोंसे बचनेके लिए बनाये जाते हैं। तथापि, इन झोंपड़ियोंमें सुधारकी बहुत गुंजाइश है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

तो, एक खुशहाल ग्वालेका रहन-सहन इस प्रकारका होता है। अनेक दृष्टियोंसे उसके रहन-सहनका तरीका आदर्श है। उसको जबरन अपनी आदतोंमें नियमित रहना पड़ता है। वह अपना ज्यादा समय घरके बाहर बिताता है और जब वह बाहर रहता है, तब शुद्धतम वायुका सेवन करता है; उसे उचित मात्रामें व्यायाम मिलता है, और वह अच्छा और पौष्टिक भोजन करता है। और अन्तिम बात, परन्तु महत्त्वमें अन्तिम नहीं, यह है कि वह उन अनेक चिन्ताओंसे मुक्त रहता है, जो अकसर शरीरको कमजोर कर देती हैं।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, ७-३-१८९१

१२. भारतीय अन्नाहारी – ६

ग्वालेके रहन-सहनमें एक ही दोष पाया जाता है, और वह है स्नानकी कमी-का। गरम आबहवामें स्नान बहुत गुणकारी होता है। फिर भी जब कि ब्राह्मण दिनमें दो बार और वैश्य दिनमें एक बार स्नान करता है, ग्वाला सप्ताहमें सिर्फ एक बार नहाता है। भारतीय किस तरह स्नान करते हैं, यह बतानेके लिए मैं यहाँ फिर थोड़ा विषयान्तर करूँगा। आमतौरपर भारतीय अपने गाँवके पासकी नदीमें स्नान करते हैं। मगर यदि कोई इतना आलसी हो कि नदीतक जाये ही नहीं, या उसे डूब जानेका डर मालूम होता हो, या अगर उसके गांवके पास कोई नदी न हो, तो वह घरमें स्नान करता है। नहानेके लिए कोई ऐसा स्नान-कुंड या नहानेकी ऐसी गंगाल नहीं होती, जिसमें डूबकर स्नान किया जा सके। भारतीयोंका विश्वास होता है कि जैसे ही कोई बन्द पानीमें कूदा वैसे ही वह पानी अशुद्ध हो जाता है और आगेके लिए उपयोगी नहीं रहता। इसलिए वे किसी बड़े बर्तनमें पानी भरकर अपने पास रख लेते हैं और लोटेमें ले-लेकर अपने शरीरपर डालते हैं। इसी कारण वे चिलमचीमें हाथ भी नहीं धोते, बल्कि किसी दूसरेसे हाथोंपर पानी डलवा लेते हैं, या दोनों हाथोंकी कलाइयोंके सहारे लोटेको पकड़ कर खुद ही डाल लेते हैं।

परन्तु हम मुख्य विषयपर लौटें। ऐसा मालूम होता है कि स्नानकी कमीसे ग्वालेके स्वास्थ्यपर कोई खास बुरा असर नहीं पड़ता। दूसरी ओर यह भी साफ है कि यदि कोई ब्राह्मण एक दिन भी स्नान किये बिना रह जाये तो उसे बड़ी बेचैनी मालूम होगी, और यदि वह थोड़े ज्यादा समयतक स्नान करना बन्द रखे तो वह बहुत जल्दी बीमार पड़ जायेगा।

मैं मान लेता हूँ कि यह उन अनेक बातोंका एक उदाहरण है, जिनका अन्यथा स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता और इसीलिए जिनको आदतका परिणाम बताया जा सकता है। इसी तरह, जब कि एक भंगी अपना धंधा करता हुआ अपना स्वास्थ्य अच्छा रखता है, तब यदि कोई साधारण आदमी वैसा ही करनेका प्रयत्न करे तो उसे मौतका खतरा झेलना पड़ेगा। यदि कोई सुकुमार प्रकृतिका लार्ड, लन्दनके ईस्ट एंड क्षेत्रके मजदूरोंकी नकल करनेका प्रयत्न करे तो मौत शीघ्र ही उसका दरवाजा खटखटाने लगेगी।

मैं यहाँ एक कहानी लिख देनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता। वह इस विषयमें बिलकुल ठीक बैठती है। एक राजा एक दतौन बेचनेवाली स्त्रीके प्रेममें पड़ गया। वह स्त्री सुन्दरतामें मानो साक्षात् मोहिनी ही थी। फिर क्या था, आदेश दे दिया गया कि उसे राजाके महलमें रख दिया जाये। इससे सचमुच तो वह प्रत्यक्ष वैभवकी गोदमें पहुँच गई। उसे उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र और, संक्षेपमें, सब उत्तम वस्तुएँ प्राप्त हो गईं। परन्तु आश्चर्य! जितना ही वैभव, उतना ही उसका स्वास्थ्य गिरता गया। बीसियों वैद्योंने उपचार किया, औषधियाँ अत्यन्त नियमपूर्वक दी गईं, परन्तु

लाभ कुछ न हुआ। इस बीच एक चतुर वैद्यने बीमारीका असली कारण ताड़ लिया। उसने कहा कि इसे भूत-प्रेतोंकी बाधा है। अतएव भूत-प्रेतोंको तुष्ट करनेके लिए उसने उस स्त्रीके सब कमरोंमें बासी रोटियोंके टुकड़े और फल रखवा दिये। उसने कहा कि जितने कमरे हैं उतने ही दिनोंमें भूत-प्रेत भाग जायेंगे और उनके जानेके साथ ही बीमारी भी दूर हो जायेगी। और यही हुआ। अलबत्ता, रोटियाँ तो उस बेचारी रानीने ही खाई थीं।

इस कहानीसे मालूम होता है कि आदत मनुष्योंपर कैसा अधिकार कर लेती है। मैं समझता हूँ कि इसी कारण स्नानकी कमी ग्वालेको बहुत हानि नहीं पहुँचाती।

इस प्रकारके रहन-सहनका परिणाम हम आंशिक रूपसे पिछले लेखमें देख चुके हैं। वह परिणाम यह है कि अन्नाहारी ग्वालेका शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। वह दीर्घजीवी भी होता है। मैं एक ग्वालिनको जानता हूँ, जो १८८८ में सौ वर्षसे अधिककी थी। पिछली बार जब मैंने उसे देखा था तब उसकी नजर बहुत अच्छी थी। स्मरणशक्ति भी ताजी थी। उसे अपने बचपनमें देखी हुई चीजोंकी याद बनी थी। वह एक लाठीके सहारे चल सकती थी। मुझे आशा है कि वह अब भी जीवित होगी।

इस सबके अलावा, ग्वालेका शरीर सुडौल होता है। उसके शरीरमें कोई ऐब शायद ही मिलता है। वह शेरके समान भयावना न होता हुआ भी ताकतवर और बहादुर होता है। और सीधा भी इतना ही होता है, जैसे कि मेमना। उसका कद आतंक पैदा करनेवाला न होता हुआ भी प्रभावोत्पादक होता है। समग्रतः भारतका ग्वाला अन्नाहारियोंका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। और जहाँतक शारीरिक बलका सम्बन्ध है, वह किसी भी मांसाहारीकी तुलनामें बहुत अच्छा ठहर सकता है।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, १४-३-१८९१

१३. कुछ भारतीय त्योहार – १

ईस्टरके इस अवसरपर मैं उस त्योहारके बारेमें कुछ लिखना पसन्द करता जो समयके खयालसे ईस्टरकी जोड़ीका है। परन्तु उसके साथ कुछ दुःखदायी बातें जुड़ी हुई हैं और वह सबसे बड़ा हिन्दू त्योहार भी नहीं है। इसलिए उसे छोड़कर दिवालीके त्योहारको लिया जा सकता है, जो उससे बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण और भव्य है।

दिवालीके त्योहारको हिन्दू क्रिसमस कहा जा सकता है। वह हिन्दू वर्षके अन्तमें, अर्थात् नवम्बर महीनेमें पड़ता है। वह सामाजिक त्योहार भी है और धार्मिक भी और लगभग एक मासतक चलता है। आश्विन (हिन्दू वर्षके बारहवें मास)का प्रथम दिन इस भव्य त्योहारके आगमनका सूचक होता है। उस दिन बच्चे पहले-पहल पटाखे छोड़ते हैं। पहले नौ दिनोंको 'नव-रात्रि' कहा जाता है। ये दिन 'गरबी' के लिए विशेष उल्लेखनीय हैं। बीस-तीस या इससे भी ज्यादा लोग एक घेरा

बनाते हैं। बीचमें एक बड़ा दीप-स्तम्भ रखा जाता है। वह बड़ा सुन्दर बनाया जाता है और उसके चारों ओर बत्तियाँ जलती हैं। बीचमें ढोलक लिये हुए एक आदमी भी बैठता है। वह कोई लोक-गीत गाता है। घेरेके लोग हाथसे ताल दे-देकर उस गीतको दुहराते हैं। गाते-गाते और झूम-झूमकर नाचते हुए वे दीपककी परिक्रमा करते हैं। अकसर इन गरबियोंको सुननेमें बड़ा आनन्द आता है।

यह कह देना आवश्यक है कि लड़कियाँ — और खास तौरसे स्त्रियाँ — इनमें कभी शामिल नहीं होतीं। अलबत्ता, वे अपनी गरबियाँ अलग रचा सकती हैं, जिनमें पुरुषोंको शामिल नहीं किया जाता। कुछ परिवारोंमें अर्ध-उपवासकी प्रथा होती है। उसमें परिवारके एक सदस्यका उपवास कर लेना काफी होता है। उपवास करनेवाला केवल एक बार और वह भी शामको भोजन करता है। इसके अलावा, उसके लिए गेहूँ, बाजरा, दाल आदि अनाज खाना वर्जित होता है। उसका आहार फल, दूध और आलू आदिके समान कन्दोंतक ही सीमित रहता है।

महीनेका दसवाँ दिन 'दशहरा' कहलाता है। उस दिन मित्र आपसमें मिलते हैं और एक-दूसरेकी दावत करते हैं। मित्रों और खासकर मालिकों और बड़े लोगोंको भेंटमें मिठाई भेजनेकी भी प्रथा है। दशहराके दिनको छोड़कर मनोरंजनके सारे कार्य-क्रम रातमें होते हैं। दिनके समय दैनिक जीवनके साधारण काम-धंधे किये जाते हैं। दशहराके बाद लगभग एक पखवारेतक अपेक्षाकृत शान्ति रहती है। केवल महिलाएँ आगे आनेवाले भव्य दिनके लिए मिठाइयाँ, पकवान आदि बनानेमें व्यस्त रहती हैं, क्योंकि भारतमें ऊँचेसे-ऊँचे वर्गकी महिलाएँ भी भोजन बनानेसे एतराज नहीं करतीं। वास्तवमें यह एक गुण है, और माना जाता है कि प्रत्येक स्त्रीमें यह होता ही है।

इस प्रकार, दावतों और गाने-बजानेमें शामें बिताते हुए हम आश्विन कृष्ण तेरसपर पहुँचते हैं। (भारतमें प्रत्येक मासके दो पक्ष होते हैं — कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष। इनका प्रारम्भ पूर्णिमा और अमावस्यासे होता है। पूर्णिमाके बादका दिन कृष्णपक्षका पहला दिन होता है। इसी तरह दूसरे, तीसरे आदि पन्द्रहवें दिन तककी गणना की जाती है)। तेरहवाँ दिन और उसके बादके तीन दिन पूरी तरहसे उत्सवमें बिताये जाते हैं। तेरहवें दिनको 'धनतेरस' कहा जाता है, जिसका अर्थ है — धनकी देवी लक्ष्मीके पूजनके लिए निश्चित किया हुआ तेरहवाँ दिन। धनी लोग तरह-तरहके रत्न और सिक्के आदि एकत्रित करके सावधानीके साथ एक सन्दूकमें रखते हैं। इनका उपयोग पूजाके अलावा और किसी काममें नहीं किया जाता। हर वर्ष इस संग्रहमें कुछ वृद्धि की जाती है। फिर उसकी पूजा होती है। अपने हृदयमें तो धनकी कामना या दूसरे शब्दोंमें पूजा कुछ गिने-चुने लोगोंको छोड़कर कौन नहीं करता? परन्तु यहाँ पूजा — अर्थात् बाह्यपूजा — के रूपमें उस द्रव्यको पानी और दूधसे स्नान कराया जाता है, बादमें उसपर फूल चढ़ाये जाते हैं और कुंकुम लगाया जाता है।

चौदहवें दिनको 'काली चौदस' कहा जाता है। परन्तु उस दिन लोग तड़के उठते हैं और आलसीसे-आलसी आदमीको भी अच्छी तरह स्नान करना पड़ता है। माँ अपने छोटे-छोटे बच्चोंको भी स्नान करनेके लिए बाध्य करती है, हालाँकि वह

मौसम ठंडका होता है। ऐसा माना जाता है कि काली चौदसकी रातको श्मशानमें भूतोंके जुलूस निकलते हैं। भूतोंपर विश्वासका दिखावा करनेवाले लोग अपने भूत-मित्रोंसे मिलनेके लिए श्मशानोंमें जाते हैं। परन्तु डरपोक लोग भूत दिखाई देनेके डरसे घरोंके बाहर पैर नहीं रखते।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, २८-३-१८९१

१४. कुछ भारतीय त्योहार – २

और यह लीजिए, अब पन्द्रहवें दिनका प्रातःकाल — ठीक दिवालीका दिन आ पहुँचा! दिवालीके दिन खूब पटाखे छोड़े जाते हैं। उस दिन कोई आदमी अपना धन किसीको देनेके लिए राजी नहीं होता। कर्ज न तो कोई लेता है, न देता है। जो-कुछ भी खरीदना हो, पहले ही दिन खरीद लिया जाता है।

अब आप एक आम सड़कके नुक्कड़के पास खड़े हैं। उस ग्वालेको देखिए, जो दूध जैसे सफेद कपड़े पहने — जिन्हें उसने पहली ही बार पहना है — और अपनी लम्बी दाढ़ी चेहरेके दोनों ओर ऊपरको फेरकर पगड़ीके नीचे बाँधे, कुछ अधूरे गाने गाता हुआ आ रहा है। उसके पीछे-पीछे गायोंका झुंड चल रहा है, जिसमें गायोंके सींग लाल-हरे रँगे और चाँदीसे मढ़े हुए हैं। उसके पीछे-पीछे आप छोटी-छोटी लड़कियोंकी वह भीड़ देखते हैं। लड़कियोंके सिरोंपर कुँडरियोंपर सधी हुई छोटी-छोटी मटकियाँ हैं। आपको कौतूहल हो रहा है कि उन मटकियोंमें क्या है। मगर उस असावधान बालिकाकी मटकीसे थोड़ा-सा दूध छलक जाता है और आपका कौतूहल शीघ्र ही मिट जाता है। अब आप उस ऊँचे-पूरे, तगड़े, सफेद मूछोंवाले आदमीको देखिए, जो अपने सिरपर बड़ा-सा सफेद दुपट्टा बाँधे है। उसके दुपट्टेमें लम्बी सरकंडेकी कलम खुँसी हुई है। अपनी कमरमें वह एक लम्बा दुपट्टा लपेटे है जिसमें एक चाँदीकी दवात खुँसी हुई है। आपको जानना चाहिए कि वह एक बड़ा साहूकार है। इस तरह आपने तरह-तरहके लोगोंको देखा, जो हर्ष और उल्लाससे भरे हुए मजेके साथ घूम-फिर रहे हैं।

अब रात आ गई। सड़कें आँखोंको चौंधिया देनेवाली रोशनीसे दमक रही हैं — हाँ, चौंधिया देनेवाली उसके लिए, जिसने कभी रीजेंट स्ट्रीट या ऑक्सफोर्डको नहीं देखा। अगर बम्बई जैसे बड़े-बड़े शहरोंको छोड़ दिया जाये तो किस्टल महलमें जिस पैमानेपर रोशनी होती है, उससे तो इस रोशनीकी कोई तुलना नहीं होगी। स्त्री, पुरुष, बालक उत्तम वस्त्र पहने हैं — और करीब-करीब सभी वस्त्र अलग-अलग रंगके हैं। उनकी अद्‌भुत बहु-रंगी छवि इन्द्र-धनुषकी छवि प्रस्तुत कर रही है। आजकी रात विद्याकी देवी सरस्वतीके पूजनकी रात भी है। व्यापारी लोग पहली मद दर्ज करके अपने नये बही-खाते भी आज रातको शुरू करते हैं। पूजा करानेवाला

पुरोहित — वह सर्वत्र विद्यमान ब्राह्मण — कुछ मंत्र गुनगुनाता है और देवीका आवाहन करता है। पूजाके अन्तमें बिलकुल अधीर बने बच्चे पटाखे सुलगाते हैं और चूँकि यह पूजा सब जगह एक निश्चित समयपर होती है, सड़कें पटाखोंके धड़ाकों, पटपटाहट और सुरसुराहटसे गूँज उठती हैं। बादमें धार्मिक वृत्तिके लोग मन्दिरोंमें जाते हैं। परन्तु वहाँ भी हर्ष और उल्लास, चकाचौंधकारी प्रकाश और भव्यता ही भव्यता दिखलाई देती है।

दूसरा दिन, अर्थात् नव-वर्ष दिन,[१] लोगोंसे भेंट करनेका होता है। उस दिन घरोंमें चूल्हे नहीं जलते और लोग पिछले दिन बना हुआ बासी और ठंडा भोजन करते हैं। परन्तु कोई खाऊ व्यक्ति भूखा नहीं रहता, क्योंकि खानेकी चीजें इतनी होती हैं कि उसके बार-बार खानेपर भी बहुत-सा भोजन बच रहता है। खुशहाल लोग हर प्रकारकी शाक-सब्जी और धान्य खरीदते तथा पकाते हैं, और नव-वर्ष दिवसके उपलक्ष्यमें उन सबको चखते हैं।

नव-वर्षका दूसरा दिन अपेक्षाकृत शान्त होता है। उस दिन चूल्हे फिर जलते हैं। आमतौरपर पिछले दिनके गरिष्ठ भोजनके बाद हलका भोजन ग्रहण किया जाता है। नटखट बच्चोंको छोड़कर अब कोई पटाखे और आतिशबाजियाँ नहीं छोड़ता। रोशनी भी कम हो जाती है। दूसरे दिन दिवालीका उत्सव लगभग समाप्त हो जाता है।

अब हम देखें कि इन उत्सवोंका समाजपर क्या असर पड़ता है और इनके द्वारा लोग अनजाने कितने अभीष्ट काम पूरे कर डालते हैं। साधारणतः परिवारके सब लोग उत्सवके दिनोंमें अपने मुख्य घरमें एकत्र होनेका प्रयत्न करते हैं। पति अपने कामके कारण भले ही सारे वर्ष दूर रहा हो, इन दिनों वह फिरसे अपनी पत्नीके पास घर पहुँचनेका प्रयत्न करता है। पिता लम्बी यात्रा करके भी अपने बच्चोंसे मिलनेके लिए आ जाता है। पुत्र यदि दूर पढ़ता होता है तो वह अपने स्कूलसे घर आता है और इस तरह हमेशा सारे परिवारका पुनर्मिलन होता रहता है। फिर, जो समर्थ होते हैं वे सब नये कपड़े बनवाते हैं। धनी लोग खास तौरसे इस अवसरके लिए जेवर भी खरीदते हैं। विभिन्न परिवारोंके पुराने-पुराने झगड़े भी रफा-दफा कर लिये जाते हैं। गम्भीरताके साथ इसका प्रयत्न तो कमसे-कम किया ही जाता है। घरोंकी मरम्मत और सफेदी की जाती है। बँधी पड़ी हुई साज-सज्जा निकाल कर साफ की जाती है और उससे कमरोंको सजाया जाता है। यदि कोई पुराना कर्ज हो तो उसे सम्भवतः पटा दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्तिसे नव-वर्षके लिए कोई-न-कोई नई चीज खरीदनेकी अपेक्षा रखी जाती है। और वह चीज आमतौरपर बर्तन या इसी तरहकी कोई दूसरी चीज होती है। भिक्षा खुले हाथों दी जाती है। जो लोग प्रार्थना करने और मन्दिर जानेमें अधिक आस्था नहीं रखते वे भी इन दिनों ये दोनों काम करते हैं।

१. गुजरातमें विक्रम संवत्के अनुसार नये वर्षका आरम्भ कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको माना जाता है।

त्योहारोंके दिन कोई आदमी किसी दूसरेसे लड़ाई-झगड़ा नहीं करता और न किसीको कोसता है। कोसनेकी नाशकारी आदत खास तौरसे निम्न वर्गके लोगोंमें बहुत फैली हुई है। संक्षेपमें, प्रत्येक बात शान्तिमय और आनन्दमय होती है। जीवन भाररूप होनेके बजाय पूर्णतः आनन्द मनानेके योग्य होता है। यह समझ लेना कठिन नहीं कि इस तरहके त्योहारोंका परिणाम अच्छा और दूरतक प्रभाव डालनेवाला हुए बिना नहीं रह सकता। कुछ लोग इन त्योहारोंको अंधविश्वास और उचक्केपनका प्रतीक बताते हैं। परन्तु सचमुच तो ये मानव-जातिके लिए वरदान-रूप हैं और कठोर परिश्रम करनेवाले करोड़ों लोगोंको जीवनके नीरस ढर्रेमें बहुत हदतक राहत पहुँचाते हैं।

यद्यपि दिवालीका उत्सव सारे भारतमें मनाया जाता है, उसे मनानेकी पद्धति भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न-भिन्न है। इसके अलावा यह तो हिन्दुओंके सबसे बड़े त्योहारका एक कच्चा, अपूर्ण वर्णन-मात्र है। परन्तु ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि इस उत्सवका कोई दुरुपयोग नहीं होता। सब दूसरी बातोंके समान इस त्योहारका भी कलुषित पहलू हो सकता है, और शायद है भी। परन्तु उसे छोड़ देना ही अच्छा होगा। इतना निश्चय है कि इससे जो भलाई होती है वह तौलमें बुराईसे बहुत ज्यादा है।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ४-४-१८९१

१५. कुछ भारतीय त्योहार – ३

दिवालीके त्योहारके बाद सबसे ज्यादा महत्त्वका त्योहार होली है, जिसका संकेत २८ मार्चके 'वेजिटेरियन' में किया गया था।

स्मरण होगा कि होलीका त्योहार समयकी दृष्टिसे ईस्टरका जोड़ीदार है। होली हिन्दू वर्षके पाँचवें महीने फाल्गुनकी पूर्णिमाको मनाई जाती है। यह ठीक वसन्तका मौसम होता है। पेड़-पौधे फूलते हैं। गरम कपड़े छोड़ दिये जाते हैं। महीन कपड़ोंका चलन शुरू हो जाता है। जब हम मन्दिरोंमें दर्शन करने जाते हैं तो और भी प्रत्यक्ष हो जाता है कि वसन्त-ऋतुका आगमन हो गया है। किसी मन्दिरमें प्रविष्ट होते ही (और उसमें प्रविष्ट होनेके लिए आपका हिन्दू होना जरूरी है) आपको मधुर पुष्पोंकी सुवास ही सुवास मिलेगी। सीढ़ियोंपर बैठे हुए भक्तजन ठाकुरजीके लिए मालाएँ बनाते दिखलाई पड़ेंगे। फूलोंमें आपको चमेली, मोगरा आदिके सुन्दर फूल देखनेको मिलेंगे। जैसे ही दर्शनके लिए पट खोले गये कि आपको पूरे वेगसे फुहार छोड़ते हुए फुहारे दिखाई देंगे; मन्द-सुगन्ध पवनका आनन्द मिलेगा। ठाकुरजी मृदुल रंगोंके हलके वस्त्र धारण किये होंगे। सामने फूलोंकी राशियाँ और गलेमें मालाओंके पुंज उन्हें आपकी दृष्टिसे लगभग छिपाये होंगे। वे इधरसे उधर झुलाये जाते होंगे और उनका झूला भी सुगन्धित जल छिड़की हुई हरी पत्तियोंसे सजा होगा।

मन्दिरके बाहरका दृश्य बहुत आह्लादकारी नहीं होता। वहाँ आपको होलीके एक पखवारे पहलेसे अश्लील भाषाके सिवा कुछ नहीं मिलेगा। छोटे-छोटे गाँवोंमें तो स्त्रियोंका बाहर निकलना ही कठिन होता है — उनपर कीचड़ फेंक दिया जाता है और अश्लील आवाजकशी की जाती है। यही व्यवहार पुरुषोंके साथ भी होता है और इसमें छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं माना जाता। लोग छोटी-छोटी टोलियाँ बना लेते हैं और फिर एक टोली दूसरी टोलीके साथ अश्लील भाषाके प्रयोग और अश्लील गीत गानेमें स्पर्धा करती है। सभी पुरुष और बच्चे इन घृणास्पद स्पर्धाओंमें शामिल होते हैं। केवल स्त्रियाँ शामिल नहीं होतीं।

सच बात यह है कि इस पर्वमें अश्लील शब्दोंका प्रयोग बुरी रुचिका परिचायक नहीं माना जाता। जहाँके लोग अज्ञानमें डूबे हुए हैं, उन स्थानोंमें एक-दूसरेपर कीचड़ आदि भी फेंका जाता है। लोग दूसरोंके कपड़ोंपर भद्दे शब्द छाप देते हैं। और कहीं आप सफेद कपड़े पहनकर बाहर निकल गये, तो अवश्य ही आपको कीचड़से सनकर वापस आना होगा। होलीके दिन यह सब अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है। आप अपने घरमें हों या बाहर हों, अश्लील शब्द तो आपके कानोंको पीड़ा पहुँचायेंगे ही। अगर आप कहीं किसी मित्रके घर चले गये तो मित्र जैसा होगा उसके अनुसार आप गंदे या खुशबूदार पानीसे जरूर ही नहला दिये जायेंगे।

संध्यासमय लकड़ियों या उपलोंका भारी ढेर लगाकर जलाया जाता है। ये ढेर अकसर बीस-बीस फुटके या इससे भी ऊँचे होते हैं। लकड़ियोंके ठूँठ इतने मोटे होते हैं कि उनकी आग सात-सात आठ-आठ रोजतक नहीं बुझती।

दूसरे दिन लोग इस आगपर पानी गर्म करके उससे स्नान करते हैं। अबतक तो मैंने यही बताया है कि इस उत्सवका दुरुपयोग किस प्रकार किया जाता है। परन्तु सन्तोषकी बात है कि अब शिक्षाकी उन्नतिके साथ-साथ ये प्रथाएँ धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे मिट रही हैं। जो जरा धनी और सुसंस्कृत होते हैं, वे लोग इस त्योहारको बहुत सुन्दर ढंगसे मनाते हैं। उनमें कीचड़की जगह रंगके पानी और सुवासित जलका उपयोग किया जाता है। लोटे भर-भरकर पानी फेंकनेके बदले पानी छिड़कना भर काफी होता है। वसन्ती रंगका इन दिनोंमें सबसे ज्यादा उपयोग होता है। वह नारंगी रंगके टेसूके फूलोंको उबाल कर बनाया जाता है। समर्थ लोग गुलाब-का जल भी काममें लाते हैं। मित्र और सम्बन्धी एक-दूसरेसे मिलते हैं, उनकी दावतें करते हैं और इस प्रकार उल्लासके साथ वसन्तका आनन्द लेते हैं।

होलीके ज्यादातर 'अन-होली' [अपावन] त्योहारसे दिवालीके त्योहारमें अनेक दृष्टियोंसे सुन्दर भेद है। दिवालीका पर्व वर्षाके बाद ही शुरू हो जाता है। वर्षाकाल उपवासोंका काल भी होता है, इसलिए उसके बाद दिवालीके दिनोंके अच्छे-अच्छे भोजन तथा दावतें और भी अधिक आनन्दकारी बन जाती हैं; इसके विपरीत, होलीका त्योहार शीतकालके बाद आता है। शीतकाल सब प्रकारके पौष्टिक आहार करनेका मौसम होता है। होलीके दिनोंमें ऐसे भोजन छोड़ दिये जाते हैं। दिवालीके अत्यन्त पवित्र गीतोंके बाद होलीकी अश्लील भाषा सुनाई देती है। फिर दिवालीमें लोग सर्दीके कपड़े पहनना शुरू करते हैं, जब कि होलीमें उन्हें छोड़ देते हैं। दिवाली

आश्विनकी अमावसको होती है, फलतः उस दिन खूब रोशनी की जाती है; परन्तु होली पूर्णिमाको होनेके कारण उस दिन रोशनी अशोभन ही होगी।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २५-४-१८९१

१६. भारतके आहार[1]

अपने अभिभाषणके विषयपर आनेके पहले मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि इस कार्यके लिए मेरी योग्यता क्या है। जब मिलने 'भारतका इतिहास' लिखा, उसने अपनी अत्यन्त रोचक प्रस्तावनामें बताया था कि भारतकी यात्रा कभी न करने पर भी, भारतीय भाषाओंका ज्ञान न रखनेपर भी वह उस पुस्तकको लिखनेका अधिकारी कैसे है। इसलिए मैं समझता हूँ कि उसके उदाहरणका अनुकरण करना मेरे लिए उचित ही होगा। बेशक, किसी कामके लिए अपनी योग्यताका उल्लेख करनेकी कल्पना स्वयं ही व्याख्याता या लेखकमें किसी-न-किसी प्रकारकी योग्यता बतानेवाली होती है, और मैं मंजूर करता हूँ कि मैं "भारतके आहारों" पर बोलनेके लिए पूर्णतः उपयुक्त व्यक्ति नहीं हूँ। मैंने अपने ऊपर यह कार्य इसलिए नहीं लिया कि मैं इस विषयपर बोलनेके लिए बिलकुल योग्य हूँ; बल्कि इसलिए लिया है कि ऐसा करके मैं उस प्रयोजनकी सिद्धिमें सहायक हूँगा, जो मेरे और आपके — दोनोंके दिलोंमें बसा है। मैं जो-कुछ कहनेवाला हूँ उसका मुख्य आधार मेरा बम्बई प्रदेशका अनुभव होगा। अब, जैसा कि आप जानते हैं, भारत एक विशाल प्रायःद्वीप है। उसकी आबादी २८,५०,००,००० है। वह रूसको छोड़कर समूचे यूरोपके बराबर है। ऐसे देशमें विभिन्न भागोंके आचार-व्यवहारमें भिन्नता होना स्वाभाविक ही है। इसलिए, अगर भविष्यमें कभी आपको मेरे कहनेसे कुछ भिन्न बातें सुननेको मिलें तो मेरा निवेदन है कि आप उपर्युक्त वस्तुस्थितिको भूल न जायें। सामान्य रूपसे मेरा कथन सारे भारतपर लागू होगा।

मैं अपने विषयके तीन हिस्से कर लूँगा। पहले तो मैं सम्बन्धित आहारोंपर निर्वाह करनेवाले लोगोंके विषयमें प्रारम्भिक परिचयके तौरपर कुछ कहूँगा। दूसरे, आहारोंका वर्णन करूँगा और तीसरे, उनका उपयोग आदि बताऊँगा।

आमतौरपर माना जाता है कि भारतके सब लोग अन्नाहारी हैं। परन्तु यह सही नहीं है। यहाँतक कि सब हिन्दू भी अन्नाहारी नहीं हैं। परन्तु यह कहना

१. **वेजिटेरियन**के ९ मई, १८९१ के अंकमें निम्नलिखित उल्लेख पाया जाता है: "शनिवार २ मई, ब्लूम्सबरी हाल, हार्ट स्ट्रीट, ब्लूम्सबरी. . .। श्रीमती हैरिसनके बाद श्री मो० क० गांधी खड़े हुए। उन्होंने पूर्व-व्याख्यात्रीको बधाई दी और अपने 'भारतके आहार' शीर्षक लिखित भाषणके सम्बन्धमें क्षमा-याचना करनेके बाद उसे पढ़ना शुरू किया। आरम्भमें वे कुछ घबड़ा गये थे।" यहाँ दिया गया मूलपाठ उस लिखित भाषणका है जो वेजिटेरियन सोसाइटीकी पोर्ट्समथकी बैठकमें दुबारा पढ़ा गया था।

तो बिलकुल सही होगा कि भारतवासियोंकी बहुत बड़ी संख्या अन्नाहारी है। उनमें से कुछ तो अपने धर्मके कारण अन्नाहारी हैं, अन्य लोग अन्नाहारपर निर्वाह करनेको बाध्य हैं, क्योंकि वे इतने गरीब हैं कि मांस खरीद ही नहीं सकते। इसे बिलकुल स्पष्ट करनेके लिए मैं बता दूँ कि भारतमें दसियों लाख लोग केवल एक पैसे — अर्थात् एक-तिहाई पेनी — रोजानापर गुजर करते हैं। और इस तरहके दरिद्रताके मारे देशमें इतनी रकममें खाने लायक मांस नहीं मिल सकता। इन गरीबोंको दिनमें सिर्फ एक बार भोजन मिलता है। वह भी होता है बासी रोटी तथा नमकका — और नमक एक ऐसी वस्तु है, जिसपर भारी कर लगा हुआ है। परन्तु भारतीय अन्नाहारी और मांसाहारी इंग्लैंडके अन्नाहारियों तथा मांसाहारियोंसे बिलकुल भिन्न हैं। भारतीय मांसाहारी इंग्लैंडके मांसाहारियोंकी तरह ऐसा नहीं मानते कि वे मांसके बिना मर जायेंगे। जहाँतक मुझे ज्ञान है, भारतीय मांसाहारी मांसको जीवनके लिए आवश्यक वस्तु नहीं, केवल एक विशेष भोजनकी वस्तु मानते हैं। अगर उन्हें उनकी रोटी — आमतौरपर भारतमें 'ब्रेड' को 'रोटी' कहते हैं — मिल जाये तो मांसके बिना उनका काम मजेमें चल जाता है। परन्तु हमारे अंग्रेज मांसाहारियोंको देखिए। वे मानते हैं कि मांस उनके लिए 'अनिवार्य' है। रोटी उन्हें मांस खानेमें मदद भर करती है। दूसरी ओर, भारतीय मांसाहारी मानता है कि मांस उसे रोटी खानेमें मदद करेगा।

हालमें ही एक दिन मैं एक अंग्रेज महिलासे आहारके नीति-शास्त्रपर बातें कर रहा था। जब मैं उसे बताने लगा कि वह भी कितनी सरलतासे अन्नाहारी बन सकती है तो वह एकदम बोल उठी: "आप कुछ भी कहें, मैं तो मांस खाऊँगी ही। मुझे वह बहुत प्यारा है। और मुझे बिलकुल निश्चय है कि मैं उसके बिना जी नहीं सकती!" "मगर, देवीजी!" मैंने कहा: "मान लीजिए कि आपको बिलकुल अन्नाहारपर रहनेके लिए बाध्य कर दिया जाता है तो फिर आप क्या करेंगी?" उसने कहा: "ओह! ऐसा मत कहिए। मैं जानती हूँ मुझे इसके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। और अगर बाध्य किया जाये तो मुझे बहुत कष्ट होगा।" बेशक, उस महिलाको ऐसा कहनेके लिए कोई दोष नहीं दे सकता। इस समय समाजकी स्थिति ही ऐसी है कि किसी भी मांसाहारीके लिए सरलतासे मांसाहार छोड़ देना असंभव है।

इसी तरह, भारतीय अन्नाहारी भी अंग्रेज अन्नाहारियोंसे बिलकुल भिन्न हैं। भारतीय तो सिर्फ किसी जीवकी या सम्भाव्य जीवकी हत्यासे परहेज करते हैं, इससे आगे वे नहीं जाते। इसीलिए वे अंडा भी नहीं खाते। वे मानते हैं कि अंडा खानेसे उनके जरिए सम्भाव्य जीवकी हत्या होगी। (मुझे कहते खेद है कि मैं लगभग डेढ़ माससे अंडे खा रहा हूँ।) परन्तु उन्हें दूध और मक्खनका सेवन करनेमें कोई संकोच नहीं होता। वे इन प्राणिज पदार्थोंका सेवन फलाहारके दिनोंमें भी करते हैं। फलाहारका दिन प्रत्येक पखवारेमें एक बार आता है। इन दिनोंमें गेहूँ, चावल आदिका आहार वर्जित होता है। परन्तु दूध और मक्खन यथेष्ठ मात्रामें लिया जा सकता है। जैसा कि हम जानते हैं, यहाँ कुछ अन्नाहारी मक्खन और दूधसे परहेज करते हैं,

कुछ भोजनको पकाना भी छोड़ देते हैं और कुछ फलों तथा कच्चे मेवोंपर भी निर्वाह करनेका प्रयत्न करते हैं।

अब मैं विभिन्न प्रकारके आहारोंका वर्णन करूँगा। परन्तु मैं मांसके आहारोंकी कोई चर्चा नहीं करूँगा; क्योंकि ये जहाँ उपयोगमें आते भी हैं, वहाँ भोजनके मुख्य पदार्थ नहीं हैं। भारत सबसे पहले एक कृषि-प्रधान देश है। और वह बहुत विशाल है। इसलिए उसमें पैदावारें भी अनेकानेक और भाँति-भाँतिकी होती हैं। यद्यपि भारत-में ब्रिटिश शासनकी नींव सन् १७४६ ई०में पड़ गई थी और यद्यपि अंग्रेजोंको भारत-का इसके बहुत पहलेसे ज्ञान था, फिर भी भारतीय आहारोंके बारेमें इंग्लैंडमें इतनी कम जानकारीका होना एक दयनीय बात है। कारण जाननेके लिए हमें बहुत दूर जानेकी जरूरत नहीं। भारत जानेवाले लगभग सभी अंग्रेज अपना रहन-सहनका तरीका कायम रखते हैं। वे उन चीजोंको पानेका आग्रह रखते हैं जो उन्हें इंग्लैंडमें सुलभ होती हैं। इतना ही नहीं, वे उन्हें उसी तरीकेसे पकवाते भी हैं। इन सब बातोंके कारणों तथा आशयोंकी मीमांसा करना मेरा काम नहीं है। खयाल तो यह था कि वे, भले केवल जिज्ञासावश ही क्यों न हो, लोगोंकी आदतोंको समझेंगे। परन्तु उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। फलतः उनकी अड़ियल उपेक्षाका परिणाम यह देखनेको मिलता है कि बहुत-से अंग्रेज भारतीय आहारोंके अध्ययनके उत्तमोत्तम अव-सर खो बैठे हैं। भोजनके पदार्थोंके विषयपर लौटें तो भारतमें पैदा होनेवाले अनेक प्रकारके अनाज ऐसे हैं जिनका ज्ञान यहाँ बिलकुल नहीं है।

फिर भी गेहूँका महत्त्व, बेशक, यहाँके समान वहाँ भी सबसे अधिक है। फिर बाजरा (जिसे आंग्ल-भारतीय लोग 'मिलेट' कहते हैं), ज्वार, चावल आदि हैं। इनको मुझे रोटीका अनाज कहना चाहिए, क्योंकि ये मुख्यतः रोटी बनानेके काममें आते हैं। गेहूँ निस्सन्देह बड़े पैमानेपर काममें आता है। परन्तु वह अपेक्षाकृत महँगा है, इसलिए गरीब लोग उसकी जगह बाजरा और ज्वार काममें लाते हैं। दक्षिणी और उत्तरी प्रदेशोंमें ऐसा बहुत ज्यादा है। दक्षिणी प्रदेशोंके बारेमें सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटरने[1] अपने भारतीय इतिहासमें लिखा है: "साधारण लोगोंका आहार मुख्यतः ज्वार, बाजरा और रागी है।" उत्तरके बारेमें वे कहते हैं: "आखिरी दो (अर्थात् ज्वार और बाजरा) जनसाधारणके आहार हैं। चावल सिर्फ आबपाशीवाले खेतोंमें ही बोया जाता है और उसे धनी लोग खाते हैं।" ऐसे लोगोंका मिलना जरा भी गैर-मामूली नहीं होता, जिन्होंने कभी ज्वार चखी ही नहीं। ज्वारके साथ, गरीबोंका आहार होनेके कारण, एक प्रकारका आदर जुड़ गया है। विदाईमें अभिवादनके तौर पर "गुडबाई"[2] कहनेके बजाय भारतमें गरीब लोग 'ज्वार' कहते हैं। विस्तार

१. विलियम विल्सन हंटर (१८४०-१९००); भारतमें २५ वर्षतक सरकारी सेवाकी; अनेक पुस्तकें लिखीं जिनमें **इंडियन एम्पायर** भी एक थी; १४ खण्डोंमें **इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया** तैयार किया। वाइसरायकी विधान-परिषदके सदस्य (१८८१-८७)। भारतसे निवृत्त होनेपर कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके सदस्य बने और १८९० के बादसे भारतीय मामलोंके बारेमें **टाइम्स**के लेखक।

२. ईश्वर तुम्हारे साथ हो! खुदा हाफिज!

और अनुवाद किया जाये तो, मेरा खयाल है, इसका अर्थ होगा — "आपको ज्वारका अभाव कभी न हो!"[१] चावलकी भी, खास तौरसे बंगालमें, रोटियाँ बनाई जाती हैं। बंगाली लोग गेहूँसे ज्यादा चावल काममें लाते हैं। दूसरे प्रदेशोंमें चावलका उपयोग रोटी बनानेके लिए शायद ही कभी किया जाता है। चनेका भी गेहूँके साथ मिलाकर या बिना मिलाये कभी-कभी वही उपयोग किया जाता है। अंग्रेज लोग उसे 'ग्राम' कहते हैं। वह स्वाद और आकारमें बहुत-कुछ मटरसे मिलता-जुलता है। इससे मैं अनेक प्रकारकी दालोंके विषयपर आ जाता हूँ। दालें शोरबा बनानेके काम आती हैं। चना, मटर, मसूर, सेम, अरहर, मूँग, मोठ और उड़द सालनके काम आनेवाली मुख्य दालें हैं। इनमेंसे, मेरा खयाल है, अरहर सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। ये दोनों प्रकारके अन्न मुख्यतः पककर सूख जानेपर काममें आते हैं। अब मैं हरी शाक-सब्जीपर आता हूँ। आपको सभी शाक-सब्जियोंके नाम बताना तो बेकार होगा। उनकी संख्या इतनी बड़ी है कि मैं ही बहुतोंको नहीं जानता। भारतकी मिट्टी इतनी उपजाऊ है कि उसमें आप जो चाहें वही शाक-सब्जी पैदा हो सकती है। इसलिए हम निर्विवाद कह सकते हैं कि कृषिका उचित ज्ञान होनेपर भारतकी जमीनमें दुनियाकी कोई भी शाक-सब्जी उपजाई जा सकती है।

अब रहे फल और कवची मेवे। मुझे यह कहते खेद है कि भारतमें फलोंके महत्त्वका उचित ज्ञान नहीं है। फलोंका उपयोग तो खूब होता है, परंतु उन्हें विशेष भोजनके पदार्थोंके तौरपर ही ज्यादा खाया जाता है। ज्यादातर उन्हें स्वास्थ्यके लिए नहीं, स्वादके लिए खाया जाता है। इसलिए हम संतरे, सेब आदि जैसे गुणकारी फल बहुत नहीं पैदा करते। फलतः वे धनिकोंको ही उपलब्ध हैं। परन्तु मौसमी फल तथा सूखे मेवे बहुत होते हैं। दूसरे सब स्थानोंके समान भारतमें भी गर्मीका मौसम पहले प्रकारके फलोंके लिए सबसे अच्छा होता है। इन फलोंमें आम सबसे ज्यादा महत्त्वका है। मैंने अबतक जो फल चखे हैं, उनमें वह सबसे स्वादिष्ट है। कुछ लोगोंने अनन्नासको सबसे अच्छा बताया है। परंतु जिन्होंने आमका स्वाद चखा है उनमें से ज्यादातर लोग तो उसके ही पक्षमें हाथ उठाते हैं। आम मौसममें तीन महीने उपलब्ध रहता है। सस्ता भी बहुत होता है। फलतः धनी और गरीब दोनों उसका रसास्वादन कर सकते हैं। मैंने तो यहाँतक सुना है कि कुछ लोग सिर्फ आमपर ही उदर-निर्वाह करते हैं — अलबत्ता सिर्फ मौसममें। परन्तु दुर्भाग्यसे आम ऐसा फल है, जो बहुत दिनतक टिका नहीं रहता। स्वादमें वह आड़ूसे मिलता-जुलता और गुठलीवाला फल होता है। बहुधा वह छोटे खरबूजेके बराबर होता है। इससे हम खरबूजेपर आते हैं। ये भी गर्मीमें खूब होते हैं। यहाँ जो खरबूजे मिलते हैं उनसे वे बहुत अच्छे होते हैं। परन्तु अब मुझे अधिक फलोंके नाम गिनाकर आपको उकताना नहीं चाहिए। इतना कहना काफी होगा कि भारतमें असंख्य किस्मोंके मौसमी फल पैदा होते हैं, जो बहुत दिनतक नहीं टिकते। ये सब फल

१. मालूम होता है, गांधीजीने 'ज्वार' (अनाज) और 'जुहार' (कुछ भारतीय भाषाओंमें अभिवादन-शब्द) को गड़बड़ा दिया है।

गरीबोंको उपलब्ध हैं। दुखकी बात यही है कि वे कभी इनको आहारके रूपमें छककर नहीं खाते। आमतौरपर हम मानते हैं कि फलोंसे बुखार, दस्त आदिकी बीमारी हो जाती है। गर्मीके दिनोंमें, जब हमेशा हैजेका डर रहता है, सरकारी अधिकारी खरबूजे और इसी प्रकारके दूसरे फलोंकी बिक्री रोक देते हैं। और अनेक मामलोंमें यह ठीक ही होता है। जहाँतक सूखे फलोंका सम्बन्ध है, जितने प्रकारके फल यहाँ मिलते हैं वे सब वहाँ उपलब्ध हैं। कवची मेवोंकी कुछ ऐसी किस्में होती हैं, जो यहाँ नहीं पाई जातीं। दूसरी ओर यहाँकी कुछ किस्में भारतमें नहीं देखी जातीं। कवची फल आहारके तौरपर काममें नहीं लाये जाते। इसलिए, ठीक कहें तो, उन्हें 'भारतके आहारों' में शामिल नहीं करना चाहिए। अब, अपने विषयके आखिरी हिस्सेपर आनेके पहले, मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप मेरे बताये हुए ये आहार-विभाग याद रखें: पहला, रोटी बनानेके अनाज, अर्थात् गेहूँ, ज्वार आदि; दूसरा, सालन या शोरबा बनानेके लिए दालें; तीसरा, हरी शाक-सब्जियाँ; चौथा, फल; और पाँचवाँ तथा आखिरी, कवची मेवे।

बेशक, मैं आपको विविध प्रकारके भोजन बनानेके तरीके नहीं बताऊँगा। यह मेरे वशकी बात नहीं। मैं सामान्य तरीका बताऊँगा, जिससे वे ठीक उपयोगकी दृष्टिसे पकाये जाते हैं। आहार-चिकित्सा या आहारके आरोग्य-शास्त्रकी खोज इंग्लैंडमें अपेक्षाकृत हालमें हुई है। भारतमें हम इसका प्रयोग स्मरणातीत कालसे करते चले आ रहे हैं। वहाँके वैद्य और हकीम दवाओंका उपयोग तो करते हैं, परन्तु वे अपनी बताई हुई दवासे ज्यादा आहारके असरपर निर्भर करते हैं। कुछ बीमारियोंमें वे आपसे नमक न खानेको कहेंगे, अनेकमें आपसे खट्टी चीजों आदिका परहेज करायेंगे। क्योंकि, प्रत्येक आहार औषधिके रूपमें अपना विशेष गुण रखता है। रोटी बनानेके लिए उपयोगी अनाज आहारकी सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है। सुविधाके लिए मैंने आटेसे बननेवाली चीजको 'ब्रेड' कहा है, परन्तु उसे 'केक' नाम देना ज्यादा अच्छा होगा। मैं इसके बनानेकी सारी प्रक्रियाका वर्णन नहीं करूँगा। सिर्फ इतना कह दूँ कि हम चोकरको फेंकते नहीं हैं। चपातियाँ प्रायः ताजी और आम तौरपर शुद्ध किये हुए मक्खन के साथ गरम-गरम खाई जाती हैं। भारतीयोंके लिए इनका वही स्थान है, जो अंग्रेजोंके लिए मांसका है। आदमीकी खुराकका अन्दाजा इससे लगाया जाता है कि वह कितनी रोटियाँ खाता है। दाल और शाक-सब्जीका हिसाब नहीं किया जाता। बिना दालके, बिना शाक-सब्जीके तो आपका भोजन हो सकता है, परन्तु रोटियोंके बिना नहीं हो सकता। विभिन्न प्रकारके अनाजोंसे और भी अनेक प्रकारकी वस्तुएँ बनाई जाती हैं, परन्तु वे सब रोटीके ही दूसरे रूप हैं।

शोरबा या सालन बनानेकी दाल — जैसे मटर, मसूर आदि — पानीमें सिर्फ उबालकर बना ली जाती है। परन्तु बहुत-से मसाले डालनेके कारण वह अत्यन्त स्वादिष्ट बन जाती है। इन आहारोंमें पकानेकी कलाका पूरा-पूरा प्रयोग होता है। मैंने नमक, मिर्च, हल्दी, लौंग, दालचीनी आदि मसाले पड़ी हुई दाल खाई है। दालका

ठीक उपयोग रोटी खानेमें मदद पहुँचाना है। वैद्यककी दृष्टिसे बहुत ज्यादा दाल खाना अच्छा नहीं माना जाता। यहाँ चावलके बारेमें दो शब्द कह देना अनुपयुक्त न होगा। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, चावल खास तौरसे बंगालमें रोटी बनानेके काममें भी आता है। कुछ डाक्टरोंका कहना है कि बंगालियोंके अकसर मधुमेहके शिकार हो जानेका मूल कारण यही है। भारतमें चावलको पौष्टिक आहार कोई नहीं मानता। वह धनियोंका, अर्थात् उन लोगोंका भोजन है, जो काम नहीं करना चाहते। कड़ी मेहनत करनेवाले लोग कभी-कभी ही चावलका उपयोग करते हैं। वैद्य लोग अपने बुखारके मरीजोंको चावलका पथ्य देते हैं। मैं बुखारका शिकार हुआ हूँ (और, जैसा कि डाक्टर एलिन्सन[1] कहेंगे, निस्सन्देह आरोग्यके नियमोंका भंग करनेसे) और चावल तथा मूँगके पानीपर रखा गया हूँ। मुझे इतनी शीघ्रतासे स्वास्थ्य-लाभ हुआ था, मानो कोई चमत्कार हो गया हो।

अब हरी शाक-सब्जी। इन्हें बहुत-कुछ दालोंकी तरह ही बनाया जाता है। तेल और मक्खन शाक-सब्जी बनानेमें बड़े महत्त्वकी वस्तुएँ होती हैं। बहुधा सब्जियोंके साथ बेसन मिला लिया जाता है। सिर्फ उबली हुई शाक-सब्जी कभी नहीं खाई जाती। मैंने भारतमें कभी लोगोंको उबले हुए आलू खाते नहीं देखा। अकसर अनेक शाक-सब्जियोंको एक-साथ मिला दिया जाता है। कहना अनावश्यक है कि स्वादिष्ठ शाक-सब्जी बनानेमें भारत फ्रांसको भारी मात दे सकता है। उनका ठीक उपयोग बहुत-कुछ दाल जैसा ही होता है। महत्त्वमें वे दालके बाद आती हैं। वे कम-ज्यादा रूपमें विशेष भोजनकी वस्तुएँ मानी जाती हैं। आमतौरपर लोग उन्हें बीमारियोंका मूल समझते हैं। गरीब लोगोंको हफ्तेमें एक या दो बार मुश्किलसे एक सब्जी मिलती है। वे रोटी-दाल खाकर गुजर करते हैं। कुछ शाक-सब्जियोंमें उत्तम औषधि-गुण होते हैं। एक शाकको 'ताँदलजा' कहा जाता है। उसका स्वाद पालकके स्वादसे बहुत मिलता-जुलता है। वैद्य लोग उन मरीजोंको यह शाक देते हैं जिनकी आँखें बहुत ज्यादा लाल मिर्च खानेसे बिगड़ जाती हैं।

इसके बाद फलोंकी बारी आती है। वे मुख्यतः 'फलाहारके दिनों'[2] में खाये जाते हैं। साधारण भोजनके बाद अगर खाये भी गये तो छठे-छमाहे खाये जाते हैं। आम तौरपर लोग उन्हें कभी-कभी खाते हैं। आमके मौसममें आमके रसका बहुत उपयोग किया जाता है। लोग उसे रोटी या चावलके साथ खाते हैं। पके फलोंको हम कभी उबालते या भापमें नहीं पकाते। कच्चे फलोंका, मुख्यतः आमोंका, जब वे खट्टे रहते हैं, अचार-मुरब्बा बनाया जाता है। औषधोपचारकी दृष्टिसे माना जाता है कि ताजे और आमतौरपर खट्टे फलोंकी तासीर बुखार लानेकी होती है। सूखे फल बच्चे बहुत खाते हैं। छुहारा खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। हम उन्हें पुष्टिकारक मानते हैं। इसलिए

१. डा० टी० आर० एलिन्सन; लन्दन वेजिटेरियन सोसाइटीके सदस्य; गांधीजी इनके स्वास्थ्य और आरोग्य सम्बन्धी साहित्यसे प्रभावित थे। सन् १९१४ में गांधीजीने प्लूरिसी होनेपर उनका इलाज किया था।

२. धार्मिक उपवासके दिन — एकादशी आदि।

शीतकालमें जब हम पौष्टिक पाक आदिका सेवन किया करते हैं, उन्हें दूध तथा अन्य अनेक वस्तुओंके साथ पकाकर आधी छटाँक रोज खाते हैं।

अन्तमें, कवची मेवोंका स्थान वही है जो इंग्लैंडमें मिठाइयोंका है। बच्चे चीनीमें पगे कवची मेवे खूब खाते हैं। फलाहारके दिनोंमें भी उनका उपयोग बड़ी मात्रामें किया जाता है। हम उन्हें घीमें तलते हैं और दूधमें उबालते हैं। बादामको दिमागके लिए बहुत अच्छा माना जाता है। नारियलका उपयोग हम जिन विविध तरीकोंसे करते हैं उनमेंसे एकका उल्लेख-मात्र मैं कर दूँ। नारियलकी गरीको पहले बारीक कसा जाता है, फिर उसमें घी और शक्कर मिलाई जाती है। उसका स्वाद बहुत बढ़िया होता है। आशा है, आपमें से कुछ लोग अपने घरोंमें नारियलके मीठे लड्डू कहलानेवाली इस वस्तुका स्वाद चख कर देखेंगे। महिलाओ और सज्जनो, यह है भारतके आहारोंकी एक रूपरेखा — एक नितान्त अपूर्ण रूपरेखा। आशा है, आपको उनके बारेमें ज्यादा जानकारी हासिल करनेकी प्रेरणा होगी। और मुझे निश्चय है, उससे आप लाभान्वित होंगे। अन्तमें, मैं यह भी आशा करता हूँ कि एक समय ऐसा आयेगा जब इंग्लैंडकी मांसाहारकी आदतों और भारतकी अन्नाहारकी आदतोंका भारी भेद मिट जायेगा। और उसके साथ ही कुछ दूसरे भेद भी मिट जायेंगे, जो कहीं-कहीं उस एकता तथा सहानुभूतिमें बाधा डालते रहते हैं, जो दोनों देशोंके बीच रहनी चाहिए। मुझे आशा है, भविष्यमें हम प्रार्थनाओंकी और हृदयोंकी भी एकता स्थापित करनेकी वृत्ति रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन मेसेंजर, १-६-१८९१

१७. भाषण : बैंड ऑफ मर्सी, लंदनके समक्ष

अपर नारवुड

[६ जून, १८९१ से पूर्व]

जैसा कि पहलेसे प्रबंध कर लिया गया था, कुमारी सीकोम्बके सौजन्यसे. . . श्रीमती मैकडुअल . . . बैंड ऑफ मर्सीके[1] सदस्योंके सम्मुख भाषण देनेवाली थीं। परन्तु उनके बीमार हो जानेके कारण श्री गांधी (भारतके एक हिन्दू)से विनती की गई और उन्होंने कृपापूर्वक भाषण देना मंजूर कर लिया। श्री गांधी कोई पन्द्रह मिनटतक दया-धर्मके दृष्टिबिन्दुसे अन्नाहार-पद्धतिपर बोले। उन्होंने इस बातका आग्रह किया कि बैंड ऑफ मर्सीके सदस्योंके लिए युक्तिसंगत तो यही है कि वे अन्नाहारी बन जायें। उन्होंने अपना भाषण शेक्सपियरका एक वचन पढ़कर समाप्त किया।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, ६-६-१८९१

१. पशुओंके प्रति क्रूरता निवारण करनेवाला संघ।

१८. भाषण : विदाई भोजमें[1]

११ जून, १८९१

यद्यपि वह एक प्रकारसे विदाई-भोज था, फिर भी वहाँ दुःखका कोई चिह्न नहीं था; क्योंकि सब यही अनुभव कर रहे थे कि यद्यपि श्री गांधी भारत लौट रहे हैं, वे वहाँ जाकर अन्नाहारके पक्षमें और भी अधिक काम करेंगे। और इस समय अधिक उचित यह है कि व्यक्तिगत विछोहपर शोक प्रकट करनेके बजाय उन्हें कानूनी अध्ययनकी समाप्ति और सफलतापर बधाई दी जाये। . . .

समारोहकी समाप्तिपर श्री गांधीने एक सुसंस्कृत भाषण द्वारा उपस्थित सज्जनोंका स्वागत किया, हालाँकि भाषण देते समय वे कुछ घबड़ा रहे थे। उन्होंने कहा कि इंग्लैंडमें मांस-त्यागकी बढ़ती हुई वृत्ति देखकर उन्हें हर्ष हो रहा है। उन्होंने यह बताते हुए कि लंदनकी वेजिटेरियन सोसाइटीके सम्पर्कमें वे किस प्रकार आये, हृदयस्पर्शी भाषामें बताया कि श्री ओल्डफील्डके[2] वे कितने ऋणी हैं। . . .

उन्होंने यह आशा प्रकट की कि फेडरल यूनियनका कोई अगला अधिवेशन भारतमें किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, १३-६-१८९१

१९. भेंट : 'वेजिटेरियन' के प्रतिनिधिसे[3] – १

श्री गांधीसे पहला प्रश्न यह किया गया —— इंग्लैंड आने और कानूनी पेशा अख्तियार करनेकी प्रेरणा सबसे पहले आपको किस बातसे मिली?

एक शब्दमें —— महत्त्वाकांक्षासे। मैंने सन् १८८७ में बम्बई विश्वविद्यालयसे मैट्रिककी परीक्षा पास की। बादमें भावनगर कालेजमें दाखिल हुआ। कारण यह था कि जबतक कोई बम्बई विश्वविद्यालयका स्नातक नहीं हो जाता, उसे समाजमें

१. हॉलबर्नमें।

२. **वेजिटेरियन**के सम्पादक डा० जोशुआ ओल्डफील्ड।

३. **वेजिटेरियन**के एक प्रतिनिधिने गांधीजीसे अनेक प्रश्न पूछकर उनके विस्तृत उत्तर माँगे थे। उद्देश्य यह था कि इंग्लैंडके लोग उन कठिनाइयोंको समझ सकें, जो अध्ययनके लिए इंग्लैंड जानेके इच्छुक हिन्दुओंको झेलनी पड़ती हैं। दूसरा उद्देश्य उन हिन्दुओंको यह बताना भी था कि किस तरीकेसे कठिनाइयोंको पार करना सम्भव हो सकता है। उक्त प्रश्न और उत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं।

प्रतिष्ठा नहीं मिलती। यदि कोई उसके पहले ही नौकरी करना चाहे तो उसे तबतक अच्छे वेतन और आदर-मानकी नौकरी नहीं मिलती जबतक कोई बहुत प्रभावशाली व्यक्ति उसका पृष्ठ-पोषक न हो। परन्तु मैंने देखा कि स्नातक बननेके लिए मुझे कमसे-कम तीन वर्ष खर्च करने पड़ेंगे। इसके अलावा, मुझे हमेशा सिर-दर्द और नाकसे खून बहनेकी शिकायत रहा करती थी, जिसका कारण गरम आबहवा मानी जाती थी। और, आखिर, स्नातक बनकर भी तो मैं बहुत बड़ी आमदनीकी आशा नहीं कर सकता था। मैं लगातार इन चिन्ताओंमें डूबा रहने लगा। ऐसे ही अवसर पर मेरे पिताके एक पुराने मित्र मुझसे मिले और उन्होंने मुझे इंग्लैंड आने और बैरिस्टरी पास करनेकी सलाह दी। मानो, उन्होंने मेरे अन्दर सुलग रही आगको धधका दिया। मैंने मनमें सोचा — "अगर मैं इंग्लैंड चला जाऊँ तो न सिर्फ बैरिस्टर बन जाऊँगा (जिसको मैं बहुत बड़ी चीज समझता था), बल्कि दार्शनिकों और कवियोंकी भूमि, सभ्यताके साक्षात् केन्द्र-स्थल इंग्लैंडको, भी देख सकूँगा।" मेरे बुजुर्गोंपर इन सज्जनका बहुत प्रभाव था, इसलिए वे मुझे इंग्लैंड भेजनेके लिए उन लोगोंको समझानेमें सफल हो गये।

मेरे इंग्लैंड आनेके कारणोंका यह बहुत संक्षिप्त बयान हुआ। परन्तु यह मेरे आजके विचारोंका द्योतक नहीं है।

आपके इस महत्त्वाकांक्षाके पूर्ण प्रयत्नपर आपके सब मित्र तो खुश ही हुए होंगे?

नहीं नहीं, सब नहीं। मित्र तो अलग-अलग तरहके होते हैं। जो मेरे सच्चे मित्र और मेरी ही उम्रके थे, उन्हें यह सुनकर बहुत खुशी हुई कि मैं इंग्लैंड जानेवाला हूँ। कुछ मित्र — या यों कहिए कि शुभाकांक्षी — उम्रमें बड़े थे। उनका हार्दिक विश्वास यह था कि मैं अपने-आपको बरबाद करने जा रहा हूँ और इंग्लैंड जाकर मैं अपने परिवारके लिए कलंकरूप बन जाऊँगा। दूसरे लोगोंने केवल ईर्ष्या-द्वेषके कारण विरोध किया। उन्होंने कुछ ऐसे बैरिस्टरोंको देखा था, जिनकी आमदनी अपार थी। उन्हें डर था कि मैं भी वैसी ही कमाई करने लगूँगा। फिर कुछ लोग ऐसे थे जो समझते थे कि अभी मेरी उम्र बहुत छोटी है (इस समय मैं लगभग २२ वर्षका हूँ), या मैं इंग्लैंडकी आबहवाको बरदाश्त नहीं कर सकूँगा। सारांश यह कि कोई भी दो लोग ऐसे नहीं थे जिन्होंने एक ही कारणसे मेरे आनेका समर्थन या विरोध किया हो।

आपने अपने इरादोंको पूर्ण करनेके लिए क्या-क्या किया। कृपया बताइए कि आपको क्या-क्या कठिनाइयाँ हुईं और आपने उन्हें कैसे पार किया?

मैं आपको अपनी कठिनाइयोंकी कहानी बतानेका प्रयत्न भी करूँ तो आपका मूल्यवान पत्र पूराका पूरा भर जायेगा। वह तो एक दुःख और दर्दकी कहानी है। उन कठिनाइयोंकी तुलना तो बखूबी रावण — हिन्दुओंके द्वितीय[1] महान कथा-ग्रंथ 'रामायण'के राक्षस-खलनायक, जिसे 'रामायण'के चरितनायक रामने युद्ध करके हराया था — के

१. दूसरा महान कथा-ग्रंथ है — **महाभारत**।

सिरोंसे की जा सकती है, जो बहुत-से थे और कटते ही फिर उग आते थे। उन्हें चार मुख्य शीर्षकोंमें बाँटा जा सकता है — धन, मेरे बुजुर्गोंकी सहमति, सम्बन्धियोंसे जुदाई और जाति-बंधन।

पहले धनकी बात ले लें। यद्यपि मेरे पिता एकसे ज्यादा देशी रियासतोंके दीवान रहे थे, उन्होंने कभी धन-संग्रह नहीं किया। उन्होंने जो-कुछ कमाया, सब अपने बच्चोंकी शिक्षा, विवाहों और धर्मार्थ कार्योंमें खर्च कर डाला। फलतः हमारे पास बहुत पैसा नहीं बचा। वे कुछ अचल सम्पत्ति छोड़ गये थे और वही हमारा सब-कुछ थी। जब उनसे पूछा जाता था कि आपने अपने बच्चोंके लिए कुछ बचाकर क्यों नहीं रखा तो वे जवाब देते थे कि मेरे बच्चे ही मेरी सम्पत्ति हैं, और अगर मैं बहुत-सा रुपया जमा कर लूँगा तो बच्चे बिगड़ जायेंगे। इसलिए मेरे सामने रुपयेकी कठिनाई कम नहीं थी। मैंने राज्यसे कुछ छात्रवृत्ति पानेकी कोशिश की, मगर मैं उसमें असफल रहा। एक जगह तो मुझसे कहा गया कि पहले स्नातक बनकर अपनी योग्यता सिद्ध करो, फिर छात्रवृत्तिकी अपेक्षा करना। अनुभव मुझे बताता है कि जिन सज्जनने यह बात कही थी, उन्होंने ठीक ही कहा था। परन्तु मैं किसी बातसे विचलित नहीं हुआ। मैंने अपने सबसे बड़े भाईसे अनुरोध किया कि जो-कुछ भी धन बच गया है वह सब इंग्लैंडमें मेरी शिक्षाके लिए दे दें।

भारतमें प्रचलित कुटुम्ब-प्रणालीका परिचय देनेके लिए यहाँ थोड़ा-सा विषयान्तर किये बिना काम न चलेगा। भारतमें, इंग्लैंडके विपरीत, लड़के हमेशा माता-पिताके साथ ही रहते हैं; लड़कियाँ विवाहतक रहती हैं। वे जो-कुछ कमाते हैं वह पिताके हाथोंमें जाता है। इसी तरह जो-कुछ खोते हैं वह भी पिताका ही नुकसान होता है। हाँ, भारी झगड़ा आदि हो जाने जैसी विशेष परिस्थितियोंमें तो लड़के भी अलग हो ही जाते हैं। परन्तु ये अपवाद हैं। मेनकी कानूनी भाषामें "पश्चिममें सम्पत्ति साधारणतः व्यक्तिगत होती है; पूर्वमें साधारणतः संयुक्त होती है।" सो, मेरे पास अपनी कोई सम्पत्ति नहीं थी। सब-कुछ मेरे भाईके हाथमें था और हम सब एक-साथ रहते थे।

तो, फिरसे धनकी बात। मेरे पिता जो थोड़ा-सा धन मेरे विचारसे बचा पाये थे वह मेरे भाईके हाथमें था। वह उनकी अनुमतिसे ही निकल सकता था। इसके अलावा, वह रुपया काफी नहीं था, इसलिए मैंने कहा कि सारी पूँजी मेरी शिक्षामें लगा दी जाये। आपसे मैं पूछता हूँ कि क्या यहाँ कोई भाई ऐसा करेगा? भारतमें भी ऐसे भाई बहुत कम हैं। उनसे कहा गया था कि पश्चिमी विचार ग्रहण करके मैं एक नालायक भाई साबित हो सकता हूँ। और मुझसे रुपया तो तभी वापस मिल सकेगा जब मैं जीवित भारत लौट सकूँ, और इसमें बहुत सन्देह व्यक्त किया जा रहा था। परन्तु मेरे भाईने ये सब उचित और सदाशयतापूर्ण चेतावनियाँ सुनी-अनसुनी कर दीं। मेरे प्रस्तावकी स्वीकृतिके लिए केवल एक शर्त रखी गई। वह शर्त यह थी कि मैं अपनी माता और चाचाकी अनुमति प्राप्त कर लूँ। मेरे भाई जैसे भाई बहुत लोगोंके हों! फिर मैं अपने ऊपर छोड़े गये काममें लगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वह काम बड़ा दुःसाध्य था। सौभाग्यसे मैं अपनी माँका दुलारा था। उन्हें मुझपर बहुत

विश्वास था। इसलिए मैं उनका अन्धविश्वास दूर करनेमें तो सफल हो गया; परन्तु मैं तीन वर्षकी जुदाईके लिए उनकी अनुमति कैसे प्राप्त कर सकता था? तथापि, इंग्लैंड आनेके फायदोंको अतिरंजित करके बतानेपर मैंने उनको राजी कर लिया। फिर भी वे अनिच्छापूर्वक ही राजी हुईं। अब रही चाचाकी बात। वे बनारस तथा अन्य तीर्थोंको जानेकी तैयारीमें थे। तीन दिन लगातार समझाने और मनानेके बाद मैं उनसे यह उत्तर पा सका:

"मैं तो तीर्थयात्राके लिए जा रहा हूँ। तुम जो-कुछ कह रहे हो वह ठीक हो सकता है; परन्तु मैं तुम्हारे अधार्मिक प्रस्तावपर राजी-खुशीसे 'हाँ' कैसे कह सकता हूँ? मैं तो सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि अगर तुम्हारी माताको जानेपर कोई आपत्ति नहीं है तो मुझे दखल देनेका कोई अधिकार नहीं।"

इसका अर्थ 'हाँ' लगा लेना कठिन नहीं हुआ। परन्तु मुझे इन दो व्यक्तियों-को ही राजी नहीं करना था। भारतमें कोई कितना ही दूरका सम्बन्धी क्यों न हो, हरएक समझता है कि उसे दूसरेके मामलोंमें दखल देनेका एक हक है। परन्तु जब मैंने इन दो से उनकी सम्मति ऐंठ ली (क्योंकि वह ऐंठनेके अलावा और कुछ न था), तब आर्थिक कठिनाइयाँ लगभग समाप्त हो गईं।

दूसरे शीर्षककी कठिनाइयोंकी आंशिक चर्चा ऊपर हो चुकी है। आपको शायद यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं विवाहित हूँ। (विवाह बारह वर्षकी उम्रमें हुआ था।) इसलिए अगर मेरी पत्नीके माता-पिताने सोचा कि उन्हें — केवल अपनी लड़कीके हितके लिए ही सही — मेरे मामलेमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार है, तो उनका क्या दोष? मेरी पत्नीकी देख-भाल करनेवाला कौन था? वह तीन वर्ष कैसे काटेगी? जिम्मेदारी आई मेरे भाईपर — वे उसकी देखभाल करेंगे! बेचारे भाई! अगर श्वशुरकी नाराजगीका असर मेरी माँ और मेरे भाईपर पड़नेवाला न होता तो अपने उस समयके विचारोंके अनुसार मैं उनकी न्यायोचित आशंकाओं और गुर्राहटकी परवाह न करता। अपने श्वशुरके साथ एकके बाद एक रात बैठना, उनकी आपत्तियाँ सुनना और उनका सफलतापूर्वक जवाब देना कोई सरल काम नहीं था। परन्तु "धीरज और परिश्रमसे पहाड़ भी कट जाता है" — इस पुरानी कहावतपर मुझे भलीभाँति भरोसा था; और मैं पीछे हटनेवाला नहीं था।

जब मुझे रुपया और आवश्यक अनुमति मिल गई तब मैं सोचने लगा — "यह अपना सारा परिवेश जो मुझे इतना प्यारा है और जिससे मैं इतना घनिष्ठ हूँ, इससे जुदा होनेके लिए अपने आपको कैसे मनाऊँ?" हम भारतीय जुदा होना पसन्द नहीं करते। जब एक बार मुझे थोड़े ही दिनोंके लिए घरसे जाना पड़ा था; मेरी माँ तभी रोया करती थीं। तो अब मैं भावनासे मुक्त रहकर ये हृदय-विदारक दृश्य कैसे देखूँगा? मेरे मनको जो वेदना सहनी पड़ी उसका वर्णन करना असंभव है। जब विदाईका दिन नजदीक आया तो मैं करीब-करीब बेहाल हो उठा। परन्तु मैंने बुद्धिमत्ता की कि अपने परमप्रिय मित्रोंको भी यह बात नहीं बताई। मैं जानता था कि मेरा स्वास्थ्य जवाब दे रहा है। सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते,

पढ़ते, मैं इंग्लैंडके ही स्वप्न देखता, उसके ही विचारमें डूबा रहता और सोचता रहता कि विदाईकी कठिनतम घड़ी आनेपर मैं क्या करूँगा। आखिर वह दिन आ पहुँचा। एक ओर मेरी माँ अपनी आँसू-भरी आँखोंको हाथोंसे ढाँके थीं, परन्तु उनके सिसकनेकी आवाज साफ सुनाई पड़ रही थी; दूसरी ओर मैं लगभग पचास मित्रोंके बीचमें था। मैंने मनमें कहा — "अगर मैं रोया तो ये लोग मुझे बहुत दुर्बल समझेंगे; शायद मुझे इंग्लैंड जाने भी न देंगे।" इसलिए यद्यपि मेरा हृदय फट रहा था, मैं रोया नहीं। अन्तमें अपनी पत्नीसे विदा लेनेका मौका आया। यह मौका अन्तमें भले ही आया हो, किन्तु महत्त्वमें अन्तिम नहीं था। मित्रोंकी उपस्थितिमें पत्नीसे बातचीत करना चालके विरुद्ध होता। इसलिए मुझे उससे एक अलग कमरेमें मिलना पड़ा। निस्सन्देह उसने बहुत पहलेसे ही सिसकना शुरू कर दिया था। मैं उसके पास गया और क्षण-भरके लिए गूँगी प्रतिमाके समान उसके सामने खड़ा रहा। मैंने उसका चुम्बन किया और उसने कहा — "जाओ मत!" इसके बाद जो कुछ हुआ उसका वर्णन करनेकी जरूरत नहीं। यह सब तो हो गया, मगर मेरी चिन्ताओंका अन्त नहीं हुआ। यह तो अन्तका आरम्भमात्र था। विदा लेनेका काम सिर्फ आधा निबटा था। माँ और पत्नीसे तो राजकोटमें ही (जहाँ मैंने शिक्षा पाई थी) विदा ले चुका था, मगर मेरे भाई और दूसरे लोग मुझे विदा करनेके लिए बम्बईतक आये थे। वहाँ जो दृश्य उपस्थित हुआ, वह कम मर्मस्पर्शी नहीं था।

बम्बईमें मेरे जाति-भाइयोंके साथ जो टक्करें हुईं, उनका वर्णन करना दुःसाध्य है, क्योंकि बम्बई उनका मुख्य अड्डा है। राजकोटमें मुझे ऐसे किसी कहने लायक विरोधका सामना नहीं करना पड़ा था। बम्बईमें दुर्भाग्यवश मुझे शहरके बीचमें रहना पड़ा। उनकी सबसे ज्यादा बस्ती वहीं थी। इसलिए मैं चारों ओर उनसे घिरा हुआ था। किसी न किसीके घूरने और अँगुली उठानेसे बचकर मेरा बाहर निकलना भी संभव नहीं था। एक बार तो जब मैं टाउनहालके पाससे गुजर रहा था, लोगोंने मुझे घेर लिया और मुझपर हू-हाकी बौछार कर दी। मेरे बेचारे भाईको चुपचाप यह सब दृश्य देखना पड़ा। पराकाष्ठा तब हुई जब जातिके मुख्य प्रतिनिधियोंने एक विराट् सभाका आयोजन किया। जातिके हर आदमीको सभामें बुलाया गया और जो न आये, उसे पाँच आने जुर्मानेकी धमकी दी गई। यहाँ मैं बता दूँ कि इस कार्रवाईका निश्चय करनेके पहले उनके कई शिष्टमंडलोंने आ-आकर मुझे परेशान किया था। परन्तु वे असफल रहे। इस विशाल सभामें मुझे श्रोताओंके बीचों-बीच बैठाया गया। जातिके प्रतिनिधियोंने जिन्हें 'पटेल' कहा जाता है, मुझे खूब सख्त-सुस्त सुनाईं। मेरे पिताजीके साथ अपने सम्बन्धोंकी याद भी दिलाई। मैं कह सकता हूँ कि यह सब मेरे लिए एक अनोखा अनुभव था। उन्होंने अक्षरशः मुझे एकान्त स्थानसे घसीटकर सबके बीचमें बैठाया था, क्योंकि मैं तो ऐसी बातोंका अभ्यस्त नहीं था। इसके अलावा, परले दर्जेके शरमीले स्वभावके कारण मेरी स्थिति और भी संकटापन्न हो गई थी। आखिर, यह देखकर कि डाँट-फटकारका मुझपर कोई असर नहीं हुआ, मुख्य पटेलने मुझसे इस आशयकी बातें कहीं — "तुम्हारे पिता हमारे दोस्त थे, इसीलिए हमें तुम

पर दया आती है। तुम जानते हो, जातिके मुखियोंके नाते हममें कितनी शक्ति है। हम ठीक-ठीक जानते हैं कि इंग्लैंडमें तुम्हें मांस खाना पड़ेगा, और शराब पीनी पड़ेगी। इसके अलावा, तुम्हें समुद्र पार जाना है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि यह सब हमारे जाति-नियमोंके खिलाफ है। इसलिए हम तुम्हें हुक्म देते हैं कि अपने फैसलेपर फिरसे सोच-विचार कर लो। नहीं तो, तुम्हें भारीसे भारी सजा दी जायेगी। तुम्हें क्या कहना है?"

मैंने इन शब्दोंमें जवाब दिया — "आपकी ताकीदोंके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मगर अफसोस है कि मैं अपना फैसला बदल नहीं सकता। मैंने इंग्लैंडके बारेमें जो-कुछ सुना है वह, आप जो-कुछ कह रहे हैं, उससे बिलकुल भिन्न है। जरूरी नहीं कि वहाँ मांस-मदिराका सेवन करना ही पड़े। और जहाँतक समुद्र पार करनेकी बात है, अगर हमारे भाई-बन्द अदन जा सकते हैं तो मैं इंग्लैंड क्यों नहीं जा सकता? मुझे पक्का यकीन हो गया है कि इन सब आपत्तियोंके पीछे ईर्ष्या काम कर रही है।"

माननीय पटेलने गुस्सेसे जवाब दिया — "तो ठीक है। तुम अपने बापके बेटे नहीं हो।" फिर श्रोताओंकी ओर मुख करके उसने कहा — "इस लड़केने अपना होश खो दिया है। हम हरएकको आज्ञा देते हैं कि इसके साथ कोई वास्ता न रखा जाये। जो इसको किसी भी तरहसे मदद करेगा, या इसे विदा करने जायेगा उसे जातिसे निकाल दिया जायेगा। और अगर यह लड़का कभी लौटकर आ सके तो इसे बता दिया जाये कि यह फिरसे कभी जातिमें नहीं लिया जायेगा।"

ये शब्द लोगोंपर वज्र-जैसे पड़े। अब तो उन थोड़े-से चुने हुए लोगोंने भी मुझे छोड़ दिया, जो गाढ़े समयमें भी मेरा साथ देते आये थे। मेरा बड़ा मन था कि उस बचपनेसे भरी धमकीका जवाब दूँ, मगर मेरे भाईने मुझे रोक लिया। इस तरह मैं उस अग्नि-परीक्षासे सकुशल निकल तो आया, मगर मेरी स्थिति पहलेसे भी बदतर हो गई। क्षण-भरके लिए ही स्वयं मेरे भाईका मन भी डाँवाडोल हो गया सही। उनको यह धमकी याद आने लगी कि यदि वे मुझे धनकी सहायता करेंगे तो उन्हें अपना पैसा ही नहीं, बल्कि बिरादरी भी खो देनी पड़ेगी। इसलिए, उन्होंने रू-ब-रू मुझसे तो कुछ नहीं कहा, मगर अपने कुछ मित्रोंसे कहा कि वे मुझे या तो अपने निर्णयपर फिरसे विचार करनेको या जातिका क्षोभ ठंडा पड़ने तकके लिए उसे स्थगित कर देनेको समझायें। मेरा जवाब तो सिर्फ एक ही हो सकता था। उसे जान लेनेपर उन्होंने फिर कभी पसोपेश नहीं किया। और वास्तवमें उन्हें जातिसे बहिष्कृत भी नहीं किया गया। मगर बात यहाँ खत्म नहीं हुई। जातिवालोंकी कारस्तानियाँ बराबर चलती रहीं। इस बार वे करीब-करीब सफल हो गये, क्योंकि उन्होंने मेरा जाना एक पखवारेके लिए मुल्तवी करा दिया। यह उन्होंने इस तरह किया: हम एक जहाज कम्पनीके कप्तानसे मिलने गये। उससे यह कह देनेका अनुरोध किया गया था कि समुद्रमें तूफानी मौसम होनेके कारण उस समय — अगस्तमें — रवाना होना मुनासिब न होगा। मेरे भाई सब बातें माननेको तैयार थे, मगर तूफानी मौसममें रवाना

होने देनेको तैयार न थे। दुर्भाग्यसे मेरे लिए यह पहली ही समुद्र-यात्रा थी। इसलिए यह भी कोई नहीं जानता था कि मैं आरामसे समुद्र-यात्रा कर सकता हूँ या नहीं। इस तरह मैं लाचार हो गया। अपनी इच्छाके बहुत खिलाफ मुझे अपनी रवानगी स्थगित कर देनी पड़ी। मुझे तो लगा कि सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जायेगा। मेरे भाई अपने एक मित्रके नाम एक चिट्ठी छोड़कर, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि समय आनेपर मुझे किरायेका पैसा दे दें, वापस चले गये। जुदाईका दृश्य वैसा ही था, जैसा ऊपर वर्णित है। अब मैं बम्बईमें अकेला रह गया। जहाजके किरायेके लिए पैसा नहीं था। वहाँ मुझे जितना ठहरना पड़ा, उसका एक-एक घंटा एक-एक वर्ष जैसा मालूम होता था। इसी बीच मैंने सुना कि एक और भारतीय सज्जन[१] भी इंग्लैंड जा रहे हैं। यह तो मेरे लिए ईश्वर-प्रेरित समाचार था। मैंने सोचा, अब मुझे जाने दिया जायेगा। मैंने उस चिट्ठीका उपयोग किया, परन्तु भाईके मित्रने मुझे रुपया देनेसे इनकार कर दिया। मुझे चौबीस घंटोंके अन्दर तैयारी करनी थी। इसलिए मैं भयानक बेचैनीमें था। रुपयेके बिना ऐसा महसूस करता था मानो मैं पंखहीन पक्षी होऊँ। ऐसे समयमें एक मित्र मददको आ गये और उन्होंने मार्ग-व्यय दे दिया। उन्हें तो मैं हमेशा ही धन्यवाद दूँगा। मैंने टिकट खरीद लिया, अपने भाईको तार दे दिया और ४ सितंबर, १८८८ को मैं इंग्लैंडके लिए रवाना हो गया। इस तरहकी थी मेरी मुख्य कठिनाइयाँ, जो लगभग पाँच माहतक चलती रहीं। वह समय भयानक चिन्ता और मनस्तापका था। कभी आशा और कभी निराशाके बीच, हमेशा अधिकसे-अधिक प्रयत्न करता हुआ, और इष्ट लक्ष्य दिखानेके लिए ईश्वरपर निर्भर होकर, मैं अपनी गाड़ी खींचता रहा।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, १३-६-१८९१

२०. भेंट : 'वेजिटेरियन' के प्रतिनिधिसे – २

इंग्लैंड पहुँचनेपर तो आपको मांसाहारकी समस्याका प्रत्यक्ष सामना करना पड़ा होगा; आपने उसको कैसे हल किया?

मैं बेमाँगे उपदेशोंके भारसे दब गया था। सदाशयी किन्तु अनजान मित्र अपनी सलाहें अनिच्छुक कानोंमें ठूँसते रहे थे। उनमें से ज्यादातरने तो यह कहा था कि ठंडी आबहवामें तुम्हारा काम मांसके बिना नहीं चलेगा। तुम्हें क्षय-रोग हो जायेगा। श्री 'क' इंग्लैंड गये थे और वे अपनी मूर्खतापूर्ण वीरताके कारण क्षय-रोगके शिकार हो गये थे। दूसरे लोगोंने कहा कि तुम मांसके बिना तो रह सकते हो, मगर शराबके बिना घूम-फिर नहीं सकते। सर्दीसे जकड़ जाओगे। एकने तो यहाँतक उपदेश दे डाला

१. मजमूदार; देखिए "लंदन दैनन्दिनी", १२-११-१८८८।

कि तुम व्हिस्कीकी आठ बोतलें साथ रख लो, क्योंकि अदनसे आगे जानेके बाद तुम्हें उसकी जरूरत पड़ सकती है। एक अन्य सज्जनने धूम्रपानकी सलाह दी, क्योंकि उनका मित्र इंग्लैंडमें धूम्रपानके लिए बाध्य हो गया था। इंग्लैंड होकर आये हुए डाक्टरतक यही कहानी सुनाते थे। मैंने जवाब दिया कि मैं इन सब चीजोंको टालनेकी ज्यादासे-ज्यादा कोशिश करूँगा। परन्तु यदि ये बिलकुल जरूरी ही मालूम हुईं तो कह नहीं सकता क्या करूँगा। यों उस समय मांससे मुझे इतनी चिढ़ नहीं थी, जितनी कि आज है। जिन दिनों मैंने अपने लिए सोचनेका अधिकार अपने मित्रोंको दे रखा था, उन दिनों मैं छः या सात बार मांस खानेके चक्करमें पड़ भी चुका था। परन्तु जहाजमें मेरे विचार बदलने लगे थे। मैंने सोचा कि मुझे किसी भी कारणसे मांस नहीं खाना चाहिए। मेरी माँने मुझे यहाँ आनेकी अनुमति देनेके पूर्व मुझसे मांस न खानेका वचन ले लिया था। और कुछ नहीं तो उस वचनसे ही मैं मांस न खानेको बँधा हुआ था। जहाजके सह-यात्री हमें (मुझे और मेरे साथके मित्रको) सलाह देने लगे कि जरा परीक्षा करके तो देखो।

उनका कहना था कि तुम्हें अदन छोड़नेके बाद उसकी जरूरत पड़ेगी। जब यह गलत सिद्ध हो गया तो फिर बताया गया कि लाल समुद्र पार करनेके बाद जरूरत होगी। और जब यह भी झूठ निकला तो एक यात्रीने कहा — "अभीतक मौसम बहुत उग्र नहीं रहा, परन्तु बिस्केकी खाड़ीमें आपको मौत और मांस-मदिरामें से एकको पसन्द करना होगा।" वह संकटका मौका भी सकुशल बीत गया। लंदनमें भी मुझे ऐसी डाँट-फटकारें सुननी पड़ी थीं। महीनोंतक मेरी भेंट किसी अन्नाहारीसे नहीं हुई। मैंने एक मित्रके साथ अन्नाहारकी पर्याप्तताके विषयमें बहस करते हुए कई दिन चिन्तामें बिताये। परन्तु उस समय अन्नाहारके पक्षमें मुझे जीव-दयाकी दलीलोंको छोड़कर और किन्हीं दलीलोंका ज्ञान नहीं था। दूसरी ओर, मेरे मित्रने ऐसी बहसोंमें जीवदयाके विचारको तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार कर दिया। अतएव मुझे हार खानी पड़ी। आखिरकार मैंने यह कहकर उसका मुँह बन्द किया कि मैं मर जाना पसन्द करूँगा, परन्तु अपनी माताको दिया हुआ वचन नहीं तोड़ूँगा। "छिः!" उसने कहा, "बचपन! घोर अन्धविश्वास! यहाँ आनेपर भी तुममें इतना अन्धविश्वास कायम है कि तुम इन बेवकूफियोंमें विश्वास करते हो, तब फिर मैं तुम्हारी ज्यादा मदद नहीं कर सकता। काश! तुम इंग्लैंड आये ही न होते!"

बादमें, शायद एक बारको छोड़कर उसने फिर कभी उस बातपर गंभीरतासे जोर नहीं दिया, हालाँकि तबसे उसने कभी मुझे मूर्खसे बेहतर नहीं माना। इसी बीच मुझे याद आया कि एक बार मैं एक अन्नाहारी जलपान-गृहके पाससे निकला था (वह "पॉरिज बाउल" था)। मैंने एक आदमीसे वहाँका रास्ता पूछा, मगर वहाँ पहुँचनेके बदले, मैंने "सेंट्रल" जलपान-गृह देखा और वहाँ जाकर पहली बार थोड़ा-सा दलिया खाया। वह तो मुझे अच्छा नहीं लगा, मगर दूसरे परोसेमें जो 'पाई'[१] दी गई, वह मुझे पसन्द आई। वहींसे पहले-पहल कुछ अन्नाहारी साहित्य लाया।

१. आटेकी पतली परतोंके बीच कुचले हुए फलोंकी मोटी परत भरकर सेकी गई मीठी रोटी।

उसमें एक प्रति एच० एस० साल्ट कृत 'ए प्ली फॉर वेजिटेरियनिज्म' की भी थी। उसे पढ़नेके बाद मैंने अन्नाहारको सैद्धान्तिक रूपमें स्वीकार कर लिया।

तबतक मैं मांसको वैज्ञानिक दृष्टिसे ज्यादा अच्छा आहार समझता था। इसके अलावा, उसी जलपान-गृहमें मुझे मालूम हुआ था कि मैंचेस्टरमें एक अन्नाहारी संघ है। परन्तु मैंने उसमें कोई सक्रिय दिलचस्पी नहीं ली। मैं कभी-कभी 'वेजिटेरियन मेसेंजर' पढ़ लिया करता था, इससे अधिक कुछ नहीं। 'वेजिटेरियन' की जानकारी तो मुझे एक-डेढ़ वर्षसे ही है। ऐसा कहा जा सकता है कि लंदनके अन्नाहारी संघकी जानकारी मुझे अन्तर्राष्ट्रीय अन्नाहारी कांग्रेसमें हुई थी। कांग्रेसकी बैठककी सूचना मुझे श्री जोशुआ ओल्डफील्डके सौजन्यसे प्राप्त हुई थी। उन्होंने एक मित्रसे मेरे बारेमें सुना था और मुझसे कांग्रेसमें शामिल होनेको कहा था। अन्तमें मुझे कहना होगा कि इंग्लैंडमें लगभग तीन वर्ष रहते हुए ऐसे कई काम हैं जो मैंने नहीं किये, और कई काम ऐसे किये हैं, जिन्हें शायद न करता तो अच्छा होता। फिर भी मुझे यह एक महान संतोष है कि मैंने शराब और मांसका सेवन नहीं किया; उनसे बचकर भारत लौट रहा हूँ। और अपने व्यक्तिगत अनुभवसे जानता हूँ कि इंग्लैंडमें भी बहुत-से अन्नाहारी मौजूद हैं।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २०-६-१८९१

२१. आवेदनपत्र : एडवोकेट बननेके लिए

बम्बई
१६ नवम्बर, १८९१

सेवामें
प्रोथोनोटरी व रजिस्ट्रार
उच्च न्यायालय
बम्बई

महोदय,

मैं उच्च न्यायालयका एडवोकेट बननेका इच्छुक हूँ। मैंने गत १९ जूनको इंग्लैंडमें बैरिस्टरीकी सनद प्राप्त की है और इनर टेम्पलमें बारह सत्र पूरे किये हैं। मैं बम्बई प्रान्तमें बैरिस्टरी करना चाहता हूँ।

मैं इसके साथ अपनी बैरिस्टरीका प्रमाणपत्र पेश कर रहा हूँ। जहाँतक मेरे चालचलन और योग्यताके प्रमाणपत्रका संबंध है, मैं इंग्लैंडके किसी न्यायाधीशसे कोई प्रमाणपत्र नहीं ले सका, क्योंकि मुझे बम्बई उच्च न्यायालयमें प्रचलित नियमोंका ज्ञान नहीं था। तथापि मैं श्री डब्ल्यू० डी० एडवर्ड्सका प्रमाणपत्र पेश कर रहा हूँ। वे इंग्लैंडके सर्वोच्च न्यायालयके बैरिस्टर और 'कॉम्पेंडियम ऑफ द लॉ ऑफ

प्रॉपर्टी इन लैंड' के रचयिता हैं, जो बैरिस्टरीकी अन्तिम परीक्षाके लिए निर्दिष्ट पुस्तकोंमें से एक है।

आपका,
आज्ञाकारी सेवक
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महात्मा, खण्ड १; तथा एक फोटो-नकलसे।

२२. स्वदेश वापसीके मार्गमें – १

इंग्लैंडमें तीन वर्ष रहनेके बाद १२ जून, १८९१ को मैं बम्बईके लिए रवाना हुआ। दिन बड़ा सुहावना था। सूर्यकी उज्ज्वल धूप फैली हुई थी। हवाके ठंडे झकोरोंसे बचनेके लिए ओवरकोटकी जरूरत नहीं थी।

पौने बारह बजे मुसाफिरोंकी एक्सप्रेस रेलगाड़ी लिवरपूल स्ट्रीट स्टेशनसे जहाज-घाटके लिए रवाना हुई।

जबतक मैं पी० ऐंड ओ० कम्पनीके जहाज 'ओशियाना' में सवार नहीं हो गया, मुझे विश्वास ही नहीं होता था कि मैं भारत जा रहा हूँ। मेरा लंदन और उसके वातावरणसे इतना अनुराग हो गया था; ऐसा कौन है, जिसे न हो जायेगा? वहाँ जो शिक्षा-संस्थाएँ, सार्वजनिक कलाभवन, अजायबघर, नाटकघर, अपार वाणिज्य, सार्वजनिक बाग और अन्नाहारी जलपान-गृह हैं, उनके कारण वह विद्यार्थियों, यात्रियों, व्यापारियों, और जिन्हें विरोधी लोग "खब्ती" कहकर पुकारते हैं उन अन्नाहारियोंके लिए एक योग्य स्थान है। इसलिए मैं गहरे अफसोसके बिना प्यारे लंदनसे विदाई नहीं ले सका। साथ ही मुझे खुशी भी थी कि इतने लम्बे अरसेके बाद मैं भारत पहुँचकर अपने मित्रों और संबंधियोंसे मिलूँगा।

'ओशियाना' एक आस्ट्रेलियाई जहाज है। उसकी गिनती कम्पनीके सबसे बड़े जहाजोंमें है। उसका वजन ६,१८८ टन और शक्ति १,२०० हार्सपावर है। इस तैरते हुए विशाल द्वीपमें सवार होनेपर हमें अच्छी, ताजगीदेह चाय और नाश्ता दिया गया, जिसपर तमाम यात्रियों और उनके मित्रोंने समान रूपसे जी भरके हाथ साफ किया। यह बता देना जरूरी है कि चाय-नाश्ता मुफ्त दिया गया था। उस समय जिस इतमीनानसे लोग चाय पी रहे थे, उसे देखकर अनजान व्यक्ति तो यही समझता कि वे सभी यात्री हैं (और उनकी संख्या काफी बड़ी थी)। परन्तु जब घंटी बजाकर यात्रियोंके मित्रोंको सूचना दी गई कि जहाज लंगर उठानेवाला है, तो वह संख्या बहुत-कुछ क्षीण हो गई। जब जहाज बन्दरगाहसे चला तो ढाढ़स बँधाने और उत्साहित करनेके उद्गारोंका समाँ बँध गया और जहाँ-तहाँ रूमालें लहराई जाने लगीं।

बम्बई जानेवाले यात्रियोंको अदनमें 'ओशियाना' छोड़कर 'आसाम' जहाजपर बैठना था। इसलिए दोनों जहाजोंका फर्क बता देना ठीक होगा। 'ओशियाना'में हजूरिये अंग्रेज थे। वे सदा साफ-सुथरे और सेवा करनेको तत्पर रहते थे। दूसरी ओर, 'आसाम' जहाजके हजूरिये पुर्तगीज थे, जो बात-बातमें अच्छी-भली अंग्रेजीकी टाँग तोड़ते और सदैव अस्वच्छ रहते थे। वे लापरवाह और सुस्त भी थे।

इसके अलावा, दोनों जहाजोंमें दिये जानेवाले भोजनकी किस्ममें भी फर्क था। 'आसाम'के यात्री जिस तरह असंतोष प्रकट करते रहते थे, उससे यह साफ था। और यही बस नहीं था। 'ओशियाना' में 'आसाम' की अपेक्षा जगह भी अच्छी थी। परन्तु इसका तो कोई इलाज कंपनीके पास नहीं था। अंग्रेजोंका जहाज अच्छा है, इसलिए अपने जहाजको वह फेंक तो नहीं दे सकती थी।

अन्नाहारियोंने जहाजमें कैसे काम चलाया, यह सवाल मौजूँ होगा।

अन्नाहारी तो मुझे मिलाकर सिर्फ दो ही थे। हम दोनों अगर कुछ बेहतर न मिले तो उबले हुए आलू, गोभी और मक्खनसे काम चला लेनेको तैयार थे। परन्तु हमें उस हदतक जानेकी जरूरत नहीं पड़ी। भला परिचारक [स्टचूअर्ड] हमें शाक-सब्जी, चावल, भापमें पकाये हुए और ताजे फल पहले दर्जेके भोजन-गृहसे लाकर दे देता था। और बड़ी बात तो यह है कि वह हमें ब्राउन ब्रेड[1] भी दे देता था। इस तरह, जो भी जरूरी था, सब-कुछ हमें मिल जाता था। इसमें कोई शक नहीं कि मुसाफिरोंको भोजन देनेमें जहाजके लोग बड़े उदार होते हैं। बात इतनी ही है कि वे अति कर देते हैं। कमसे-कम मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है।

दूसरे दर्जेके भोजनगृहकी खाद्य-सूचीमें क्या-क्या होता है, और यात्रियोंको कितनी बार भोजन दिया जाता है, इसका वर्णन कर देना अनुचित न होगा।

पहले तो, औसत दर्जेके यात्रीको एक-दो प्याले चाय और कुछ बिस्कुट दिये जाते हैं। यह बिलकुल सुबहकी पहली चीज होती है। साढ़े आठ बजे सुबह नाश्तेकी घंटी होती है और यात्री भोजनशालामें पहुँच जाते हैं। और कुछ हो-न-हो, भोजनके समय तो वे ठीक समयका पालन करते ही हैं। नाश्तेकी सूचीमें आम तौरपर जईका दलिया, कुछ मछली, मांस, सब्जी, मुरब्बा, डबल रोटी, मक्खन, चाय या काफी आदि होती है। प्रत्येक वस्तु इच्छानुसार ली जा सकती है।

मैंने अकसर यात्रियोंको दलिया, मछली और 'करी'[2] खाते और डबल रोटी तथा मक्खनको दो-तीन प्याले चायसे पेटमें उतारते देखा है।

हमें नाश्तेको हजम करनेका समय भी मुश्किलसे मिल पाता कि डेढ़ बजे दुपहरको फिरसे भोजनकी घंटी बज जाती थी। दुपहरका भोजन भी उतना ही अच्छा होता था, जितना कि नाश्ता। उसमें यथेष्ट मांस और शाक, चावल, सालन और रोटी आदि वस्तुएँ होती थीं। किसी चीजकी कमी दिखलाई न पड़ती। हफ्तेमें दो दिन दूसरे दर्जेके यात्रियोंको साधारण भोजनके अलावा फल आदि दिये

१. चोकरदार आटेकी डबलरोटी।

२. मसालेदार मांस।

जाते थे। परन्तु यह भी बस नहीं था। भोजनका माल-मसाला इतना सुपाच्य होता था कि चार बजे शामको हमें ताजगी देनेवाले चायके प्याले और कुछ बिस्कुटोंकी जरूरत महसूस होती थी। परन्तु शामकी हवा चायके उस "छोटे-से प्याले" का सारा असर इतनी जल्दी हर लेती कि साढ़े छ: बजे हमें अच्छे-खासे नाश्तेके साथ चाय दी जाती — जिसमें डबल रोटी, मक्खन, फलोंके मुरब्बे, सलाद, मांस, चाय, काफी आदि होती थी। समुद्रकी हवा इतनी स्वास्थ्यवर्धक मालूम होती थी कि लोग कल्पना ही नहीं कर पाते थे कि थोड़े-से, बिलकुल ही थोड़े (सिर्फ आठ या दस — ज्यादासे ज्यादा पंद्रह) बिस्कुट, थोड़ा-सा पनीर और थोड़ी-सी अंगूरी शराब या बियर लिये बिना सोने जाना सम्भव ही नहीं है। इस सबकी दृष्टिसे क्या निम्नलिखित पंक्तियाँ बिलकुल सही नहीं हैं?

> **तुम्हारा जठर ही तुम्हारा भगवान है; तुम्हारा उदर ही तुम्हारा मंदिर है; तुम्हारी तोंद ही तुम्हारी वेदी है; तुम्हारा रसोइया ही तुम्हारा पुरोहित है। . . . तुम्हारा प्रेम पकानेके बर्तनोंमें ही उद्दीप्त होता है; तुम्हारी श्रद्धा रसोईघरमें ही तीव्र होती है; तुम्हारी सारी आशा मांसकी थालियोंमें ही छिपी रहती है। . . . बार-बार दावतें देनेवालेके बराबर, उत्तम भोजन करानेवालेके बराबर, अभ्यस्त स्वास्थ्य-पान करनेवालेके बराबर तुम्हारे आदरका पात्र कौन है?**

दूसरे दर्जेका सलून सब तरहके यात्रियोंसे काफी भरा था। उसमें सैनिक, धर्मोपदेशक, नाई, खलासी, विद्यार्थी, सरकारी कर्मचारी और कदाचित् साहसिक लोग भी थे। तीन या चार महिलाएँ थीं। हम अपना समय खास तौरसे खाने-पीनेमें बिताते थे। लोग बाकी समय या तो ऊँघनेमें बिताते थे या गपशपमें और कभी-कभी बहस करने, खेलने आदिमें। मगर दो या तीन दिनके बाद बहसों, पत्तों और दूसरोंकी निन्दाके कार्यक्रमोंके बावजूद भोजनोंके बीचका समय बहुत भारी मालूम होने लगा।

हममेंसे कुछ लोगोंको कुछ करनेका उत्साह हुआ। उन्होंने गाने-बजाने, रस्सा-कशी और दौड़की प्रतियोगिताओं और उनमें इनाम देनेका आयोजन किया। एक शाम व्याख्यानों और गाने-बजानेके लिए रखी गई।

मैंने सोचा अब मेरे हाथ डालनेका समय आ गया है। मैंने आयोजक समितिके मंत्रीसे अन्नाहारके विषयमें एक छोटा-सा भाषण करनेके लिए पाव घंटेका समय माँगा। मंत्रीने बड़े अनुग्रहके भावसे सिर हिलाकर हामी भर दी।

तो, मैंने डटकर तैयारी की। मुझे जो भाषण देना था उसे मैंने सोचा, लिखा और एक बार फिर लिख डाला। मैं भली-भाँति जानता था कि मुझे विरोधी श्रोताओंका सामना करना है और यह सावधानी रखनी पड़ेगी कि मेरा भाषण सुनते-सुनते लोग ऊँघने न लगें। मंत्रीने मुझसे कहा था कि मैं विनोदमय भाषण करूँ। मैंने उसे बताया कि मेरा घबरा जाना तो सम्भव है, परन्तु विनोदमय भाषण करना मुझे आता ही नहीं है।

जरा सोचिए, उस भाषणका क्या हुआ होगा? गाने-बजानेका दूसरा कार्यक्रम हुआ ही नहीं और इस तरह वह भाषण भी कभी नहीं हुआ। इससे मुझे बहुत व्यथा हुई। मेरा खयाल है, इसका कारण यह था कि पहली शामको कार्यक्रममें कोई भी रस लेता दिखलाई नहीं पड़ा, क्योंकि हमारे दूसरे दर्जेमें पिट और ग्लैडस्टन जैसे वक्ता तो थे ही नहीं।

फिर भी, मैं दो या तीन यात्रियोंके साथ अन्नाहारपर बातचीत करनेमें सफल हुआ। उन्होंने मेरी बात शान्तिसे सुनी और सारांशमें यह जवाब दिया: "हमने मान लिया कि आपकी दलील सही है। परन्तु जबतक हमें अपने वर्तमान आहारमें मजा मिलता है, तबतक हम आपके आहारका प्रयोग नहीं कर सकते। (अपने आहारसे कभी-कभी हमें मन्दाग्नि हो जाती हो तो भी कोई हर्ज नहीं।)"

उनमें से एकने जब देखा कि मुझे और मेरे अन्नाहारी मित्रको रोज अच्छे-अच्छे फल मिलते हैं, तब उसने अन्नाहारका प्रयोग जरूर किया, परन्तु उसके लिए मांसका प्रलोभन बहुत बड़ा था।

बेचारा!

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, ९-४-१८९२

२३. स्वदेश वापसीके मार्गमें – २

इसके अलावा, यात्रियोंके बीच मेलजोलका भाव रहता था और पहले दर्जेके यात्री सौजन्यका व्यवहार करते थे। उदाहरणके लिए, पहले दर्जेके यात्री समय-समय पर नाटक और नाच किया करते थे और उनमें अकसर दूसरे दर्जेके यात्रियोंको आमन्त्रित किया जाता था।

पहले दर्जेमें कुछ बहुत भले स्त्री-पुरुष थे। परन्तु, बिना किसी झगड़ेके, सिर्फ खेल ही खेलमें मजा नहीं आता था, इसलिए एक शाम कुछ यात्रियोंने शराब पीकर मतवाले हो जाना पसंद किया। (क्षमा कीजिए, सम्पादकजी, वे शराब तो हर शाम ही पीते थे, मगर इस खास शामको वे पीकर आपेसे बाहर हो गये थे।) मालूम होता है, वे व्हिस्कीकी चुसकियाँ लेते हुए आपसमें बहस कर रहे थे कि उनमें से कुछ लोगोंने अनुचित शब्दोंका प्रयोग कर दिया। इसपर तू-तू मैं-मैं शुरू हो गई, और बादमें लोग घूँसेबाजीपर उतर आये। आखिरकार कप्तानके पास शिकायत गई। उसने इन मुक्केबाज भद्र पुरुषोंको आड़े हाथों लिया और उसके बाद फिर कभी कोई उपद्रव नहीं हुआ।

इस तरह अपने समयको खाने-पीने और मनोरंजनमें बिताकर हम आगे बढ़ते रहे।

दो दिनकी यात्राके बाद जहाज जिब्राल्टरके पाससे निकला, मगर किनारेपर नहीं गया। हममें से कुछ लोगोंने आशाकी थी कि जहाज वहाँ रुकेगा। परन्तु जब रुका

नहीं, तो खास तौरसे तम्बाकू पीनेवाले बड़े हताश हुए। उन्होंने वहाँ बिना चुंगीकी सस्ती तम्बाकू खरीदनेके मंसूबे बाँध रखे थे।

इसके बाद हम माल्टा पहुँचे। वह कोयला लेनेका स्थान है, इसलिए जहाज वहाँ कोई नौ घंटेतक ठहरता है। इस बीच लगभग सभी यात्री बस्ती देखने चले गये।

माल्टा एक सुन्दर द्वीप है, जहाँ लन्दनका जैसा धुआँ छाया नहीं रहता। घरोंकी बनावट भी भिन्न है। हमने गवर्नरका महल देखा। शस्त्रागार तो देखने ही लायक है। वहाँ नेपोलियनकी गाड़ी प्रदर्शितकी गई है। कुछ सुन्दर चित्र भी देखनेको मिलते हैं। बाजार बुरा नहीं है। फल सस्ते हैं। गिरजाघर बड़ा भव्य है।

हम एक सवारीपर छः मीलकी बड़ी आनन्ददायक सैर करते हुए संतरेके बाग पहुँचे। वहाँ संतरेके हजारों पेड़ थे और कुछ पानीके टाँके थे, जिनमें सुनहली मछलियाँ पली हुई थीं। सवारी बड़ी सस्ती थी — सिर्फ ढाई शिलिंग।

भिखमंगोंके कारण माल्टा कितनी रद्दी जगह बन गई है! यह हो ही नहीं सकता कि आप गन्दे दीखनेवाले भिखमंगोंकी मिन्नतोंकी झड़ियोंसे बचकर सड़कसे शान्तिपूर्वक गुजर जायें। वे एकदम पीछे पड़ जाते हैं। उनमें से कुछ आपके मार्ग-दर्शक बननेके लिए तैयार हो जायेंगे और दूसरे आपको चुरुट या माल्टाकी प्रसिद्ध मिठाईकी दूकानोंमें ले जानेकी तत्परता दिखायेंगे।

माल्टासे हम ब्रिंडिसी पहुँचे। वह सिर्फ एक अच्छा बंदरगाह है। वहाँ आप एक दिन भी मनोरंजनमें गुजार नहीं सकते। हमें ९ घंटे या इससे भी ज्यादाका समय था, मगर हम चार घंटोंका भी सदुपयोग नहीं कर सके।

ब्रिंडिसीके बाद हम पोर्ट सईद पहुँचे। वहाँ हमने यूरोप और भूमध्य सागरसे अन्तिम विदाई ली। पोर्ट सईदमें देखने लायक कुछ नहीं है। हाँ, अगर आप समाजका तलछट देखना चाहें तो बात दूसरी है। वह धूर्तों और छलियोंसे भरा हुआ है।

पोर्ट सईदसे आगे जहाज बहुत धीमे-धीमे चलता है, क्योंकि हम एम० डी'लेसेप्स-की बनाई स्वेज नहरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। नहर सतासी मील लम्बी है। जहाजको यह फासला तय करनेमें चौबीस घंटे लगे। हम दोनों ओर जमीनके निकट थे। पानीका पाट इतना सँकरा है कि कुछ जगहोंको छोड़कर कहीं भी दो जहाज साथ-साथ नहीं चल सकते। रातको दृश्य बड़ा मनमोहक होता है। सब जहाजोंको सामने बिजलीका प्रकाश रखना पड़ता है। और यह प्रकाश बहुत जोरदार होता है। जब दो जहाज एक-दूसरेको पार करते हैं तब दृश्य बड़ा सुहावना होता है। सामनेके जहाजसे आनेवाला बिजलीका प्रकाश बिलकुल चौंधिया देनेवाला होता है।

रास्तेमें हमें 'गैंजेज' जहाज मिला। हमने हर्ष-ध्वनि की, जिसका उसके यात्रियोंने हृदयसे प्रत्युत्तर दिया। स्वेज शहर नहरके दूसरे सिरेपर है। जहाज वहाँ मुश्किलसे आध घंटा ठहरता है।

अब हम लाल सागरमें प्रविष्ट हुए। यह यात्रा तीन दिनकी थी, मगर अत्यन्त कष्टदायक थी। गर्मी असह्य थी। जहाजके अन्दर रहना तो असम्भव था ही, छतपर भी बेहद गर्मी थी। यहाँ पहली बार हमने महसूस किया कि हम गर्म आबहवाका सामना करनेके लिए भारत जा रहे हैं।

अदन पहुँचनेपर हमें हवाके कुछ झकोरे मिले। हम (बम्बई जानेवाले यात्रियों)-को यहाँ जहाज बदलकर 'आसाम' जहाजमें बैठना था। यह वैसा ही था जैसा कि लन्दनको छोड़कर किसी दीन-हीन गाँवमें जाना। 'आसाम' जहाज आकार-प्रकारमें 'ओशियाना' का शायद आधा भी न होगा।

मुसीबतें कभी अकेली नहीं आतीं। 'आसाम' में बैठनेके बाद समुद्रमें तूफानका भी सामना करना पड़ा, क्योंकि मौसम वर्षारम्भका था। हिन्द महासागर आम तौर पर शान्त रहता है, इसलिए वर्षाकालमें वह क्षुब्ध होकर सारी कसर निकाल लेता है। हमें बम्बई पहुँचनेमें समुद्रपर पाँच दिन ज्यादा बिताने पड़े। दूसरी रातको तूफान अपने सच्चे रूपमें प्रकट हुआ था। बहुत-से लोग बीमार हो गये थे। अगर कोई छतपर जानेका साहस करता तो उछलता हुआ पानी झपाटा मारता था। कहीं कुछ कड़ाका होता, कहीं कुछ टूट कर गिरता! कोठरीमें शान्तिपूर्वक सोया नहीं जा सकता था। दरवाजा फटफटाता रहता। सामान नाचने लगता। बिस्तरपर पड़े लोग बेलन जैसे लुढ़कते। कभी-कभी लगता कि जहाज डूब रहा है। भोजनकी मेज पर अब कोई आराम नहीं। जहाज आजू-बाजू लुढ़कता है। उससे काँटे-चम्मच, शोरबेकी रकाबियाँ और सिरका तेल आदिकी शीशियोंके स्टैंड भी गोदमें आ गिरते हैं। तौलिया पीला रंग जाता है। इसी तरह जाने क्या-क्या होता है।

एक सुबह मैंने परिचारकसे पूछा कि क्या इसे ही असल तूफान कहा जाता है? उसने जवाब दिया: "जी नहीं, यह तो कुछ भी नहीं है।" और उसने अपना हाथ डुलाकर बताया कि असली तूफानमें जहाज कैसे लुढ़कता है।

इस तरह उछलते और गिरते हुए हम ५ जुलाईको बम्बई पहुँचे। उस समय बड़े जोरोंकी वर्षा हो रही थी, इसलिए तटपर जाना कठिन था। फिर भी हम सकुशल तटपर पहुँच गये और हमने 'आसाम' से विदा ली।

'ओशियाना' और 'आसाम' में क्या खूब मनुष्य-रूपी असबाब भरा था! कुछ लोग बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर आस्ट्रेलियामें धन कमानेके लिए जा रहे थे; कुछ इंग्लैंडमें अपनी पढ़ाई समाप्त करके सभ्यजनोचित जीविका उपार्जित करनेके लिए भारत जा रहे थे; कुछ कर्त्तव्यकी पुकारसे आये थे; कुछ स्त्रियाँ भारत या आस्ट्रेलियामें अपने पतियोंसे मिलने जा रही थीं और कुछ साहसिक लोग थे, जो अपने घरसे निराश होकर अपने साहसके कार्योंको आगे बढ़ानेके लिए भगवान जाने कहाँ जा रहे थे!

क्या सबकी आशाएँ पूर्ण हुईं? यह सवाल है। मनुष्यका मन कितना आशापूर्ण होता है, और फिर भी कितनी बार वह निराशाका शिकार होता रहता है! हम आशाओंपर ही तो जीते हैं।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, १६-४-१८९२

२४. पत्र : रणछोड़लाल पटवारीको

बम्बई
५ सितम्बर, १८९२

प्रिय भाई पटवारी,[1]

आपके कृपापत्र और मुझे दी हुई सलाहके लिए धन्यवाद !

मैंने अपने पिछले पोस्टकार्डमें आपको लिखा ही था कि मुझे वकालतके लिए विदेश जाना स्थगित कर देना पड़ा है। मेरे भाई उसके बहुत खिलाफ हैं। उनका खयाल है कि मैं काठियावाड़में खासी-अच्छी आजीविका कमा सकता हूँ —— सो भी सीधे तिकड़मबाजीमें पड़े बगैर; इसलिए इस विषयमें मुझे हताश नहीं होना चाहिए। कुछ भी हो, उन्हें आशा है और चूँकि मेरी ओरसे हर तरहका लिहाज पानेका हक है। इसलिए मैं उनकी सलाह मानूँगा। यहाँ भी मुझे कुछ कामका वादा मिला है। इसलिए मैंने कमसे-कम दो महीने यहाँ रहनेका इरादा किया है। कोई साहित्यिक नौकरी मंजूर कर लेनेसे मेरे कानूनी अभ्यासमें बाधा पड़ेगी, ऐसा मुझे नहीं लगता। उलटे, ऐसे कामसे मेरा ज्ञान बढ़ेगा। वह वकालतमें अप्रत्यक्ष रूपसे सहायक हुए बिना नहीं रह सकता। फिर, उसके द्वारा मैं ज्यादा एकाग्र चित्तसे, चिन्तामुक्त रहकर काम कर सकूँगा। परन्तु जगह है कहाँ ? कोई जगह पा लेना आसान थोड़े ही है।

बेशक, मैंने कर्ज आपके राजकोटमें किये हुए वादेके बलपर ही माँगा था। मैं पूरी तरहसे सहमत हूँ कि आपके पिताजीको इसका पता नहीं चलना चाहिए। परन्तु अब उसकी चिन्ता न कीजिए। मैं किसी दूसरी जगह कोशिश कर लूँगा। मेरे लिए समझना कठिन नहीं है कि आपके पास एक वर्षकी वकालतसे बहुत बड़ी रकम नहीं बच सकती।

मेरे भाई सचीनमें नवाबके सचिवके पदपर रख लिये गये हैं। वे राजकोट गये हैं और कुछ दिनोंमें लौटेंगे।

काशीदाससे यह जानकर खुशी हुई कि वे धंधुकामें बसनेवाले हैं।

जाति-विरोध हमेशाके समान ही जोरदार है। सारी बात एक आदमीपर निर्भर है। वह मुझे जातिमें शामिल न होने देनेकी शक्ति-भर कोशिश करेगा। मुझे अपने लिए इतना दुःख नहीं, जितना अपने जातिभाइयोंके लिए है। वे तो भेड़ोंकी तरह एक आदमीके संकेतपर चलते हैं। कुछ निरर्थक प्रस्ताव पास करते रहते हैं और अपने इस कर्त्तव्य-पालनमें अति करके अपनी ईर्ष्याका साफ-साफ परिचय दे रहे हैं। उनके तर्कोंमें धर्म तो है ही नहीं। क्या सिर्फ इसलिए कि मैं भी उनमें से ही एक माना जाऊँ, उनके सामने गिड़गिड़ाना और उनकी कीर्तिको बढ़ाना उचित है ? उनसे अलग ही रहना ज्यादा अच्छा नहीं है ? फिर भी, मुझे जमानेके साथ चलना होगा।

१. राजकोटके।

ब्रजलालभाईके बारेमें यह सुनकर बहुत खुशी हुई कि वे गुजरातमें कहीं कारभारी[1] बन गये हैं।

आप इतने अच्छे अक्षर लिखते हैं कि मुझे आपकी नकल करनेका लोभ हो आया —— हालाँकि मैं बड़ी कच्ची नकल कर सका हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्रसे।

२५. पत्र : 'नेटाल एडवर्टाइजर' को

डर्बन
२६ मई, १८९३

सम्पादक
'नेटाल एडवर्टाइजर'

महोदय,

आपके आजके अंकमें "एक अवांछनीय अतिथि" शीर्षकसे[2] मेरे विषयमें जो अनुच्छेद प्रकाशित हुआ है, उसे पढ़कर मैं चकित रह गया। यदि माननीय मजिस्ट्रेटने मेरी ओर तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे देखा हो, तो मुझे उसका खेद है। यह सच है कि अदालतमें प्रवेश करते समय न तो मैंने अपनी पगड़ी उतारी और न सलाम ही किया। परन्तु उस समय मुझे इसका तनिक भी आभास न था कि यह माननीय मजिस्ट्रेट महोदयका अपमान करना है या उससे अदालतके प्रति अनादर व्यक्त हो रहा है। जिस प्रकार यूरोपीय लोगोंमें सिरसे टोपी उतार देना आदरसूचक माना जाता है, इसी प्रकार भारतीयोंमें उसे पहने रहना आदरसूचक माना जाता है। उनके लेखे किसीके सामने नंगे सिर जाना तो उसका अनादर करना है। इंग्लैंडमें छोटी-छोटी सभाओं और समारोहोंमें जाकर भारतीय कभी अपने सिरकी टोपी आदि नहीं उतारते

१. प्रशासक या एडमिनिस्ट्रेटर।

२. विवरण इस प्रकार था : "कल दोपहर एक भारतीयने अदालतमें प्रवेश किया और वकीलोंकी मेजपर बैठ गया। उसकी वेशभूषा अच्छी थी और बताया गया है कि वह इंग्लैंडका एक बैरिस्टर है। सुना है कि वह एक भारतीय मामलेके सिलसिलेमें प्रिटोरिया जा रहा है। वह सिरसे पगड़ी उतारे बिना और सलाम किये बिना अदालतमें चला आया और मजिस्ट्रेटने उसे तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे देखा। नवागतसे विनम्रतापूर्वक पूछा गया कि उसे क्या काम है और उसने जवाब दिया कि वह इंग्लैंडका एक बैरिस्टर है। उसने अपने प्रमाणपत्र पेश करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया और दुबारा मेजपर लौटनेपर उसे सहूलियतके साथ यह समझा दिया गया कि उपयुक्त यही होगा कि वे अदालतमें उपस्थित होनेसे पूर्व सर्वोच्च न्यायालयमें अपना नाम दर्ज करा लें"। इस घटनाका विवरण २६-५-१८९३ और २७-५-१८९३ के **नेटाल मर्क्युरी**में भी छपा था।

और हम इस तरह जो आदर व्यक्त करते हैं उसकी साधारणतः सभी अंग्रेज महिलाएँ और पुरुष कद्र करते हैं। भारतके उच्च न्यायालयोंमें भी जिन वकीलोंने देशी पगड़ी पहनना नहीं त्यागा है, वे अकसर उसे पहने रहते हैं।

जहाँतक झुक कर नमस्कार करने या जिसे आप सलाम करना कहते हैं, उसका सवाल है मैंने उस विषयमें भी बम्बई उच्च न्यायालयमें प्रचलित नियमका पालन किया था। यदि कोई वकील जजके अदालतमें आ जानेके बाद वहाँ प्रवेश करता है तो वह नमस्कार नहीं करता, लेकिन जब जज अदालतमें प्रवेश करता है तो सभी वकील खड़े हो जाते हैं और उसके बैठनेतक खड़े ही रहते हैं। तदनुसार जब कल माननीय जज महोदयने अदालतमें प्रवेश किया तो मैं खड़ा हो गया और उनके बैठ जानेपर ही बैठा।

इस अनुच्छेदसे कुछ ऐसा लगता है कि निजी तौरपर मुझे अदालतमें न बैठ-नेके लिए कह देनेपर भी मैं फिर अपने स्थानपर चला गया था। सच तो यह है कि मुख्य क्लर्क मुझे दुभाषिएके कमरेमें ले गया था और मुझे बताया गया था कि जब मैं अगली बार आऊँ तब अपने परिचयपत्र दिखाये बिना अदालतकी मेजपर न बैठूं। इस विषयमें पूर्णतया आश्वस्त होनेके लिए मैंने मुख्य क्लर्कसे पूछा कि क्या मैं आजके दिनके लिए वहाँ बैठा रह सकता हूँ तो उन्होंने कृपापूर्वक कहा : 'हाँ।' तब अदालतमें सबके सामने जब फिरसे यह कहा गया कि इस स्थानपर बैठनेके लिए मुझे अपना परिचयपत्र आदि दिखाना पड़ेगा तो मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ।

अन्तमें माननीय जज महोदयने जिसे मेरी अशिष्टता समझा वे यदि उससे नाराज हुए हों तो मैं क्षमा चाहता हूँ। मेरे इस व्यवहारका कारण मेरा अज्ञान था। उसके पीछे वैसा कोई इरादा न था।

मुझे आशा है कि आप निष्पक्ष भावसे उपर्युक्त स्पष्टीकरणको अपने पत्रमें थोड़ा स्थान देकर मुझपर कृपा करेंगे: क्योंकि यदि उस अनुच्छेदका स्पष्टीकरण नहीं किया जाता है तो उससे मुझे हानि हो सकती है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइजर, २९-५-१८९३

२६. पत्र : 'नेटाल एडवर्टाइजर' को

प्रिटोरिया
१६ सितम्बर, १८९३

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल एडवर्टाइजर'

महोदय,

मेरा ध्यान आपके पत्रमें उद्धृत और समीक्षित उस पत्रकी ओर आकर्षित किया गया है, जो श्री पिल्लैने 'ट्रान्सवाल एडवर्टाइजर' को लिखा था[1]। मैं ही वह कमनसीब भारतीय बैरिस्टर हूँ, जो डर्बनमें आया था और अब प्रिटोरियामें हूँ। परन्तु मैं "श्री पिल्लै" नहीं हूँ और न बी० ए० उपाधिधारी ही हूँ।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइजर, १८-९-१८९३

२७. पत्र : 'नेटाल एडवर्टाइजर' को

प्रिटोरिया
१९ सितम्बर, १८९३

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल एडवर्टाइजर'

महोदय,

यदि आप निम्नलिखितको अपने पत्रमें स्थान देनेकी कृपा करें तो मैं बहुत आभारी हूँगा।

श्री पिल्लैने 'ट्रान्सवाल एडवर्टाइजर' को हाल ही में जो पत्र लिखा था, उसके बारेमें यहाँके कुछ सज्जनोंने और वहाँके पत्रोंने उन्हें 'गन्दा' कहकर उनकी छीछा-लेदर कर डाली है। मुझे आश्चर्य है कि क्या "धूर्त अधम एशियाई व्यापारियों — समाजका कलेजा ही खा जानेवाले सच्चे घुनों, अर्धबर्बर जीवन व्यतीत करनेवाले

१. श्री पिल्लैके पत्रमें शिकायत थी कि उन्हें पैदल-पटरीसे धक्के देकर हटा दिया गया था।

इन परोपजीवियों" के सम्बन्धमें आपका अग्रलेख कठोर शब्दोंकी प्रतिद्वन्द्वितामें श्री पिल्लैको मात नहीं दे देगा! तथापि, शैली सम्बन्धी रुचियाँ भिन्न होती हैं और मैं किसीकी लेखन-शैलीके गुण-अवगुणका निर्णय करने नहीं बैठूँगा।

परन्तु बेचारे एशियाई व्यापारियोंपर यह क्रोध क्यों उगला गया? उपनिवेश पर अक्षरशः सत्यानाशका खतरा कैसे उत्पन्न हो गया है, यह समझना तो कठिन है। आपके १५ तारीखके अग्रलेखसे मैं इसके जो कारण समझ पाया हूँ उसका सार इन शब्दोंमें रखा जा सकता है — "एक एशियाई दिवालिया हो गया है और उसने पाँच पेंस फी-पौंड भुगतान किया है। यह एशियाई व्यापारियोंका एक काफी सच्चा नमूना है। उन्होंने छोटे-छोटे यूरोपीय व्यापारियोंको खदेड़ दिया है।"

अब, जरा मान लें कि एशियाई व्यापारियोंमें से अधिकतर दिवाला निकाल देते हैं और अपने लेनदारोंको बहुत कम पैसा चुकाते हैं (जो सच बिलकुल नहीं है), तो भी क्या उन्हें उपनिवेशसे या दक्षिण आफ्रिकासे खदेड़ देनेके लिए यह कारण काफी है? क्या इससे यह ज्यादा स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ता कि दिवाला-सम्बन्धी कानूनमें कुछ खामी है, जिससे कि वे अपने लेनदारोंको इस तरह बरबाद कर सकते हैं? अगर कानून इस तरहके कामोंके लिए जरा भी गुंजाइश देगा तो लोग उसका फायदा लेंगे ही। क्या यूरोपीय लोग दिवाला-अदालतका संरक्षण नहीं माँगते? इसका यह अर्थ नहीं कि मैं "तू भी तो करता है" — इस तर्कका आश्रय लेकर भारतीयोंकी सफाई दे रहा हूँ। मुझे तो हार्दिक खेद है कि भारतीय ऐसे तरीकोंका जरा भी आश्रय लेते ही क्यों हैं। यह उनके देशके लिए लज्जास्पद है। उनके देशको तो किसी समय अपनी प्रतिष्ठाका इतना अधिक खयाल था कि वह व्यापारमें बेईमानीसे सरोकार रख ही नहीं सकता था। फिर भी, यह तो मुझे दीखता ही है कि अगर भारतीय व्यापारी दिवाला कानूनका लाभ उठाते हैं तो इससे उन्हें देशसे निकाल देनेका मामला नहीं बन पड़ता। दिवाला निकालनेकी घटनाओंकी पुनरावृत्ति कानूनके द्वारा रोकी जा सकती है। इतना ही नहीं, थोक व्यापारी भी कुछ अधिक सावधानी बरतकर उन्हें रोक सकते हैं। और, बहरहाल, उन व्यापारियोंको यूरोपीय व्यापारियोंसे उधारी मिलती है; क्या यह हकीकत ही साबित नहीं कर देती कि, आखिरकार, वे उतने खराब नहीं हैं, जितना खराब आपने उन्हें चित्रित किया है?

अगर छोटे-छोटे यूरोपीय व्यापारी अपना व्यापार समेट लेनेको बाध्य हो गये हैं तो इसमें उनका क्या अपराध? इससे तो भारतीय व्यापारियोंकी अधिक वाणिज्य-कुशलताका ही परिचय मिलता है। और, आश्चर्य है कि उनकी यही बेहतर कुशलता उनके निकाले जानेका कारण बननेवाली है। मैं आपसे पूछता हूँ, महोदय, कि क्या यह न्यायसंगत है? अगर कोई सम्पादक अपने पत्रका सम्पादन अपने प्रतिद्वन्द्वीकी अपेक्षा अधिक कुशलतासे करता है और इसके फलस्वरूप अपने प्रतिद्वन्द्वीको क्षेत्रसे भगा देता है तो पहले सम्पादकको यह कहना कैसा लगेगा कि वह अपने चारों खाने चित्त प्रतिद्वन्द्वीके लिए जगह खाली कर दे, क्योंकि वह (सफल सम्पादक) योग्य है? क्या अधिक योग्यता प्रोत्साहनका विशेष कारण नहीं होनी चाहिए, ताकि दूसरे भी

उतने ही ऊँचे उठनेका प्रयत्न करें? क्या हितकारी प्रतिद्वन्द्वीका गला घोंटना अच्छी नीति है? क्या यूरोपीय व्यापारियोंको, अगर उनकी शानमें बट्टा न लगता हो तो, भारतीय व्यापारियोंके जीवनसे सस्ता बेचना और सादगीसे रहना नहीं सीखना चाहिए? "दूसरोंके साथ वैसा ही बरताव करो, जैसा तुम चाहते हो, दूसरे तुम्हारे साथ करें।"

परन्तु आपका कहना है कि ये अभागे एशियाई अर्धबर्बर जीवन बिताते हैं। इसलिए अर्धबर्बर जीवनके बारेमें आपके विचार जानना बड़ा रोचक होगा। मुझे उनके जीवनके बारेमें कुछ कल्पना है। अगर कमरेमें खूबसूरत और मूल्यवान गलीचों तथा झाड़-फानूसका न होना, मेजका (शायद बिना वार्निशकी) बेशकीमती मेज-पोश तथा फूलोंसे सजा हुआ और यथेष्ट शराब, सुअरके मांस तथा गोमांससे पूर्ण न होना ही अर्धबर्बर जीवन है; अगर गर्म आबहवाके लिए खास तौरसे अनुकूल बनाये गये सफेद, आरामदेह कपड़े पहनना ही, जिनके कारण, मैंने सुना है, बहुत-से यूरोपीय ग्रीष्मकी कड़ी गर्मीमें उनसे ईर्ष्या करते हैं, अर्धबर्बर जीवन है; अगर बियर व तम्बाकू न पीना, खूबसूरत छड़ी लेकर न चलना, घड़ीका सुनहला पट्टा न बाँधना, विलासके साधनोंसे सजा हुआ कमरा न होना अर्धबर्बर जीवन है; संक्षेपमें, अगर आम तौरपर सादा तथा मितव्ययी माना जानेवाला जीवन अर्धबर्बर जीवन है — तब तो, अवश्य ही, भारतीय व्यापारियोंको यह आरोप स्वीकार करना होगा; और जितनी जल्दी यह अर्धबर्बरता उच्चतम औपनिवेशिक सभ्यतासे निःशेष कर दी जाये उतना ही अच्छा।

सभ्य राज्योंसे लोगोंको निकालनेके लिए साधारणतः जो बातें कारणीभूत होती हैं, वे इन लोगोंमें बिलकुल ही पाई नहीं जातीं। मेरे इस कथनसे आप भी सहमत होंगे कि वे सरकारके लिए राजनीतिक दृष्टिसे खतरनाक नहीं हैं, क्योंकि वे राजनीतिमें दखल देते ही नहीं; और अगर देते हैं तो बहुत थोड़ा। वे कोई कुख्यात डाकू नहीं हैं। मेरा विश्वास है कि भारतीय व्यापारियोंके बीच एक भी घटना ऐसी नहीं हुई, जिसमें किसी भारतीय व्यापारीको कैदकी सजा भोगनी पड़ी हो, या उसपर चोरी, डकैती अथवा अन्य अधम अपराधोंमें से किसीका आरोप भी किया गया हो। (इसमें अगर मेरी गलती हो तो मैं उसे सुधारनेके लिए तैयार हूँ।) उनकी शराबसे पूरे परहेजकी आदतोंने उन्हें विशेष शान्तिप्रिय नागरिक बना दिया है।

परन्तु, प्रस्तुत अग्रलेखमें कहा गया है कि वे कुछ खर्च नहीं करते। खर्च करते ही नहीं? तब तो वे, मैं कहूँ, हवा या इरादे खाकर जीते होंगे! हम जानते हैं, 'वैनिटी फेअर' नामक उपन्यासमें बेकी बिना किसी वार्षिक आयके गुजर-बसर करती थी। परन्तु यहाँ तो वैसा करता हुआ एक वर्गका वर्ग ही खोज निकाला गया है। इससे यह मानना होगा कि उन्हें दूकान-भाड़ा, कर, मांस बेचनेवाले तथा किरानेवालेका पैसा, कारकुनोंका वेतन आदि कुछ चुकाना नहीं पड़ता। सचमुच, खास तौरपर आजकल, जब कि सारी दुनियाका व्यापार संकटकी हालतसे गुजर रहा है, ऐसे भाग्यशाली व्यापारियोंकी जमातमें शामिल होना लोग कितना पसन्द करेंगे!

मालूम होता है कि बेचारे भारतीय व्यापारियोंकी सादगी, उनका शराबसे पूरा-पूरा परहेज, उनकी शान्तिमय और, सबसे अधिक, व्यवस्थित तथा मितव्ययी आदतें, जो उनकी सिफारिशका काम करनेवाली होनी चाहिए थीं, सचमुच उनके खिलाफ इस तमाम तिरस्कार और घृणाका मूल हैं। तिसपर वे ब्रिटिश प्रजा हैं। क्या यह ईसाइयतके अनुकूल है, क्या यह औचित्य है, क्या यह न्याय है, क्या यह सभ्यता है? मुझे उत्तर ढूँढ़े नहीं मिलता।

आप इसे प्रकाशित करेंगे, इस आशाके साथ धन्यवाद,

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइज़र, २३-९-१८९३

२८. पत्र: नये गवर्नरके स्वागतमें

टाउन हाल
डर्बन
२८ सितम्बर, १८९३

सेवामें
परमश्रेष्ठ
सर वॉल्टर हेली-हचिन्सन, के० सी० एम० जी०, आदि

महानुभावसे निवेदन है कि,

सम्राज्ञीके प्रतिनिधिकी हैसियतसे इस उपनिवेशमें आगमनके अवसरपर हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले मुसलमान और भारतीय समाजके सदस्य अत्यन्त आदरके साथ महानुभावका स्वागत करते हैं।

हमें विश्वास है कि महानुभाव इस उपनिवेशको तथा इसके सम्पर्कको अनुकूल पायेंगे। और यहाँ नये रूपका शासन जारी करनेका काम महानुभावके लिए उतना ही सरल होगा, जितना कि दिलचस्प।

नेटालमें भारतीय प्रभाव अधिकाधिक फैल रहा है। उसके कारण यहाँके भारतीयोंके विशेष मामलोंपर महानुभावका ध्यान निरन्तर रहेगा ही। हम, महानुभावकी अनुमतिसे, पहलेसे ही महानुभावकी उदारताका आश्वासन ग्रहण करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि सम्राज्ञीके प्रतिनिधिकी हैसियतसे महानुभाव हमारे साथ वह उदारता बरते बिना न रहेंगे।

हम कामना करते हैं कि महानुभावके और लेडी हेली-हचिन्सनके लिए इस उप-निवेशका वास समस्त सुख और समृद्धिदायक हो !

आपके अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक,

दादा अब्दुल्ला[1] दाऊद मुहम्मद
एम० सी० कमरुद्दीन[2] आमद जीवा
आमद टिल्ली पारसी रुस्तमजी
ए० सी० पिल्लै

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ३०-९-१८९३

२९. पत्र : 'नेटाल एडवर्टाइजर' को

प्रिटोरिया
२९ सितम्बर, १८९३

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल एडवर्टाइजर'

महोदय,

निवेदन है कि कृपया अपने पत्रमें निम्नलिखित स्पष्टीकरण प्रकाशित करें :

आपने अपने १९ तारीखके अंकमें भावी एशियाई-विरोधी संघके लिए जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया है, उसका विस्तृत उत्तर देना बहुत बड़ा काम है और उसे सम्पादकके नाम पत्रकी मर्यादामें नहीं निभाया जा सकता। फिर भी मैं चाहता हूँ कि आपकी अनुमतिसे केवल दो मुद्दोंका उत्तर दे दिया जाये। वे मुद्दे हैं — यह भय कि "कुलियोंके मत यूरोपीयोंके मतोंको निगल जायेंगे", और यह मान्यता कि भारतीयोंमें मत देनेकी योग्यता नहीं है।

आरम्भमें, मैं अनुरोध करूँगा कि आप अपनी सद्भावना और न्यायप्रियतासे, जो ब्रिटिश राष्ट्रका लाक्षणिक गुण मानी जाती है, काम लें। अगर आप और आपके पाठक प्रश्नके एक ही पहलूको देखनेका संकल्प कर बैठे तो मैं कितने भी तथ्य या तर्क पेश करूँ, आपको या उनको मेरी बातोंकी न्यायपूर्णताका विश्वास न होगा। सारे मामलेको सही रूपमें समझनेके लिए ठंडे दिलसे निर्णय करने और राग-द्वेष रहित तथा निष्पक्ष जाँच करनेकी अनिवार्य आवश्यकता है।

१. डर्बन की प्रमुख भारतीय पेढ़ी 'दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी' के मालिक; जिनके मुकदमेके सिलसिलेमें ही गांधीजी दक्षिण आफ्रिका गये थे।

२. जोहानिसबर्गके एक भारतीय व्यापारी और नेटाल इंडियन कांग्रेसके सक्रिय सदस्य।

क्या यह खींच-तानकर बनाया हुआ खयाल नहीं मालूम होता कि भारतीयोंके मत यूरोपीयोंके मतोंको कभी भी निगल सकते हैं। सरसरी तौरपर देखनेवाला व्यक्ति भी समझ सकता है कि यह कभी सम्भव नहीं है। मताधिकारके लिए आवश्यक सम्पत्तिकी योग्यता इतने भारतीयोंमें कदापि नहीं हो सकती कि उनके मत यूरोपीयोंके मतोंसे अधिक हो जायें।

भारतीय लोग व्यापारियों और मजदूरोंके दो वर्गोंमें बँटे हुए हैं। मजदूरोंकी संख्या तुलनामें बहुत बड़ी है और साधारणत: उन्हें मताधिकार प्राप्त नहीं है। वे दरिद्रताके मारे हैं और अधपेट मजदूरीपर नेटाल आये हैं। क्या वे मताधिकारकी योग्यता प्राप्त करने योग्य पर्याप्त सम्पत्ति रखनेका स्वप्न भी कभी देख सकते हैं? और अगर यहाँ कुछ दिन भी स्थायी रूपसे रहनेवाले भारतीय हैं ही, तो वे इसी वर्गके हैं। किसान वर्गके केवल थोड़े-से लोगोंको सम्पत्ति-सम्बन्धी योग्यता प्राप्त है। परन्तु वे स्थायी रूपसे नेटालमें रहते नहीं। और जो लोग कानूनन मत देनेके अधिकारी हैं, उनमें बहुत-से उसकी कभी परवाह नहीं करते। वर्गगत रूपसे भारतीय अपने देशमें भी कभी अपने सब राजनीतिक अधिकारोंका लाभ नहीं उठाते। वे अपने आध्यात्मिक कल्याणके विचारोंमें इतने मग्न रहते हैं कि राजनीतिमें सक्रिय भाग लेनेका विचार ही नहीं कर सकते। उनमें कोई बहुत बड़ी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं होतीं। वे यहाँ राजनीतिज्ञ बनने नहीं, ईमानदारीके साथ अपनी रोटी कमाने आते हैं और अगर उनमें से कुछ लोग पूरी ईमानदारीके साथ उसे नहीं कमाते तो यह खेदकी बात है। तो फिर, इससे स्पष्ट है कि भारतीयोंके मतोंके अशुभ परिमाण ग्रहण कर लेनेकी सारी आशंकाका आधार गलत है।

और जिन थोड़े-से मतोंपर भारतीयोंका अधिकार है वे नेटालकी राजनीतिको किसी भी रूपमें प्रभावित नहीं कर सकते। भारतीयोंके प्रतिनिधित्वकी चीख-पुकार करनेके लिए किसी एक भारतीय दलका संगठन करनेकी सारी चर्चा हवाई मालूम पड़ती है, क्योंकि चुनाव तो सदैव दो गोरे लोगोंके बीच ही होगा। तो फिर, क्या भारतीयोंके कुछ मत होनेसे बहुत-कुछ बन-बिगड़ जायेगा? उन थोड़े-से मतोंसे ज्यादासे-ज्यादा यह हो सकता है कि कोई पूर्ण श्वेत व्यक्ति चुनकर आ जाये, जो अगर अपने वचनके प्रति सच्चा रहे तो, विधान-सभामें उनकी अच्छी सेवा करे। और जरा कल्पना तो कीजिए, ऐसे एक-दो सदस्योंके बने भारतीय दलकी!

वे, या यों कहिए कि वह तो लोगोंका मत-परिवर्तन करनेकी विद्युत-शक्ति या, शायद कहना अनुचित न होगा, दिव्य शक्तिसे रहित, अरण्यरोदन करनेवाला प्रत्यक्ष सन्त जॉन[1] ही होगा। शाही संसदमें विविध प्रकारके छोटे-छोटे हितोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले छोटे-छोटे किन्तु प्रबल दल भी बहुत कम असर डाल पाते हैं। वे कुछ प्रश्नोंसे प्रधान-मन्त्रीको परेशान करके अगले दिनके पत्रोंमें अपने नाम छपनेका संतोष-भर जरूर मान सकते हैं।

१. ईसाको बपतिस्मा देनेवाले सन्त, जॉन द बैपटिस्ट।

फिर आपका खयाल है कि भारतीय लोग मत देनेके लिए जितने चाहिये उतने सभ्य नहीं हैं; वे आदिवासियोंसे शायद बेहतर नहीं होंगे, और निश्चय ही, सभ्यताके मापदंडमें वे यूरोपीयोंके बराबर नहीं हैं। यह हो सकता है। किन्तु यह सब "सभ्यता" शब्दकी व्याख्यापर निर्भर है। इस विषयकी जाँच करनेसे जो प्रश्न उठ सकते हैं उन सबकी पूर्ण चर्चा करना संभव नहीं है। फिर भी, मुझे यह कहनेकी इजाजत दी जाये कि भारतमें वे इन विशेषाधिकारोंका उपभोग करते हैं। सम्राज्ञीकी १८५८ की घोषणा — जिसे ठीक ही "भारतीयोंका मैग्ना कार्टा" — कहा जाता है इस प्रकार है :

> **हम अपने-आपको अपने भारतीय प्रदेशके निवासियोंके प्रति कर्त्तव्यके उन्हीं दायित्वोंसे बँधा हुआ समझते हैं, जिनसे हम अपनी दूसरी प्रजाओंके प्रति बँधे हैं। और सर्वशक्तिमान् परमात्माकी कृपासे हम उन दायित्वोंका सदसद्विवेक-बुद्धि और श्रद्धाके साथ निर्वाह करेंगे। और इसके अतिरिक्त हमारी यह भी इच्छा है कि हमारे प्रजाजन अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारीसे हमारी जिन नौकरियोंके कर्त्तव्य पूर्ण करनेके योग्य हों उनमें उन्हें जाति और धर्मके भेदभावके बिना मुक्त रूप और निष्पक्ष भावसे सम्मिलित किया जाये।**

मैं भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले इसी तरहके और भी उद्धरण पेश कर सकता हूँ। परन्तु मुझे लगता है कि मैं इतनेमें ही आपके सौजन्यका बहुत अधिक उपयोग कर चुका हूँ। फिर भी मैं इतना तो कह दूँ कि कलकत्ता उच्च न्यायालयका स्थानापन्न प्रधान न्यायाधीश एक भारतीय रहा है; एक भारतीय इलाहाबादके उच्च न्यायालयका न्यायाधीश है, और यहाँके भारतीय व्यापारी सामान्यत: उसके सहधर्मी हैं। और एक भारतीय ब्रिटिश संसदका सदस्य है। इसके अलावा, ब्रिटिश सरकार अनेक दृष्टियोंसे महान् अकबरके कदमोंपर चलती है। अकबर बादशाह तो सोलहवीं शताब्दीमें हुआ था। वह एक भारतीय था। आजकी भूमि-नीति महान् वित्त-विशारद टोडरमलकी नीतिका अनुकरण-मात्र है। उसमें सिर्फ थोड़ा-सा फेरफार कर लिया गया है। वह टोडरमल भी भारतीय ही था। अगर यह सब सभ्यताका नहीं, बल्कि अर्ध-बर्बरताका परिणाम है, तो मुझे अभीतक यह नहीं मालूम कि सभ्यताका अर्थ क्या है?

अगर उपर्युक्त सब तथ्योंके होते हुए भी आप वैमनस्यको बढ़ावा दे सकते हैं, और समाजके यूरोपीय अंगको भारतीय अंगके विरुद्ध काम करनेके लिए भड़का सकते हैं, तो आप महान् हैं।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइजर, ३-१०-१८९३

३०. अन्नाहार-सम्बन्धी प्रचार-कार्य[1]

दक्षिण आफ्रिकामें वनस्पति-आहार उत्पन्न करनेवाले बागवानोंके लिए बहुत अच्छा अवसर है। यहाँकी जमीन तो बहुत उपजाऊ है, मगर बागवानोंकी बहुत उपेक्षा की गई है।

मुझे यह बतानेमें खुशी है कि मैंने अपनी घर-मालकिनको, जो एक अंग्रेज महिला हैं, स्वयं अन्नाहारी बनने और अपने बच्चोंका पोषण भी अन्नाहारपर ही करनेके लिए राजी कर लिया है। भय इतना ही है कि वे टिकी नहीं रहेंगी। यहाँ ठीक तरहके शाक नहीं मिलते। जो भी मिलते हैं, बहुत महँगे हैं। फल भी बहुत महँगे हैं। यही हाल दूधका है। इसलिए उन महिलाको विविध प्रकारकी चीजें देना बहुत कठिन होता है। अगर यह ज्यादा खर्चीला मालूम हुआ तो वे इसे जरूर छोड़ देंगी।

प्राणयुक्त आहारपर श्री हिल्सका लेख मैंने बहुत दिलचस्पीसे पढ़ा। मैं शीघ्र ही फिरसे उसका प्रयोग करनेका इरादा कर रहा हूँ। आपको याद होगा कि मैंने बम्बईमें उसका प्रयोग किया था। परन्तु वह इतने लम्बे वक्ततक नहीं चला था कि मैं उसपर कोई अभिप्राय दे सकूँ।

कृपया सब मित्रोंको मेरी याद दिलाएँ।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ३०-९-१८९३

३१. लन्दन-संदर्शिका

[१८९३-९४][2]

प्रस्तावना

सस्ते प्रकाशनके इस जमानेमें लेखकोंकी संख्या निरन्तर बढ़ रही है और स्वभावतः उनका मान पहले जितना नहीं रहा है। इसलिए मैं पाठकोंसे इतना तो तत्काल कहे ही दे रहा हूँ कि इस छोटी-सी पुस्तिकाको लिखकर लेखक बननेका मेरा कोई इरादा नहीं है। मुझे लगता है कि इसे लिखकर तो मैं सिर्फ एक ऐसी कमी पूरी कर रहा हूँ जिसका बहुत दिनोंसे अहसास हो रहा था। मार्ग-दर्शनकी

१. यह वास्तवमें गांधीजीका प्रिटोरियासे लिखा एक निजी पत्र है।

२. इस पुस्तिकाकी सही लेखन-तिथि मालूम नहीं है। प्यारेलालजीका कथन है : "प्रिटोरियामें अपेक्षाकृत ज्यादा समय मिलनेसे गांधीजी उन दो अधूरे कामोंको, जिन्हें उन्होंने भारतमें शुरू किया था, फिरसे हाथमें ले पाये। इन कामोंमें से एक था एक छोटी पुस्तिका **गाइड टु लन्दन** जिसमें उन्होंने उन अनेक

पुस्तिका लिखनेसे कोई लेखक नहीं बन जाता। लेखक तो ज्यादा कठोर धातुके बने होते हैं।

यह तो सभी लोग एकदम मान लेंगे कि पिछले बीस वर्षों या उससे भी ज्यादा समयसे भारतीय इंग्लैंड भले ही आ-जा रहे हैं, किन्तु ऐसी पुस्तिका लिखनेका अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया। इंग्लैंड या अन्य स्थानोंमें क्या-क्या देख सकते हैं, इसका प्रभावपूर्ण वर्णन करते हुए कुछ लोगोंने पुस्तकें जरूर प्रकाशित की हैं। लेकिन उनमें इससे ज्यादा कुछ नहीं दिया गया। उन्हें पढ़नेवाला व्यक्ति भी दुविधा-में ही पड़ा रहता है; क्योंकि उन्हें पढ़कर इंग्लैंड जानेकी इच्छा तो होती है पर जा कैसे सकते हैं, इसके बारेमें उनमें कुछ नहीं बताया गया है। बीसियों भारतीय बैरिस्टर बन गये, पर उनमें से किसीने भी अपने देशवासियोंको अभीतक यह बताने-का साहस नहीं किया कि उन्होंने इंग्लैंडमें अपना निर्वाह किस प्रकार किया। जब मैं वहाँ था, अकसर मित्रोंके पत्र मुझे मिलते रहते थे जिनमें किसी-न-किसी बातकी जानकारी माँगी जाती थी। यहाँ जो लोग मिले वे मुझसे सिर्फ इंग्लैंडके विषयमें ही पूछ-ताछ करते रहे; जिससे मैं कभी-कभी सचमुच ऊब ही गया हूँ। उन्होंने जिस उत्सुकतासे सब बातें सुनीं वही इस सरल संदर्शिकाके प्रकाशनका औचित्य सिद्ध करनेके लिए काफी है।

इसमें कोई शक नहीं कि ऐसी पुस्तकके जनताके सामने बहुत पहले न आ सकनेके कई कारण हैं। विस्तृत विवरण देनेके लिए ऐसी पुस्तिकामें कई महत्त्वपूर्ण बातें बताना जरूरी होगा। मैं जानता हूँ और मुझे इस बातका दुःख है कि शायद इन बातोंके प्रकाशनसे बेकारमें कुछ बहस-मुबाहिसा शुरू हो जायेगा; और कुछ लोग तो इन बातोंका प्रकाशन कभी पसन्द नहीं करेंगे। इंग्लैंडमें सामान्य व्यक्तियों और विद्यार्थियों, दोनोंकी गतिविधियाँ यहाँके लोगोंकी आँखोंसे ओझल हैं। उदाहरणके लिए कोई भी व्यक्ति निश्चित रूपसे नहीं जानता कि इंग्लैंडमें भारतीय क्या खाते हैं, कहाँ रहते हैं;

प्रश्नोंका उत्तर देनेका प्रयत्न किया जो लौटनेपर उनसे पूछे गये थे। . . . ऐसा प्रतीत होता है कि कमसे-कम उसका कुछ भाग १८९३ के उत्तरार्द्ध और १८९४ के पूर्वार्द्धमें लिखा गया। . . . उन्होंने इसे कभी प्रकाशित नहीं कराया" (**अर्ली फेज**, पृष्ठ ३१६)।

प्रस्तावनामें गांधीजीने लिखा है: "यहाँ जो लोग मिले वे मुझसे सिर्फ इंग्लैंडके विषयमें ही पूछ-ताछ करते रहे; जिससे मैं कभी-कभी सचमुच ऊब ही गया हूँ।" वाक्यमें 'यहाँ' शब्दसे तात्पर्य स्पष्ट ही भारतसे है। किन्तु यह मालूम नहीं कि प्रस्तावना पुस्तिका लिखनेसे पहले लिखी गई या बादमें, किन्तु मान सकते हैं कि गांधीजीने इसे १८९३ में दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना होनेसे पूर्व लिखना शुरू किया होगा। गांधीजीने लिखा है: "एक कोट . . . जो अब पाँच साल पुराना है", उन्होंने १८८८ में लन्दन पहुँचनेपर खरीदा होगा; देखिए पृष्ठ ८०।

इस पाण्डुलिपिकी खोजके बारेमें प्यारेलाल लिखते हैं: "जब मैं १९२० में साबरमती पहुँचा तो कुछ समय बाद ही सत्याग्रहाश्रमके बुनाई-घरके फर्शपर बिखरे हुए कागजोंके ढेरमें मुझे यह पाण्डुलिपि मिली। गांधीजीको दिखानेपर उन्होंने कहा कि दक्षिण आफ्रिकामें मेरा एक क्लर्क जो सुन्दर लेख नहीं लिखता था उसने मेरे अनुरोधपर अपना लेख सुधारनेके लिए यह प्रति तैयार की थी। दुर्भाग्यसे परिशिष्टके कुछ पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं। मूल प्रति कहीं नहीं मिली" (**अर्ली फेज**)।

अपना खाना बनाते हैं या नहीं, आदि। और जो इंग्लैंड जाना चाहते हैं उनके लिए यही बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए इन पृष्ठोंके लेखकका इरादा परदेको हटाकर इंग्लैंडमें रहनेवाले भारतीयोंकी गतिविधियाँ स्पष्ट सामने रख देनेका है।

मुझे आशा है कि ऐसा करनेसे कुछ हदतक इंग्लैंड जानेवालोंको सुविधा तो होगी ही, साथ ही लोगोंको इंग्लैंडसे लौटनेवाले भारतीयोंको समझनेमें भी सहायता मिलेगी। लेकिन मुझे भय है कि कई लोग इसपर शिकायतें करेंगे और विरोध करते हुए मुझपर बरस पड़ेंगे। हो सकता है कि मुझे कई लोगोंकी मित्रतासे भी हाथ धोने पड़ें। कुछ लोग मुझे विवेकशून्य कहेंगे और कुछ यह कहकर चुप हो जायेंगे कि मैं व्यवहार-कुशल नहीं हूँ। कुछ ऐसे भी होंगे जो मेरी जवानीको दोष देते हुए मुझे बुरा-भला कहेंगे। लेकिन मैंने सत्यकी खातिर इस तूफानको सह लेनेका निर्णय किया है।

दूसरा सवाल यह है कि क्या ऐसी पुस्तिका लिखनेकी योग्यता मुझमें है? मैं बहुत हदतक इस प्रश्नका उत्तर देनेका भार पाठकोंपर छोड़ देना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि इसी कहानीको इससे उत्तम भाषामें ज्यादा अच्छी तरह, अधिक विस्तारसे लिखनेवाले लोग हो सकते हैं और यह भी जानता हूँ कि शायद किसी एक ही व्यक्तिमें ये सभी गुण नहीं हो सकते। मैं तो पुस्तक सिर्फ इसी कारणसे लिख रहा हूँ कि इतनी आवश्यकता होनेपर भी अभीतक किसीने ऐसी पुस्तिका नहीं लिखी है। साधारणतः मैं इसमें सिर्फ तथ्य ही दूँगा और अत्यावश्यक होनेपर कहीं-कहीं व्यक्तिगत टीका-टिप्पणी भी करूँगा। यदि किसी व्यक्तिको कभी ऐसा लगे कि कहीं कुछ भूल हो गई है या कोई बात समझमें न आये तो कृपा करके वे पत्र लिखें ताकि मैं स्पष्ट कर सकूँ या भूल सुधार सकूँ।

प्रस्तावना पूरी करनेके पहले मैं अनुरोध करता हूँ कि आप इसमें सहयोग दें; अर्थात् इसे खरीदकर मेरी सहायता करें और इससे भी ज्यादा जरूरी बात है कि इसे पढ़ें ताकि आप स्वयं भी लाभान्वित हो सकें।

जिन तथ्योंका अन्य सूत्रोंसे पता पाना आसान है, साधारणतः उन्हें इस संदर्शिकामें नहीं दिया गया, परन्तु सूत्रोंका उल्लेख कर दिया गया है। वर्तमान पुस्तकोंसे सूचना एकत्रित करना इस पुस्तिकाका उद्देश्य नहीं था, बल्कि जो-कुछ अबतक उनमें प्राप्त नहीं है वही देनेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य रहा है।

अध्याय १

इंग्लैंड किसे जाना चाहिए?

मोटे तौरपर कह सकते हैं, उन सब व्यक्तियोंको जिनमें इंग्लैंड जानेकी सामर्थ्य हो, इंग्लैंड जाना चाहिए; बेशक यहाँ "सामर्थ्य" शब्दका व्यापक अर्थ लेना उचित होगा। इस तरह कुछ व्यक्ति धनकी कमीके कारण, कुछ अपने बिगड़े हुए स्वास्थ्यके कारण, कुछ आयुके कम होने या अन्य कठिनाइयोंके कारण इंग्लैंड नहीं जा सकते। निम्न अनुच्छेदोंमें इन सभी बातोंपर संक्षिप्त रूपसे विचार किया जायेगा।

सबसे पहली और जरूरी बात स्वास्थ्य है। जिस व्यक्तिके फेफड़े कमजोर हों या जिसे क्षय हो जानेका अन्देशा हो, उसे कभी इंग्लैंड जानेका विचार नहीं करना चाहिए। उसके लिए इंग्लैंड जानेका अर्थ होगा मित्रों और सम्बन्धियोंसे दूर मौतके मुँहमें जाना। बल्कि उस हालतमें आप दक्षिणी यूरोप अवश्य जा सकते हैं। उससे आपके स्वास्थ्यको कोई हानि नहीं होगी, बल्कि लाभ ही होगा। इस तरह यदि आप रिवेरा जायें तो आपको क्षयसे मुक्ति मिल सकती है। इस भयंकर रोगसे छुटकारा पानेके लिए वहाँ हर वर्ष हजारों क्षय-ग्रस्त रोगी जमा होते हैं। कमजोर फेफड़ोंवाले व्यक्तिके लिए वह एक बहुत बढ़िया स्थान माना गया है। परन्तु इसके लिए काफी खर्च करना पड़ता है। और फिर यह पुस्तिका रोगियोंके लिए नहीं लिखी गई है कि वे इसमें दिये गये निर्देशोंका पालन कर नीरोग हो सकें। यह तो उन लोगोंके लिए लिखी गई है जिनका स्वास्थ्य अच्छा है और जो कुछ सीखकर उपयोगी काम करना चाहते हैं। फिर यह है भी उन्हीं व्यक्तियोंके लिए जो इंग्लैंड जायेंगे। यह भी सच है कि सामान्य रूपसे कमजोर व्यक्ति गर्मीके दिनोंमें इंग्लैंडकी सैर कर सकता है और इससे उसके स्वास्थ्यको कम-ज्यादा कोई हानि नहीं होगी। फिर भी यदि मैं अपनी कोई राय दे सकने योग्य हूँ तो मैं यही कहूँगा कि जिसे किसी भी तरहकी फेफड़ोंकी कोई बीमारी हो उसे किसी विशेष अवसर या परिस्थितिको छोड़कर इंग्लैंड जानेका कभी विचार नहीं करना चाहिए। दूसरी ओर जिन्हें गर्म जलवायुके कारण कोई बीमारी हो यदि वे इंग्लैंड जायें तो वह उनके लिए अच्छा ही होगा। मुझे भारतमें सिर-दर्द रहा करता था और नाकसे रक्तस्राव हो जाया करता था। मुझे गर्मीके दिनोंमें लगातार तीन या चार घंटे पढ़नेपर सिरमें दर्द हो जाया करता था। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि मैंने इन दोनोंसे बिलकुल छुटकारा पा लिया है और मैं मानता हूँ कि इसका कारण मुख्यतः इंग्लैंडकी ठंडी और स्फूर्तिदायिनी जलवायु ही रही। अपने स्वास्थ्यके सम्बन्धमें किसी भी तरहका सन्देह हो तो किसी विशेषज्ञसे जाँच करा लेना ही अच्छा होगा।

दूसरा प्रश्न है आयुका। उसके सम्बन्धमें कोई पक्के नियम निश्चित करना बहुत कठिन है। सामान्य तौरपर माता-पिता ही यह जान सकते हैं कि बच्चा कब अकेला भेजा जाने योग्य हो गया है। फिर इस प्रश्नका उत्तर उस बालकके चरित्रपर भी निर्भर है जो वहाँ जाना चाहता है। वह इस बातपर भी निर्भर है कि वहाँ उसका क्या करनेका इरादा है। यदि बालक प्रशासन-सेवाकी परीक्षामें बैठना चाहता है तो उसके लिए आयु सीमा अब २३ वर्ष है। यदि कोई बैरिस्टर बनना चाहता है तो यह २१ वर्षका हो जानेपर भी सम्भव है। मैट्रिककी परीक्षा देनेवालेको कमसे-कम सोलह वर्षका होना चाहिए। यदि आप अपने बच्चेको वहाँ प्राथमिक शिक्षा देनेके लिए भेजना चाहते हैं तो आप बालकको बिना किसी संरक्षकके, किसी भी ऐसे स्कूलमें भेज सकते हैं जहाँ सिर्फ बच्चोंको शिक्षा दी जाती है और उनकी देख-भाल की जाती है।

अभीतक तो मैंने इस प्रश्नके निषेधात्मक पक्षकी ही चर्चा की है। अब मैं उसके विधेयात्मक पक्षको लेता हूँ। मोटे तौरपर यह कह देनेका लोभ हो सकता है कि

जिनके पास धन हो, जिनका स्वास्थ्य अच्छा हो या आयु ठीक हो उन्हें इंग्लैंड जाना चाहिए। परन्तु इतना ही काफी नहीं है। ऐसे सभी व्यक्ति पूछ सकते हैं कि "हम इंग्लैंड क्यों न जायें?" और मैं उसका जवाब दूँगा कि व्यापार, यात्रा या शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आजकल बहुतसे लोग वहाँ जाते हैं। कुछ लोग सैरकी दृष्टिसे जाते हैं; यों व्यापारके लिए जानेवाले लोग कम ही हैं। हालाँकि किसी भी देश की वास्तविक समृद्धिके लिए व्यापार सबसे महत्त्वपूर्ण है। भारतको सबसे ज्यादा जरूरत व्यापार बढ़ानेकी है। और इस बातको सभी जानते हैं कि विभिन्न व्यापारोंके सम्बन्धमें जानकारी पानेके लिए इंग्लैंड सर्वश्रेष्ठ स्थान है। मैं यह तो बिलकुल ही नहीं कहता कि व्यापार करना सिर्फ इंग्लैंडमें ही सीखा जा सकता है। वहाँ तो हम उन लोगोंके व्यापार करनेका ढंग सीख सकते हैं। यदि कोई इंग्लैंडसे व्यापार बढ़ाना चाहे तो उसे उस देश और वहाँके लोगोंकी जितनी ज्यादा जानकारी होगी, वह उतना ही उसके लिए लाभकारी होगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसे व्यक्तिको खास इसी उद्देश्यसे इंग्लैंड जाना चाहिए। जो लोग वहाँ शिक्षा या सैरके लिए जाते हैं, उनका इरादा न तो व्यापार सम्बन्धी बातोंका अध्ययन करनेका होता है और न उनके लिए वह सम्भव ही है। वहाँ विभिन्न प्रकारके व्यवसायोंका अत्यन्त कुशल संचालन देखनेमें आता है। हम वहाँ यह भी देखते हैं कि बड़े-बड़े कारखानोंको कैसे चलाया जाता है। जिसे व्यापार सम्बन्धी ज्ञान है वह जान सकता है कि किन चीजोंका व्यापार करनेसे लाभ होगा। फिर यदि हम अंग्रेजोंसे सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकें, तब हमें किसी ऐजेंसीकी मार्फत व्यापार करनेकी जरूरत नहीं रहेगी। मुझे मालूम है कि कुछ भारतीय इंग्लैंडमें बस गये हैं और वहाँ व्यापार कर रहे हैं। यहाँतक तो बात ठीक है, पर इतना ही पर्याप्त नहीं है। मुझे यह कहते हुए खेद है कि इन व्यापारिक मण्डलोंका प्रबन्ध कदापि संतोषजनक नहीं है और परिणामस्वरूप उनका व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा नहीं है। मैं चाहता हूँ कि शिक्षित व्यापारी जिन्हें अंग्रेजीका अच्छा ज्ञान है, वहाँ जायें, वहाँके लोगोंसे मिलें-जुलें, उनकी सफलताका रहस्य जानकर भारत लौटें और आवश्यक सुधार करनेके बाद इंग्लैंड और भारतमें शाखाएँ खोलें। मुझे बताया गया है कि हम इंग्लैंडमें नक्काशीकी हुई लकड़ी और पत्थर तथा पक्षियोंके पंखोंका अच्छा व्यापार कर सकते हैं। सभी जानते हैं कि भारतके प्रायः सभी हिस्सोंमें प्रतिदिन पक्षियोंके कितने पंख बरबाद हो जाते हैं। किन्तु उन्हें यूरोपमें बिक्रीके लिए भेज सकते हैं। हम सिर्फ अपने अज्ञान और उदासीनताके कारण सच्चा धन बरबाद कर रहे हैं। यह तो कुछ-एक उदाहरण हैं। और भी ऐसी कई चीजें होंगी जो इंग्लैंडमें बेची जा सकती हैं। हम नहीं जानते ये चीजें कौन-सी हैं और यही मालूम करनेके लिए हमें इंग्लैंड जाना चाहिए। क्या कभी ऐसा समय आयेगा जब प्रत्येक व्यापारिक पेढ़ी अपना प्रतिनिधि इंग्लैंड भेजने लगेगी?

अब यात्राके बारेमें।

व्यापारी और विद्यार्थी दोनों अपने कामके साथ-साथ थोड़ी सैर भी कर सकते हैं। पर वे ऊँचे दर्जेके यात्री नहीं कहे जा सकते। जो लोग यात्राको अपना मुख्य

उद्देश्य बनाना चाहते हैं, जो इन यात्राओंके सम्बन्धमें पुस्तकें लिखना चाहते हैं उन्हें यात्राके विशेष उद्देश्यसे ही वहाँ जाना चाहिए। पर मुझे लगता है कि ऐसे लोगोंको चाहिए कि वे पहले अपना देश तो देख लें। इस विषयमें श्री मलबारीके विचार उद्धृत करना बहुत उचित होगा।

> अध्ययनकी तरह यात्रा भी बिलकुल शुरूसे सीखना सर्वोत्तम है। उसके बाद धीरे-धीरे आगे कदम बढ़ायें। हर कदमपर ऐसा कुछ सीखते चलें जिससे अगले कदमपर तत्काल ही व्यावहारिक लाभ मिल सके। जब हम यात्रा या अध्ययन सूक्ष्मतासे करते हैं तो हर नया कदम या किसी बातका ज्ञान हमें बेहद आनन्द देता है। हम उसे समझनेके लिए तैयार हो जाते हैं और इस प्रकार प्राप्त किया हुआ ज्ञान हमारे लिए लाभदायक होता है। लेकिन जब ज्ञान बिना किसी तैयारीके थोप दिया जाता है अर्थात् जब हममें उसे पानेकी योग्यता नहीं होती तो ऐसे जड़-ज्ञानमें फल देनेकी कोई शक्ति नहीं होती। यदि हमें अपने देशके बारेमें ही कुछ न मालूम हो तो विदेश-यात्रा करनेका क्या लाभ होगा? यदि हम अपने ही राष्ट्रीय जीवनको जाने बिना यूरोप जायें तो हम आधुनिक यूरोपीय सभ्यताकी सैकड़ों छोटी-छोटी बातों, विभिन्न विचारों, हजारों अच्छाइयों-बुराइयोंकी पहचान और अपने जीवनसे उनकी तुलना कभी नहीं कर पायेंगे। बहुत हुआ तो आप इन सब चीजोंको देखेंगे; किन्तु उन्हें कहीं समझ पायेंगे, कहीं नहीं समझ पायेंगे।

इन बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दोंपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिए। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हमें काम गलत छोरसे शुरू नहीं करना चाहिए।

सबसे आखिरमें शिक्षाकी बारी आती है। मुझे अत्यन्त खेदके साथ यहाँ कहना पड़ रहा है कि शिक्षाके लिए इंग्लैंड जानेवाले लगभग सभी व्यक्ति बैरिस्टर बननेके इरादेसे जाते हैं। शिक्षाका अर्थ बैरिस्टर बनना ही नहीं है। बैरिस्टरोंके बारेमें एक अलग अध्यायमें मैं बहुत-कुछ कहनेवाला हूँ, इसलिए यहाँ सिर्फ मैं उन दूसरे कामोंका उल्लेख कर रहा हूँ जो वहाँ सीखे जा सकते हैं। बेशक, लोगोंको सबसे ज्यादा लालच तो प्रशासन सेवाकी परीक्षा पास करनेका होता है। लेकिन उसमें वही बैठ सकते हैं जो जन्मतः ब्रिटिश प्रजा हैं। एक दूसरा काम इंजीनियर बननेकी शिक्षा है, जिसके लिए हम कूपर्स हिल कॉलेजमें भर्ती हो सकते हैं। चिकित्सा-शास्त्रकी सबसे बड़ी परीक्षा लन्दन विश्वविद्यालयमें पास की जा सकती है। बड़े-बड़े प्रसिद्ध डाक्टरोंने वहाँ शिक्षा पाई है, लेकिन उसका पाठ्यक्रम बहुत लम्बा है; यों कहनेको तो उसमें पाँच ही वर्ष लगते हैं। किन्तु वास्तवमें लगभग सात वर्ष लग जाते हैं। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंमें शिक्षाकी बहुत अच्छी व्यवस्था है। लेकिन ये विश्व-विद्यालय धनिक वर्गके लिए हैं, गरीबोंके लिए नहीं। यहाँ जो शिक्षा दी जाती है वह भारतीय विश्वविद्यालयोंसे भिन्न प्रकारकी है। हमारे विश्वविद्यालयोंकी तरह वहाँ बहुत परिश्रम भी नहीं करवाया जाता। फिर भारतमें तो सामान्यतः सिर झुका-कर काम ही करते रहना पड़ता है और जैसे अंग्रेजीकी कहावत है, बिना मनोरंजनके

कामसे मनुष्यका मस्तिष्क भी कुंठित हो जाता है। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिजमें दी जानेवाली शिक्षामें मेहनत और मनोरंजन दोनोंको स्थान दिया गया है। मुझे लगता है कि वहाँके विश्वविद्यालयोंमें गधेकी तरह जुटे नहीं रहना पड़ता जैसा कि दुर्भाग्यसे यहाँपर करना होता है। .

शिक्षाके विभिन्न केन्द्रोंके बारेमें विस्तृत जानकारी देना असम्भव होगा। उनके सिर्फ नाम ही सूचित किये जा सकते हैं। इन संस्थाओंके मंत्रियोंको पत्र लिखनेपर वे नियमावलि भेज देंगे और उससे पूरी जानकारी मिल सकती है। एडिनबरा भी भारतीयोंका प्रिय स्थान बन गया है, जिनमें ज्यादातर चिकित्सा-शास्त्रके विद्यार्थी हैं। एडिनबराका चिकित्सा-शास्त्रका पाठचक्रम अपेक्षाकृत बहुत आसान है। लन्दनका पाठचक्रम तो सबसे कठिन है। डरहम विश्वविद्यालयसे भी चिकित्सा-शास्त्र की उपाधि प्राप्त हो सकती है।

कोई यह कह सकता है कि इन सबकी शिक्षा यहाँ भी पा सकते हैं और उसमें खर्च भी कम होगा। मैं पहली बात स्वीकार करता हूँ, पर दूसरी नहीं। फिर यहाँ भी वही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, सिर्फ इतना ही काफी नहीं है। सवाल तो यह है कि कौन-सी शिक्षा श्रेष्ठ है। क्या इंग्लैंडमें दी जानेवाली हर तरहकी शिक्षा भारतसे ज्यादा श्रेष्ठ नहीं है? क्या मनुष्य इंग्लैंडमें उतने ही समयमें भारतसे ज्यादा नहीं सीख सकता? अंतिम कथन तो स्वतःसिद्ध है। यहाँपर विद्यार्थी, विद्यार्थी भी है और सामान्य व्यक्ति भी। हो सकता है वह विवाहित भी हो। उस दशामें गृहस्थीके उन अन्य बोझोंके साथ-साथ जो सामान्यतः उसपर लदे होते हैं, उसे अपनी पत्नी और शायद बच्चोंका विचार भी करना पड़ता है। उधर इंग्लैंडमें वह अकेला होता है, तंग करने या प्यार करनेके लिए पत्नी पास नहीं होती, लाड़ करने-वाले माता-पिता नहीं होते, किन्हीं बच्चोंकी सार-सँभाल नहीं करनी पड़ती और परेशान करनेवाले कोई साथी नहीं होते। सारा समय उसका अपना होता है। इसलिए यदि उसमें इच्छा-शक्ति हो तो वह वहाँ ज्यादा काम कर सकता है। इसके अलावा इंग्लैंडकी स्फूर्तिदायिनी जलवायु ही परिश्रम करनेके लिए काफी प्रोत्साहन देती है जब कि भारतकी निस्तेज करनेवाली जलवायु निठल्ले बने रहनेमें सहायक होती है। गर्मीकी दोपहर खाली गँवानेका काम किसने नहीं किया? किसने ऐसी इच्छा कभी न की होगी कि काश, गर्मीके दिनोंमें सोनेके अलावा कुछ काम न होता। बेशक, भारतमें भी ऐसे लोग तो हैं जो काममें लगे ही रहते हैं। सच तो यह है कि सबसे परि-श्रमी विद्यार्थी भी भारतमें ही मिलते हैं। पर वे जो इतना काम करते हैं, सो अपनी इच्छाके विरुद्ध करते हैं। इंग्लैंडमें खाली बैठना सम्भव नहीं है। वहाँ काम करना अच्छा लगता है, इसीलिए आप काम करते हैं और उसके बिना खाली बैठे नहीं रह सकते। मैंने सुना है कि एक बहुत विद्वान् प्रोफेसरने कहा है कि उन्होंने तीन वर्षमें जितना इंग्लैंडमें पढ़ा, उतना शायद वे भारतमें नौ वर्षोंमें पढ़ पाते। जितना काम भारतमें करनेसे स्वास्थ्य को हानि होती है, उतना इंग्लैंडमें आसानीसे किया जा सकता है। एक उदाहरण तो हमारे सामने ही है। क्या हम गर्मियोंकी अपेक्षा

सर्दियोंमें ज्यादा काम नहीं करते? तब इस बारेमें सन्देह नहीं हो सकता कि काम करनेका इच्छुक व्यक्ति इंग्लैंडमें भारतसे ज्यादा काम कर पायेगा। इंग्लैंडमें रहते हुए सब समय अंग्रेजी भाषामें बातचीत करनेकी जो सुविधा मिलती है उसका उल्लेख करनेकी तो जरूरत ही नहीं है। मेरी हार्दिक आशा है कि उक्त कथनके विरोधमें ऐसे व्यक्तियोंका उदाहरण नहीं दिया जायेगा जिन्होंने कोई बहुत बढ़िया काम नहीं कर दिखाया। क्योंकि वे तो काम करनेके अनिच्छुक व्यक्तियोंकी श्रेणीमें आते हैं, जब कि हम तो यहाँ उन व्यक्तियोंकी चर्चा कर रहे हैं जो भारतमें नहीं, इंग्लैंडमें कामके ज्यादा अवसर खोज रहे हैं। मूर्ख इंग्लैंडसे पण्डित बनकर लौटेंगे, यह आशा करना तो ज्यादती है। वहाँ ज्यादा अच्छे अवसर मिल सकते हैं और उनका लाभ उठाना आपका काम है। यदि आप ऐसा नहीं करते, तो दोष आपका है, इंग्लैंडका नहीं। यदि इंग्लैंडमें ज्यादा अच्छी शिक्षा पाना सम्भव है, तो इसका यही तात्पर्य हुआ कि वह भारतसे ज्यादा महँगी नहीं पड़ती, क्योंकि अधिक खर्चके अनुपातमें शिक्षा भी तो उतनी ही अच्छी मिलती है।

अध्याय २

प्रारम्भिक तैयारी

किन लोगोंको इंग्लैंड जाना चाहिए, यह मैं पिछले अध्यायमें बता चुका हूँ। अब मैं, जानेसे पहले क्या तैयारी करनी पड़ती है, उसका वर्णन करता हूँ। इस विषयमें बताते समय यदि मैं ब्योरेकी बहुत मामूली और छोटी-छोटी बातोंकी भी चर्चा करूँ तो आशा है कि उसे पाठक अन्यथा नहीं लेंगे। इसमें मैंने अपनी बुद्धिको या उससे भी कम बुद्धिको अपना पैमाना माना है और मैं उन बातोंका वर्णन करूँगा जिनका स्पष्टीकरण मुझे मेरे इंग्लैंड जानेके समय आवश्यक हुआ था।

सबसे पहला सवाल द्रव्यका है। अपने साथ कितना पैसा ले जाना चाहिए, यह बादमें बताया जायेगा। पर जितनी भी राशि हो, मनुष्यको यह बात पक्के तौरपर देख लेनी चाहिये कि निश्चित की हुई सारी राशि उसे इंग्लैंडमें मिल जायेगी। कुछ परिस्थितियोंमें तो पूरीकी-पूरी राशि साथ ले जाना ही ठीक होगा। मैं अपने निजी अनुभवसे जानता हूँ कि कुछ ऐसे लोग भी जिन्हें आप पूरी तरह भरोसेके योग्य मानते हैं आर्थिक सहायताका वचन देकर अपनी बातसे फिर जाते हैं और यह भी उस हालतमें जब सहायता ऋणके रूपमें माँगी गई हो, उपहारके रूपमें नहीं।[1] जो आपको ऋण देनेके लिए भी तैयार हो जायें, आम तौरपर लन्दनमें ऐसे लोग नहीं मिलते। साधारणतः ऋण भी काफी बड़ा लेना होता है; क्योंकि जब वादेके मुताबिक पैसा नहीं मिल पाता तो जरूरत थोड़े पैसोंकी नहीं, काफी ज्यादाकी पड़ जाती है और आप किसी मित्रसे इतना उधार दे पानेकी आशा नहीं कर सकते। मुझे और मेरे मित्रोंको इसका अनुभव हो चुका है कि किसी भी भारतीयके लिए

१. देखिए **सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १३ तथा "फ्रेडरिक लेलीको लिखे पत्रका मसविदा", दिसम्बर १८८८।

बिना पैसेके इंग्लैंडमें एक भी क्षण रहनेका क्या मतलब है। ऐसी स्थितिमें घर तार करनेके लिए अतिरिक्त खर्च करना होगा; जो चिन्ताएँ घेर लेती हैं उनकी तो बात ही जाने दीजिए; और भारत तार करनेमें भी बहुत ज्यादा खर्च पड़ता है। तारके हर शब्दके लिए चार शिलिंग देने पड़ते हैं। इसलिए आपको इस बातका पूरा प्रबन्ध कर लेना चाहिए कि पर्याप्त धन मिल जायेगा और वह भी ठीक समयपर।

फिर यदि सम्भव हो तो इंग्लैंडमें रहनेवाले लोगोंके नाम परिचय-पत्र ले जाना भी लाभदायी ही होता है। उनके बिना काम नहीं चल सकता, ऐसा नहीं है। पर यदि आप प्राप्त कर सकते हों तो ये परिचय-पत्र निरर्थक भी नहीं होते। आपको अनुभव होता है कि वहाँ पहुँचनेपर आपको वहाँ कुछ लोग मित्र-रूपमें मिल जायेंगे। इनका एक सहारा रहता है और कई बार इन परिचय-पत्रों द्वारा मिले हुए लोग आपके सच्चे और जीवन-भरके मित्र बन जाते हैं।[1]

अपने साथ क्या चीजें ले जानी हैं, टिकट कहाँ खरीदना है और लन्दन पहुँचने पर कहाँ टिकना है, अब आपको इन बातोंका विचार करना है।

पहले मैं आवश्यक चीजोंकी सूची देता हूँ, फिर जहाँ आवश्यक होगा, इनके बारेमें विचार व्यक्त करूँगा।

	रु०	आ०
१ बड़ा कोट	३०	०
१ कोट	२०	०
१ वास्कट	१०	०
१ जाकिट सूट (वास्कट जाकिट)	३०	०
३ पतलून	२७	०
३ जाँघिये (गर्म)	१५	०
३ जाँघिये (सूती या ऊनी)	६	०
३ गर्म बनियान	१२	०
३ सूती या ऊनी बनियान	४	०
३ बिना कालरकी गर्म कमीजें	१६	०
६ कालरवाली गर्म कमीजें	१८	०
१ सफेद कमीज	२	०
१ गेलिस	१	८
३ कालर	१	०
कालरके लिए सीपके बटन	०	८
कफके लिए सीपके बटन	०	४
१२ रूमाल	१	४
२ सूट सोनेके लिए (गर्म)	१५	०
१ जोड़ा दस्ताने	२	०

१. देखिए **आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १३।

१ कम्बल	१०	०
६ सूती या ऊनी मोजे	३	०
३ गर्म मोजे	४	०
	२२८	८
	रु०	आ०
पिछली राशि	२२८	८
१ पट्टा बिस्तर बन्दका	१	८
१ जोड़ी स्लीपर	१	४
१ जोड़ी जूते	४	०
१ मोटे तल्लेका जूता	६	०
१ रोएँदार टोपी	१	४
१ कपड़ोंका ब्रुश	१	०
१ बालोंका ब्रुश	१	०
१ दाँतोंका ब्रुश	०	४
१ हजामतका ब्रुश	१	०
१ उस्तरा	२	०
१ उस्तरा तेज करनेका पट्टा	२	०
१ कंघा	०	८
१ हजामतका साबुन	१	०
जीभ साफ करनेका साधन	०	४
लिखनेका कागज	०	८
उसी तरहके लिफाफे	०	४
सफरी स्याहीदान	०	८
होलडर और जेबी पेंसिल	०	८
स्याहीसोख	०	४
पिन, सुई और धागा	०	४
छोटा चाकू	१	८
कलम	०	८
बटुआ	०	८
छड़ी	१	०
जहाजके लिए आरामकुर्सी	५	०
दो ट्रंक	१६	०
कुछ किताबें		
छाता	४	०
कुल रु०	२८२	४

इन चीजोंको खरीदते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि बढ़िया सामान कमसे-कम दामोंपर खरीदा जाये और खरीदी हुई चीजें काममें आनेवाली हों . . . । बम्बईमें कई दुकानें हैं। कुछ भारतीय दुकानें बहुत अच्छी हैं। आप देखेंगे कि अंग्रेजी दुकानोंमें दाम बहुत ज्यादा हैं। जब भी सम्भव हो, किसी अनुभवी व्यक्तिको सामान खरीदनेका काम सौंपना ही अच्छा रहता है।

उपर्युक्त सूचीके विषयमें एकाध बात यहाँ बताना शायद निरर्थक नहीं होगा। सूचीमें दो ट्रंक लेनेको कहा गया है और दोनोंके दाम दिये गये हैं सोलह रुपये। प्रत्येक ट्रंक २६×१२[1] हो सकता है। सामान्यतः लोग एक लोहेका ट्रंक और एक चमड़ेका बैग खरीदते हैं। स्टीलके एक अच्छे ट्रंकके दाम होंगे २५ रुपये और चमड़ेके बैग, ग्लैड्स्टन बैग, के दाम भी इतने ही होंगे। इतने पैसे खर्च करना जरूरी नहीं है। १२ रुपयेमें एक अच्छा ट्रंक खरीद सकते हैं। सोलह रुपये लिखते समय मेरे ध्यानमें लोहेके देसी ट्रंक हैं जो स्टीलसे ज्यादा नहीं तो उसके बराबर ही मजबूत होते हैं। उससे देशी उद्योगको प्रोत्साहन मिलेगा और खरीदनेवालेको कुछ रुपयोंकी बचत होगी। यदि देसी ट्रंक ठीक न जँचे या न मिल सकें तो लकड़ीके बक्से या नकली स्टीलके ट्रंक खरीदे जा सकते हैं। ऐसे एक ट्रंकके दाम पाँच रुपयेसे ज्यादा नहीं हैं। ट्रंक कितना बड़ा हो उस विषयमें पी० ऐंड ओ०[2] के नियम यों हैं:

> केबिनमें ले जानेके लिए कोई भी ट्रंक ३ फुटसे ज्यादा लम्बा नहीं होना चाहिए। उसकी चौड़ाई १ फुट ९ इंच और ऊँचाई १ फुट ३ इंचतक होनी चाहिए। इससे बड़ा कोई सन्दूक कैबिन या सैलूनमें नहीं ले जाने दिया जायेगा।

दूसरी चीजोंके दाम भी मैंने कमसे-कम नहीं लगाये। उदाहरणके लिए मोजोंके एक जोड़ेके लिए मैंने आठ आने लगाये हैं, लेकिन एक अच्छा जोड़ा पाँच या छः आनेमें खरीदा जा सकता है। यदि अच्छे गरम मोजे बम्बईमें उपलब्ध न हों तो वे लन्दनमें खरीदे जा सकते हैं। क्योंकि छः जोड़ोंसे जहाजमें काम चल जायेगा। उपर्युक्त सूचीमें मैंने जितने वस्त्र लिखे हैं, उतने लेनेसे सालभर तक लन्दनमें कपड़ोंपर खर्च करनेकी बिलकुल जरूरत नहीं पड़ेगी। कपड़ोंकी एक और सूची बादमें दी जायेगी। आवश्यक होनेपर वे चीजें लन्दनमें खरीदी जा सकती हैं। और फिर उतने कपड़े लन्दनमें तीन वर्षके प्रवासके लिए पर्याप्त होंगे।

मैंने जान-बूझकर कई चीजें, जो सामान्यतः ऐसी सूचीमें दी जाती हैं, छोड़ दी हैं। उदाहरणके लिए तौलिया, साबुन आदि। ये चीजें जहाजमें मुफ्त मिल जाती हैं। विदेशी डाक टिकट जहाजमें खरीदे जा सकते हैं।

अब जहाजपर क्या पहनना चाहिए? शुरूमें जाकिट सूट पहनना ही ठीक है। जरूरी नहीं कि उसके नीचे बनियान या जाँघिया पहना जाये। ठण्ड होनेपर उनका उपयोग शुरू करना चाहिए। बहुतसे कपड़े लाद लेना कभी उपयोगी नहीं होता। मेरी ऐसे कई व्यक्तियोंसे मुलाकात हुई, जिन्हें ज्यादा कपड़े पहननेके कारण हानि हुई

१. स्पष्टतः इंच।
२. पेनिन्सुलर ऐंड ओरिएंटल स्टीमशिप कम्पनी।

है। हाँ, यह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि कम कपड़े भी न पहने जायें। जहाजके पोर्ट सईद पहुँचनेतक बनियान और जाँघियेकी जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि बम्बईसे पोर्ट सईदतक मौसम भारतसे ज्यादा ठण्डा नहीं होता। यदि पोर्ट सईदसे चलनेके बाद ठण्ड लगे तो सूती बनियान और जाँघिया पहन सकते हैं, जरूरत हो तो गर्म पहन लें। ब्रिंडिसी पहुँचनेतक तो बड़े कोटकी ओर देखनेकी भी जरूरत नहीं है। इतना अवश्य जान लें कि सबके लिए एक ही बात ठीक नहीं हो सकती। कपड़ोंके बारेमें कोई पक्के नियम नहीं बनाये जा सकते। साधारणत: सबके मनमें यह धारणा है कि बन्दरगाह छोड़ते ही जाँघिया, बनियान तथा बड़ा कोट पहनना एकदम आवश्यक है। सिर्फ इसी धारणाको दूर करनेके लिए मैंने ऊपरकी बात कही है। सबसे अधिक बचत तो इसी बातमें है कि जैसे-जैसे ज्यादा ठंड लगे वैसे-वैसे ज्यादा और अधिक गर्म कपड़े पहनने लगें।

सफेद कमीजोंको मैंने लगभग छोड़ ही दिया है। कुछ लोग इनके बिना काम चलाना कठिन मान सकते हैं; पर उनको यह बात कठिन इसलिए नहीं लगती कि उस जलवायुमें इन कमीजोंकी आवश्यकता हो, बल्कि इसलिए कि पहनना एक फैशन है। पर यह पुस्तक तो उन लोगोंके लिए है जो कम खर्च करके भी सम्मानपूर्वक रहना चाहते हैं। फैशनकी दृष्टिसे भी कोई रास्ता बखूबी निकाला जा सकता है, खासकर ऐसा फैशन अपनाकर जो ज्यादा खर्चीला या हानिकर न हो; फैशनकी बिलकुल अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। मैंने सफेद कमीजें इसलिए छोड़ दीं हैं कि उनसे हर सप्ताह धुलाईका खर्च काफी ज्यादा बढ़ जाता है। एक सफेद कमीजकी धुलाई ४ पेंस होगी, जब कि फलालैनकी कमीज सिर्फ २ पेंसमें धुल जायेगी। साथ ही जहाँ फलालैनकी एक ही कमीज हफ्ते-भरके लिए काफी है, वहाँ दो सफेद कमीजें हफ्ते-भर काम नहीं देंगी। वे फलालैनकी कमीजोंसे जल्दी गन्दी हो जाती हैं। सच तो यह है कि इंग्लैंडके कुछ ऐसे लोगोंने जो लकीरके फकीर नहीं हैं अब फैशनकी परवाह करना छोड़ दिया है और कलफ लगे कपड़ोंका बिलकुल परित्याग कर दिया है। उन्होंने कलफ लगे कालर, कफ और कमीजोंको छुट्टी दे दी है। चिकित्सकोंने भी बहुत ज्यादा माँड़ लगानेका विरोध शुरू कर दिया है और सफेद कमीजोंमें माँड़ लगाये बिना काम नहीं चलता। माँड़ शरीरके लिए हानिकर माना गया है। कुछ भी हो, इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि फलालैनकी कमीजें ज्यादा आरामदेह होती हैं और अंतमें लिननकी कमीजोंसे सस्ती पड़ती हैं।

फिर भी यदि फैशनके मुताबिक ही रहना हो, जो कि काफी हदतक ठीक है, आप उसकी अवज्ञा नहीं करना चाहते तो बिना कालरकी फलालैनकी कमीजें पहनें, कालर और कफ सफेद इस्तेमाल करें। दूसरोंको लगेगा कि आप सफेद कमीज ही पहने हुए हैं। लन्दनमें हजारों लोग यह चतुराई बरतते हैं और कभी-कभी तो इससे बहुत सुविधा रहती है। और यदि आप कभी लन्दनके किसी शौकीन आदमीकी तरह दिखना चाहें तो सूचीमें इसका भी प्रबन्ध कर दिया गया है। आप देखेंगे कि सूचीमें एक सफेद कमीजका उल्लेख है। आप उसे गाहे-ब-गाहे पहन भी सकते हैं।

फैशन देवीके प्रति सम्मानके प्रमाणस्वरूप नैकटाईकी भी उपेक्षा नहीं की गई। उसका उल्लेख दूसरी सूचीमें है। उसका उपयोग करना न करना अपनी मर्जीपर है। यदि सस्ती नैकटाइयाँ खरीद लें, तो इसमें ज्यादा खर्च नहीं पड़ेगा।

छोटा कोट मुलाकात आदिके समय पहना जाता है। जहाजमें भी यदि आप पहले दर्जेके सैलूनमें यात्रा करें तो वह जरूरी है। जहाँतक हो सके, अपना जाकिट सूट ही पहनें ताकि छोटा कोट गन्दा न हो। इन पृष्ठोंके लेखकके पास सिर्फ एक ही छोटा कोट था। इस समय वह पाँच साल पुराना है, लेकिन अब भी वह इतना नया लगता है मानो कल ही खरीदा हो। उतारनेके फौरन बाद ही उसे अच्छी तरह ब्रुशसे साफ करें, तह लगाकर अपनी अलमारीमें रख दें तो वह कभी खराब नहीं होगा।

सूचीमें हजामतके सामानका उल्लेख किया गया है। आश्चर्य न करें। वहाँ आपको नाईका धन्धा नहीं करना है। पर दाढ़ी है तो उसे खुद बनाना पड़ेगा। यूरोपमें राजाओंको भी ऐसा करनेमें कोई संकोच नहीं होता। यदि बाल घने हों तो रोज दाढ़ी बनानी पड़ेगी। हर रोज नाईकी दयापर रहना और कमसे-कम २ पेंस खर्च करना तो एक मुसीबत है। उससे बचनेके लिए खुद दाढ़ी बनाना तो सीखना ही पड़ेगा। उसमें ज्यादा समय नहीं लगता। तीन-चार दिनतक उसमें थोड़ा वक्त लगायें तो सीखनेके लिए इतना काफी होगा। मैंने सिरके लिए तुर्की टोपीका जिक्र किया था। इससे बहुत आराम रहता है। लेकिन जिन्हें टोपी पहनकर कुछ परेशानी होती है या जो नहीं चाहते कि दूसरे लोगोंका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो, उनके लिए मैंने इसके बाद दी जानेवाली दूसरी सूचीमें फेल्ट टोपीका जिक्र किया है।

दाँतोंके लिए सर्वोत्तम (डाक्टरी दृष्टिसे) परन्तु सबसे सस्ता मंजन खड़िया मिट्टी है। यह ६ पेंसमें ४ औंस खरीदी जा सकती है और इतनी मिट्टी महीनों चलेगी।

स्लीपर सिर्फ घरमें और जहाजपर ही पहनने चाहिए।

एक पोशाक इस सूचीमें बिलकुल छोड़ दी गई है। वह है ड्रेस सूट। इसकी बिलकुल जरूरत नहीं है। हालाँकि कई भारतीय ड्रेस सूट खरीद लेते हैं, तो भी इतना खर्च करना ठीक नहीं है। मैंने स्वयं सूट खरीद लिया था और इसका मुझे बहुत अफसोस है। मैंने उसे सिर्फ तीन-चार बार पहना। इंग्लैंडमें इस सूटपर किये गये अपने इस खर्चको मैं सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण मानता हूँ। इस सूटको पार्टी आदिके लिए पहना जाता है। हम भारतीय छोटा कोट या पारसी कोट या हमारे पास हमारी कोई देसी पोशाक हो, उसे पहन सकते हैं। मैंने कई भारतीयोंको छोटा कोट पहने हुए देखा है। उसमें कोई बुराई नहीं है। आपको साफ-सुथरा दिखना चाहिए, बस इतना ही काफी है।

इस सूचीमें घड़ीका उल्लेख नहीं किया गया, क्योंकि वह शिक्षित भारतीयोंके रोजमर्राके उपयोगकी चीज बन गई है।

दूसरी सूची चौथे अध्यायमें दी गई है। उसमें उन चीजोंका ब्योरा है जिन्हें इंग्लैंडमें खरीदना होगा। उससे ज्यादा सामान किसीको भी नहीं खरीदना चाहिए,

वह कपड़ोंको बहुत लापरवाहीसे इस्तेमाल करनेवाला व्यक्ति हो तो बात अलग है। इंग्लैंड जाकर कोई व्यक्ति लापरवाह बना रहे या वहाँ जाकर लापरवाह बन जाये तो यही कहना चाहिए कि उसका इंग्लैंड न जाना ही अच्छा। दोनों सूचियोंमें जितने कपड़े बताये गये हैं, सामान्य रूपसे सावधान किसी भी व्यक्तिको मोटे तौरपर तीन सालतक उनसे ज्यादा कपड़ोंकी जरूरत नहीं पड़ेगी।

इसके बाद जो काम करना पड़ता है वह है टिकट खरीदना। इसे खरीदनेसे पहले तीन बातोंका ध्यान रखना पड़ता है।

१. किस महीने यात्रा शुरू करें।

२. सारी यात्रा समुद्रके रास्तेसे तय करें या ब्रिंडिसीके रास्तेसे।

३. पी० ऐंड ओ० के जहाजसे जायें या किसी दूसरी कम्पनीके जहाजसे।

जहाँतक पहले प्रश्नकी बात है, यात्रा किसी भी महीने शुरू कर सकते हैं; पर कुल मिलाकर मार्चके मध्यका मौसम सबसे अच्छा माना जाता है। इससे इंग्लैंड-की कड़ी सर्दीसे तो तत्काल बचत हो ही जाती है। ठण्ड ज्यादा बढ़नेसे पहले अप्रैलसे लेकर सितम्बरतक छः महीने बहुत बढ़िया रहते हैं। अप्रैलमें बसन्तकी पूरी बहार होती है और सितम्बरमें शरद ऋतुका आगमन। अंग्रेजी शीतकालका अनुभव होनेसे-पहले आगन्तुक व्यक्ति अंग्रेजी रहन-सहनसे परिचित और अभ्यस्त हो चुका होगा। इस तरह वह ठण्डको ज्यादा मजेसे बर्दाश्त कर सकेगा। मार्चमें यहाँसे रवाना होनेपर लाल सागर सबसे ज्यादा शान्त होता है। किन्तु लाल सागरका शान्तसे-शान्त मौसम भी बड़ा कष्टप्रद होता है। यद्यपि गर्मीके दिनोंमें लाल सागरमें सिर्फ तीन ही दिन बिताने होते हैं पर वे भी असह्य होते हैं। गर्मीसे दम घुटता है। कितना भी पंखा चलायें या बर्फका उपयोग करें, गर्मी कम नहीं होती। हर वक्त पसीनेमें डूबे रहते हैं। सारा ही समुद्र मार्चमें जितना शान्त रहता है, उतना अन्य किसी समय नहीं रहता।

इसके बाद जानेका ठीक समय सितम्बर या अक्तूबर है। हाँ, उस वक्त जानेका मतलब यह तो होगा ही कि वहाँ पहुँचते ही आपको जाड़ा झेलना पड़ेगा। पर यदि आप बैरिस्टर बनना चाहते हैं तो तसल्लीकी बात यह है कि किसी और समय रवाना होनेके बदले इस समय जानेसे आप तीन महीने जल्दी लौट सकेंगे। 'भावी बैरिस्टर' से सम्बन्धित अध्यायमें इस विषयमें अधिक ब्योरेसे चर्चा की जायेगी।

किस मौसममें जाना है, यह तय कर लेनेके बाद यह विचार करना चाहिए कि बिलकुल समुद्रके रास्तेसे जाना ठीक रहेगा या ब्रिंडिसीके रास्तेसे। पी० ऐंड ओ० के जहाज द्वारा लन्दन पहुँचनेमें लगभग २२ दिन लगते हैं, ब्रिंडिसी पहुँचनेमें तेरह दिन — वहाँसे लन्दनतक रेल द्वारा दो दिन लगते हैं। ऐसा लगता है कि पूरे तौरपर समुद्री यात्रासे रास्ता तय करना ही ज्यादा ठीक है। ऐसा करनेसे सामान हटाने, उसका निरीक्षण करवाने आदि असुविधाओंसे बच जाते हैं और पी० ऐंड ओ० के जहाजोंपर मिलनेवाले आरामका मजा भी ज्यादा देरतक लेनेको मिल जाता है।

साथ ही लम्बी समुद्री यात्रा स्वास्थ्यके लिए बहुत अच्छी है। कई लोग तो स्वास्थ्यके लिए महीनों समुद्री यात्रा करते रहते हैं। इन कारणोंसे समुद्री यात्रा करना ही ठीक माना जायेगा। खासकर जब उससे पैसेकी बचत भी हो। समुद्रकी राहसे लन्दन तक दूसरे दर्जेकी यात्राका भाड़ा ३७० रुपये है जब कि ब-रास्ता ब्रिंडिसी भाड़ा ४०० रुपयोंसे भी ज्यादा है। जिन्हें समुद्री यात्राके कारण बहुत मितली आती हों, उन्हें इसी कारण यात्रा करनेसे डर नहीं जाना चाहिए। क्योंकि ब्रिंडिसी पहुँचनेतक तेरह दिनमें मनुष्यको समुद्री यात्राकी आदत हो जाती है और मितली आना बन्द हो जाता है। मैं यही आशा करता हूँ कि ब्रिंडिसीसे बादकी यात्रासे कोई इस कारण बचनेका प्रयत्न तो नहीं ही करेगा कि समुद्रमें डूब मरनेका भय कम हो जायेगा। इंग्लैंड जानेके इच्छक किसी भी व्यक्तिके लिए ऐसा विचार शोभनीय नहीं है। याद रखें कि स्टीमरपर आपके अलावा और भी कई व्यक्ति होंगे। खतरा तो रेलयात्रामें भी है। सच तो यह है कि जिन्दगीमें हर स्थानपर खतरा है। अन्तर सिर्फ उसके कम-ज्यादा होनेमें है।

इसके बाद यह निर्णय करना बच रहता है कि किस कम्पनीके जहाजसे जायें। चुनावका क्षेत्र बहुत व्यापक है। सिटी, हाल, क्लैन आदि जहाज हैं। लेकिन सबसे अच्छे और लोकप्रिय पेनिन्सुलर ऐंड ओरिएंटल कम्पनीके जहाज हैं। सम्राज्ञीकी डाक आदि इन्हींमें भेजी जाती है। दूसरी कम्पनियाँ अपेक्षाकृत किराया कुछ कम लेती हैं और यदि कोई किसी उपर्युक्त कम्पनीके जहाजमें यात्राके लिए स्थान सुरक्षित करवाना चाहे तो वह मैनेजरसे मिलकर इसका प्रबन्ध कर सकता है। क्योंकि इन कम्पनियोंके किराये निश्चित नहीं हैं। फिर भी जहाँतक हो सके, पी० ऐंड ओ० के जहाजको ही पसन्द करना चाहिए। यात्राका टिकट बम्बईके मेसर्स किंग ऐंड कम्पनी या मेसर्स टामस कुक ऐंड सन्सकी मार्फत खरीदा जा सकता है। वे सदा सहायता करने और पूरी सूचना देनेके लिए तत्पर रहते हैं और वे कमीशन भी नहीं लेते।

पहले दर्जेका टिकट लें या दूसरे दर्जेका, यह बात तो बहुत-कुछ अपनी जेब पर निर्भर है। जहाँतक आरामका सवाल है, दोनोंमें ज्यादा अन्तर नहीं है। यह सच है कि पहले दर्जेमें ज्यादा अच्छा साथ और ज्यादा अच्छा खाना मिलता है, फिर भी दूसरे दर्जेमें खाना बुरा नहीं होता। और विशेषतः किसी शाकाहारीको तो पहले दर्जेके लिए पैसे खर्च नहीं करने चाहिए। अन्तर मुख्यतः भोजनमें ही होता है। और शाकाहारी तो मांस-मछली खाता नहीं है, इसलिए उसके लिए तो पहले दर्जेका टिकट लेना बेकार ही होगा। दूसरे दर्जेकी समुद्री यात्रामें ३७० रु० लगते हैं जब कि पहले दर्जेमें ६८० रुपये लगते हैं। ब्रिंडिसीके रास्तेसे दूसरे दर्जेकी यात्रा और दूसरे दर्जेका रेलका टिकट लेनेसे ४४५ रु० लगते हैं, रेलका पहले दर्जेका टिकट लेनेसे ५०० रुपये लगते हैं। रेलके पहले दर्जेके टिकट सहित पहले दर्जेका समुद्री किराया ८१० रुपये होता है। पहले दर्जेका यात्री जहाजमें ३३६ पौंडतक निजी सामान बिना किरायेके ले जा सकता है और दूसरे दर्जेका यात्री १६८ पौंड तकका सामान। जहाजपर भोजन आदिके बारेमें यहाँ कुछेक बातें बताना अनुपयुक्त न होगा। जिन्हें

मांस आदिके विरुद्ध आपत्ति नहीं है उनके लिए यहाँ विशेष कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं, सिवा इसके कि साधारणतः मनुष्य जिस किसी पदार्थकी इच्छा कर सकता है वे सब जहाजपर मिल जाते हैं। भोजनके विषयमें कम्पनीके विरुद्ध यदि कोई शिकायत की जा सकती है तो यही कि वहाँ यात्रियोंको जरूरतसे ज्यादा खिलाया जाता है। सुबहसे लेकर शामतक, रातके ग्यारह बजेतक थोड़ी-थोड़ी देरके बाद खानेको कुछ मिलता रहता है। सुबह ६ या सात बजे बिस्कुटके साथ चाय या काफी मिलती है। ८-३० बजे नाश्ता मिलता है, जिसमें जईका दलिया, मुरब्बा, मार्मलेड, डबलरोटी, मक्खन, सलाद, गोश्त और आलू जितना चाहें, खा लें। एक बजे भोजनमें गोश्त, आलू और गोभी, मिष्टान्न, डबलरोटी, मक्खन आदि मिलता है। सप्ताहमें दो बार फल और मेवे भी साथ दिये जाते हैं। दोपहर चार बजे चाय और बिस्कुट ले सकते हैं। छः बजे फिर बढ़िया खाना जिसमें सलाद, पनीर, डबलरोटी, मक्खन, मुरब्बा, मार्मलेड, चाय, कोको आदि दिये जाते हैं। और रही-सही कसर पूरी करनेके लिए सोनेसे पूर्व यदि भूख लगे तो बिस्कुट और पनीरसे भूख मिटाई जा सकती है। किसी भारतीयको तो यह सब विचित्र और पेटूपन लगेगा। कोई भी शाकाहारी उपर्युक्त बातोंसे देख सकता है कि स्टीमरमें उसके खाने लायक बहुत-सी चीजें मिलती हैं। हो सकता है कि यदि कोई भारतीय अंग्रेजी भोजनका आदी न हो तो उसे ये चीजें कुछ समय बाद ही अच्छी लगें। कुछ समय बाद उसे मालूम होगा कि खानेमें ये चीजें बहुत अच्छी हैं और पौष्टिक हैं। सावधानीके तौरपर थोड़े ताजे फल और जलेबी, हलवा आदि मिठाइयाँ, गाँठिया आदि कुछ नमकीन अपने पास रख लेना चाहिए। इनके साथ कभी-कभी अंग्रेजी खाना खा लेनेसे काम चल जायेगा। ध्यान रहे कि अंग्रेजी भोजनकी चीजें धीरे-धीरे बढ़ाते जायें और देशी चीजें कम कर दें। क्रमशः ऐसा करते रहनेसे भोजन बदल जानेका आभास भी नहीं होगा और स्वास्थ्यको भी कोई हानि नहीं होगी। शाकाहारीको जहाजपर ये चीजें मिल सकती हैं: डबलरोटी, मक्खन, दूध, फल, मेवे, मुरब्बा, मार्मलेड, चावल, पनीर, आलू, गोभी, सलाद, केक, चाय, काफी, बिस्कुट, दलिया। खानेकी इतनी सारी चीजें सचमुच काफी हैं। और हर बार भोजनके लिए नई चीजोंको मिलाया जा सकता है। दलिया, रोटी, मक्खन, कोको या अच्छी लगती हो तो चाय, इनसे बढ़कर पौष्टिक कोई चीज नहीं हो सकती। भोजनके लिए आप पहले डबलरोटी, मक्खन और सब्जी ले सकते हैं, दूसरी बार चावल, दूध और मुरब्बा और तीसरी बार कुछ फल, या डबलरोटी और पनीर ले सकते हैं। डबलरोटी, मक्खन, कोको और मुरब्बा और सलाद या पनीर या दोनों ही लेनेसे शामके भोजनका काम बढ़िया चल जाता है। यदि ये पर्याप्त न हों तो शाकाहारियोंके लिए विशेष प्रबन्ध किया जाता है। जहाजके मुख्य परिचारकको सूचित कर देना चाहिए और उससे कुछ शाकाहारी भोजनकी व्यवस्था करवानेका अनुरोध करना चाहिए। वह आपकी इच्छाके अनुकूल रसदार सब्जी, ताजे फल, पकाये हुए फल, ब्राउन रोटीका प्रबन्ध कर देगा। इससे ज्यादाकी इच्छा करना आवश्यक भी नहीं है। लेखकने जहाजपर अपना काम कैसे चलाया इसके

सम्बन्धमें कुछ दिलचस्प तथ्य परिशिष्टमें दिये गये हैं।[1] यदि कोई कट्टर भारतीय किसी यूरोपीय द्वारा बनाये गये भोजनको न खाना चाहे तो भारतीय भागमें वह अपना खाना स्वयं पका सकता है; वहाँ उसे खाना बनानेके लिए स्थान दे दिया जायेगा। ऐसा करना उचित है या नहीं, यह एक दूसरी बात है। इसका उल्लेख सिर्फ इस प्रचलित भ्रान्तिको दूर करनेके लिए किया गया है कि यूरोपीयों द्वारा पकाया खाना लेनेके सिवा वहाँ कोई चारा नहीं है।

जहाजपर और इंग्लैंडमें शाकाहारी बने रहना सम्भव है या नहीं, इस बहु-चर्चित और महत्त्वपूर्ण प्रश्नको अलग अध्यायमें उठाया जायेगा। इस वक्त तो इतना ही कह देना काफी है कि मांस या शराब लेना बिलकुल जरूरी नहीं है; और शराब पीना तो हानिकारक ही है।

लन्दन पहुँचनेपर कहाँ जायें, यह दिक्कत सामने आती है। लन्दन मेमोरियल हाल, फेरिंगडन स्ट्रीटसे प्रकाशित होनेवाले 'वेजिटेरियन' समाचारपत्रके सम्पादकने कृपापूर्वक आवश्यक जानकारी देने और जहाँ सब-कुछ अच्छा और सस्ता मिल सकता है वहाँ निवासके लिए उचित स्थान खोज देना स्वीकार किया है। यहाँ मैं 'वेजि-टेरियन' के सम्बन्धमें दो शब्द कहनेकी अनुमति चाहता हूँ। मुझे लगता है कि जो भारतीय अंग्रेजोंको शाकाहारी बनाना चाहते हैं, लन्दनमें इस समय चल रहे आन्दोलनसे जिन्हें सहानुभूति है, उन सबको इस पत्रका ग्राहक बन जाना चाहिए। उसे खास इसलिए न खरीदें कि उससे बुद्धिको कुछ सामग्री मिलती है, या उसमें कुछ जानकारी दी गई है या उसमें ऊँचे दर्जेके विचार दिये गये हैं, हालाँकि ये सब भी किसी तरह निम्न श्रेणीके नहीं हैं बल्कि उसे इसलिए खरीदें कि उससे एक ऐसे आन्दोलनको प्रोत्साहन मिलेगा जो हर भारतीयको प्रिय होना चाहिए। हम फिरसे अब मुख्य विषयको लें। लन्दन वेजिटेरियन सोसाइटीके सदस्य भारतीयोंका सदा बड़े स्नेहसे आदर-सत्कार करते हैं। और 'वेजिटेरियन' के सम्पादकसे ज्यादा मिलनसार व्यक्ति मिलना मुश्किल है। यदि इंग्लैंड जानेवाला हर भारतीय सम्पादकको अपने आनेकी सूचना दे दे तो इससे उसे बहुत लाभ होगा। मुझे शायद यह सुझाव भी देना चाहिए, हालाँकि इसमें सम्पादकका बिलकुल कोई हाथ नहीं कि ऐसा करनेवाले हर व्यक्तिके लिए उचित तो यही होगा कि वह सोसाइटीका सदस्य या पत्रका ग्राहक बन जाये।

यदि उपर्युक्त सुझाव ठीक न लगे या सुविधापूर्ण न हो तो चेरिंग क्रॉसके 'वेजिटेरियन' होटलमें जाकर टिकना सबसे अच्छा होगा, भले ही व्यक्ति शाकाहारी हो या मांसाहारी। पुस्तकके अन्तमें होटलोंकी सूची दी गई है, उसमें से कोई एक होटल चुन सकते हैं। परिशिष्ट में दिये गये स्थानोंकी दरें बिलकुल ठीक हैं। दूसरे होटल बहुत महँगे सिद्ध होंगे। जहाजसे उतरते ही भाड़ा-गाड़ी हमेशा मिल जाती है, जो आपको पता बतानेपर ठीक स्थानपर ले जायेगी। इतना समझ लेना चाहिए

१. **आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १३ भी देखिए।

कि जबतक स्थायी स्थान नहीं मिलता तभी तकके लिए रहनेका यह प्रबन्ध है, सो इसके बाद आपको रहनेके लिए एक अच्छे और उपयुक्त कमरेकी तलाश करते रहनी है। यह काम किसी एक ऐसे मित्रके साथ किया जा सकता है जिसे आप जानते हों या जिसके नाम आपको परिचयपत्र दिया गया हो।

अध्याय ३

रहनेका खर्च

यही प्रश्न उलझनमें डालनेवाला है। इसी प्रश्नको उठानेका सबसे ज्यादा लोभ होता है, लेकिन यह उतना ही अरुचिकर भी है। इस प्रश्नको गम्भीरतापूर्वक उठायें तो प्रत्येक व्यक्तिसे मतभेद होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपना अनुमान बतायेगा, हर व्यक्तिका यही विचार होगा कि किसी दूसरेका अनुमान सही नहीं हो सकता और सही हो तो भी प्रत्येक व्यक्तिके लिए तदनुसार खर्च करना सम्भव नहीं हो सकता। और सामान्य स्थितिके व्यक्तिके लिए तो यही प्रश्न विशेष रूपसे महत्त्वका है। विचित्र बात तो यह है कि यद्यपि सब इस प्रश्नको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते हैं, फिर भी इंग्लैंड जानेके इच्छुक भारतीयके सामने जो आम प्रश्न उठते हैं उनमें से जितनी कम जानकारी इसके बारेमें मिलती है उतनी और किसी प्रश्नके सम्बन्धमें नहीं। फिर यह भी सही है कि साधारणतः हर मास १० से २० पौंडतक खर्चका अनुमान बताया जाता है। प्रति मास १० पौंडमें निर्वाह करनेवाला बहुत ही मितव्ययी माना जाता है। ऐसे अनुमानोंके रहते यह कहें कि महीनेमें ४ पौंड या सप्ताहमें १ पौंड में मजेसे काम चल सकता है तो शायद कोई विश्वास नहीं करेगा। फिर भी इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रति सप्ताह एक पौंडमें निर्वाह हो सकता है और यह तत्काल प्रमाणित किया जा सकता है कि कई लोगोंने तो इससे कममें भी काम चलाया है। मैं कहना चाहता हूँ कि मैंने स्वयं यह प्रयोग सफलतापूर्वक करके देखा है और चार पौंडसे कम खर्चमें निर्वाह करते हुए मुझे जो आनन्द मिलता था वैसा और कभी नहीं मिला। जिस समय मेरा खर्च चार पौंड था, उस समय मुझे बहुत ज्यादा काम करना पड़ता था। पाठक देखेंगे कि १२ पौंड प्रतिमासके खर्चको मैं धीरे-धीरे कम करके ४ पौंडतक कैसे ले आया (परिशिष्ट क)।

सबसे पहले तो मकानका किराया लें। सामान्यतः यह माना जाता है कि विद्यार्थीको दो कमरे लेने चाहिए, एक सोनेके लिए, एक बैठकके लिए। सिवा इसके कि आप यह दिखाना चाहें कि आप बहुत धनी हैं और बहुत-सा धन खर्च कर सकते हैं यह बिलकुल निरर्थक है। यह संदर्शिका उन लोगोंके लिए नहीं है, जो अपने धनका प्रदर्शन और सो भी बहुधा झूठा प्रदर्शन करना चाहते हैं। यह पुस्तिका उन लोगोंके लिए है जो विद्यार्थीकी तरह नियमित जीवन बिताना चाहते हैं और जितना कम हो सके उतने कममें रहना चाहते हैं। कई व्यवसायी अविवाहित सज्जन सिर्फ एक ही कमरेमें रहते हैं। कई भारतीय और हजारों अंग्रेज विद्यार्थी तो एक कमरेमें रहते ही

हैं। दो कमरे विद्यार्थियोंके लिए नहीं, परिवारोंके लिए ठीक होते हैं। यदि आप किसी अच्छे इलाकेमें आवश्यक फर्नीचरके साथ सिर्फ एक ही कमरा किरायेपर लें तो ऐसा कमरा प्रति सप्ताह ७ शिलिंग या उससे कममें मिल जाता है। एक कमरा २ शिलिंग प्रति सप्ताहके किरायेपर भी मिल जाता है। मैं कम खर्चका अनुमान दे रहा हूँ। ऐसे कमरे उत्तरी, पश्चिमी, केन्द्रीय लन्दन, पश्चिमी केंसिंग्टन, वेस्टबोर्न पार्क और लन्दनके कई अच्छे इलाकोंमें, जहाँ भारतीय विद्यार्थी सामान्यतः रहना पसन्द करते हैं, मिल जाते हैं। ऐसे कमरेमें आप एक मेज, तीन या चार कुर्सियाँ, एक आरामकुर्सी, आवश्यक सामानके साथ हाथ-मुँह धोनेकी मेज, चूल्हा, आलमारी शायद एक किताबोंकी आलमारी, छोटी आलमारी, कालीन, कम्बल और चादर सहित पलंग, शीशा आदि चीजें पायेंगे। क्या भारतीय विद्यार्थी इससे ज्यादा सजे कमरोंके आदी होते हैं? सच तो यह है कि नवागत भारतीय, जिसे दो कमरोंकी आदत न हो, ऐसे एक ही कमरेपर मुग्ध हो जायेगा और इससे अधिककी इच्छा नहीं करेगा। जब मैंने विक्टोरिया होटलका अपना कमरा पहली बार देखा तो मुझे लगा कि मैं वहाँ सारा जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। आपको जहाँ सबसे ज्यादा काम रहनेवाला हो उसी स्थानके आसपास कमरा ढूँढना सबसे ठीक रहता है। ऐसा करनेसे ट्राम या बसके खर्चमें बचत होती है।

फिर दूसरे खर्च लें जैसे कि धुलाई, स्नान आदिका। धोबीका खर्च प्रति सप्ताह ११ पेंससे ज्यादा नहीं होना चाहिए। यह इस प्रकार होगा:

	पेंस
१ फलालैनकी कमीज	२
१ जाँघिया	२
१ बनियान	२
२ रूमाल	१
१ सोनेका सूट	४
कुल	११ पेंस

यदि आप जाँघिया इस्तेमाल न करें तो इस खर्चमें बचत हो सकती है खासकर गर्मियोंमें; तब जाँघिया पहनना इतना जरूरी नहीं होता। सोनेका सूट पन्द्रह दिनके बाद बदल सकते हैं। थोड़ी कोशिशसे ऐसा धोबी मिल सकता है जो एक जाँघिया १½ पेंसमें और सोनेका सूट ३ पेंसमें धो देगा। यदि आप कभी सप्ताह-भर फलालैनकी कमीजके बदले नियमित रूपसे सफेद कमीजें पहनते रहेंगे तब धोबीका बिल ६ या ८ पेंस ज्यादा हो जायेगा। पर औसतन किसी भी सूरतमें यह खर्च प्रति सप्ताह ११ पेंससे ज्यादा नहीं होना चाहिए।

जहाँतक स्नानका सवाल है, सिर्फ नवनिर्मित घरोंमें ही कमरोंके साथ स्नानगृह बने हुए हैं। साधारण घरोंमें स्नानगृह नहीं होंगे। ऐसी हालतमें बहुतसे लोग सप्ताहमें

एक बार सार्वजनिक स्नानगृहमें नहाने जाते हैं; वहाँ नहानेके लिए ६ या ४ पेंस देने पड़ते हैं। लेकिन आप जहाँ भी रहें वहीं विना किसी खर्चके प्रतिदिन स्नान कर सकते हैं। आपके अनुरोधपर मकान मालकिन हमेशा सुबह दो-तीन लोटे गर्म पानी जरूर दे देगी। आप उतने पानीसे शरीर पोंछ सकते हैं। आप पानी बर्तनमें डाल दें, उसमें स्पंज भिगो कर उससे शरीरको कसकर दो-तीन बार पोंछ लें, फिर सूखे तौलियेसे रगड़ लें। बस आपने अच्छी तरह नहा लिया। आप स्पंजके उपयोगके बदले सिर्फ हाथोंसे भी यही कर सकते हैं। इससे शरीरमें चमक आ जायेगी; वह साफ हो जायेगा। इस दैनिक स्नानके अतिरिक्त आप पन्द्रह दिन या महीनेमें एक बार सार्वजनिक स्नानगृहमें नहाने भी जा सकते हैं। मकान मालकिन हर सप्ताह दो तौलिए देती है। कमरा किरायेपर लेनेसे पूर्व ये सब बातें मकान मालकिनसे तय कर लेनी चाहिए, ताकि भविष्यमें गलतफहमी न हो। जब भी आप कमरा किराये पर लेने जायें, मकान मालकिनको समझा दें कि साप्ताहिक किरायेमें आप क्या-क्या शामिल करना चाहते हैं। सामान्यतः किरायेमें जूता-पालिश, चादरें, तौलिए, कुछ काम-काज, सुबह गर्म पानी देना आदि शामिल किये जाते हैं।

साधारणतः लोग समझते हैं कि वहाँ कड़ी सर्दीके कारण रोज नहा नहीं सकते; ऐसा कहना सही नहीं है। उलटे अच्छे स्वास्थ्यके लिए रोज स्नान करना जरूरी है। मेरी पहचानकी एक मकान मालकिनने तो अपने किरायेदारको सिर्फ इसलिए भगा दिया कि वह रोज नहाता नहीं था। वह अकसर कहा करती थी : "धार्मिकता-के बाद स्वच्छताका दर्जा है।" चाहे कितनी ठण्ड हो वह इस बातका पूरा ध्यान रखती थी कि उसके यहाँ हर व्यक्ति सुबह जरूर स्नान करे।

स्नानके बाद आता है आने-जानेका खर्च। यह प्रति सप्ताह ६ पेंससे ज्यादा नहीं होना चाहिए। जहाँ काम करना है उसके आसपास रहनेसे रोजके आने-जानेका खर्च तो बच जाता है, पर रविवारको कुछ मित्रोंसे मिलने जाना जरूरी हो सकता है और कुछ पैसे उसमें लग सकते हैं। यह भी सम्भव है कि किसी सप्ताह आवश्यक होनेपर आप एक शिलिंग खर्च कर डालें और अगले सप्ताह कुछ भी खर्च न करें। लेकिन जब भी सम्भव हो, पैदल जाना सबसे अच्छा रहता है ताकि कसरत भी हो जाये और साथ ही पैसा भी बचे। इससे बढ़िया बात और क्या हो सकती है? इंग्लैंडमें कई लोग जानबूझ कर ऐसा करते हैं। सो भी थोड़ा बहुत पैसा बचानेके विचारसे नहीं, व्यायामके विचारसे। इंग्लैंडकी ठंडी जलवायुमें तीन या चार मील चलनेमें मजा आता है। जब कभी सम्भव हो, गाड़ीमें या बसमें जानेकी बजाय चुस्ती-से पैदल जाना पसन्द करें। गाड़ीमें या बसमें जाना कई बार हानिकर भी सिद्ध होता है। एक बार मैं बसमें बैठा-बैठा सचमुच जकड़-सा गया। बसमें टिकट देने वाले इस खतरेसे वाकिफ हैं। वे बीच-बीचमें बसके साथ भाग लेते हैं और थोड़ी गर्मी आ जानेपर बसमें चढ़ जाते हैं।

औसतन हर सप्ताह ६ पेंस टिकटोंके लिए अलग रखे जा सकते हैं। यों इतनी रकमकी आवश्यकता नहीं है।

यदि आप महीनेमें दो बार बाल कटवायें, तो ८ पेंस लगेंगे इसलिए बाल कटवानेके लिए प्रति सप्ताह २ पेंस बचा लें। दाढ़ी तो खुद ही बनानी होगी।

पियर्स साबुनकी एक टिकिया महीना-भर चलेगी। इसके दाम हैं ३½ पेंस। इसलिए आप साबुनके लिए प्रति सप्ताह १ पेंस निकाल लें।

हर सप्ताह दन्त-मंजनके लिए एक पेनी रखें। वैसे यह थोड़ी फिजूलखर्ची है। आप खड़िया मिट्टीसे बहुत अच्छा और निर्दोष मंजन बना सकते हैं। ४ औंस खड़िया मिट्टी ६ पेंसमें मिल जाती है। एक औंस मिट्टी एक सप्ताहके बजाय लगभग एक महीना चलेगी।

खर्चकी एक बहुत बड़ी मद है; उसे भूलना नहीं चाहिए। सर्दीके दिनोंमें यदि आप दिनके समय कमरेमें रहें तो आपको अँगीठी जलानी पड़ेगी। जो विद्यार्थी हैं और पुस्तकालयमें काम करने जाते हैं उनका ज्यादा खर्च नहीं होता। लेकिन दूसरोंको प्रति सप्ताह लगभग दो शिलिंग खर्च करने पड़ते हैं। दो शिलिंगमें ४ तसले कोयला मिल जाता है। लेकिन साधारणतया अप्रैलसे सितम्बरतक अँगीठीकी जरूरत नहीं पड़ती। हम कोयलेका औसतन खर्च प्रति सप्ताह १ शिलिंग लगा सकते हैं।

इतना हुआ प्रति सप्ताहका अतिरिक्त खर्च। इसका कुल हिसाब यों लगा सकते हैं।

	पेंस
धोबी	११
स्नान	६
आना-जाना	६
डाक-टिकट, आदि	६
बाल कटवाई	२
साबुन	१
मंजन	१
कोयला	१२
अतिरिक्त	३
	कुल ४ शि०–० पें०

कमरेका किराया ७ शिलिंग देनेपर और ४ शिलिंग ऊपरी खर्चके निकाल देनेके बाद भोजनके लिए ९ शिलिंग बचते हैं। यहाँ यह कह दूँ कि जब कभी जरूरत हो तो इन ११ शिलिंगमें से भी कुछ बचाया जा सकता है, और बचे हुए पैसे भोजन या पुस्तकों तथा दूसरी उपयोगी चीजोंमें खर्च किये जा सकते हैं। उदाहरण-के लिए डाक टिकटोंके लिए रखे गये ६ पेंसोंमें से एकाध पैनी ही खर्च की जाये। मैं सोचता हूँ कि घर पोस्टकार्ड लिख भेजनेके लिए तो एक पैनी खर्च करना जरूरी होगा। यदि रोज स्पंजसे शरीर पोंछते हों तो सार्वजनिक स्नानगृहमें हर सप्ताह

जानेके बजाय पन्द्रह दिनमें (खासकर सर्दीमें) एक बार जायें। इसी तरह कभी-कभी आने-जानेपर बिलकुल खर्च न करें। उसको हमने गिन तो लिया है पर जरूरी नहीं है कि उसके लिए रखे पैसे खर्च ही किये जायें। हमारा उद्देश्य यही होना चाहिए कि आरामसे रहते हुए हम औसतन सप्ताहमें एक पौंडसे ज्यादा खर्च न करें।

रहनेके खर्चसे सम्बन्धित इस चर्चाका यह अंश उतना विवादास्पद नहीं है, जितना भोजन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अंश है। अब हम उसको लेते हैं।

प्रश्नके इस पहलूपर बहुत कुछ कहा जा सकता है। उसके सम्बन्धमें बहुत-से पूर्वग्रह और गलतफहमियाँ हैं; उन्हें दूर करनेकी जरूरत है। इस प्रश्नपर विस्तार-पूर्वक विचार करना हो तो एक अलग और बड़ी पुस्तक लिखनी पड़ेगी।

हमारे सामने सवाल यह है कि हर सप्ताह ९ शिलिंगमें अच्छा, पौष्टिक और रुचिकर भोजन कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

शुरूमें ही यह कह देना ठीक होगा कि इस रकमसे उन्हीं लोगोंका काम चल सकता है जो जीनेके लिए खाते हैं; उन लोगोंका नहीं जो खानेके लिए जीते हैं। जिन्हें स्वादिष्ट भोजन चाहिए, जो अकेले खाना नहीं खा सकते हैं, जो रोज मित्रोंको बुलाकर पकवान खिलाना चाहते हैं, जो पेटूकी तरह रहना चाहते हैं, उनके लिए इससे दस गुनी रकम भी पर्याप्त न होगी। यदि आप कम खर्च करते हुए प्रसन्नतापूर्वक रहना चाहते हैं और ठाठसे नहीं रहना चाहते हैं तो ९ शिलिंग प्रति सप्ताह कम नहीं हैं।

मेरा पाठकोंसे हार्दिक अनुरोध है कि वे मनसे सब पूर्व धारणाएँ, सब पूर्वग्रह निकाल दें; तब मुझे विश्वास है कि वे स्वयं यह देख सकेंगे कि ९ शिलिंग प्रति सप्ताह भोजनके लिए पर्याप्त हैं। उससे स्वास्थ्यको कोई हानि नहीं होगी, बल्कि वह अधिक ठीक रहेगा।

उदाहरण देनेसे बात जितनी स्पष्ट होती है, उतनी और किसी बातसे नहीं; इसलिए कोई भी मितव्ययी व्यक्ति जिसका जन्म धनी परिवारमें न हुआ हो या कहिए जिसने विलासमय जीवन न बिताया हो, प्रति सप्ताह एक पौंड खर्च कर अच्छी तरह निर्वाह कर सकता है, अपने इस कथनके समर्थनमें मैं कुछ उदाहरण दूंगा। इंग्लैंडमें हजारों व्यवसायी सज्जन प्रति सप्ताह एक पौंडमें निर्वाह करते हैं। एक आंग्ल-भारतीयसे मेरी बात हुई; उन्होंने मुझे बताया कि वह १ पौंड खर्च करते हैं। एक सज्जन हैं, जो एम० ए०, बी० ई० एल० बैरिस्टर हैं; वे प्रति सप्ताह १० शिलिंग खर्च किया करते थे और अभीतक सप्ताहमें एक पौंडसे भी कम खर्चमें निर्वाह करते हैं। वे एक समाचारपत्रके सम्पादक हैं और मैंने उन्हें दिनमें सोलह घंटे या उससे भी ज्यादा समय काम करते देखा है। जब मैं उनसे अन्तिम बार मिला, उन दिनों वे रोटी, अंजीरों और पानीपर ही रह रहे थे।

कई आयरिश संसद सदस्य प्रति सप्ताह एक पौंडमें निर्वाह करते हैं। इनमें से कुछ तो सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं। मेरा विचार है कि संसद सदस्य स्वर्गीय श्री बिगर सप्ताहमें एक पौंड खर्च किया करते थे।

और चार्ल्स ब्रेडला क्या करते थे ? श्रीमती एनी बेसेंट उनके बारेमें लिखती हैं :

उन्होंने अपनी पुस्तकोंके सिवा सब-कुछ बेच दिया। अपना वह घर बेच दिया जिसे उन्होंने परिश्रमसे कमाया हुआ धन लगाकर बनाया था। फर्नीचर बेच दिया, हीरेकी वह अंगूठी तक बेच दी, जो किसी व्यक्तिने उनकी सहायताके लिए आभार व्यक्त करनेके लिए उन्हें दी थी। उन्होंने बच्चोंको स्कूल भेज दिया। उनकी पत्नी अपने माता-पिताके घर चली गई, क्योंकि उसमें ऐसा जीवन सहन करने लायक शारीरिक शक्ति नहीं थी। उन्होंने टर्नर स्ट्रीट, वाइट चैपलमें दो कमरे किरायेपर लिये, जिनका साप्ताहिक किराया वे ३ शि० ६ पेंस देते थे और जबतक उन्होंने अपना अधिकांश कर्ज अदा नहीं कर दिया वे इन्हीं कमरोंमें रहे। इसके बाद वे सर्कस रोड, सेंट जॉन्स वुडपर स्थित एक संगीतकी दूकानके ऊपरी भागमें रहने लगे और जिन्दगीके बाकी दिन वहीं बिताये। १८७७ में अपनी माँकी मृत्युके बाद उनकी बेटियाँ उनके पास चली आईं। . . . जब उनकी मृत्यु हुई, तब वे निर्धन ही थे, उनकी कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी, सिर्फ उनका पुस्तकालय, उनके भारतीय उपहार और पहननेके मामूली कपड़े ही बचे थे। पर उनके नामपर कोई कलंक और कीर्तिपर कोई बट्टा नहीं था।

और उन्होंने १० शिलिंग प्रति सप्ताहपर काम करना शुरू किया था; यह हम सब जानते हैं कि उनकी बुद्धि कितनी तेज और उनका शरीर कितना बलवान था। यदि कार्डिनल मैनिंगके बारेमें जो-कुछ लिखा गया है वह सही हो तो जहाँतक भोजनका सवाल है, वे उसपर ९ शिलिंग प्रति सप्ताहसे ज्यादा खर्च नहीं करते थे।

अब एक ऐसे व्यक्तिका उदाहरण लें जो प्रसिद्ध है और जीवित है। इंग्लैंडमें आर्चबिशप मैनिंगसे अधिक परिश्रमी व्यक्ति कम ही होंगे। उनके जीवनमें चिन्ताएँ और कठिनाइयाँ भरपूर हैं। लेकिन जिन लोगोंका उनसे बहुत निकटका व्यक्तिगत सम्पर्क है, उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है कि 'लोथेर' में श्री डिजराइलीने इनके स्वाभाविक मिताहारका जो वर्णन किया है उसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। साधारणतः उनके भोजनमें बिस्कुट या रोटीका टुकड़ा और पानीका गिलास होता है, फिर चाहे वे एकान्तमें खायें या सबके सामने।

यह तो प्रसिद्ध ही है कि वे शराब छूते तक नहीं हैं।

डा० निकोलस जिनकी पुस्तकसे उपर्युक्त उद्धरण दिया गया है, दिनमें भोजन पर ६ पेंस (प्रति सप्ताह ३ शि० ६ पेंस) से ज्यादा खर्च नहीं करते थे और शायद अब भी नहीं करते। उन्होंने एक पुस्तक लिखी है 'हाउ टु लिव ऑन सिक्स पेंस ए डे'। किफायतसे रहनेके इच्छुक सभी व्यक्तियोंको यह पुस्तक जरूर पढ़नी चाहिए, उसमें उन्होंने बड़े मजेदार ढंगसे अपने प्रयोगका वर्णन किया है।

इस विषयपर बहुत-सी किताबें लिखी गई हैं। एक किताबका शीर्षक है 'हाउ टु लिव ऑन वन पौंड ए वीक।' इसमें रहने, कपड़े, भोजन आदि सबका खर्च शामिल है।

यहाँतक कि एक सज्जनने तो भोजनके साप्ताहिक खर्चमें एक शिलिंग तक कम करनेकी चेष्टा की है और इस विषयपर पुस्तक लिखी है। हमने तो भोजनके लिए इससे नौ गुनी रकम रखी है।

इन सब उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायेगा कि १ पौंडमें सप्ताहका खर्च चलाना सम्भव है और कई लोग इसमें सफल हुए हैं।

कोई पूछ सकता है कि क्या किसी भारतीयने ऐसा किया है। हाँ, एक सज्जनने जो पंजाबमें जज हैं, ऐसा किया है। जिन दिनों मैं इंग्लैंडमें था, वे छुट्टीपर बैरिस्टरीकी शिक्षाके लिए आये। उनकी आयु चालीस वर्षके ऊपर होगी और इंग्लैंडमें उनका बेटा उनके साथ था। उन्होंने बताया कि उनका वेतन १५० रुपये है जिसमें से ५० रुपये वे अपनी पत्नीको घर भेजते हैं और पचास रुपये अपने और लड़केके लिए लन्दनमें खर्च करते हैं। इसका अर्थ हुआ महीनेके लिए ३$\frac{१}{३}$ पौंड अर्थात् दो व्यक्तियोंके लिए १ पौंडसे भी कम साप्ताहिक खर्च। इस कम रकममें उन्होंने छोटी-छोटी और कई चीजें भी शामिल कर ली थीं जिनका हमने १ पौंडमें हिसाब नहीं लगाया।

गुजरातके एक अन्य भारतीय सज्जन सप्ताहमें १० शिलिंगसे भी कम खर्च करते थे और लगता था कि वे काफी आनन्दसे हैं। वे अपने मित्रके साथ जिस कमरेमें रह रहे थे उसका किराया ४ शि० था। इस तरह उन्हें निवासस्थानके लिए सिर्फ २ शि० देना पड़ता था। ये सज्जन इंग्लैंडमें चिकित्साशास्त्रका अध्ययन कर रहे थे। साधु नारायण हेमचन्द्र १ पौंडमें सप्ताहका खर्च चलाते हैं।[१] उनके कमरेका साप्ताहिक किराया ६ शिलिंग है। वे हर हफ्ते ३ या ४ पेंस धुलाईके लिए और ७ शि० भोजनके लिए खर्च करते हैं। वे बहुत परिश्रम करते हैं, अपने पत्रमें वे लिखते हैं कि अब उन्होंने जर्मन, अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाएँ सीख ली हैं। सप्ताहमें एक पौंड खर्च करते हुए वे उसीमें से अपने कपड़े और किताबें भी खरीद लेते हैं। उनकी किताबोंका एक बक्सा तो मैं भारत ले आया था। अबतक तो उन्होंने फिरसे ज्यादा नहीं तो कमसे-कम उतनी किताबें जरूर खरीद ली होंगी।

एक सज्जन, जो अभी हाल ही में इंग्लैंड गये हैं, लिखते हैं:

> **हो सकता है कि मेरे पिछले पत्रको पढ़कर आप मेरे विषयमें कोई अच्छी धारणा न बना पाये हों। मैं स्वयं अपने उस समयके रहन-सहनसे ज्यादा सन्तुष्ट नहीं हूँ। लेकिन आप जानना चाहते थे कि मैं किस तरह निर्वाह कर रहा हूँ। इसलिए मुझे अपने सच्चे विचार लिखने पड़े। तबसे लेकर धीरे-धीरे बहुत परिवर्तन हो गया है। जिसे मैं असम्भव मानता था वह अब व्यवहारतः सम्भव हो गया है। महीने-भरमें ६ पौंड खर्च करना अब एक**

१. देखिए **आत्मकथा,** भाग १, अध्याय २२।

पुरानी बात हो गई है; आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अब मैं लन्दनमें भी अपने रहने-सहनेका खर्च तीन पौंडतक सीमित रख पाता हूँ।

इन सब तथ्योंको देखते हुए मुझे आशा है कि पाठकोंको यह समझने और मेरे साथ सहमत होनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि यदि व्यक्तिकी इच्छा हो तो वह १ पौंड या उससे भी कम रकममें इंग्लैंडमें रह सकता है।

अब हम इस प्रश्नका उत्तर देंगे कि ९ शिलिंगमें सप्ताह-भर कैसे काम चलायें।

सबसे पहले शायद यह बता देना चाहिए कि कम खर्चमें काम चलाना हो तो भोगकी सभी चीजोंसे दूर रहना चाहिए जैसे चाय, काफी, तम्बाकू, शराब और मांसाहार। यह बात अन्तमें लिखी गई है, पर यह किसी भी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है।

ऐसे भी लोग हैं जो कहेंगे कि चायके बिना इंग्लैंडमें काम चलाना असम्भव है; कुछ कहते हैं कि काफीके बिना नहीं चला सकते; यह कहनेवाले भी हैं कि आप तम्बाकू, शराब या मांसके बिना जीवित नहीं रह सकते। इन सब सज्जनोंसे पूछना चाहिए कि उन्हें जानकारी किस सूत्रसे मिली है; इसीसे समस्या हल हो जायेगी। यह कथन निरर्थक बकवास है। मांसके बारेमें मतभेद है। लेकिन जहाँतक बाकी चीजोंका सवाल है इंग्लैंडसे लौटनेवाला हर भारतीय आपको बता सकता है कि इनमें से एक भी चीज आवश्यक नहीं है। हाँ, आप चाहें तो अपने आनन्द और मजेके लिए उनका सेवन कर सकते हैं। फिर भी लन्दनमें चाय या काफीके विषयमें लोगोंका क्या विचार है? चाय और काफीके बारेमें डा० निकोलस कहते हैं:

> चाय या काफी जैसे कम नशीले पेयोंमें भी कोई विशेष पौष्टिक तत्त्व नहीं होते। काश! चायकी पत्तियों या काफीके दाने भी उतने ही पौष्टिक होते, जितना कि उतने वजनका शाक, परन्तु हम जो पेय लेते हैं उनमें तो पौष्टिकता नाम-मात्रको ही मिलती है। जहाँतक भोजनका सवाल है और शरीरको पोषण देनेकी योग्यताका सवाल है, एक औंस रोटीमें घड़ों चाय या काफीसे ज्यादा गुण हैं। उनमें मिलाई जानेवाली चीनी और दूध तो भोजन हैं, लेकिन शेष सब लगभग बेकार है। उनमें नशीले और शामक तत्त्व होते हैं; इस कारण उनके सेवनसे भूख कम लगती है। कुछ शरीर-शास्त्रियोंका विचार है कि इससे किये हुए भोजनका कोई अंश बेकार नहीं जाता और इसलिए कम भोजनकी जरूरत होती है। यदि यह सच है तो इससे हानि होगी, क्योंकि कुछ भोजन-का बेकार जाना और उस बेकार अंशका निकल जाना शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेके लिए जरूरी है। चाय और काफी तो सिर्फ उत्तेजक पेय हैं और उनका या तो शरीरपर जो प्रभाव पड़ता है वह बिलकुल मामूली लाभ पहुँचाता है या फिर वह प्रभाव हानिकर ही होता है। दोनों ही को खूब उबाल कर पीनेसे मस्तिष्क और शिराओंको उत्तेजना मिलती है जिसके फलस्वरूप हम ज्यादा काम करते हैं। कुछ हदतक तो ये पेय थकानको दूर करते हैं जिससे

हम अपनी शक्तिका अति उपयोग करते चले जाते हैं, और फिर कालान्तरमें हम अजीर्ण, वातशूल, मानसिक दुर्बलता, पक्षाघात आदिके शिकार बन जाते हैं।

चायकी चर्चा करते हुए एक सुविख्यात और अनुभवी भारतीय डाक्टरका कथन है कि उनके मरीज जबतक चाय नहीं छोड़ देते, वे उनकी चिकित्सा नहीं करते। फिर भी यदि चाय-काफीका सेवन करना हो तो उससे खर्च इतना नहीं बढ़ता जितना कि उनके कारण पौष्टिक भोजनमें कमी हो जाती है। क्योंकि वे दूधका स्थान लेंगे और दूध तो चाय या काफी दोनोंसे कई दर्जे अच्छा है। आर्थिक दृष्टिसे देखें तो घरमें बनाये हुए एक कप चाय या काफीका मूल्य एक गिलास दूधसे कम होगा। यदि चाय पीनी ही हो तो उसके लिए घनीकृत (कन्डेन्स्ड) दूधका इस्तेमाल ज्यादा अच्छा होगा, क्योंकि सिर्फ एक-दो कप चायके लिए दूध खरीदना कठिन हो जायेगा। हाँ, दूधकी ही चाय बनाई जाये तो दूसरी बात है।

जहाँतक तम्बाकूकी बात है वह तो निश्चय ही स्वास्थ्यके लिए हानिकर है। विषय-भोगकी इस महँगी चीजसे लाभ कुछ नहीं और नुकसान बहुत ज्यादा है। जैसा कि आप जानते ही होंगे, तम्बाकू इंग्लैंडमें बहुत महँगा है। यदि उसका सेवन करें तो साधारणतः रोज ६ पेंस खर्च करने पड़ेंगे। इंग्लैंडमें अपने तीन सालके प्रवासके दौरान एक भारतीयको उसपर ३० पौंड खर्च करने पड़े थे। एक अच्छे सिगारका मूल्य ४ से ६ पेंस तक और एक सिगरेटका मूल्य १ पेंस है। एक पैनीके पाँच सिगरेट तक खरीदे जा सकते हैं; लेकिन ये बहुत घटिया किस्मके होते हैं। उसमें तम्बाकूका चूरा या गोभीकी सूखी पत्तियाँ मिली होती हैं। इसलिए एक पौंडसे भली-भाँति निर्वाह करनेके लिए तम्बाकूसे एकदम [दूर रहना][1] अत्यन्त आवश्यक है। तम्बाकूको चाहे खायें, पियें, या नस्यकी तरह उसका उपयोग करें, उससे कोई पौष्टिक तत्त्व नहीं प्राप्त होते; वह तो एक तेज जहर ही है। यह जहर खूनमें जानेके बाद पहले मस्तिष्क और शिराओंको उत्तेजित करता है, फिर उन्हें चेतनाशून्य करते हुए अन्तमें जड़ बना देता है।

काउन्ट टॉल्स्टॉय जिनसे ज्यादा शराब और सिगरेट पीनेवाले लोग कम ही होंगे, इन दोनोंका घृणापूर्ण शब्दोंमें यों वर्णन करते हैं:

> **लोग शराब और सिगरेट इसलिए नहीं पीते कि उनके पास कोई और काम नहीं है या उन्हें समय बिताना है या ऐसा करनेसे उन्हें जोश आता है या आनन्द प्राप्त होता है; वे तो सिर्फ इसलिए पीते हैं कि उन्हें अपनी अन्तरात्माका विरोधपूर्ण स्वर न सुनाई दे।**

इस उक्तिके स्पष्टीकरणके लिए वे कहते हैं:

> **जिस कमरेमें लोग बैठे हैं, उसमें पानी फैलानेका ढाढस कोई भी व्यक्ति नहीं करेगा। न उसमें आकर चीखने चिल्लानेका या कोई ऐसा ही अन्य काम करेगा, जिससे दूसरोंको हानि या कोई परेशानी हो। लेकिन जो हजारों लोग**

१. यहाँ पाण्डुलिपि कुछ फटी हुई है।

> **सिगरेट पीते हैं उनमें शायद ही कोई ऐसा होगा जिसे उस कमरेकी हवा जहरीले धुँएसे दूषित करनेमें किसी भी प्रकारके संकोचका अनुभव हो, जिसमें महिलाएँ और बच्चे उपस्थित हैं।**

सचमुच इससे लोगोंको इतनी असुविधा होती है कि रेलके डिब्बोंमें सिगरेट पीनेके लिए कुछ भाग निश्चित कर दिये जाते हैं। व्यवस्थित घरोंमें युवकोंके धूम्र-पानके लिए कमरा अलग रहता है और उन्हें भोजनके कमरेमें कभी धूम्रपान नहीं करने दिया जाता। मेरे एक मित्रको अपने निवास-स्थानपर सीढ़ीके नीचे धूम्रपान करनेके लिए डाँट खानी पड़ी थी।

काउन्ट आगे कहते हैं:

> **इन नशीले, उत्तेजक पदार्थोंके उपयोगसे मनुष्य जितना अधिक चेतना-शून्य बनता चला जाता है, वह बौद्धिक और नैतिक दृष्टिसे भी उतना ही नीरस, निष्क्रिय और मन्द बन जाता है।**

नशेमें आकर मनुष्य क्या-क्या कर बैठते हैं, यह हम सभी अच्छी तरह जानते हैं।

जहाँतक शराबकी बात है, उपर्युक्त उद्धरण यह दिखानेके लिए काफी है कि जो व्यक्ति किसी समय अत्यधिक पीता था वह भी उसके बारेमें क्या सोचता है। शराब पीना हानिकर है और इंग्लैंडमें शराब पीना हमारे लिए जरूरी नहीं है इतना सिद्ध करनेके लिए उद्धरण देना आवश्यक नहीं है। ऐसी सैकड़ों समितियाँ हैं जो आपको विश्वास दिला देंगी कि वहाँ शराबकी कोई आवश्यकता नहीं है। संसदके कई सदस्य हैं जो शराब बिलकुल नहीं छूते। कामन्स सभामें तो मादक द्रव्योंसे परहेज करनेवाले लोगोंका एक दल ही है। डब्ल्यू० एस० केन और सर विल्फ्रेड लॉसनका इस दलके साथ विशिष्ट सम्बन्ध है। हमारे यहाँ बम्बईमें और भारतके कई भागोंमें मद्य-निषेध समितियाँ हैं। कई आंग्ल भारतीय भी इन मादक द्रव्योंको नहीं छूते। इतना सब होनेपर भी ऐसे लोग भी हैं जो बुद्धिमान होते हुए भी यह मानते हैं कि इंग्लैंडमें शराब पीना अत्यन्त आवश्यक है। उन्हें इसके विरोधमें कितना ही यकीन क्यों न दिलाया जाये वे इस बातको गलत माननेसे इनकार करते हैं। उनकी जानकारीके लिए सरसरी तौरपर इसका उल्लेख कर दिया गया है। एक सज्जनका कहना था: "हो सकता है कि इंग्लैंड पहुँचनेपर उनकी आवश्यकता न रहे पर मुझे मालूम हुआ है कि भूमध्य सागरके आसपास शराबके बिना प्राण निकल जायेंगे।" उन्हें ऐसा ही 'बताया गया था'। और मुझे यह बतानेकी अनुमति दी जाये कि यदि शराब इतनी आवश्यक होती तो पी० ऐंड० ओ० कम्पनी जितना किराया लेती है उसमें भोजनके साथ शराब भी देती और शराब पीनेके यात्रियोंको अलग पैसे न भरने पड़ते। यदि इंग्लैंडमें शराब पीनी हो और वह भी नियमपूर्वक तो ९ शिलिंग तो शराब में ही उड़ जायेंगे। जो अनुमान मैंने बताया है फिर उसके अनुसार निर्वाह करना असम्भव होगा।

इसलिए इस तखमीनेके अनुसार शराब और तम्बाकू छोड़ देना बिलकुल जरूरी है और चाय और काफी भी छोड़ दें, तो अच्छा होगा। क्योंकि उनका उपयोग करनेसे उनकी अपेक्षा बहुत अधिक पौष्टिक पेय, दूध छोड़ना पड़ता है।

अब हम मांसके प्रश्नपर आते हैं। मुझे लगता है कि यदि ९ शिलिंगसे इस प्रकार निर्वाह करना है कि स्वास्थ्यको कोई हानि न हो तो मांसाहार छोड़ देना होगा। कोई पूछ सकता है कि ऐसी हालतमें मुसलमान और पारसी क्या करेंगे, उनके लिए तो यह संदर्शिका बेकार है! थोड़ा रुकें। मैं पूछता हूँ क्या ऐसे बहुतसे मुसलमान और पारसी भाई नहीं हैं जो निर्धन होनेके कारण कभी-कभार मांस खा पाते हैं। और कुछ-एक तो कभी नहीं खा पाते। ऐसे व्यक्ति क्या मांसके बिना रह नहीं सकते? भारतमें भी तो उन्हें अपने धर्म या सिद्धान्तके कारण नहीं, बल्कि पैसा कम होनेके कारण मांस कभी-कभी ही नसीब होता है। वे कहीं मिलनेपर मांस खा सकते हैं, जैसे जिस विद्यार्थी-निवासमें वे बैरिस्टरीकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए दाखिल हुए हैं, वहाँ खा सकते हैं। यदि यह सच है कि स्वास्थ्यकी कोई भी हानि हुए बिना शाकाहारसे निर्वाह किया जा सकता है, तो फिर सभी लोग शाकाहारसे निर्वाह क्यों न करें और जब कि ऐसा करनेसे मांसाहारकी अपेक्षा खर्च कम होता हो। इंग्लैंडमें शाकाहारका प्रचलन है इसे सिद्ध करनेके लिए आजके कई शाकाहारियोंके उदाहरण दिये जा सकते हैं।

वहाँ कई शाकाहारी समितियाँ हैं और तत्सम्बन्धी साहित्य भरा पड़ा है; यह इंग्लैंडमें शाकाहारके चलनकी साक्षी देता है। वर्तमान कालमें अनेक सुप्रसिद्ध अंग्रेज शाकाहारी हैं।

सम्राज्ञीकी प्रिवी कौंसिलके लॉर्ड हैनन जो सर जेम्स हैननके नामसे ज्यादा प्रसिद्ध हैं और पिछले पारनैल कमिशनके अध्यक्ष थे, शाकाहारी ही हैं।

बम्बईके श्री गोटलिंग शाकाहारी हैं।

जॉन वेजले शाकाहारी थे। दानवीर हॉवर्ड तथा अन्य कई सुप्रसिद्ध विद्वान भी शाकाहारी ही थे। कवि शैले भी शाकाहारी थे। इस छोटी-सी पुस्तकमें इस विस्तृत विषयके साथ न्याय करने लायक बातें देना सम्भव नहीं है। मुझे तो इतना कहकर ही सन्तोष करना पड़ता है कि जिज्ञासु पाठक स्वयं डॉ० एना किंगफोर्डकी 'परफेक्ट वे इन डायट' पढ़ लें। डा० किंगफोर्ड अपने विषयमें कहती हैं:

> **मैंने शाकाहारी भोजन करके अपने तपेदिकका इलाज किया। मुझे एक डाक्टरने बताया कि मैं छः महीनेसे ज्यादा नहीं जी सकती। तो फिर मैं क्या करूँ? बताया गया कि मैं कच्चा माँस खाऊँ और पोर्ट मदिरा पीऊँ। तब मैं देहातमें रहनेके लिए चली गई और वहाँ दलिया और फल ही खाया और आज मैं आपके सामने इस मंचपर उपस्थित हूँ।**

एक और भी अच्छी पुस्तक है जिसे पढ़नेकी सलाह पाठकको दी जा सकती है। उसका शीर्षक है 'ए प्ली फॉर वेजिटेरियनिज्म'। लेखक हैं एच० एस० साल्ट।

डा० बेंजामिन वॉर्ड रिचर्डसन, एम० बी०, एल० आर० सी० एस०, आदि स्वयं शाकाहारी नहीं हैं, पर अपनी पुस्तक 'फूड फॉर मैन' में वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं।

१. हालाँकि मनुष्यमें पूर्ण या आंशिक मांसाहारसे निर्वाह करनेकी क्षमता है, लेकिन जन्मतः उसके लिए अन्न और फलोंका भोजन ही ज्यादा अनुकूल पड़ता है और यदि वह प्राकृतिक भोजनका शास्त्रीय रीतिसे उपयोग करे, तो वह बिना किसी कठिनाईके अपने लिए सभी आवश्यक जरूरतें इसी सूत्रसे जुटा सकता है।

२. मनुष्य जितनी योग्यताके साथ वनस्पति-जगतसे भोजन जुटा सकता है, उतनी योग्यतासे अन्य कोई प्राणी नहीं जुटा सकता; पर अच्छी तरह समझ कर उसका ठीक ढंगसे उपयोग करना जरूरी है।

३. मनुष्यके लिए यथेष्ट और निर्दोष भोजन सीधा वनस्पति जगत-से ही प्राप्त किया जा सकता है।

४. बीमारी दोनों सूत्रोंसे आ सकती है। लेकिन उसका एकसे भी आना जरूरी नहीं है। दोनोंमें से एक भी साधनका दुरुपयोग करनेसे बीमारियाँ पैदा हो सकती हैं; लेकिन यह जरूरी नहीं है और सावधानीसे व्यवस्था करनेपर एकसे भी बीमारी पैदा नहीं होगी।

फल और सब्जीके संतुलित आहारसे उतना ही शारीरिक और मानसिक बल प्राप्त हो सकता है जितना मांसाहारसे या मांस और शाकके मिश्रित आहारसे। उनका कथन यह भी है, "मैं स्वीकार करता हूँ कि शाकाहारी पद्धति माननेवालोंने कुछ बहुत अच्छे काम करके दिखाये हैं और अब भी कर रहे हैं।"

यदि एक विचारपूर्ण और सावधान डाक्टर स्वयं शाकाहारी न होनेपर भी इतना स्वीकार करते हैं, तो पाठक आसानीसे समझ सकते हैं कि शाकाहारी अपनी प्रणालीको कितना अच्छा मानते होंगे। उनका दावा है कि शारीरिक, दैहिक, आर्थिक और नैतिक दृष्टिसे शाकाहार माँसाहारसे बहुत श्रेष्ठ है।

इससे इतना तो पूर्णतया स्पष्ट हो गया होगा कि शाकाहार इंग्लैंडमें न केवल सम्भव है बल्कि सैकड़ों लोग वहाँ सचमुचमें शाकाहार करते भी हैं।

इसलिए जैसा ऊपर दिखाया गया है यदि उस तरह शाकाहार दूसरी बातोंमें माँसाहारसे कम न हो और वह मांसाहारसे सस्ता भी पड़ता हो तो मैं आशा करता हूँ कि कोई भी व्यक्ति, यदि उसने हर हालतमें शाकाहारका विरोध करनेकी न ठान ली हो तो, उसे अपनानेमें संकोच नहीं करेगा।

सब्जीके सूपकी एक प्लेटके दाम ३ पेंस हैं और मांसके सूपके दाम ९ पेंससे १ शि० ३ पेंस तक हैं। इसलिए अगर आप बहुत ही घटिया किस्मका मांस न लें तो मांसके दाम सब्जीकी अपेक्षा कमसे-कम तिगुने पड़ेंगे। यह याद रखना चाहिए कि सस्ते माँसमें शाकसे ज्यादा बीमारियोंके कीटाणु रहते हैं।

शाकाहार मांसाहारसे सस्ता पड़ता है, इस निश्चित तथ्यके विषयमें अब कुछ और कहना बेकार होगा। यदि कोई इसका विरोध करना चाहता है तो वह ९ शिलिंगमें निर्वाह करते हुए मांसाहार करके दिखाये। मैं इतना मानता हूँ कि यदि किसीको आनन्दके लिए नहीं, केवल स्वास्थ्यकी दृष्टिसे सप्ताहमें एक-दो बार मांसाहार करना जरूरी लगता हो तो थोड़ी सावधानी बरत कर इसी रकममें उसकी व्यवस्था की जा सकती है।

एक और तथ्य भी यहाँ बता देने योग्य है। साधारणतया इंग्लैंडके शाकाहारी अपने भोजनमें अंडे रखते हैं; लेकिन भारतीय शाकाहारी उन्हें भोजनमें शामिल नहीं करेगा। दूसरी ओर इंग्लैंडमें ऐसे शाकाहारी हैं जो दूध या मक्खनका भी सेवन नहीं करते, क्योंकि वे मांस वर्गमें आ जाते हैं।

यह बतानेके पहले कि ९ शिलिंगमें कैसा भोजन प्राप्त किया जा सकता है एक-दो मुद्दे स्पष्ट करने बाकी हैं।

भोजन खुद बनायें या मकान मालकिनसे बनवायें? धार्मिक दृष्टिसे देखें तो एक कट्टर हिन्दू होनेके नाते खाना आप खुद बनायेंगे। उस हालतमें आपका खर्च बहुत कम होगा।

यहाँ मैं इतना कह दूँ कि इसके विपरीत चाहे जो-कुछ क्यों न कहा जाता हो यदि आपके पास सभी साधन हैं तो कोई भी ऐसी बात नहीं है जो वहाँ आपको पूर्ण रूपसे हिन्दूकी तरह जीवन व्यतीत करनेसे रोके। यह कहना कि लन्दनमें अलग भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती, सरासर झूठ और बहाना ही है। यह कहना ज्यादा सच होगा कि बहुत कम लोग ऐसा करना चाहते हैं। रोज विधिसे पूजा-पाठ करना, नंगे बदन भोजन करना, घंटों नंगे बदन बैठकर चिन्तन करना, यह सब करना तो किसी गरीब व्यक्तिके लिए असम्भव ही होगा, तथापि यदि कोई धनी व्यक्ति मनमाना धन खर्च करनेको तैयार हो, तो इंग्लैंडमें ऐसी प्रत्येक धार्मिक क्रिया पूरी की जा सकती है जो भारतमें सम्भव है। यदि वह स्वयं खाना नहीं पकाना चाहता तो वह अपने साथ रसोइया भी ले जा सकता है। परन्तु सामान्य विद्यार्थीके पास ऐसी बातोंके लिए न धन हो सकता है और न समय। मुझे बताइए कि भारतमें ही कितने ऐसे विद्यार्थी मिलेंगे जिन्हें यहाँपर सभी धार्मिक आचार पूरा करनेका समय मिलता है या जो ऐसा करनेके इच्छुक ही हैं। यदि यहाँ भी उनका पालन नहीं किया जाता तो धर्मपरायण बड़े-बूढ़ोंको दुख दिये बिना लन्दनमें भी थोड़े-बहुत आचार-धर्मोंको छोड़ देना उचित ही होगा। हमारे शास्त्रोंमें भी विद्यार्थियों और यात्रियोंको इस दिशामें विशेष छूट दी गई है। एक सुप्रसिद्ध योगीने मुझे बताया कि यात्रा करते समय वे अधिकांश क्रिया-साधन छोड़ देते हैं।

धार्मिक कर्मकाण्डकी अधिक चिन्ता न करनेवाले और जातिभेद न माननेवाले साधारण भारतीयको मैं यही सलाह दूँगा कि थोड़ा भोजन स्वयं बना लें और कुछ अंश बना-बनाया ले लें।

यदि कोई चाहे तो मकान-मालकिन सारा भोजन तैयार कर देगी। इसके लिए पहलेसे तय कर लेना पड़ता है और किरायेके लिए जो ७ शिलिंगकी रकम दी जाती

है उसीमें यह काम भी शामिल मान लिया जाता है। लेकिन कुछ लोगोंके लिए यह असुविधाजनक भी हो सकता है। हो सकता है कि मकान-मालकिन शाकाहारी भोजन तैयार करना न जानती हो या वह ईमानदार न हो, या सफाईसे काम न करे। वह मांसके पात्रको साफ किये बिना ही उसमें सब्जी डाल दे। पहली दो कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं। उसे पाक-पुस्तक दी जा सकती है; वह उस पुस्तककी सहायतासे आवश्यक खाना बना देगी। अत्यन्त सावधान रहनेपर शायद उसे बेईमानी करनेका अवसर भी न मिले। परन्तु यदि वह सफाईसे काम नहीं करती और बेचारे किरायेदारको उसपर निर्भर रहना पड़े तो वह कुछ नहीं कर सकता। इस अन्तिम कठिनाईको दूर किया जा सकता हो तो प्रयत्न करें या फिर उसे अनदेखा कर दें। इसलिए पूरी तरहसे विचार करें तो मकान-मालकिनके सफाईसे काम करने-वाली न होनेपर अपना खाना खुद बना लेना ही अच्छा होगा। जैसा कि कुछ लोगोंको डर होगा, खाना बनाना जरा भी कठिन या कष्टप्रद नहीं है। न धुँआ, न लकड़ियाँ, न उपले और जैसे यहाँ खाना बनाते समय फूँकना पड़ता है या पंखा करना पड़ता है, वहाँ वैसा कुछ भी नहीं है। तेलके सफरी स्टोवसे भारतीय चूल्हेका काम ले सकते हैं। भारतीय चूल्हेपर ५ या ६ जने लायक जो-कुछ भोजन बनाया जाता है, वह सब स्टोवपर तैयार किया जा सकता है। फिर खाना पकानेमें ज्यादा समय भी नहीं लगता। इस कामके लिए बीस मिनिट काफी हैं। दस मिनिट दूध उबालनेमें लगते हैं। जिस समय दूध उबल रहा हो, कुछ लोग अखबार आदि पढ़ लेते हैं। खाना बनानेके लिए एक कलई किया हुआ पात्र, एक दो प्लेटें, दो चम्मचकी जरूरत होगी। इन सबके दाम १० शि० से ज्यादा नहीं हो सकते। खाना बनानेके लिए सफेद मिट्टी-का तेल बहुत अच्छा रहता है। उससे कोई दुर्गन्ध नहीं आती और वह जलता भी अच्छा है। मकान-मालकिन बर्तन भी दे देगी; किन्तु अपने लिए पात्र खरीद लेना ज्यादा अच्छा रहेगा।

कुछ भोजन मकान-मालकिन बना दे सकती है और थोड़ा आप बाहर खा सकते हैं। जैसे सुबहका नाश्ता और रातका भोजन मकान-मालकिन बना सकती है और दोपहरको आप बाहर भोजन कर सकते हैं।

एकाध बारका भोजन आप खुद बना सकते हैं और फिर बाहर खाकर कमी पूरी कर ले सकते हैं। अपने लिए नाश्ता या रातका भोजन तैयार करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। उनमें तो साधारण चीजें बनानी होती हैं।

इनमें से कोई-सा प्रबन्ध भी करें, ९ शिलिंगमें निर्वाह किया जा सकता है। मैंने और दूसरे कई लोगोंने भी ये सब प्रयोग करके देखे हैं। सबसे पहला अर्थात् अपना सारा खाना खुद बनाना सबसे सस्ता रहता है। परन्तु उसमें समय ज्यादा लगेगा और पुस्तकालयमें सारा समय बितानेवाले विद्यार्थीको उससे असुविधा हो सकती है।

फिर भी यह देखें कि पहला तरीका अपनानेसे हमें ९ शिलिंगमें पर्याप्त भोजन किस प्रकार मिल सकता है। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, जो भोजन हम भारतमें खाते हैं, वही इंग्लैंडमें लेना काफी है।

तब हम यह देखें कि भारतीय भोजनके लिए कितना खर्च पड़ता है। उदाहरण-के लिए आप दिनमें दो बार ही भोजन करते रहें, तो रातके दस बजेके भोजनके लिए चपाती, दाल, सब्जी, भात और दूध मिलेगा।

ऐसे भोजनके लिए निम्नलिखित खर्च होगा :

	औंस	पेंस
आटा	८	३/४
चावल	४	१/२
आलू	८	३/४
दाल	४	१/२
मक्खन	१	१
नमक-मिर्च	—	१/४
बघार आदिके लिए तेल	—	१/४
दूध	१/२ पिंट	१
		५

शामके भोजनके लिए खिचड़ी और रोटी ले सकते हैं।

चावल और दाल	१६	२
मक्खन	१/२	१
दूध	१/२ पिंट	१
नमक, मिर्च और तेल	१/२	१/२
		४ पेंस

इस तरह ९ पेंसमें दो बारके भोजनकी अच्छी व्यवस्था हो सकती है। और यदि तीन बार भोजन करना ठीक लगे तो दूध और डबलरोटी या चाय और डबलरोटीपर ३ पेंस और खर्च किये जा सकते हैं। सप्ताह-भरमें इस भोजनपर ७ शिलिंग खर्च होंगे और २ शिलिंग हमारे पास बाकी बच रहेंगे।

फिर भी अंग्रेजी शाकाहारी भोजनकी कुछ चीजें लेना सुविधाजनक रहेगा और शायद यह स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी ज्यादा अच्छा रहेगा। आपके सामने चुनावके लिए बहुत-सी चीजें हैं।

खाद्यान्नोंमें गेहूँ, जई और मकई आदि ले सकते हैं।

दालोंमें मटर, सेम, मसूर, चावल आदि ले सकते हैं। वहाँ सब्जीके लिए आलू, बन्द गोभी, साग, सलाद, अर्टीचोक साग, सेमफली, ताजे मटर, टमाटर, फूल गोभी, चुकन्दर, प्याज और कंद मिलते हैं; ताजे फल और मेवे मिलते हैं। ताजे फलोंमें सेब, नारंगी, अंगूर, केले, खूबानी, नाशपाती, आड़ू, आलूबुखारा, स्ट्राबेरी, रसभरी, चेरी आदिको गिन सकते हैं। मेवोंमें अंजीर, खजूर, किशमिश-मुनक्का, सूखा मुश्कबू अंगूर और किशमिश आदि आते हैं।

सूखे कवची मेवोंमें हेजल [पिंगल फल], ब्रेजील नट, बादाम, शाहबलूतका फल आदि आते हैं।

उपर्युक्त विविध प्रकारकी खाद्य वस्तुएँ स्वादिष्ट भोजन प्रेमियोंको सन्तुष्ट करनेके लिए पर्याप्त हैं। और ९ शिलिंग खर्च करनेवाले की सामर्थ्यसे बाहर नहीं हैं।

इंग्लैंडमें फल अत्यावश्यक माने जाते हैं। जो भी हो, शाकाहारी तो ऐसा ही मानते हैं। वे दवाइयोंको दूर रखनेका अचूक साधन हैं। उनसे खून शुद्ध होता है और पेट साफ रहता है; और चूँकि कब्ज कई बीमारियोंकी जड़ है इसलिए इस भयंकर व्याधिसे बचे रहनेके लिए सावधानी बरतना सर्वोत्तम है। इसे दूर करनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि बिना छना गेहूँका आटा और फल खूब खायें। साधारणतः इंग्लैंडमें बहुत बारीक गेहूँका आटा मिलता है, उसका पूर्णतया परित्याग करें। वह बिलकुल भी पौष्टिक नहीं होता और जैसा कि अकसर होता है, मिलावट रहनेपर तो बहुधा वह हानिकर भी होता है। साथ ही वह एकदम फीका होता है। दूसरी ओर गेहूँका मोटा आटा खानेमें बहुत मीठा होता है। इसलिए हमेशा गेहूँके मोटे आटेकी बनी ब्राउन ब्रेड खानी चाहिए और सफेद रोटीका एकदम त्याग कर देना चाहिए। कोई कह सकता है कि उपर्युक्त कथन ऐसे व्यक्तिके हैं जिसे रसायन शास्त्र या चिकित्सा शास्त्रका कुछ ज्ञान नहीं है, इसलिए ये कथन अप्रमाणित और निरर्थक हैं। पर ये कथन अप्रमाणित नहीं हैं। सिर्फ यहाँ उनके प्रमाण नहीं दिये गये हैं। शाकाहारी समिति द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तिकाएँ पढ़नेसे आपको मालूम हो जायेगा कि जो-कुछ ऊपर कहा गया है, वही सामान्यतः डाक्टरोंकी राय भी है। यहाँ मैं एक बार फिर स्पष्ट कर दूँ कि इस संदर्शिकाका उद्देश्य दूसरी उपयोगी पुस्तकोंकी कमियाँ पूरी करके सारी जानकारी देना नहीं है। इसका उद्देश्य मात्र कुछ आवश्यक बातें बताकर उस जानकारीकी पूर्ति कर देना है जो अभीतक नहीं दी गई है; इसका उद्देश्य तो सिर्फ यह बताना है कि सही जानकारी कहाँ प्राप्त की जा सकती है।

तब हम मान लें, शाकाहारी सामग्रीमें से हमें तीन समयके लिए भोजन तय करना है। यह तीन बारका भोजन है: सुबह ८-३० बजे नाश्ता, दोपहर १ बजे खाना और शाम ६-३० बजेका खाना।

जईका दलिया नाश्तेके लिए बहुत बढ़िया रहता है, खासकर शीतकालमें। सर्दीके दिनोंमें प्रायः हर घरमें इसी दलियेका नाश्ता किया जाता है। स्काटलैंडके हजारों लोग जईका दलिया ही खाते हैं। उसका स्वाद गेहूँ जैसा होता है और उसमें मिठास ज्यादा होती है। उसे तैयार करना बहुत सरल है। एक औंस दलिया काफी पानीमें मिलाकर स्टोवपर चढ़ा दें। यदि दलिया बारीक पिसा है तो २० मिनिटमें तैयार हो जायेगा। यदि मोटा पिसा है तो ३० मिनिट लगेंगे। उसे दूध और चीनी या पकाये हुए फलोंके साथ खा सकते हैं। फलको पानीमें थोड़ी चीनीके साथ पका लिया जाता है। दलिया पूर्णतया दूधमें या दूध और पानीमें पकाया जा सकता है। दूधमें पकानेसे वह ज्यादा स्वादिष्ठ होता है। ऐसे नाश्तेका खर्च यों होगा;

	औंस	पेंस
दलिया	१	$\frac{1}{4}$
दूध	$\frac{1}{2}$ पिंट	१
फल (किशमिश या मुनक्का)	२	$\frac{1}{2}$
डबलरोटी	—	$\frac{1}{2}$
मक्खन	—	$\frac{3}{4}$
		३ पेंस

नाश्तेके लिए डबलरोटी (१ पेंस), मक्खन (१ पेंस) और पनीर ($\frac{1}{2}$ पेंस) भी ले सकते हैं। उसमें टोस्ट और दूध (३ पेंस), टोस्ट, मुरब्बा और चाय (३ पेंस), डबलरोटी, मक्खन और फल (३ पेंस), मकईका दलिया, किशमिश और फल (२ पेंस), डबलरोटी और $\frac{1}{2}$ पौंड सेब (१ पौंडके ४ पेंस) (३ पेंस) डबल-रोटी, मक्खन और कोको (३ पेंस), डबलरोटी, मक्खन और मार्मलेड (२$\frac{1}{2}$ पेंस) आदिमें से जो अच्छा लगे ले सकते हैं।

सूप और डबलरोटी और ताजे फल या दूध, चावल और चीनी लेना दोपहरके भोजनके लिए अच्छा रहेगा। आलू, प्याज और सेमका सूप बनानेमें १$\frac{1}{2}$ पेंस लगते हैं। चावल, दूध और चीनीके २ पेंस या उससे कम लगेंगे। और डबलरोटीके लिए १ पेंस लगेगा। ४$\frac{1}{2}$ पेंसमें यह भोजन तैयार हो सकता है। और यदि आप मक्खनके बहुत शौकीन हों तो एक पैनीका मक्खन ले सकते हैं, उस हालतमें आपके भोजनका खर्च ५$\frac{1}{2}$ पेंस पड़ेगा।

विभिन्न प्रकारका निम्नलिखित भोजन ५ पेंस या उससे कम दाममें मिल सकता है।

मटरका सूप या डबलरोटी और पकाये हुए फल या ताजे फल, चावल, दूध और डबलरोटी और मूली तथा पनीर। आलूका सूप, पकाये हुए फल या दूधके साथ डबलरोटी और सूजीकी खीर।

बारीक सूजीकी मीठी रोटी जिसमें बादाम और किशमिश आदि रहते हैं।

शामके भोजनमें डबलरोटी, मक्खन और कोको (३ पेंस), डबलरोटी और मक्खन और पनीर (२$\frac{1}{2}$ पेंस), टोस्ट और दूध और मूली (३ पेंस), दलिया, फल और डबलरोटी (३ पेंस), डबलरोटी, मक्खन, सलाद और पनीर आदि ले सकते हैं।

इस प्रकार तीन बारके भोजनके लिए ११ पेंस या लगभग १ शिलिंग लगेगा। ऐसा भोजन पर्याप्त और पौष्टिक भी होगा। भरपेट मांसाहारी भोजन करनेसे जितने पौष्टिक तत्त्व मिलते हैं, उतने ही इस भोजनसे मिलेंगे और साथ ही मांसाहारी भोजन करनेसे सामान्यतः अजीर्ण आदि जो दूसरे रोग पकड़ लेते हैं आप उनसे भी बचेंगे। हजारों व्यक्ति ऐसे भोजनसे अच्छी तरह निर्वाह कर पाते हैं।

तीनों बारका भोजन या दो बारका भोजन आप खुद बना सकते हैं या आपकी मकान-मालकिन बना सकती है। जब भोजन बनानेका काम मकान-मालकिनको सौंपा जाये तो सामान आपको खरीदना चाहिए ताकि अच्छी चीजें ठीक दामोंपर लाई

जा सकें। यहाँ यह कह दूँ कि जिस मौसममें जो फल और सब्जी मिलती हो वही खरीदें, नहीं तो वे बहुत महँगी पड़ती हैं। फिर उन्हें खरीदना भी ठीक स्थानसे चाहिए। यदि आप रिजेंट स्ट्रीट जाकर मौसमसे पहले अंगूर खरीदना चाहें तो उसका दाम १ पौंडके लिए ३ शिलिंग होगा। इतने महँगे अंगूर तो आप नहीं खरीद सकते। पर मौसम आनेपर मजेसे ४ पेंसमें १ पौंड अंगूर मिल जाते हैं।

कभी-कभी, और मैं तो कहना चाहता हूँ कि अकसर दोपहरका भोजन बाहर ही खा लेना सुविधाजनक रहता है। चाहे आप यात्री हों या विद्यार्थी हों, आप नाश्ता करके जायेंगे और शामको लौटेंगे। ऐसी दशामें भोजनके लिए घर आना पसन्द नहीं करेंगे। ऐसा करनेमें काफी समय लगता है और काफी परेशानी होती है; आप पुस्तकालयसे भी घर जाना पसन्द नहीं करेंगे। खासकर जब वह घरसे दूरीपर हो। लन्दनके सभी कामकाजवाले इलाकोंमें ऐसे लोगोंके लिए शाकाहारी भोजनालय हैं। सामान्यतः उनके यहाँ दो विभाग होते हैं। एक विभागमें ६ पेंसमें भोजनकी तीन चीजें मिलती हैं। आप जब टिकट खरीद कर भोजनके लिए देते हैं तो आप बीस चीजोंमें से कोई-सी तीन ले सकते हैं। यह भोजन अत्यन्त लोकप्रिय है। अकसर दोपहर १ से लेकर २ बजेतक ग्राहकोंकी अत्यधिक संख्याके कारण स्थान पाना कठिन हो जाता है।

दूसरे विभागमें आप जो चाहे खा सकते हैं और जो-कुछ खायेंगे, उसके दाम देने पड़ेंगे। खाद्य पदार्थोंकी सूची जिसे 'मेनु' कहते हैं आपको दे दी जाती है। उसमें प्रत्येक वस्तुके दाम साथ लिखे रहते हैं। आप अपनी भूख और जेबके अनुसार भोजन चुन सकते हैं। ९ शिलिंगवाला व्यक्ति तो किसी भी विभागमें खा सकता है। आप पायेंगे कि प्रथम विभागमें दो तरहकी चीजें ही खानेके लिए काफी हैं और प्रथम विभागकी तीन चीजें तो किसी पेटूके लिए भी काफी होंगी। यह भी कह दें कि दोनों विभागोंके भोजनमें कोई अन्तर नहीं होता। वास्तवमें खानेकी चीजें दोनों-में एक-सी होती हैं। प्रथम विभागमें मनको यह सन्तोष रहता है कि आप ज्यादा दाम दे रहे हैं; या यदि आप किसी मजदूरके साथ बैठकर भोजन करनेमें लज्जाका अनुभव करते हैं तो यह भी सन्तोष रहता है कि प्रथम विभागमें आपको ऐसी स्थितिमें डालनेवाला कोई व्यक्ति नहीं है। फिर प्रथम विभागमें, जिसे खानेका कमरा कहा जाता है, स्थान भी ज्यादा रहता है और उसकी सजावट भी ज्यादा अच्छी होती है। शाकाहारी भोजनालयोंमें सामान्यतः जो भोजन दिया जाता है, मैं यहाँ उसका एक नमूना दे रहा हूँ। इसके बारेमें डा० रिचर्डसन कहते हैं:

> **मैं तो साफ-साफ यह स्वीकार करता हूँ कि यदि मुझे हर समय वैसा ही भोजन मिल सके जैसा कि सर्वोत्तम शाकाहारी भोजनगृहोंमें मिलता है तो मैं खुशीसे किसी भी दूसरे ढंगका भोजन पसन्द नहीं करूँगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि धीरे-धीरे वर्तमान उत्तम शाकाहारी भोजन केन्द्र राष्ट्रके विद्यालय बन जायेंगे और राष्ट्रके हर होटलमें रसोइये और घरोंमें गृहणियाँ यह कार्य करने लगेंगी।**

सोमवार, अक्तूबर, २२-८८

सूप		दलिया	
हरे मटरका	३ पेंस	जईका	
जौ और तरकारीका	३ पेंस	गेहूँका	चीनी या
(स्कॉच ब्रॉथ)		मकई किशमिशका	शीरेके साथ ३ पेंस
शाक और दूध	३ पेंस	ऐंग्लो स्कॉच	
डबलरोटी	१ पेंस		

नमकीन

			पेंस
दालके कतले	अजवायनके साथ	अंकुरित या अन्यथा	४
,,	,,	शलजम	४
,,	,,	टमाटर	४

शाकाहारी पकवान

	पेंस
टमाटर और सेंवईकी पुडिंग	४
यार्कशायर पुडिंग सेमके साथ या अन्यथा	४
अंडेका झोल और चावल	४
अंकुरित अन्न, भुने हुए आलुओंके साथ या अन्यथा	४

अतिरिक्त शाक

	पेंस		पेंस
सेंवई	२	शलजम	२
चावल	२	अंकुरित अन्न	२
टमाटर	२	भुने आलु	२
सेम	२	कुचले हुए आलू	२

मिष्टान्न		पेस्ट्री	
आलूचेकी पुडिंग	३	आलूचेकी डेमसनपाई	३
सूजीकी पुडिंग तथा फिरनी	३	सेबका मीठा समोसा	३
सफेद फिरनी और मुरब्बा	३	किशमिशकी पेस्ट्री	३
मकई और आड़ू	३		
गेहूँकी पुडिंग और जैली	३		

पकाये हुए फल		विविध	
सेब	३	गेहूँका केक	२
किशमिश	३	काफी चाकलेट	२

द्राक्ष	३	चेड्डर पनीर	१
आलूचे	३	गोर्गोजोला पनीर	२
आड़ू	३	सलाद पत्ता	२

चुननेके लिए इससे ज्यादा खाद्य पदार्थ जरूरी नहीं हो सकते।

शाकाहारी भोजन-गृह रविवारको और बैंककी छुट्टीके दिन बन्द रहते हैं। तब दोपहरका भोजन घरपर लेना चाहिए।

मैंने भोजन सम्बन्धी इस विषयपर लिखते समय सिर्फ अपने और दूसरोंके अनुभवके परिणाम लिखे हैं। इस बातमें शायद पाठकको दिलचस्पी हो सकती है कि ऊपर वर्णित इन खाद्य पदार्थोंको लेनेसे देहको शक्ति देने लायक सभी तत्त्व मिल जाते हैं। ये तत्त्व कौन-से हैं और कितनी मात्रामें लेने चाहिए, इसका वर्णन इस पुस्तकके क्षेत्रसे बाहर है। वह एक दूसरा विषय है। जिज्ञासु पाठक 'परफेक्ट वे इन डायट', 'फ्रूट्स ऐंड फेरिनेशिया' आदि दूसरी पुस्तकें पढ़कर मेरे कथनकी सचाई परख सकते हैं।

इसके साथ एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयकी चर्चा समाप्त होती है। उपर्युक्त योजनाको कार्यान्वित करनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए और एक बार उसे कार्यान्वित करनेपर आप पायेंगे कि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे तो वह और भी अच्छी है। क्योंकि विषयभोग और पेटूपन स्वास्थ्य बनाये रखनेमें सहायक नहीं होते। भोजन-पर बुद्धिमत्तापूर्ण संयम रखना स्वास्थ्य-रक्षा या उसे सुधारनेका अचूक तरीका है। डा० ए० वॉन डुरिंग कहते हैं: "जीवनका आनन्द लेना हो तो भोग-विलास त्याग दो।" इटलीकी कहावत है, "जो ज्यादा खाता है वह कम खायेगा" (क्योंकि पेटू ज्यादा खाकर अपनी जीवन अवधि कम कर लेता है)। फिर सिनेकाका कथन है "मुल्टास मॉरबोस मुल्टा फरकुला फ्यूरेन्ट"—"विविध भोजन विविध रोग।"

उपर्युक्त उद्धरण लेटिनके प्रमुख प्रोफेसर मेयरकी पुस्तक 'व्हाई आई एम ए वेजिटेरियन' से लिये गये हैं। वे विद्यार्थियोंकी फिजूलखर्चीके विषयमें कहते हैं:

> **हम ऐसे कई लोगोंको जानते हैं जो स्वयं सीधे-सादे भोजनसे निर्वाह करते हैं लेकिन अतिथियोंको ऐसा भोजन खिलानेमें संकोच करते हैं जिसमें कम पैसे खर्च होते हों। उन्हें ऐसा करना कृपणता, ओछापन और अशिष्टता लगता है। इस मिथ्या धारणाका विद्यार्थियोंपर कुछ कम असर नहीं होता, खासकर इंग्लैंडमें। मितव्ययी व्यक्ति भी सरल आत्मसंयमके द्वारा दिनमें तीन शिलिंग अर्थात् सप्ताहमें एक गिन्नी बचा सकते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे किसी प्रतियोगितामें बैठे बिना ५० पौंड प्रतिवर्षकी छात्रवृत्ति जीवन-भरके लिए पा सकते हैं। इसके साथ चरित्र और स्वास्थ्यकी जो स्वतन्त्रता मिलेगी सो अलग।**

सर हेनरी टॉमसनने तो यहाँतक कह दिया है कि "हमारा भोजन मद्यपान से भी ज्यादा हानिकर है।" और हममें कमके बजाय ज्यादा भोजन करनेकी वृत्ति होती है, इसे कौन नहीं जानता?

ऊपर जो-कुछ बताया गया है उसपर अमल करनेके लिए केवल कठोर आत्म-संयमकी आवश्यकता है। जिसमें इच्छा-शक्ति है, उसके लिए बाकी काम सरल हो जाता है। थोड़े-से अभ्यासके बाद आपको इस ढंगसे जीवन बितानेकी आदत पड़ जायेगी। उस जीवन-क्रमको अपनाइए जो सर्वश्रेष्ठ है और अभ्याससे वह आनन्द-मय बन जायेगा।

सबसे अच्छा यही होगा कि मैं डा० निकोलसकी पुस्तक 'हाउ टु लिव ऑन सिक्स पेंस ए डे' से निम्न पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए इस अध्यायको समाप्त करूँ:

> लुई कोर्नारोका कई बार हवाला दिया जाता है। दीर्घायु, प्रफुल्ल और स्वस्थ बना रहनेके लिए सरल और अल्प आहार कितना प्रभावकारी होता है, इस बातका वह एक उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। चालीस वर्षकी आयुमें ऐसा प्रतीत हुआ कि जिसे हम उन्मुक्त जीवन कहते हैं, उस उन्मुक्त जीवनके कारण उसका स्वास्थ्य नष्ट हो चुका है। उसने अपनी सभी आदतें छोड़ दीं और प्रतिदिन सिर्फ १२ औंस भोजन लेने लगा। इससे उसका स्वास्थ्य बढ़िया हो गया कि कोई आधी शताब्दीतक वह कभी बीमार नहीं हुआ। नब्बे वर्षकी आयुके बाद अपने मित्रोंकी सलाह मानते हुए उसने १२ औंस भोजनके बजाय दिनमें १४ औंस भोजन लेना शुरू किया। खूराकमें इतनी मामूली-सी वृद्धि तो उसकी जानपर ही बन आई। वह उदास और हतोत्साह रहने लगा। वह हर बातसे खीज उठता; और फिर उसके पेटमें ऐसा दर्द हुआ कि उसके कारण न सिर्फ उसे खूराक मजबूरन पहले-सी ही नहीं बल्कि उससे भी कुछ कम कर देनी पड़ी। पच्चानवे वर्षकी आयुमें उसने लिखा है कि उसका जीवन अत्यन्त शान्त और आनन्दपूर्ण है। उसने नाटक लिखे, वेनिसको मजबूत और सुन्दर बनानेमें सहायता की। अपने लौकिक जीवनको उसने सुन्दर कहा है और उसका पूर्ण आनन्द लिया। उसने लिखा है कि मैं पच्चानवे वर्षका हो गया हूँ पर इस तरह स्वस्थ और प्रसन्न हूँ मानो मेरी आयु सिर्फ पच्चीस ही हो। इस आयुमें और १०० वर्षका होनेपर भी उसकी इन्द्रियाँ, स्मृति, हृदय, बुद्धि या आवाजमें बिलकुल कमी नहीं आई थी। वह दिनमें सात-आठ घंटे लिखा करता था, घूमने जाता था, लोगोंसे मिलता-जुलता था, संगीत सुना करता था, खुद बहुत अच्छा बजाया और गाया करता था। उसकी परपोती लिखती है, "वे सौ सालकी आयुतक पूर्ण तथा स्वस्थ ही नहीं, चुस्त भी रहे। उनके मस्तिष्कमें कोई कमजोरी नहीं आई। उन्हें कभी चश्मेकी जरूरत नहीं पड़ी और कानोंसे भी ठीक सुनाई देता था। उनकी आवाज इतनी जोरदार और मधुर बनी रही कि जीवनके अन्तमें भी वह उतने ही जोर और खुशीसे गाते थे, जितना कि बीस वर्षकी आयुमें।"

पाठक परिशिष्टमें देखेंगे कि इंग्लैंडमें अपने प्रवासके अन्तिम वर्षके दौरान मैंने एक महीनेमें ४ पौंडसे कैसे निर्वाह किया।

ऊपरके तखमीनोंमें अखबारोंपर किये जानेवाले खर्चका कोई उल्लेख नहीं किया गया। समाचारपत्र तो हमारे लिए भोजनकी तरह आवश्यक बन गये हैं। इस समय लन्दनके प्रायः सभी भागोंमें निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालय हैं। इन्हींमें प्रमुख दैनिक व साप्ताहिक समाचार प्राप्त हो जाते हैं। प्रतिदिन सैकड़ों लोग इन पुस्तकालयोंमें जाते हैं। इस तरह समाचारपत्र खरीदनेकी बजाय उसे पढ़ने पुस्तकालय चले जाना ज्यादा अच्छा रहता है। फिर भी यदि आवश्यक हो तो ६ पेंस प्रति सप्ताह समाचारपत्रपर खर्च करनेकी गुंजाइश काफी है। लन्दनके समाचारपत्र बहुत सस्ते हैं। सांध्य समाचारपत्र तो ½ पैनीमें खरीदा जा सकता है।

अध्याय ४

भावी बैरिस्टरोंके लिए एक अध्याय

आप इंग्लैंड जाकर बैरिस्टर बनें या कोई दूसरी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए जायें, इसका सही निर्णय तो आप ही कर सकते हैं या वे लोग कर सकते हैं जो आपको अच्छी तरह जानते हैं। हर व्यक्तिकी स्थिति एक-सी नहीं होती है। मैं तो सिर्फ कुछ सामान्य बातें ही बता सकता हूँ।

आजकल बैरिस्टरोंकी विशेष माँग नहीं है। उनका पहले जितना आदर भी नहीं रहा। मुझे लगता है कि इस तथ्यके सम्बन्धमें कोई विवाद नहीं है। फिर भी यह सच है कि उन्हें जो दर्जा प्राप्त है उसे उनसे छीन लेना आसान नहीं है और यह भी सच है कि उनका कार्य-क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक है। यह भी कह सकते हैं कि पर्याप्त धैर्य और घोर परिश्रम करनेवाले किसी भी बैरिस्टरको अपने स्वतंत्र व्यवसाय या नौकरी द्वारा सम्मानजनक आजीविका न कमा पानेका भय नहीं होना चाहिए।

फिर भी बैरिस्टर घाटेमें क्यों हैं? इसके लिए कुछ हदतक वे स्वयं और कुछ हदतक दूसरे लोग दोषी हैं। ऐसा होनेके कुछ स्वाभाविक कारण भी हैं।

दोष उनका अपना इसलिए है कि वे लोगोंकी आशाएँ पूरी नहीं करते। लोगोंका दोष इसलिए है कि वे बैरिस्टरोंसे बहुत ज्यादाकी अपेक्षा करते हैं। स्वाभाविक कारण यह है कि उनकी संख्या बढ़ गई है। जब एक ही समाचारपत्र था तो सब उसे पसन्द करते थे। पर अब बहुत-से हैं, इसलिए कुछ-एक ही अच्छे माने जाते हैं। पहले मैट्रिक पास करनेवाला एक तरहसे बहुत बड़ा व्यक्ति माना जाता था। अब मैट्रिक पास सब जगह मिल जाते हैं तो उनका मूल्य भी नगण्य हो गया है। जिस जमानेमें एक ही बैरिस्टर था तो वह एक अनोखा व्यक्ति था, अब जब अनेक बैरिस्टर हैं तो उनकी आपसमें तुलना की जा सकती है।

इसलिए दर्जेमें थोड़ा परिवर्तन होनेसे डरनेकी कोई बात नहीं है। सिर्फ हमें अपनी योग्यताका स्तर कम नहीं करना चाहिए। कभी ऐसा समय भी आ सकता है जब हम लोग काफी न हों और कामके लिए ज्यादा बैरिस्टरोंकी जरूरत पड़े।

अभी वह समय बहुत दूर है। इस बीच हम सावधान रहें ताकि उस भविष्यकी अवधि और न बढ़ जाये।

जल्दबाजीमें हम मामला बिगाड़ सकते हैं और फिर यदि हम काम भी वैसा न करें जैसा करना चाहिए तो उसका भी यही परिणाम होगा। इसलिए हमें इन दोनोंके विषयमें सावधान रहना है।

इन दिनों कामको कुछ आरामसे करनेकी वृत्ति बन गई है अर्थात् कम काम करके ज्यादाकी आशाकी जाती है। यदि हमें अपनेको और भी नीचा नहीं बना लेना है तो इससे बचना चाहिए। यदि माता-पिता हमें इंग्लैंड भेजते हैं या हमें वहाँ जानेके लिए छात्रवृत्ति मिली है तो अपने कर्त्तव्यका पालन करना हमारा परम धर्म है। हम जो-कुछ काम करते हैं, जो-कुछ खर्च करते हैं उसका हिसाब हमें अपने माता-पिता या संरक्षकको देना है। हम जैसी आशा उनसे करते हैं वैसा ही व्यवहार हमें भी करना चाहिए। यदि हम अपने खर्चसे किसीको बैरिस्टर बननेके लिए इंग्लैंड भेजें तो मुझे लगता है कि हम यही आशा करेंगे कि वह वहाँ अपने हर क्षणका सदुपयोग करे और हम यह भी आशा करेंगे कि वह वहाँ बिताये हुए समयका हमें हिसाब दें। हमसे भी ठीक इसी बातकी आशा की जायेगी। हमसे सिर्फ यही आशा की जाती है कि हमें इस बातका ध्यान रहे और उसीके अनुसार हम काम भी करें। इतना करें, तो हमारा कर्त्तव्य पूरा हो जाता है और ऐसा अवसर कभी नहीं आयेगा कि इंग्लैंड जानेका अफसोस हो। यदि हम वहाँ बैरिस्टर बननेके लिए जाते हैं तो अच्छा बैरिस्टर बननेके लिए हमें पूरा प्रयत्न करना चाहिए और भोगविलास और आनन्द लूटनेके चक्करमें नहीं पड़ना चाहिए।

जो लोग अपने बालकोंको इंग्लैंड भेजना चाहते हैं वे पहले अच्छी तरह यह विश्वास कर लें कि वे बालक अपने कर्त्तव्यका पालन पूरी तरह करेंगे या नहीं, ताकि बादमें उन्हें भेजनेके लिए कभी दुख करनेका अवसर न आये। इसका सबसे अच्छा तरीका यही है कि लड़केको उतना ही धन दे दिया जाये कि वह बैरिस्टरी-की शिक्षा पूरी कर ले और फिर उसे साफ-साफ कह दिया जाये कि वह और आर्थिक सहायता की आशा न करे। इंग्लैंडसे उसके लौट आनेके बाद एक-दो सालतक उसके लिए कुछ व्यवस्था कर दें फिर उसे स्पष्ट समझा दें कि उसे अपनी आजी-विकाका खुद ही प्रबन्ध करना होगा। ऐसा व्यवहार कुछ कठोर लग सकता है, पर वह सर्वोत्तम कल्याणका साधन होगा; अन्यथा माँ-बाप और बालक दोनोंका जीवन क्लेशमय और कष्टपूर्ण ही होगा।

क्या इस समय जरूरतसे ज्यादा बैरिस्टर हैं? दोनों ही बातें ठीक कही जा सकती हैं। अगर हम किसी एक प्रान्तको ही लें, तो ज्यादा, पर पूरे भारतको लें तो बहुत कम हैं। बैरिस्टर सम्राज्ञीके राज्यके किसी भी प्रान्तमें काम कर सकते हैं, इस बातको या तो भुला दिया गया है या इसकी कोई परवाह नहीं करता। क्योंकि हर बैरिस्टर अपने ही प्रदेशमें वकालत शुरू करता है। अपने प्रदेशमें मित्रों या देशके ज्ञानके कारण सफलतापूर्वक काम चला पानेकी कुछ सम्भावना तो रहती है,

पर अगर पहले ही वहाँ बहुत-से लोग काम कर रहे हों तो ज्यादा लाभ नहीं हो सकता। तो फिर जिन प्रान्तोंमें कोई नहीं है, वहाँ क्यों न जायें?

फिर मुझे बताया गया है कि संरक्षित रियासतोंमें भी बैरिस्टरों और अन्य सभी शिक्षित व्यक्तियोंको कामके लिए अवसर मिले बिना नहीं रहेगा। ये रियासतें अभी बहुत पिछड़ी हुई हैं। आशा है कि उनमें सुधार किये जायेंगे। मौका आनेपर वहाँ सहायताके लिए देशके शिक्षित वर्गकी पुकार होने की सम्भावना है। फिर एजेंसियाँ शिक्षाकी अत्यधिक अवहेलना करने और दूसरे प्रभावोंको महत्त्व देनेके लिए बदनाम हैं। किसी न किसी दिन यह स्थिति भी सुधरेगी ही।

लेकिन मेरे कथनका गलत अर्थ लगाकर बहुतसे लोग बैरिस्टर बननेके लिए इंग्लैंड न चल दें। बैरिस्टर बनना ठीक है या नहीं, इस प्रश्नपर विचार करना इस पुस्तिकाके क्षेत्रसे बाहर है। इस सम्बन्धमें मार्ग-दर्शनके लिए और कई पुस्तिकाएँ हैं। सच तो यह है कि मुझे साफ-साफ यह स्वीकार करना होगा कि मैं इस विषयमें सलाह देनेके सर्वथा अयोग्य हूँ। जो लोग बैरिस्टर बननेका निर्णय कर चुके हैं, मैं तो सिर्फ उन्हें यह बताना चाहता हूँ कि उन्हें क्या खर्च करना पड़ेगा, कौन-सी परीक्षाएँ पास करनी होंगी, प्रवेश कैसे मिलेगा, आदि। काफी संकोच और दुविधाके बाद ही मैंने ऊपरके ये अनुच्छेद यहाँ देनेका निर्णय किया है।

मान लीजिए कि आप बैरिस्टर बननेका निर्णय कर चुके हैं, तब आपका सबसे पहला काम होगा मैट्रिक पास कर लेनेका प्रमाणपत्र प्राप्त करना। यदि आपने मैट्रिककी परीक्षा नहीं पास की होगी तो आपको प्रवेश पानेसे पूर्व एक परीक्षामें बैठना होगा। यह परीक्षा इतिहास और लैटिन भाषाकी होती है। किन्तु भारतीय विद्यार्थियोंको प्रार्थनापत्र देनेपर लैटिनकी परीक्षामें न बैठनेकी छूट दे दी जाती है। परीक्षा काफी आसान है।

इसके बाद आपको १ गिन्नीका प्रवेश-पत्र मिलता है और लगभग १४१ पौंड फीसके रूपमें देने पड़ते हैं।

जो व्यक्ति किसी विश्वविद्यालयमें प्रवेश लेते हैं उन्हें प्रारम्भमें १०० पौंड न देनेकी छूट मिल जाती है, पर उन्हें यह रकम अन्तमें भरनी पड़ती है। जिन व्यक्तियोंने ब्रिटिश साम्राज्यके किसी विश्वविद्यालयकी परीक्षा पास की हो, 'लिंकन्स इन' में सिर्फ उन्हें यह फीस न देनेकी छूट मिलती है। मैं नहीं जानता कि यह बात भारतीय विश्वविद्यालयोंपर भी लागू होती है या नहीं। चार संस्थाएँ हैं: इनर टेम्पल, मिडिल टेम्पल, लिंकन्स इन और ग्रेस इन। इन विभिन्न संस्थाओंके कोषाध्यक्षको पत्र लिखकर तत्सम्बन्धी जानकारी सीधे ही प्राप्त की जा सकती है। शायद आर्थिक दृष्टिसे लिंकन्स इन सर्वश्रेष्ठ है, फिर उसका पुस्तकालय भी सबसे अच्छा माना जाता है। अधिकतर भारतीय मिडिल टेम्पलमें प्रवेश लेते हैं। शिक्षाकी दृष्टिसे सभी संस्थाएँ एक-समान हैं, क्योंकि उनकी परीक्षा एक ही होती है। मिडिल टेम्पलमें सबसे ज्यादा छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं। फिर मिडिल टेम्पलकी इन छात्रवृत्तियोंमें धन नकद दिया जाता है। आप यदि इनर टेम्पलके विद्यार्थी हैं तो आपको न्याय सदनमें प्रवेश दिलाकर आपकी फीस भर दी जायेगी।

वकील बननेसे पूर्व आपको बारह सत्र पूरे करने पड़ते हैं। वर्षमें चार सत्र होते हैं। पहला जनवरीमें, दूसरा अप्रैलमें, तीसरा जूनमें और चौथा नवम्बरमें। सबसे छोटा सत्र २० दिनका और सबसे बड़ा लगभग ३१ दिनका होता है।

सत्र पूरा करनेका अर्थ है कि आप जिस 'इन' से सम्बद्ध हों, वहाँ भोजनके लिए जायें। यह आवश्यक नहीं है कि आप वहाँ भोजन करें किन्तु आपको भोजन कक्षमें ठीक नियत समयपर जाना होगा और वहाँ एक घंटा बैठना होगा। एक सत्रमें छः बार भोजनके लिए उपस्थित होनेपर माना जायेगा कि आपने एक सत्र पूरा किया। जो व्यक्ति किसी विश्वविद्यालयका विद्यार्थी है उसे भोजनके लिए केवल तीन बार जाना पड़ता है। वहाँ जाकर भोजन करें या न करें, उसके लिए पैसे देने ही पड़ते हैं। इनर टेम्पलमें प्रत्येक भोजनके लिए ३½ शिलिंग लिए जाते हैं, मिडिल टेम्पलमें दो शिलिंग। इस तरह मिडिल टेम्पलमें दाखिला लेनेसे आप हर बार भोजन पर १½ शि० की बचत कर सकते हैं। और भोजनके लिए बारह बार जाना पड़ता है। शायद लिंकन्स इन और ग्रेस इनमें भी भोजनके लिए २ शिलिंग लिये जाते हैं।

कोई भी पूछ सकता है कि जब भोजनके लिए पैसे देते हैं और जब उसे कोई धार्मिक आपत्ति न हो तो वह वहाँ खाना क्यों न खाये? यह सवाल ठीक ही है। उत्तर यही है कि आपको खाना ही चाहिए, पर फिर यह सवाल उठ खड़ा होगा कि किसी शाकाहारीको क्या करना चाहिए। साधारणतः तो आप डबलरोटी, सब्जी और पनीर ले सकते हैं। परन्तु 'इन' के मुख्य परिचारकसे या आवश्यक हो तो 'इन' के उपकोषाध्यक्षसे निवेदन करनेपर आपके लिए खास तौरसे ज्यादा अच्छा शाका-हारी भोजन बना दिया जायेगा। मेरे एक पारसी मित्र शाकाहार करने लगे थे। वह और मैं इसी तरह अपने लिए खास तौरपर शाकाहारी भोजन बनवा लिया करते थे।

और ज्यादा अच्छा यही होगा कि हर भारतीय आग्रह करे ताकि भविष्यमें हर 'इन' में नियमित रूपसे शाकाहारी भोजन बनाया जाये।

इन बारह सत्रोंकी समाप्तिपर वकील बन सकें, इसके लिए दो परीक्षाएँ पास करनी पड़ती हैं। एक रोमन कानूनोंकी, दूसरी अंग्रेजी कानूनोंकी।

विद्यार्थी चार सत्र पूरा करनेके बाद रोमन कानूनकी परीक्षामें बैठ सकता है, पर उससे पहले नहीं। इस तरह इंग्लैंड पहुँचनेके बाद इस परीक्षाकी तैयारीके लिए विद्यार्थीके पास कमसे-कम एक वर्षका समय होता है। और इस परीक्षाके लिए इतना समय जरूरतसे ज्यादा है। इसलिए परीक्षा फल बहुत अच्छा रहता है। रोमन कानूनके लिए सांडर्सकी 'जस्टीनियन' पाठ्यपुस्तक है। फिर भी कई विद्यार्थी हंटरकी 'इन्ट्रोडक्शन टु रोमन लॉ' पढ़ते हैं।

दूसरी परीक्षा जिसे वकालतकी अन्तिम परीक्षा कहते हैं, विद्यार्थी नौ सत्र पूरे करनेपर बैठ सकता है, उससे पहले नहीं। इसका अर्थ हुआ, प्रवेश पानेसे दो वर्षके बाद। इस परीक्षाके लिए भी इतना समय काफी ज्यादा है। यह परीक्षा

सम्पत्ति कानून, दण्ड विधि और न्याय-प्रणाली सहित आम कानूनोंकी होती है और चार दिन चलती है। पहले इसमें तीन दिन लगा करते थे, परन्तु अब न्याय-प्रणालीके एकके स्थानपर दो पर्चे होते हैं।

सम्पत्ति कानूनके लिए निर्धारित पाठ्यपुस्तकें हैं :

विलियम लिखित 'रियल प्रॉपर्टी'

विलियम लिखित 'परसनल प्रॉपर्टी'

गोडीव लिखित 'रियल प्रॉपर्टी'

गोडीव लिखित 'परसनल प्रॉपर्टी'

एडवर्ड लिखित 'कॉम्पेनडियम ऑफ द लॉ ऑफ प्रॉपर्टी इन लैंड'

सामान्यतः विद्यार्थी विलियम और गोडीवकी 'रियल प्रॉपर्टी' और गोडीवकी 'परसनल प्रॉपर्टी' पढ़ना ही काफी समझते हैं।। बहुत कम विद्यार्थी विलियमकी 'परसनल प्रॉपर्टी' पढ़ते हैं। इनके अतिरिक्त वे परीक्षाके लिए कई संदर्शिकाएँ भी पढ़ते हैं। आम कानूनोंके लिए निर्धारित पुस्तक है ब्रूमकी 'कॉमन लॉ'। फिर भी विद्यार्थी साथमें इन्डेरमोरकी 'कामन लॉ' भी पढ़ लेते हैं या ब्रूमकी पुस्तकके बदले सिर्फ इसे ही पढ़ लेते हैं। न्याय-प्रणालीके लिए निर्धारित पुस्तक स्नेल लिखित 'इक्युटी' है।

परीक्षाकी विषय-वस्तु प्रायः हर वर्ष बदल दी जाती है। इस प्रकार सामान्यतः अंग्रेजी कानूनोंका यथेष्ट ज्ञान होना आवश्यक है ही और साथ ही कुछ विशेष विषय भी प्रति वर्ष निर्धारित किये जाते हैं। उदाहरणके लिए व्हाइट और ट्यूडरकी 'लीडिंग केसेज इन इक्युटी' में न्याय-प्रणालीके कुछ विशिष्ट अंश नियत कर दिये जाते हैं (जैसे न्यास, बन्धक सम्बन्धी कानून)। जिन लोगोंने कानून सम्बन्धी आम सिद्धान्तोंका अच्छी तरह अध्ययन किया हो, उन्हें पास होनेमें कोई कठिनाई नहीं होती।

कौंसिल ऑफ लीगल एजूकेशनकी सबसे हालकी नियमावली[1] यहाँ दी जा रही है।

कई लोगोंको ऐसा भ्रम है कि विद्यार्थी बिना किसी परीक्षाके वकील बन जाते हैं या कि उसका नाटक ही किया जाता है। इन दोनों बातोंका कोई आधार नहीं और यह निठल्ले लोगोंकी कोरी कल्पना है।

इसमें सन्देह नहीं कि ये परीक्षाएँ सरल हैं या सरल लगती हैं। सामान्यतः परीक्षा-फल अच्छा रहता है। परीक्षाएँ सरल लगनेके दो-तीन कारण हैं।

पहला तो यह कि परीक्षा सालमें चार बार होती है, इसलिए यदि विद्यार्थी उत्तीर्ण न हो तो उसे उतना दुख नहीं होता, जितना कि भारतमें। इंग्लैंडमें वह तीन माह पश्चात् फिर परीक्षामें बैठ सकता है

दूसरा कारण यह है कि विद्यार्थीके पास तैयारीके लिए पर्याप्त समय होता है। प्रतिदिन छः घंटे पढ़नेसे दोनों परीक्षाएँ एक वर्षमें पास की जा सकती हैं, पर असफल होनेकी कोई गुंजाइश ही न रहे इसके लिए विद्यार्थीको पूरे दो वर्षका समय

१. यह उपलब्ध नहीं है।

मिलता है। इसलिए चिन्ता और कठोर परिश्रम किये बिना मजेसे तैयारी की जा सकती है। तैयारीके लिए आवश्यकतासे अधिक समय देना ठीक है या नहीं, यह एक अलग सवाल है। परन्तु परीक्षाकी तैयारीके लिए सिर्फ तीन महीने ही दिये जायें तो बहुत ही कड़वा और विभिन्न परिणाम होगा।

तीसरा कारण है कि अध्ययनके लिए कई सुविधाएँ हैं जैसे सहायताके लिए निजी शिक्षक, आदि। परन्तु प्रयत्न यही करना चाहिए कि निजी शिक्षकसे सहायता न लेनी पड़े। यह धनका अपव्यय ही है। शिक्षकसे पढ़नेवाला विद्यार्थी कभी आवश्यकतासे अधिक नहीं पढ़ता और जो-कुछ पढ़ता है, उसे परीक्षाके तुरन्त बाद भूल जाता है। ऐसा अनुभव कई लोगोंको हुआ है। स्वयं तैयारी करना ही सबसे बढ़िया रहता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि आजकल परीक्षाका स्तर ऊँचा करनेकी अच्छी वृत्ति है। आजकल अधिक उपयोगी पाठ्यक्रम निर्धारित करना शुरू कर दिया गया है। ताजी नियमावलीमें दो वर्ष पुरानी नियमावलीसे काफी ज्यादा चीजें दी गई हैं। क्योंकि [उसमें] साक्ष्यका ज्ञानमात्र भी आवश्यक नहीं था। अब उसका होना जरूरी है।

चारों संस्थाओंकी सामान्य कक्षाओंमें उपस्थित रहकर विद्यार्थी स्वयं पढ़ते हैं। प्रत्येक संस्था कुछ विशेष व्याख्यानोंका आयोजन भी करती है। साधारणतः इन व्याख्यानोंमें वही विद्यार्थी भाग लेते हैं जो छात्रवृत्तिकी परीक्षामें बैठना चाहते हैं। ये परीक्षाएँ सामान्य परीक्षाओंसे विभिन्न होती हैं। पर इन व्याख्यानोंमें उपस्थित रहना परोक्ष रूपसे अनिवार्य बना दिया गया है, क्योंकि जिन विषयोंपर व्याख्यान दिये जाते हैं, उनकी भी परीक्षा होती है।

दीक्षा-समारोह तो मात्र औपचारिक विधि ही है।

दीक्षा-समारोहमें बुलाये जानेके बाद आपको एक प्रमाणपत्र दे दिया जाता है और यदि आप भारत या उपनिवेशोंमें वकालत करना चाहते हैं तो आपको विशेष प्रमाणपत्रके लिए निवेदनपत्र देना पड़ता है।

इंग्लैंडसे रवाना होनेसे पूर्व बैरिस्टर बन चुके विद्यार्थी साधारणतः पाँच शिलिंगकी फीस देकर सम्राज्ञीके उच्च न्यायालयमें अपना नाम दर्ज करा लेते हैं।

यहाँ इस बातपर विचार करना महत्त्वपूर्ण हो सकता है कि विद्यार्थीका छात्रवृत्तिकी परीक्षामें बैठना वांछनीय है या नहीं। ऊपर यह बताया जा चुका है कि परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिए विद्यार्थीके पास आवश्यकतासे अधिक समय है। तब प्रश्न यह है कि वह बाकी समय क्या करे? कोई कह सकता है कि वह उसे निजी अध्ययनमें लगायेगा। यह कह देना आसान अवश्य है। ऐसे लोग हैं जो परीक्षा और अध्ययन दोनोंके लिए अध्ययन करते हैं, किन्तु यह अपवाद सिर्फ इस नियमको सिद्ध करता है कि सामान्यतः व्यक्ति कोई काम तभी करता है जब वह उसे सौंप दिया जाता है; इसलिए नहीं कि वह काम अच्छा है। बहुधा दूसरे काम निजी अध्ययनका स्थान ले लेते हैं, परन्तु परीक्षाके लिए की जानेवाली पढ़ाईको कोई नहीं

छोड़ता। इसलिए यही ज्यादा ठीक जान पड़ता है कि हम अपने लिए कोई परीक्षा सम्बन्धी कार्य नियत कर लें और निजी अध्ययनके लिए अपनी इच्छा-शक्तिपर ही निर्भर न रहें।

इस हालतमें यह कहना कठिन है कि किसी छात्रवृत्तिकी परीक्षामें बैठना ज्यादा अच्छा है या किसी विश्वविद्यालयमें भर्ती होना। छात्रवृत्तिके लिए परीक्षा देनेमें एक बुराई है। यह प्रतियोगिता एक-से लोगोंके बीच नहीं रहती। उसमें बी० ए०, एम० ए० या विश्वविद्यालयके दूसरे लोग भी भाग ले सकते हैं। उनके मुकाबले बेचारा मैट्रिक पास विद्यार्थी छात्रवृत्ति कैसे पा सकता है? जिन लोगोंने भारतमें बी० ए० की परीक्षा पास कर ली हो, उनके लिए छात्रवृत्तिकी परीक्षामें बैठना ही सबसे अच्छा होगा। कई विद्यार्थी दोनों ही काम करते हैं। वे विश्वविद्यालयमें प्रवेश भी लेते हैं और छात्रवृत्तिकी परीक्षाकी तैयारी भी करते हैं। मैट्रिक पास और दूसरे लोग यदि छात्रवृत्तिके लिए प्रयत्न करें तो उन्हें इस बातका सन्तोष होगा कि उन्होंने अपने ज्ञानमें वृद्धि की है और कुछ उपयोगी काम किया है। भले ही वे परीक्षामें सफल नहीं हुए; फिर भी शायद उनके लिए अच्छा यही होगा कि वे किसी एक विश्वविद्यालयसे बी० ए० कर लें। तब विश्वविद्यालय चुननेका प्रश्न सामने आता है। एक ओर कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय हैं, दूसरी ओर लन्दन विश्वविद्यालय। जहाँतक यथेष्ट ज्ञानप्राप्तिका सवाल है निःसन्देह लन्दन विश्वविद्यालय सर्वश्रेष्ठ है किन्तु यदि विश्वविद्यालयमें प्रवेश लेनेके पीछे उद्देश्य आनन्द और मजा लूटना है, तो सचमुच लन्दन विश्वविद्यालय बहुत पीछे छूट जायेगा। आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय बाजी जीत जायेंगे। जिसे विश्वविद्यालयके जीवनका आनन्द माना जाता है, वैसा लन्दनमें कुछ नहीं मिलता जब कि आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिजमें वह भरपूर है। लन्दन विश्वविद्यालय तो मात्र परीक्षा लेनेवाली संस्था है और उसके छात्रोंका किन्हीं सत्रोंको पूरा करना भी आवश्यक नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आक्सफोर्ड या कैम्ब्रिजमें शिक्षकोंसे मेल-जोल बढ़ानेका जो अवसर मिलता है, वह लन्दनमें नहीं मिलता।

कहा जाता है कि आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिजकी शिक्षा बहुत महँगी है। बी० ए० पास करके बैरिस्टर बननेमें कमसे-कम १५,००० रुपये लग जायेंगे। हालाँकि मुझे इन दोनोंका व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, फिर भी मैं कह सकता हूँ कि दोनोंमें से किसी एकमें शिक्षा प्राप्त करना बैरिस्टरीकी शिक्षासे महँगा नहीं हो सकता। हाँ, शुल्क और पुस्तकोंपर होनेवाले खर्चको छोड़ दें। यदि इतनी मितव्ययितासे रहना हो तो बिना किसी कालेजमें भर्ती हुए पढ़ना पड़ेगा। फिर भी लन्दन विश्वविद्यालयके विषयमें ऐसी कोई बात नहीं कही जा सकती। तो उस दृष्टिसे लन्दन विश्वविद्यालय-से बी० ए० पास करना ज्यादा अच्छा रहेगा। लन्दन विश्वविद्यालयका सबसे बड़ा लाभ यही है कि उसकी परीक्षाएँ भारतमें भी होती हैं। शाकाहारियोंको लन्दन विश्वविद्यालय ज्यादा अच्छा लगेगा, क्योंकि जितनी सुविधाएँ उन्हें लन्दनमें प्राप्त हो सकती हैं उतनी और कहीं नहीं।

अब इस विश्वविद्यालयके नियम इतने कड़े हैं कि दूसरे विश्वविद्यालयके बी० ए०, एम० ए० पास विद्यार्थीको भी पहले यहाँ मैट्रिककी परीक्षा पास करनी पड़ती है और फिर वह आगेकी किसी परीक्षामें बैठ सकता है। लेकिन मैट्रिककी परीक्षा पास कर लेनेके बाद बी० ए० पास किए बिना विद्यार्थी कानूनकी परीक्षा दे सकता है, जैसा कि बम्बई विश्वविद्यालयमें है। मैट्रिक पास करनेके बाद लन्दनका एल० एल० बी० का पाठयक्रम लगभग तीन वर्षका है। इस तरह वकील बननेके साथ-साथ तीन सालमें मैट्रिक पास कर सकते हैं और एल० एल० बी० की मध्यवर्ती परीक्षा पास कर सकते हैं। अध्ययनके इस पाठ्यक्रमके कारण विद्यार्थीके पास बिलकुल समय नहीं बचेगा और उसके पास बेकारके मौज-शौकके लिए कोई फुरसत नहीं होगी। और इसमें बैरिस्टरीकी शिक्षामें होनेवाले खर्चमें २०-२५ पौंडसे ज्यादा खर्च नहीं होगा।

बैरिस्टरीकी शिक्षाका खर्च :

वकील बननेके लिए जरूरी है कि नवम्बरसे प्रारम्भ होनेवाले सत्रमें उपस्थित होनेके लिए समयपर इंग्लैंडके लिए रवाना हों। यदि आप अक्तूबर या सितम्बरमें इंग्लैंडके लिए रवाना होंगे तो आप तीसरे वर्ष जुलाईके महीनेमें लौट सकते हैं। किसी दूसरे मासमें रवाना होनेपर आप तीन सालके बाद, पर जिस महीने इंग्लैंडके लिए रवाना हुए होंगे उससे एक मास पूर्व भारत लौट सकते हैं। सिवा इसके कि अक्तूबरमें जानेसे दो मास बच सकते हैं। पिछले अध्यायमें बताया जा चुका है कि जानेके लिए सबसे अच्छा समय मार्च है।

पिछले अध्यायमें हमने हिसाब लगाया है कि इंग्लैंडमें तीन सालके लिए रहने-खानेका खर्च प्रति मास चार पौंड होगा। इसलिए तीन सालके लिए रहन-सहनका खर्च १५० पौंड लगाया जा सकता है। पिछले अध्यायमें कपड़ोंकी सूची भी दे दी गई है। उस अध्यायमें बताये गये वस्त्र कमसे-कम पहले वर्षके लिए पर्याप्त होंगे। और सावधानीसे इस्तेमाल करें, तो शायद दो वर्षतक कुछ न लेना पड़े। फिर भी नीचे कपड़ोंकी एक और सूची दी जा रही है। आवश्यकतानुसार इन्हें खरीदा जा सकता है। परन्तु किसी भी हालतमें इनसे ज्यादाकी जरूरत नहीं पड़ेगी। अपनी मर्जीके मुताबिक सूचीमें फेर-फार भी किया जा सकता है। लेकिन कपड़ोंपर तय राशिसे ज्यादा खर्च नहीं किया जाना चाहिए।

	पौंड	शि०	पें०
३ पतलून	१	१६	०
१ जाकिट सूट (वास्कट और जाकिट)	२	०	०
३ सफेद कमीजें	०	६	०
२ गर्म कमीजें	०	१६	०
२ गर्म या ऊनी बनियान	०	११	०
४ सूती बनियान	०	८	०

२ गर्म जाँघिए		०	१३	०
६ जोड़े गर्म मोजे		०	१२	०
	पौंड	७	२	०
१२ जोड़े ऊनी या सूती मोजे		०	९	०
१२ सूती रूमाल		०	२	०
२ फेल्ट हैट		०	७	०
६ नेकटाई		०	३	०
१ स्लीपर		०	२	०
४ जोड़े जूते या बूट		१	१२	०
१ जोड़ा दस्ताने		०	३	०
	पौंड	१०	०	०
		पौं०	शि०	पें०
	पिछला हिसाब	१०	०	०
३ दाँतके ब्रुश		०	१	०
२ छाते		०	११	०
१ उस्तरा		०	३	०
१ शामके सूटका १ दिनका किराया		०	५	०
१ गाउन		१	१०	०
४ सूती या ऊनी जाँघिए		०	११	०
१ तेलका स्टोव		०	५	०
१ कलई किया हुआ बर्तन		०	१	६
२ चम्मच		०	२	०
प्लेटें		०	१	०
	पौंड	१३	११	६

यह समझ लेना चाहिए कि उपर्युक्त सूची तथा पिछले अध्यायमें दी गई सूची दोनोंमें संख्या और दामकी दृष्टिसे किफायतकी गुंजाइश है। जब मैंने ये सूचियाँ एक ऐसे मित्रको दिखाईं जो जरूरतसे कुछ ज्यादा ही कठोर हैं तो उन्हें इसमें दी गई चीजें बहुत ज्यादा लगीं। सूचीके अन्तमें शामके जिस सूटका उल्लेख किया है, वह दीक्षान्त-समारोहके लिए है। कहते हैं कि उस दिन यह सूट पहनकर जाना अनिवार्य है। अभीतक किसीने साधारण पोशाकमें उपस्थित होनेका प्रयोग नहीं किया है। यह प्रयोग करके देखना चाहिए। फिर भी यदि शामका सूट पहनना ही हो तो वह स्टैंड या फ्लीट स्ट्रीटकी किसी एक दूकानसे ५ शिलिंग देकर एक शामके लिए किराये पर लिया जा सकता है। या मित्रोंसे भी माँगा जा सकता है। यहाँ यह बता

दना शायद असंगत नहीं होगा कि १ पौंड प्रति सप्ताहके खर्चमें जूतों या कपड़ोंकी मरम्मतका खर्च भी शामिल है। जूतोंकी मरम्मत अकसर जल्दी करानी पड़ती है। एक जोड़ीकी मरम्मतके लिए १ शिलिंग ६ पेंस या कुछ कम पैसे लगते हैं। आप देखेंगे कि सूचीमें तेलके स्टोव और बर्तन आदिका उल्लेख भी किया गया है। ये खाना पकानेके लिए हैं। उनको हमेशा काममें न लायें तो भी वे कभी-कभी बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। हो सकता है कि मकान-मालकिन अच्छा भोजन न बना पाये या किसी और कारणसे यात्राके दौरान सस्ता भोजन न मिल पाये, ऐसी दशामें अपना भोजन खुद तैयार करना सबसे अच्छा रहेगा।

तब सिर्फ उस फीस और पैसोंका हिसाब करना बच रहता है जो इन संस्थाओंमें देने पड़ेंगे।

इनर टेम्पलमें ली जानेवाली फीस आदि इस प्रकार है:

		पौंड	शि०	पें०
प्रवेश-पत्र		१	१	०
टिकट देय और फीस		३५	६	०
व्याख्यानोंकी फीस		५	५	०
सदन देय व १२ सत्रोंके लिए भोजन		१५	१३	०
उपनिवेशोंके लिए वकालतका प्रमाणपत्र		०	१२	०
सदन परिचयकी फीस		९४	१०	०
	पौंड	१५२	७	११
उच्च न्यायालयमें नामांकन		०	५	०
	पौंड	१५२	१२	११

मैंने यही फीस दी थी। यदि अब मिडिल टेम्पलमें प्रवेश लेते हैं और वहाँ इनर टेम्पलमें दी जानेवाली फीसके अतिरिक्त और कोई शुल्क न देना पड़े, जैसा कि शायद नहीं देना पड़ता तो ७२ बार १।। शि० अर्थात् पौंड ५-८-० बचाये जा सकते हैं। क्योंकि मिडिल टेम्पलमें इनर टेम्परके ३।। शि० के मुकाबले भोजनके सिर्फ दो शिलिंग लिये जाते हैं। मुझे मालूम है कि किसी भी हालतमें फीस १५२-७-११ पौंडसे ज्यादा नहीं होती। इसलिए ज्यादासे-ज्यादा खर्च १५३ पौंड हो सकता है। इतना हम फीसके लिए अलग रख दें।

उसके बाद किताबोंकी बारी आती है। पुस्तकोंका ब्योरा देनेसे पहले इतना कह दूँ कि इन विभिन्न संस्थाओंके पुस्तकालय सदस्योंके उपयोगके लिए हैं। संस्थाओंके सदस्य इनका पूरा लाभ न उठायें तो इसमें दोष उनका ही होगा। इस तरह छात्र-वृत्तिकी परीक्षाके लिए जरूरी कानूनकी सभी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें पुस्तकालयमें मिलेंगी। जिन पुस्तकोंका उल्लेख मैं अभी करनेवाला हूँ, वे भी पुस्तकालयमें मिलेंगी। लेकिन इन पुस्तकोंको रोज देखनेकी जरूरत पड़ती है इसलिए इन्हें खरीदा जा सकता है। लन्दनमें कानूनी पुस्तकोंके ऐसे पुस्तकालय भी हैं जो अपने सदस्योंको दिये गये चन्देके

अनुसार पुस्तकें महीने या ३ महीनेतक ले जानेकी सुविधा भी देते हैं। इसलिए जो व्यक्ति और भी मितव्ययितासे काम लेना चाहता हो, वह इन पुस्तकालयोंका लाभ भी उठा सकता है।

मैं सरसरी तौरपर यह भी बता दूँ कि कभी-कभी ऐसी मितव्ययिता अत्यावश्यक भी हो जाती है। कभी आपके मनमें यात्रा करनेका विचार आ सकता है, पर शायद आप उस निश्चित रकमसे ज्यादा खर्च न कर पायें, जिसमें आपने ऐसी यात्राके लिए खर्चकी बात नहीं सोची थी। उस दशामें आपको कहीं और काट-कसर करनी होगी। इस तरहकी काट-कसरका एक उदाहरण आप परिशिष्ट 'क' में पायेंगे। जब सम्भव हो तभी एकाध शिलिंग या पेंस बचाकर जमा कर रखनेसे अच्छी खासी रकम बच जाती है और उसे दूसरे उपयोगी कामोंमें लगाया जा सकता है। कहीं भी थियेटरका उल्लेख नहीं किया गया है। इंग्लैंडमें रंगमंच राष्ट्रीय संस्था ही है और जैसा कुछ लोग सोचते हैं, शिक्षा और मनोरंजन दोनोंका साधन है। फिर वहाँ इंग्लैंडके आधुनिक रीति-रिवाज भी प्रतिबिम्बित होते हैं। उन्हें देखे बिना कोई भी भारत नहीं लौटता। तब पूछा जा सकता है कि इस पुस्तिकामें दिये गये तखमीनोंमें उनका हिसाब कहाँ लगाया गया है। एक पौंड प्रति सप्ताहके सामान्य खर्चमें उनके लिए गुंजाइश है और कपड़ोंके लिए दिये गये अनुमानमें भी है; क्योंकि वहाँ भी खर्च कम किया जा सकता है। थियेटर जानेके लिए ज्यादा पैसे नहीं लगते। गैलरीकी एक सीटके लिए एक शिलिंग और आगेके स्थानके लिए २ या २।। पेंस लगते हैं। मध्यम-वर्गके सज्जन और बहुधा भारतीय पिछली सीटोंका उपयोग करते हैं। औसतन महीनेमें एक बार जाना काफी है और पाठक देख चुके होंगे कि चार बार २ शिलिंग बचा लेनेकी काफी गुंजाइश रखी गई है। पुस्तिकामें दिये गये हिसाबमें गड़बड़ी तभी होगी, जब कभी कोई मोटा खर्च आ पड़े। उदाहरणके लिए यदि यात्रा करनी पड़े और ४ पौंडकी सामान्य सीमाका उल्लंघन न करना हो तो सस्ते कमरेमें जाकर रहनेसे पैसे बचाये जा सकते हैं।

अब फिर पुस्तकालयकी बातपर आ जायें। पिछले अध्यायमें इस बातका जिक्र किया गया था कि अपनी संस्थाके पुस्तकालयमें ज्यादा समय व्यतीत करना अधिक सुविधाजनक होगा। क्योंकि बहुत बढ़िया सजा-सजाया कमरा भी उतना आरामदेह या सुविधापूर्ण नहीं होगा, जितना पुस्तकालयका कमरा। इस कमरेको हमेशा गर्म रखने और उसमें ताजी हवा आनेका प्रबन्ध रहता है।

जिन पुस्तकोंकी आवश्यकता होगी, वे इस प्रकार हैं। सभी पुस्तक विक्रेता सामान्य साहित्यकी पुस्तकोंपर २५ प्रतिशत और कानूनी पुस्तकोंपर २० प्रतिशत छूट देते हैं। दूसरी कालममें छूटके बाद दिये जानेवाले दाम हैं।

	पौं०	शि०	पें०	पौं०	शि०	पें०
सांडर्सकी 'जस्टीनियन'	०	१८	०	०	१५	०
हंटरकी 'इन्ट्रोडक्शन टू रोमन लॉ'	०	७	६	०	६	०
विलियम की 'रियल प्रॉपर्टी'	१	१	०	०	१७	०

गोडीवकी 'रियल प्रॉपर्टी'	१	१	०	०	१७	०
गोडीवकी 'परसनल प्रॉपर्टी'	१	१	०	०	१७	०
ब्रूम की 'कॉमन लॉ'	१	५	०	१	०	०
इन्डेरमोरकी 'कॉमन लॉ'	१	०	०	०	१६	०
स्नेलकी 'इक्युटी'	१	०	०	१	०	०
अतिरिक्त				३	१२	०
			कुल पौं	१०	०	०

अब खर्चकी सिर्फ एक मदपर विचार करना बाकी है, वह है वापसी किराया। यह किराया ३५ पौंड है।

इस तरह बैरिस्टरकी शिक्षाका कुल खर्च हुआ:	पौंड
बम्बईमें कपड़े	१८
बम्बईसे लन्दनका किराया	२४
लन्दनमें कपड़े	१४
फीस आदि	१५३
लन्दनमें तीन साल रहने-खानेका खर्च	१५०
पुस्तकें	१०
लन्दनसे बम्बईका किराया	३५
आकस्मिक आवश्यकताओंके लिए	१६
पौंड	४२०

तो बैरिस्टर बननेका खर्च हुआ ४२० पौंड। पाठक देख ही चुके होंगे कि इसे भी घटाकर आसानीसे ४०० तक में काम चलाया जा सकता है। तीन चीजें ऐसी हैं जिनमें स्पष्टतया ४ पौंड कम किये जा सकते हैं। ये हैं बम्बईमें और लन्दनमें कपड़े तथा पुस्तकें। देखा जाये तो आकस्मिक आवश्यकताओंके लिए सचमुच अनुमानित खर्च-में कुछ नहीं रखा जाना चाहिए। क्योंकि रहने और खानेके १५० पौंडमें उसका भी हिसाब लगा लिया गया है।

पहली दो चीजोंकी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए, क्योंकि उनका अनु-मान रुपयोंमें लगाकर फिर वर्तमान विनिमय दरपर पौंडमें बदल दिया गया है। वर्त-मान विनिमय दर १६ रुपयेके लिए एक पौंड है। जैसा आपने देखा होगा उनका खर्च ६५३ रुपये है, पर यदि हिसाब पौंडमें लगायें तो वह विनिमयकी दरके साथ-साथ बदलेगा।

किरायेके ३७० रुपये भी इसी तरह घट-बढ़ सकते हैं। आगे ही रुपयेका मूल्य कम हो जानेके कारण किराया कोई २० प्रतिशत बढ़ा दिया गया है। यदि रुपयेका मूल्य बढ़ गया, जैसा होनेकी आशा है तो सम्भव है कि किराया पहले जितना कम हो जाये।

अब फैसला यह करना है कि आप अपने साथ कितने पौंड ले जायें। इनमें से ६५३ रुपये तो बम्बईमें ही खर्च हो जायेंगे। लन्दन पहुँचनेपर आपको लगभग १४१ पौंड फीसके रूपमें देने पड़ेंगे। इसमें ४१ पौंड तो फीसके लिए रहते हैं और १०० पौंड आपकी संस्थामें आगे होनेवाले खर्चकी जमानतके रूपमें लिये जाते हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि कुछ मामलोंमें जमानत न भरनेकी छूट दे दी जाती है। यदि आप निश्चित रूपसे जानते हों कि छूटके नियम आपपर लागू हो सकते हैं तो आप १०० पौंड कम ले जा सकते हैं। अन्यथा हर हालतमें आपको कमसे-कम १७५ पौंड अपने साथ ले जाने चाहिए या इस बातका भरोसा होना चाहिए कि इंग्लैंड पहुँचते ही आपको इतने पैसे मिल जायेंगे। यदि आप रकम अपने साथ ले जायें तो उसे नकद रूपमें नहीं ले जाना चाहिए; बल्कि किसी बैंकके नाम हुण्डीके रूपमें ले जाना चाहिए। मेसर्स हचीसन ऐंड कम्पनी अच्छे बैंकर हैं और भारतीय ग्राहकोंका काम देखते हैं। मि० वि० डिग्बीका इस कामसे सम्बन्ध है। वे भारतीयोंको निवास आदिके बारेमें जानकारी निःशुल्क देते हैं। फिर भी मुझे नहीं लगता कि वे सस्ते निवास-स्थानोंका पता बता सकेंगे। उनके पास उन परिवारोंकी सूची है जो भारतीयोंको किरायेदारके रूपमें रखते हैं। किन्तु ये परिवार खाने-रहनेका खर्च प्रति सप्ताह लगभग ३० शिलिंग लेते हैं। कुछ परिवार २५ शिलिंग भी लेते हैं। परन्तु उनसे कह सकते हैं कि आप ज्यादा खर्च नहीं करना चाहते और हो सकता है कि वे आपके लिए कोई अच्छी जगह तलाश कर देंगे। इस विषयमें 'वेजिटेरियन' के सम्पादक महोदय आपका सबसे अच्छा मार्गदर्शन कर सकते हैं। उन्होंने वादा किया है कि जो भारतीय उनसे सहायता माँगेंगे, उनके लिए वे योग्य निवासस्थान खोज देंगे। मैंने सरसरी तौरपर इसका उल्लेख कर दिया है। बैंकके कामके लिए मेसर्स हचीसन ऐंड कम्पनी काफी ठीक रहेंगे। लन्दनमें उनका पता है:[1]

हॉर्नबी रोड, बम्बईके मेसर्स कुक ऐंड सन्स भी अच्छे और जाने-माने बैंकर हैं। बहुतसे भारतीयोंने उनके पास खाता खोल रखा है। ये सभी पेढ़ियाँ अपने पतेपर ग्राहकोंके आये हुए पत्रोंके लिए पैसे नहीं लेतीं। फिर भी अच्छा यही होगा कि आप अपनी संस्था या निवासस्थान तय कर लें और उसी पतेपर पत्र लिखनेको कहें।

यदि आप अपने पास दो तीन पौंड नकद रखें तो अच्छा रहेगा। क्योंकि लन्दन पहुँचनेपर रेलकी टिकट और जहाजमें अपनी कैबिनके परिचारकको कुछ शिलिंग देनेके लिए या यदि आप जहाज, रास्तेके जिन मुकामोंपर रुकता है, उनमें से किसी मुकामपर उतर जाते हैं तो नौकाका किराया आदि देनेके लिए आपके पास पैसे होने ही चाहिए।

हालाँकि मैंने खर्चका जो अनुमान दिया है, वह न्यूनतम नहीं है, फिर भी मैं यह मान लेता हूँ कि जो भी व्यक्ति ४२० पौंड, विनिमयकी वर्तमान दरसे ६,७२० रुपये नहीं खर्च कर सकता, वह इंग्लैंड जानेका साहस नहीं करेगा। मैं तो एक बात और भी कहना चाहता हूँ। यदि आपके पास १०,००० रुपये हों तो सारेके-सारे

१. साधन-सूत्रमें पता नहीं दिया गया है।

यह सोचकर लन्दनमें खर्च न कर दें कि उससे वहाँ आपका जीवन ज्यादा आनन्दपूर्ण हो सकता है।

अब मैं अपने मुख्य विषयसे थोड़ा-सा हटकर यहीं यह बता देना चाहता हूँ कि आप वहाँ ४२० पौंड खर्च करते हुए जो जीवन व्यतीत करेंगे वह हर दृष्टिसे भारतके कई विद्यार्थियोंके जीवनसे ज्यादा आनन्दपूर्ण होगा और यह भी ध्यान रहे कि १०,००० में प्राप्त आनन्द-भोगकी वस्तुओंसे आपको सन्तोष नहीं होगा। इतना ही होगा कि आप और अधिक धनकी इच्छा करने लगेंगे, जिससे अपने धनी भाइयोंसे होड़ कर सकें, किन्तु सच तो यह है कि इससे आप ज्यादा ही दुःखी होंगे। यदि आप कहें कि इंग्लैंडमें एक कमरा काफी नहीं होगा तो मैं आपसे पूछता हूँ कि यहाँपर आपके पास क्या है? आप धनी बापके बेटे हों तो भी क्या आप दो या तीन व्यक्ति एक ही कमरेमें नहीं सोते — एक ऐसे कमरेमें जिसमें फर्शपर कालीन नहीं, जिसमें कोई फर्नीचर नहीं, शायद ही एकाध खिड़की है और जिसके चारों ओर गंदी नालियाँ हैं? क्या आपने बम्बईमें एक ही कमरेको रसोई, बैठक या सोनेके कामके लिए इस्तेमाल नहीं किया? मैंने तो कुछ ऐसे धनी विद्यार्थी भी देखे हैं जो रुपया पानीकी तरह बहाते हैं, पर ऐसे गन्दे घरोंमें रहते हैं जहाँ रोज झाड़ू भी नहीं लगाई जाती। क्या आप यह कहते हैं कि पुस्तिकामें बताये गये भोजनसे आप निर्वाह नहीं कर सकते? यदि ऐसा हो, तो आप दयाके पात्र ही कहला सकते हैं। मुझे विश्वास है कि आपको यहाँ भी इससे अच्छा खाना नहीं मिलता। क्या आपको भारतमें खानेको[1] तो क्या, चखनेको भी फल मिलता है? क्या भारतमें आप दो बार भोजनसे काम नहीं चलाते? और दूध एक ही बार नहीं पीते? या आपका कहना है कि आप अपना खाना नहीं बना सकते। यदि ऐसा हो तो आपके धर्मके सवालको छोड़कर जरूरी नहीं है कि आप लन्दनमें भी भोजन बनायें। और अगर आप नहीं बनाते तो क्या कई दूसरे विद्यार्थी भारतमें भोजन स्वयं नहीं बनाते, और बनाते भी कैसे हैं? छोटे-छोटे चूल्होंपर, आगको फूँक-फूँककर। इसमें कभी-कभी उनके कपड़े भी खराब हो जाते हैं और खाना बनाते-बनाते धुँएसे आँखें लाल हो जाती हैं। इसके बदले इंग्लैंडमें एक पौंड प्रति सप्ताह खर्च करनेपर क्या मिलता है? एक अच्छा आरामदेह कमरा, एकदम साफ-सुथरा, जिसमें एक सुन्दर कालीन, पंखके गद्देवाला सुन्दर पलंग, दो तकिए, दर्पण, हाथ-मुँह धोनेकी मेज, कुर्सियाँ, आदि रहती हैं (पीछे दिया गया वर्णन देखें)। यह कमरा सिर्फ आपके लिए है। घरकी नौकरानी हमेशा आपका बिस्तर लगा जाती है, बर्तन साफ कर जाती है, हर वक्त आपकी सेवा के लिए हाजिर रहती है। और आपके लिए घरका सारा काम करती है। उसे बुलानेके लिए आपको जोरसे पुकारना भी नहीं पड़ता, बस घंटी बजा दें और वह दरवाजेपर हाजिर होकर खटखटाती है। वह उसी समय कमरेमें प्रवेश करेगी जब आप आनेके लिए कहेंगे। ऐसा जीवन तो किसी प्रकार भी कष्टपूर्ण नहीं है और यदि आप इसे कष्टपूर्ण मानते हैं तो १०,००० से वह कम कष्टपूर्ण नहीं हो जायेगा।

१. अंग्रेजीमें यहाँ 'काटना' शब्द लिखा है जो स्पष्टतया भूल है।

अब इस विषयान्तरणको छोड़कर अपनी बातपर लौटें। यदि आपके पास १०,००० रुपये हों तो उन्हें पास रखें। खर्च सिर्फ ६,००० या जितने ४२० पौंडके बराबर बैठें उतने ही करें। बाकी भारत लौटनेपर आपके काम आयेंगे। इस विचारमें कितना आश्वासन है! किसी नये बैरिस्टरसे पूछें कि यदि उसे भारतमें काम शुरू करनेके लिए २,००० रुपये मिलें तो उसे कैसा लगेगा। इस विचारसे उसे कितना आश्वासन मिलता है, यह बात आप तब समझ सकेंगे; किन्तु यदि आप दसके-दस हजार विलायतमें खर्च कर डालें और भारत लौटनेपर गाँठमें एक भी पैसा न हो तो उससे आपको जितना कष्ट होगा, शायद उसकी पूर्ति करनेवाला आनन्द ४२० पौंडसे ज्यादा खर्च करके नहीं मिलेगा। इसके सिवा अतिरिक्त धन खर्च करके आप ज्यादा सुखसे रहनेकी आशा करते जरूर हैं, पर उससे आप सुखी होंगे ही इसका कुछ भरोसा तो नहीं है। आपके पास १०००, २००० या जितने बच सकें, उतने रुपये रहना अत्याव-श्यक है। फिर आपको इंग्लैंड जानेका दुख नहीं होगा। उनके सहारे आप अपने लिए स्थान बना सकेंगे। पर यदि सहारेके लिए धन नहीं होगा तो आप जो महल खड़ा करनेकी आशा करते हैं, वह महल नींव न होनेके कारण ढह जायेगा और आप अपने आपको निराश्रित पायेंगे। क्योंकि लौट आनेपर आपको फौरन काम मिलनेवाला नहीं है। शायद मनको खटकनेवाला कोरा आदर-सत्कार और बधाइयाँ ही मिलेंगी। और अगर काम हो भी, तो वकालतका अनुभव न होनेके कारण आप कदाचित् उसे स्वीकार नहीं कर पायेंगे। इसलिए यदि आप एक ऐसे व्यक्तिकी सलाह मानें, जिसे इसका कटु अनुभव हो चुका है और उसका आप लाभ उठाना चाहें तो १०,००० रुपये होनेपर भी आप सिर्फ ४२० पौंडके बराबर राशि खर्च करें और बाकी भारतमें खर्च करनेकी दृष्टिसे बचा लें। इससे आप सुखी और सन्तुष्ट रहेंगे। कोई भी आपपर उँगली नहीं उठायेगा। आपको अपनी स्थिति कमजोर नहीं लगेगी और दो-एक सालमें अपनी योग्यता और अवसरोंके अनुसार आप एक माने हुए बैरिस्टरके रूपमें जम पायेंगे। इतना ही नहीं, बल्कि इंग्लैंडमें निर्मित अपने मितव्ययी स्वभावसे आपको भारतमें भी लाभ होगा। तब आप ज्यादा अच्छी तरह निर्वाह कर पायेंगे और आपको ऐश-आरामसे रह सकनेकी बात अखरेगी नहीं।

सच तो यह है कि इंग्लैंडसे लौटनेपर आपको लगभग २,००० रुपये पानेकी आशा न हो, तो मैं बैरिस्टर बननेके लिए इंग्लैंड जानेकी सलाह ही नहीं दूँगा। हाँ, यदि आपको लौटनेके बाद कोई अच्छी नौकरी मिलनेकी आशा हो, तो बात दूसरी है। क्योंकि २,००० रुपये या इतनी राशिके बराबर ही धनकी भारतमें आपको उतनी ही आवश्यकता होगी, जितनी इंग्लैंडके लिए ४२० पौंडकी थी।

यदि आप भारत लौटकर वकालत करना चाहते हों तो इंग्लैंडमें भारतीय कानूनोंका अध्ययन कितना महत्त्वपूर्ण है, यह बताया ही नहीं जा सकता। ये पुस्तकें आपको पुस्तकालयमें मिलेंगी। ह्विटली स्टोक्स लिखित 'एंग्लो इंडियन कोडज' इंग्लैंडके भारतीय विद्यार्थियोंमें बहुत लोकप्रिय हैं।

जो व्यक्ति अध्ययनके लिए इंग्लैंड जानेके इच्छुक हैं उनके सूचनार्थ और मार्ग-दर्शनके लिए कई पुस्तकें छापी गई हैं। इनमें सदा यहाँ दिये गये अनुमानोंसे ज्यादा

खर्च बताया जाता है। यहाँ उनपर विचार करें, तो बहुत-कुछ लिखना पड़ेगा। मैं यही कह सकता हूँ कि उन पुस्तकोंको इसके साथ-साथ पढ़कर तुलना कर ली जाये। फिर भी वहाँ एक संस्था भारतीयोंके लिए बहुत अच्छा काम कर रही है और यहाँ उसका उल्लेख कर देना चाहिए। इस संस्थाका नाम है भारतीय राष्ट्रीय संघ[1]। जबतक इस संघको ३५, ब्लूमफील्ड रोड, मेडन हिलकी कु० ई० ए० मैनिंग जैसी नेक और दानी महिलाकी सक्रिय सेवाएँ प्राप्त हैं, तबतक वह हमेशा अच्छा काम करता रहेगा। कु० मैनिंग हर भारतीयकी सहायता करने और सलाह देनेके लिए सदैव तत्पर रहती हैं और हरएकको उनकी सलाह लेनी ही चाहिए। फिर भी मुझे लगता है कि संघ द्वारा दी गई सूचनाएँ पक्की नहीं हैं। उसके द्वारा प्रस्तुत अनुमान बहुत खर्चीले होते हैं। मैंने कुछ ऐसे व्यक्तियोंसे बात की है जिन्हें संघके संरक्षणमें रखा गया था और उन लोगोंने मुझे बताया है कि उन्हें बहुत ज्यादा खर्चका अनुमान बताया गया था। संघके मुखपत्र 'इंडिया मैगजीन ऐंड रिव्यू' में अनुमान इस प्रकार है:

स्कूलकी साधारण शिक्षाके लिए विद्यार्थीकी आयु और स्कूलकी प्रतिष्ठाके अनुसार प्रति वर्ष १५० पौंडसे २०० पौंडतक।

विश्वविद्यालयके विद्यार्थीके लिए	**प्रति**	**वर्ष**	**३०० पौंड**
भारतीय प्रशासनीय सेवाओंके विद्यार्थीके लिए	,,	,,	**३०० पौंड**
इंजीनियरिंगके विद्यार्थीके लिए	,,	,,	**३०० पौंड**
अदालतसे सम्बद्ध विभिन्न संस्थाओंके विद्यार्थीके लिए	,,	,,	**२५० पौंड**
चिकित्सा शास्त्रके विद्यार्थीके लिए	,,	,,	**२५० पौंड**
कृषि शिक्षाके लिए	,,	,,	**२५० पौंड**

इस रकममें फीस, रहने आदिका खर्च, पोशाक, छुट्टियोंका खर्च और संरक्षणका खर्च शामिल है। अदालतसे सम्बद्ध किसी एक संस्थामें प्रवेशके लिए दी जानेवाली लगभग १५० पौंडकी फीस उपर्युक्त खर्चमें शामिल नहीं है। वहाँ पहुँचनेपर पोशाक आदि बनवानेके लिए भी ३० पौंडकी जरूरत पड़ती है।

सो ऊपर दिये गये हिसाबसे प्रतिवर्ष २५० पौंड खर्च होंगे अर्थात् तीन सालमें ७५० पौंड। फीसके १५० पौंड, जिनका इसमें हिसाब नहीं लगाया गया है, भी इसीमें शामिल कर लीजिए, और कपड़ोंके लिए ३० पौंड भी और, मुझे लगता है, बम्बईके १८ पौंड और लन्दन आने-जानेका खर्च कोई ६० पौंड भी शामिल कर लीजिए तो हमारे पास १,००८ पौंडका हिसाब हो गया। इन अनुमानोंमें शिक्षकका तथा संरक्षकका जो खर्च शामिल है, वह पुस्तिकामें बताये गये अनुमानमें नहीं दिया गया है। जिस विद्यार्थीको कानूनकी अन्तिम परीक्षा पास करनेके लिए शिक्षककी जरूरत हो और वह भटक न जाये, इसका ध्यान रखनेके लिए संरक्षककी जरूरत हो, उसकी स्थिति दयनीय ही होगी। यदि लड़केपर कड़ी निगरानीकी आवश्यकता है तो क्या यह

१. इंडियन नेशनल एसोसिएशन।

ज्यादा अच्छा नहीं होगा कि विदेशमें बिलकुल अनजान किसी समिति या संस्थाके संरक्षणमें रखनेके बजाय उसे अपने पास रखें? जो इस बातको जानते हैं और जिन्हें जानना चाहिए, उनके लिए अभीतक यह स्पष्ट हो गया होगा कि यदि विद्यार्थी भटकनेपर तुल जाये तो उसे कोई नहीं रोक सकता, कितनी भी निगरानीसे उसे सही रास्तेपर नहीं रखा जा सकता, विशेषतया जब निगरानी उपर्युक्त प्रकारकी हो। या तो यह विश्वास करें कि वह अपना भला-बुरा देख लेगा या उसे बिलकुल न भेजें। सिर्फ सारा धन उसे ही न सौंप दें ताकि वह जो मनमें आये, करे और अपने कर्त्तव्यकी उपेक्षा करे। इंग्लैंडमें विद्यार्थीके सबसे ज्यादा बिगड़नेका कारण पैसा ही है। एकके बजाय दो विद्यार्थियोंको भी वर्षमें २५० पौंड दें तो उनका बिगड़ जाना जरा भी कठिन नहीं है। मैं यह तो कदापि नहीं कहता कि सालमें पचास पौंडसे एक पैनी भी ज्यादा खर्च करना फिजूलखर्ची है। उसकी तो बात ही नहीं है। इंग्लैंडमें एक वर्षमें ५०० पौंड भी उपयोगी ढंगसे खर्च किये जा सकते हैं। लेकिन इंग्लैंडमें ५०० पौंड प्रतिवर्ष उपयोगी ढंगसे कैसे खर्च किये जा सकते हैं, यह बताना इस पुस्तिकाका उद्देश्य नहीं है। इसका उद्देश्य तो यह बताना है कि आदमी प्रतिवर्ष ५० पौंड खर्च करते हुए सुखी रह सकता है और सामान्यतः ज्यादा खर्च करनेवाले भारतीय विद्यार्थी इंग्लैंडमें जो कुछ करते हैं, वह सब काम भी कर सकता है।

परिशिष्ट 'क' में आप देखेंगे कि मैंने किस तरह प्रतिमास १५ पौंडके खर्चको कम करके ४ पौंड किया और ऐसा करते हुए मुझे अपने आरामकी चीजोंमें से एकको भी नहीं छोड़ना पड़ा।

परिशिष्ट 'क'

मैं इंग्लैंडमें वकालतकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए ४ सितम्बर १८८८ को एस० एस० 'क्लाईड' से रवाना हुआ। मेरे साथ दो भारतीय थे जिन्हें मैं पहले नहीं जानता था।[1] हम तीनों भारतीय हैं, इतना ही हमारे लिए पर्याप्त परिचय था।

जहाजमें मैंने कैसे निर्वाह किया:[2] क्योंकि मैं निश्चित रूपसे नहीं जानता था कि जहाजमें दिया जानेवाला शाकाहारी भोजन मुझसे खाया जा सकेगा या नहीं, इसलिए मेरे पास भारतीय मिठाइयों, गांठिया और भारतीय फलोंका अच्छा खासा भण्डार था। यह जहाजकी यात्राका मेरा पहला अनुभव था। इसलिए मैं इतना संकोच और शर्म करता था कि सबके साथ चाय पीने भी नहीं जाता था।

इसलिए मैंने मिठाइयोंसे शुरू किया। दो-तीन दिन तो मैंने सिर्फ मिठाई ही खाई; और बहुत दिनतक ऐसा ही कर सकता था, पर उपर्युक्त एक भारतीय मित्रने कहा कि उसे तो रोटी और भात और दाल बहुत प्रिय है। इसलिए उसने एक भारतीय नाविकसे इन चीजोंको पकवानेका प्रबन्ध किया। जहाजके अधिकारियोंने आटा

१. देखिए "लन्दन दैनन्दिनी" १२-११-१८८८।

२. देखिए **आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १३।

और दूसरी चीजें मुफ्त दे दीं। सो हम इस भारतीय भोजनसे काम चलाने लगे। ये नाविक बहुत गन्दे थे और साधारणतः मैं रोटीके बदले डबलरोटी लेना पसन्द करता था। दूसरे सहयात्रियोंके अनुरोध करनेपर भी मैं कभी उनके साथ मेजपर बैठकर खाना खानेके लिए अपने मनको नहीं मना पाया। स्वभावतः वापसी यात्रामें मैं ज्यादा अच्छी तरह अपना काम चला सका। मुझे दूसरे यात्रियोंके साथ एक ही मेजपर बैठते संकोच नहीं होता था। और यदि किसीको कोई धार्मिक आपत्ति न हो तो अच्छा यही होगा कि वह इंग्लैंड जाते समय भी ऐसा ही करे। जहाज-पर पर्याप्त शाकाहारी भोजन मिल जाता है, फिर भी मैंने मुख्य परिचारकसे कुछ शाक आदि देनेका भी अनुरोध किया। आम तौरपर मैं नाश्तेमें जईका दलिया, दूध, पके हुए फल, डबलरोटी, मक्खन, मुरब्बा और मार्मलेड और कोको लेता था। दोपहरके भोजनके लिए चावल, सब्जीका शोरबा, दूध और मुरब्बेवाली पेस्ट्री, पकाये हुए फल, मक्खन और डबलरोटी। रातके भोजनके लिए डबलरोटी, मक्खन, मुरब्बा, कोको, नमक, काली मिर्च और पनीरके साथ सलाद पत्ती। मैं दिनमें सिर्फ तीन बार भोजन करता था। जहाजपर सप्ताहमें दो बार ताजा फल और मेवा दिया जाता है।

मैंने १२ पौंड प्रतिमास खर्च करते हुए कैसे रहना शुरू किया :

एक महीना तो मैं अपने एक मित्रके यहाँ रहा। उन्होंने मुझे बहुत स्नेहसे रखा और मुझे बताया कि समाजमें कैसे क्या व्यवहार करना चाहिए, कैसे काँटा, चम्मचसे खाना चाहिए।[1] उसके बाद मैं एक ऐसे परिवारके पास रहने गया, जहाँ मुझे सप्ताहके भोजन और कमरेके लिए ३० शिलिंग देने पड़ते थे। इस तरह सिर्फ रहने और भोजनका खर्च ही ६ पौंड पड़ता था। फिर भी मुझे बताया गया कि अगर मैं महीनेमें १२ पौंडपर निर्वाह करता हूँ, तो यह बहुत मितव्ययितासे रहना माना जायेगा। इस तरह किसी न किसी प्रकार महीनेमें १२ पौंड खर्च हो ही जाते थे। मैंने आरम्भमें ही चाय पीना नहीं छोड़ दिया था। और न ही मैं शुरूमें तीन बार भोजन करना ठीक मानता था। किसीने सुझाव दिया कि यदि मैं सदा परिवारके साथ ही भोजन करूँ और चाहे जब चाय वहीं पीऊँ, तो मुझे कंजूस माना जायेगा। इस सुझावको मानते हुए मैं सप्ताहमें कमसे-कम एक बार दोपहरका भोजन बाहर खाता था और चाय सिर्फ तीन बार पीता था। इस तरह पूरे पैसे उस परिवारको देते हुए भी मैं बाहर भोजन और चायपर लगभग १० शिलिंग खर्च करता था। मैं बेकार ही बहुतसे पैसे यात्रामें भी खर्च कर दिया करता था। यहाँ यह बतानेकी कोई जरूरत नहीं है कि सिर्फ यह दिखानेके लिए कि आप कंजूस नहीं हैं या आप बहुत धनी हैं, आप जानबूझकर बाहर भोजन करें या चाय पियें तो उसमें न तो शिष्टता है और न ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता है। हाँ, यदि आप कामसे बहुत दूर गये हैं और चायके लिए वापस आनेसे समय खराब होगा, इसलिए आप बाहर भोजन कर लें या चाय पी लें तो यह दूसरी बात है। फिर परिवारके

१. देखिए **आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १४।

साथ रहते हुए आपसे ठीक समयपर आनेकी आशा की जाती है। उनके यहाँ खानेका समय तय रहता है। वे आपकी प्रतीक्षा नहीं करेंगे और उनसे ऐसी आशा भी नहीं की जाती। सो यदि आप घरसे बाहर गये हों और आपको लगे कि आप ठीक समयपर भोजनके लिए नहीं पहुँच सकेंगे, उस दशामें आपको खाना बाहर खाना चाहिए। ऐसा कभी-कभी ही होता है और उसमें ज्यादा पैसे खर्च नहीं होते। लेकिन जो महीनेमें ४ पौंडमें काम चलाना चाहता है, वह ऐसा नहीं कर सकता। वह तो किसी अच्छे परिवारके साथ १ पौंड देकर रह भी नहीं सकता।

वे लोग जो खाना देते थे, वह बहुत ही घटिया दर्जेका रहता था। (इसमें उनका दोष नहीं है। उनके यहाँ म पहला शाकाहारी किरायेदार था।) भोजनमें शाकाहारी सूप, एक सब्जी, बहुधा आलू और कुछ ताजे फल मिलते थे। नाश्तेके लिए वे डबलरोटी, मक्खन और मुरब्बा और चाय दिया करते थे; और मैं कभी-कभी दलिया ले लेता था। दोपहरके भोजनके लिए अकसर डबलरोटी, मक्खन और पनीर तथा चायके समय डबलरोटी, मक्खन, चाय और कभी-कभी केक दिया करते थे। इस सबमें उनका खर्च प्रति सप्ताह ७ शिलिंगसे ज्यादा नहीं होता था। इस तरह आप देखेंगे कि मैं उन्हें ३० शिलिंग देता था सो इसलिए नहीं कि मेरे रहने-खानेका उन्हें इतना खर्च पड़ता था या कि इससे भी आधा खर्च पड़ता था, पर इसलिए कि मुझे उनके सहवासका आनन्द लेनेका अवसर दिया गया था।

सामान्यतः यह माना जाता है कि अंग्रेजोंके तौर-तरीके सीखनेके लिए किसी परिवारके साथ रहना वांछनीय है। ऐसा प्रबन्ध कुछ महीनोंके लिए ठीक हो सकता है, परन्तु तीन साल किसी परिवारके साथ बिताना अनावश्यक ही नहीं, वरन् अकसर ऊबा भी देता है। परिवारमें रहते हुए विद्यार्थीका नियमित जीवन व्यतीत करना असम्भव होगा। कई भारतीयोंका यही अनुभव है। यदि आप किसी परिवारके साथ रहते हैं तो आपको उनकी खातिर समयका थोड़ा-बहुत त्याग तो करना ही पड़ेगा, चाहे सिर्फ . . .[1]

. . . सुबह और शामका भोजन बनाना और दोपहरका भोजन बाहर खा लेना। मुझे प्रति सप्ताह कमरेके लिए ज्यादासे-ज्यादा ८ शिलिंग, नाश्ते और शामके भोजनके लिए ६ पेंस और दोपहरके भोजनके लिए ज्यादासे-ज्यादा १ शिलिंग खर्च करना था। मुझे बताया गया कि ब्राइटनमें एक शाकाहारी भोजनालय भी है।[2]

ब्राइटन पहुँचनेपर मुझे एक अच्छा कमरा खोजनेमें काफी कठिनाई हुई। मकान-मालकिनें इस बातका विश्वास नहीं कर पाती थीं कि कमरेमें भोजन बनानेसे कमरा गन्दा नहीं होगा। एकने कहा, "ना, मैं तो २० शिलिंगपर भी कमरा नहीं दे सकती। चिकनाईके दागोंसे सारा कालीन गन्दा हो जायेगा और तुम्हारे जानेके बाद कोई इस कमरेको लेनेके लिए तैयार नहीं होगा।" मैंने उसे यकीन दिलाया कि आप

१. मूल लेखके पृष्ठ, ५, ६, ७, ८ उपलब्ध नहीं हैं।

२. देखिए **आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १९।

ऐसा कह रही हैं क्योंकि आप सोच रही होंगी, मांस पकाया जायेगा; किन्तु आप मुझे खाना बनानेकी आज्ञा देंगी तो उससे कमरा खराब नहीं होगा, क्योंकि मैं तो सिर्फ दलिया बनाना और दूध उबालना चाहता हूँ। और मैंने उससे यह भी कहा कि यदि कालीन गन्दा हुआ तो मैं उसके पैसे दे दूँगा। कुछ संकोचके बाद उन्होंने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मैंने उसका कमरा ८ शिलिंग प्रति सप्ताह किरायेपर ले लिया। कमरेमें सामान रख देनेके बाद मैं शाकाहारी भोजनालयकी खोज करने चला गया। मुझे वह मिला नहीं और मुझे लगा कि मेरा प्रयोग असफल हो जायेगा। यह जानकर मैं और भी खिन्न हो उठा कि किसी भी भोजनालयका मालिक दोपहरके भोजनके लिए मुझे एक शिलिंगमें शाकाहारी सूप, डबलरोटी और मक्खन देनेका प्रबन्ध करनेके लिए तैयार नहीं है। उन सबको लगा कि एक व्यक्तिके लिए वे इतनी झंझट नहीं कर सकते। मुझे लगा कि अब बिलकुल कोई आशा नहीं है और मुझे सिर्फ दोपहरके भोजनके लिए ही दो या तीन शिलिंग देने पड़ेंगे। मैं इस बीच काफी थक गया था, भूख भी बहुत लगी थी, परन्तु मैंने साहस नहीं छोड़ा। मुझे मालूम था, ब्राइटनमें रहते हुए मुझे आराम ही ज्यादा करना है और पढ़ाई भी बहुत नहीं करनी है; तब फिर, मैंने सोचा, यदि मैं दो बार खाना बना सकता हूँ तो तीन बार ही क्यों न बना लूँ? जैसे ही बात मनमें आई, मैंने फैसला कर लिया। एक पंसारीकी दूकानसे जाकर आवश्यक वस्तुएँ खरीद लीं और अपने निवास-स्थानपर चला गया।

वहाँ पहुँचकर मैंने मकान मालकिनको बताया कि उन्होंने मुझे दो बार भोजन बनानेकी आज्ञा दी थी; किन्तु मुझे तीन बार बनाना पड़ेगा। वे बहुत क्रुद्ध हुईं और अगर मैं किराया ८ शिलिंगसे बढ़ाकर १० शिलिंग करनेका प्रस्ताव न करता तो शायद मुझे घरसे ही निकाल देतीं। उसके बाद मैं काममें लग गया। पहली शाम मैंने दलिया और फलोंको पकाया और मुझे ये चीजें बहुत अच्छी लगीं। दूसरे दिन सुबह भी यही चीजें बनाईं।

दोपहरके भोजनके लिए मैंने सेमका सूप बनाया जो बहुत अच्छा और पौष्टिक साबित हुआ। [चार] सप्ताहके भोजनका प्रबन्ध मैंने इस तरह किया। नाश्तेके लिए मैं डबलरोटी व दूध और पके हुए फल तथा डबलरोटी और मक्खन लेता था (३ पेंस)। दोपहरके भोजनके लिए सूप (१$\frac{१}{२}$ पेंस), स्ट्राबरी (२ पेंस) और डबल-रोटी (१ पेंस)। शामके भोजनके लिए मैं दलिया (१$\frac{१}{२}$ पेंस), डबलरोटी और मक्खन और फल (२ पेंस) लेता था। इस तरह मैं ब्राइटनमें भोजनके लिए ज्यादासे ज्यादा ११ पेंस या १ शिलिंग ही खर्च किया करता था। किरायेके १० शिलिंग, धुलाईके लिए ३ शिलिंग, इस तरह चार सप्ताहतक रहने-खानेका पूरा खर्च पौंड ३-१०-० बैठा। ब्राइटन आने-जानेके किरायेमें पौंड ०-८-५ खर्च हुए। इस तरह मैं चार पौंडमें ब्राइटन जाकर चार सप्ताह रह सका।

अपने ब्राइटन-वासके अन्तिम सप्ताहमें मुझे मालूम हुआ कि वहाँ एक शाकाहारी निवासगृह भी है जिसमें भोजन और रहनेके लिए ४ शिलिंग प्रति सप्ताह देकर

रहना सम्भव है। यह निवासगृह प्रेस्टन पार्कके पास है। साप्ताहिक किराया था ५ शिलिंग, नाश्तेके ४ पेंस, दोपहरके भोजनके ९ पेंस और रातके भोजनके ४ पेंस। यदि मुझे इस घरका पहले पता चला होता तो और भी कम खर्चमें ज्यादा आरामसे रह पाया होता। किन्तु तब मुझे इतनी अच्छी तरह खाना बनाना न आ पाता। ब्राइटनमें एक और शाकाहारी निवासगृह भी है, जहाँ निवास और भोजनके लिए प्रति सप्ताह १८ शिलिंग लिये जाते हैं।

कह सकते हैं कि भोजन बनानेमें समय ज्यादा नहीं लगता था। नाश्ता तैयार करनेमें सिर्फ दस मिनट लगते थे। क्योंकि सिर्फ दूध ही गर्म करना पड़ता था। शामके भोजनमें लगभग २० मिनट और दोपहरके भोजनमें १ घंटा लग जाता था। इस सफलतासे उत्साहित होकर लन्दन पहुँच कर मेरा पहला काम यही था — किसी योग्य कमरेकी तलाश करना। मैंने टेविस्टॉक स्ट्रीटमें ८ शिलिंगके किरायेपर एक कमरा पसन्द किया। मैं अपना नाश्ता और शामका भोजन कमरेमें बना लिया करता था और दोपहरका भोजन बाहर लेता था। मकान-मालकिनने मुझे प्लेटें, चम्मच, चाकू आदि चीजें दे दीं। सुबहके नाश्तेमें हमेशा दलिया, पकाये हुए फल और डबल-रोटी तथा मक्खन लेता था (३ पेंस)। मैं ६ पेंसमें किसी एक शाकाहारी भोजना-लयमें दोपहरका भोजन ले लिया करता था और रातके भोजनके लिए मैं डबलरोटी और दूध और पकाये हुए फल या मूली या ताजा फल ले लेता था (३ पेंस)। इस तरह इंग्लैंडमें अपने वासके अन्तिम नौ महीनोंमें मेरा रहने-खानेका खर्च सिर्फ १५ शिलिंग था। बादमें जब मैंने उसी घरमें ७ शिलिंग किरायेवाला कमरा ले लिया तो यह खर्च १४ शिलिंगतक होने लगा। इस समय मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा और मुझे बहुत कड़ा परिश्रम, शायद सबसे ज्यादा कड़ा परिश्रम करना पड़ा, क्योंकि इस समय अन्तिम परीक्षाके लिए सिर्फ पाँच महीने रह गये थे।

मैं प्रतिदिन लगभग ८ मील चलता था। और दिनमें कुल मिलाकर तीन बार चला करता था। एक बार शामके ५-३० बजे एक घंटा, दूसरी बार हमेशा रातको सोनेसे पहले ३०-४५ मिनट। मेरा स्वास्थ्य इस अवधिमें एक बार भी नहीं बिगड़ा, सिर्फ एक बार मुझे ज्यादा काम और ठीक कसरत न करनेसे . . . की शिकायत हुई। मैंने कोई दवा लिये बिना उससे छुटकारा पा लिया। शाकाहारी भोजनका सेवन और खुली हवामें कसरत ही सिर्फ मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहनेके कारण माने जा सकते हैं। कितनी ही ठंडक क्यों न हो या गहरा कोहरा छाया हो, मैंने घूमने जाना नहीं छोड़ा। और खुली हवाके समर्थक डा० एलिन्सनकी सलाह मानते हुए मैं हर तरहके मौसममें अपने सोनेके कमरेकी खिड़कियाँ ४ इंच खुली रखता था। सामान्यत: शीतकालमें लोग ऐसा नहीं करते, परन्तु ऐसा करना बहुत ठीक लगता है। किसी भी हालतमें मुझे तो उससे किसी तरहका कष्ट नहीं हुआ।

अंग्रेजी प्रतिसे।

सौजन्य : प्यारेलाल नैयर

३२. प्राणयुक्त आहारका एक प्रयोग[1]

इस प्रयोगका, अगर इसे प्रयोग कहा जा सके तो, वर्णन करनेके पहले मैं यह बता दूँ कि बम्बईमें भी मैंने एक सप्ताहतक प्राणयुक्त आहारका परीक्षण किया था। मैंने उसे सिर्फ इस कारणसे छोड़ा था कि उस समय मुझे अनेक मित्रोंका आतिथ्य करना पड़ता था। कुछ सामाजिक बातें भी थीं, जिनका खयाल करना जरूरी था। प्राणयुक्त आहार उस समय मुझे बहुत अनुकूल पड़ा था। अगर मैं उसे जारी रख सका होता तो बहुत संभव था कि वह आगे भी अनुकूल पड़ता।

जिस समय मैं यह दूसरा प्रयोग कर रहा था, मैं उसके बारेमें टिप्पणियाँ लिखता जाता था। उन्हें मैं यहाँ देता हूँ।

अगस्त २२, १८९३ — प्राणयुक्त आहारका प्रयोग शुरू किया। पिछले दो दिनोंसे मुझे सर्दी थी। कानोंमें भी थोड़ा-सा सर्दीका असर था। भोजनके दो चम्मच भर गेहूँ, एक चम्मच मटर, एक चम्मच चावल, दो चम्मच किशमिश, करीब बीस छोटे कवची मेवे, दो संतरे और एक प्याला कोकोका नाश्ता किया। अनाजको रात-भर भिगोकर रखा था। भोजन ४५ मिनटमें समाप्त किया। सुबह बहुत स्फूर्ति रही, शामको सुस्ती आ गई। सिरमें थोड़ा-सा दर्द भी हुआ। शामको रोटी, शाक आदिका साधारण भोजन किया।

अगस्त २३ — भूख मालूम होती है। कल शामको कुछ मटर खाये थे। उसके कारण नींद अच्छी नहीं आई। सुबह जागनेपर मुँहका स्वाद खराब था। कलके ही जैसा नाश्ता और ब्यालू की। यद्यपि बदलीका उदासी भरा दिन था और कुछ पानी भी बरस गया था, मुझे जुकाम या सिर दर्द नहीं हुआ। बेकरके[2] साथ चाय पी थी। यह बिलकुल माफिक नहीं पड़ी। पेटमें दर्द मालूम हुआ।

अगस्त २४ — सुबह उठा तो पेट भारी था और बेचैनी महसूस होती थी। वही नाश्ता किया। सिर्फ मटर एक चम्मचसे आधा चम्मच घटा दिये थे। ब्यालू साधारण। स्वस्थ नहीं रहा। सारे दिन बदहजमी महसूस करता रहा।

१. प्राणयुक्त आहारके सिद्धान्तका प्रचार पहले-पहल अन्नाहारी मण्डलके अध्यक्ष श्री ए० एफ० हिल्सने फरवरी ४, १८८९ को मण्डलकी पहली त्रैमासिक बैठकमें किया था। **द फर्स्ट डाएट ऑफ पेराडाइज** नामक अपनी पुस्तकमें श्री हिल्सने वनस्पति-आहारके सम्बन्धमें काफी विस्तारके साथ एक विचारणीय सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था। उन्होंने सूर्यकी किरणों और प्राणशक्ति तथा शारीरिक स्फूर्तिका सम्बन्ध बताते हुए कहा था कि सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न ये गुण फल, अनाज, गिरीदार मेवों और दालोंमें पाये जाते हैं। अलबत्ता, उन्हें आगमें पकाकर नहीं बल्कि वनपक्व हालतमें ही खाना चाहिए। "प्राणयुक्त आहारका एक प्रयोग", ३०-३-१८९४ भी देखिए।

२. श्री ए० डब्ल्यू० बेकर, अटर्नी तथा धर्मोपदेशक, जिन्होंने गांधीजीके साथ ईसाई धर्मपर विचार-विमर्श किया था और उनका प्रिटोरियाके ईसाई मित्रोंसे परिचय कराया था।

अगस्त २५ —— उठनेपर पेटमें भारीपन था। दिनमें भी अस्वस्थ-सा रहा। ब्यालूके समय भूख नहीं थी। फिर भी ब्यालू की। कल ब्यालूमें अधपके मटर खाये थे। हो सकता है भारीपन इसी कारण रहा हो। दुपहरके बाद सिरमें दर्द रहा। ब्यालूके बाद थोड़ी-सी कुनैन ली। नाश्ता कलके ही समान।

अगस्त २६ —— पेटमें भारीपनके साथ जागा। नाश्तेमें मैंने आधा भोजनका चम्मच-भर मटर, आधा चम्मच चावल, आधा चम्मच गेहूँ, ढाई चम्मच किशमिश, १० अखरोट और एक संतरा लिया। सारे दिन मुँहका स्वाद अच्छा नहीं रहा। स्वस्थ भी नहीं रहा। साधारण ब्यालू की। ७ बजे शामको एक संतरा और एक प्याला कोको ली। इस समय (८ बजे रातको) भूख मालूम हो रही है, फिर भी खानेकी इच्छा नहीं है। प्राणयुक्त आहार भली-भाँति अनुकूल पड़ता नहीं दिखता।

अगस्त २७ —— सुबह जब उठा तो भूख बहुत थी, मगर स्वस्थ नहीं महसूस किया। नाश्तेमें भोजनके चम्मचसे डेढ़ चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, दस अखरोट और एक संतरा लिया। (ध्यान रहे, चावल और मटर नहीं लिया)। दुपहरके बाद अच्छा लगा। कलके भारीपनका कारण शायद मटर और चावल था। १ बजे दुपहरको एक चायका चम्मच सूखे गेहूँ, एक भोजनका चम्मच किशमिश और १४ कवची मेवे लिये। (इस तरह साधारण ब्यालूको प्राणयुक्त आहारमें बदल दिया)। कुमारी हैरिसके घर चाय (रोटी, मक्खन, मुरब्बा और कोको) पी। यह चाय मुझे बहुत अच्छी लगी, मानो मैं एक लम्बे उपवासके बाद रोटी और मक्खन खा रहा था। चायके बाद बहुत भूख और कमजोरी मालूम हुई। इसलिए घर लौटनेपर एक प्याला कोको और एक संतरा लिया।

अगस्त २८ —— सुबह मुँहका स्वाद अच्छा नहीं था। भोजनके डेढ़ चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, बीस कवची मेवे, एक संतरा और एक प्याला कोको ली। कमजोरी और भूख तो महसूस होती रही, मगर इसके अलावा अच्छा लगता रहा। मुँहका स्वाद भी ठीक था।

अगस्त २९ —— सुबह उठनेपर ताजगी थी। नाश्तेमें भोजनके डेढ़ चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, एक संतरा और बीस कवची मेवे लिये। ब्यालूमें भोजनके तीन चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, २० कवची मेवे और दो संतरे लिये। शामको तैयबके यहाँ चावल, सेवँई और आलू खाये थे। शामको कमजोरी मालूम हुई।

अगस्त ३० —— नाश्तेमें भोजनके दो चम्मच गेहूँ, दो चम्मच किशमिश, २० अखरोट और एक संतरा लिया। ब्यालूमें भी यही चीजें लीं, सिर्फ एक संतरा ज्यादा था। बहुत कमजोरी महसूस हुई। बिना थके साधारण सैर नहीं कर सका।

अगस्त ३१ —— सुबह जब उठा तो मुँहका स्वाद बहुत मीठा था। बहुत कमजोरी मालूम होती थी। नाश्ते और ब्यालूमें भोजनकी वही मात्रा ली। शामको एक प्याला कोको और एक संतरा लिया था। सारे दिन बहुत कमजोरी महसूस होती रही। बहुत कठिनाईसे सैर कर सकता हूँ। दाँत भी कमजोर हो रहे हैं। मुँहका स्वाद बहुत ज्यादा मीठा है।

सितम्बर १ — सुबह उठा तो बिलकुल थका हुआ था। कलके ही समान नाश्ता और ब्यालू की। बहुत कमजोरी मालूम होती है। दाँत दुखते हैं। प्रयोग छोड़ देना होगा। बेकरका जन्मदिन था, इसलिए उसके साथ चाय पी। चायके बाद अच्छा लगा।

सितम्बर २ — सुबह ताजगी लिये उठा (कल शामकी चायका असर)। पुराना खाना खाया (दलिया, रोटी, मक्खन, मुरब्बा और कोको)। बहुत ही अच्छा महसूस किया।

इस तरह प्राणयुक्त आहारका प्रयोग समाप्त हुआ।

अधिक अनुकूल परिस्थितियोंमें शायद यह असफल न हुआ होता। किसी भोजनालयमें, जहाँ हर बात अपने वशकी नहीं होती, जहाँ आहारमें बार-बार फर्क करना संभव नहीं होता, आहार-सम्बन्धी प्रयोग सफलतापूर्वक नहीं किये जा सकते। इसके अलावा, ताजे फलोंमें मुझे सिर्फ संतरे प्राप्य थे। उस समय ट्रान्सवालमें और कोई फल नहीं मिलते थे।

यह तो बड़े अफसोसकी बात है कि यद्यपि ट्रान्सवालकी भूमि बहुत उपजाऊ है, फिर भी उसमें फलोंकी उपजकी ओर बहुत उपेक्षा बरती गई है। फिर, मुझे दूध तो मिल ही नहीं सका। वह यहाँ बहुत महँगा है। दक्षिण आफ्रिकामें आम तौरपर लोग डिब्बेके दूधका उपयोग करते हैं। इसलिए यह तो मानना ही होगा कि प्राणयुक्त आहारका महत्त्व सिद्ध करनेकी दृष्टिसे यह प्रयोग बिलकुल निरर्थक है। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें ११ दिनके प्रयोगके बाद प्राणयुक्त आहारके बारेमें कोई अभिप्राय देने बैठ जाना दुराग्रहमात्र होगा। बीस वर्ष और उससे ज्यादा अवधिसे पके हुए भोजनके अभ्यस्त पेटसे एकाएक कच्चा भोजन हजम कर लेनेकी अपेक्षा करना बहुत अधिक है और फिर भी, मैं समझता हूँ, इस प्रयोगका अपना महत्त्व तो है ही। यह उन लोगोंके लिए मार्गदर्शक जैसा हो सकता है, जो इन प्रयोगोंसे किसी प्रकार आकर्षित होकर ऐसे प्रयोग करना शुरू तो कर दें, परन्तु जिनके पास प्रयोगोंको सफल करनेके लिए न तो सामर्थ्य हो, न साधन, न अनुकूल परिस्थितियाँ, न धैर्य और न आवश्यक ज्ञान ही। मैं मंजूर करता हूँ कि मुझमें उपर्युक्त योग्यताओंमें से कोई भी नहीं थी। स्पष्ट है कि धैर्यके अभावमें मैंने अपना आहार बदल दिया। नाश्ता तो शुरूसे ही प्राणयुक्त पदार्थोंका था, और मुश्किलसे चार-पाँच दिन बीते होंगे कि ब्यालू भी उन्हीं वस्तुओंकी होने लगी। सचमुच प्राणयुक्त आहारके सिद्धान्तोंका मेरा ज्ञान बहुत छिछला था। श्री हिल्सकी एक छोटी-सी पुस्तक और 'वेजिटेरियन' में हालमें प्रकाशित उनके एक-दो लेख ही मेरे तत्सम्बन्धी ज्ञानका आधार थे। इसलिए मेरा विश्वास है, आवश्यक तैयारी और योग्यता न रखनेवाला कोई भी व्यक्ति असफल होगा ही। वह खुद नुकसान उठायेगा और जिस हेतुको परखने और आगे बढ़ानेका प्रयत्न कर रहा है, उसको भी हानि पहुँचायेगा।

और, आखिरकार, क्या एक साधारण अन्नाहारीके — ऐसे अन्नाहारीके, जो अपने आहारसे संतुष्ट है — इस तरहके प्रयोगोंमें पड़नेसे कोई लाभ है? क्या यह अच्छा

न होगा कि इसे उन विशेषज्ञोंके लिए छोड़ दिया जाये जो इस तरहकी गवेषणाओंमें अपना जीवन लगाते हैं? यह बात खास तौरसे उन अन्नाहारियोंपर लागू होती है, जिनका अन्नाहार धर्म भूतदयाके महान तत्त्वपर आधारित है — जो इसलिए अन्नाहारी हैं कि वे अपने भोजनके लिए प्राणियोंका वध करना गलत ही नहीं, पापमय समझते हैं। साधारण अन्नाहार संभव है, स्वास्थ्यप्रद है — यह तो सरसरी तौरपर देखनेवाले भी जान सकते हैं। फिर हमें और क्या चाहिए? प्राणयुक्त आहारमें भारी सामर्थ्य हो सकता है, परन्तु वह हमारे नाशवान शरीरोंको अमर तो नहीं बना देगा। यह संभव नहीं दीखता कि मनुष्य किसी बहुत बड़ी संख्यामें कभी भी भोजन पकानेकी क्रिया त्याग देंगे। केवल प्राणयुक्त आहार आत्माकी जरूरतोंको पूर्ण नहीं करेगा, नहीं कर सकता। और अगर इस जीवनका सबसे ऊँचा उद्देश्य — सचमुच तो, एक-मात्र उद्देश्य — आत्माको जानना हो, तो मेरा नम्र निवेदन है कि जिस बातसे हमारे आत्माको जाननेके अवसर कम होते हैं, वह उस हदतक हमारे जीवनके एकमात्र वांछनीय उद्देश्यके साथ खिलवाड़ है। इसलिए, प्राणयुक्त आहारोंके और वैसे ही दूसरे प्रयोगोंके साथ खिलवाड़ करना भी इसी तरहकी बात है।

अगर हमें इसलिए भोजन करना है कि हम जिस परमात्माके हैं उसकी शानके मुताबिक जी सकें, तो क्या यह काफी नहीं है कि हम ऐसी कोई वस्तु न खायें, जो प्रकृतिके प्रतिकूल है, और जिसके लिए अनावश्यक खून बहाना जरूरी होता है? परन्तु अभी मैं इस विषयके अध्ययनकी प्राथमिक अवस्थामें ही हूँ, इसलिए अधिक नहीं कहूँगा। मैं सिर्फ इन विचारोंको, जो मेरे प्रयोगके समय मनमें उठा करते थे, सामने रख रहा हूँ। हो सकता है कि संयोगवश किसी प्यारे भाई या बहनको इनमें अपने निजी विचारोंकी गूँज मिल जाये।

जिस कारणसे मैं प्राणयुक्त आहारका प्रयोग करनेको आकृष्ट हुआ था, वह था — उसका परले दर्जेका सादापन। मैं खाना पकानेके कामको खत्म कर सकता हूँ, मैं जहाँ-कहीं भी जाऊँ, अपना भोजन अपने साथ ले जा सकता हूँ, मुझे घर-मालकिनकी या जो भी मुझे भोजन देते हैं, उनकी गन्दगी बरदाश्त नहीं करनी होगी, दक्षिण आफ्रिका जैसे देशमें यात्रा करनेमें प्राणयुक्त आहार आदर्श आहार होगा — ये सब आकर्षण मेरे लिए इतने प्रबल थे कि मैं इन्हें रोक नहीं सकता था। परन्तु, आखिरकार जो एक स्वार्थ ही है और जो परम लक्ष्यसे ओछा है, उसे सिद्ध करनेके लिए समयका कितना बलिदान! और कितना कष्ट! इन सब चीजोंके लिए जीवन बहुत छोटा मालूम पड़ता है।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २४-३-१८९४

३३. अपील : इंग्लैंड स्थित भारतीयोंसे[1]

प्रिय भाई,

अगर आप अन्नाहारी हैं, तो मैं समझता हूँ कि लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी के सदस्य बन जाना आपका कर्त्तव्य है। और अगर आप अभीतक 'वेजिटेरियन' के ग्राहक न बने हों तो वह भी बन जाना चाहिए।

यह आपका कर्त्तव्य है, क्योंकि ––

(१) आप जिस मतको स्वीकार करते हैं उसे इसके द्वारा प्रोत्साहन और सहायता मिलेगी।

(२) एक ऐसे देशमें, जहाँ अन्नाहारियोंकी संख्या बहुत कम है, उनके बीच परस्पर सहानुभूतिका जो सम्बन्ध होना चाहिए, उसकी इससे अभिव्यक्ति होगी।

(३) अंग्रेज अन्नाहारी भारतीयोंकी आकांक्षाओंके साथ सहानुभूति रखनेमें अधिक तत्पर रहेंगे (यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है)। इस प्रकार अन्नाहार-आन्दोलनसे अप्रत्यक्ष रूपमें भारतको राजनीतिक सहायता मिलेगी।

(४) केवल शुद्ध स्वार्थकी दृष्टिसे देखा जाये तो भी, इसके द्वारा आप अन्नाहारी मित्रोंके एक बड़े मण्डलके सम्पर्कमें आ जायेंगे। ये मित्र तो दूसरोंकी अपेक्षा अधिक अपनाने योग्य होने चाहिए।

(५) अन्नाहारी साहित्यके ज्ञानसे आप एक ऐसे देशमें अपने सिद्धान्तोंपर दृढ़ रह सकेंगे, जहाँ प्रलोभन बहुत हैं और जो बहुत अधिक लोगोंके लिए दुर्निवार सिद्ध हो चुके हैं। बीमार होनेपर आपको निरामिष औषधियों और अन्नाहारी डाक्टरोंकी मदद भी मिल सकेगी। मंडलके सदस्य और 'वेजिटेरियन' पत्रके ग्राहक बननेसे आप इनकी जानकारी बहुत आसानीसे पा सकेंगे।

(६) भारतमें आपके भाइयोंको इससे बहुत सहायता मिलेगी। निरामिष भोजनसे निर्वाह किया जा सकता है, इस सम्बन्धमें हमारे माता-पिताओंकी शंका मिटानेका भी यह एक साधन होगा। इस प्रकार दूसरे भारतीयोंके इंग्लैंड आनेका मार्ग बहुत सरल हो जायेगा।

(७) अगर भारतीय ग्राहकोंकी संख्या काफी हो तो 'वेजिटेरियन' के सम्पादकको एक पृष्ठ या एक स्तम्भ भारतीय मामलोंके लिए सुरक्षित कर देनेको राजी किया

१. यह पत्र सम्पादक वेजिटेरियनने इस टिप्पणीके साथ प्रकाशित किया था : "श्री मो० क० गांधीने इंग्लैंडके भारतीयोंको निम्नलिखित पत्र भेजा है। हम इसे यह स्पष्ट करनेके लिए यहाँ दे रहे हैं कि श्री गांधी, एक लम्बे फासलेके बावजूद, जो उनको हमसे जुदा किये हुए है, हमारे बीच अब भी कैसी सरगर्मीसे काम कर रहे हैं। तिसपर भी, हमारे विरोधियोंका कहना है कि अन्नाहारी भारतीयोंमें अपने लक्ष्यके प्रति "ईमानदार ब्रिटिश राष्ट्र" के पुत्रों जैसी लगन नहीं होती।

जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप, आप मानेंगे, भारतको लाभ पहुँचे विना नहीं रह सकता।

और भी अनेक कारण बताये जा सकते हैं कि क्यों आपको मंडलके सदस्य और 'वेजिटेरियन'के ग्राहक बनना चाहिए। परन्तु मेरा खयाल है कि मेरे प्रस्ताव पर आप अनुकूल विचार करें, इसके लिए इतने ही कारण काफी होंगे।

अगर आप अन्नाहारी न हों तो भी देखेंगे कि उपर्युक्त कारणोंमें से अनेक आप पर भी लागू होते हैं, और आप 'वेजिटेरियन' के ग्राहक बन सकते हैं। और कौन जानता है कि आगे चलकर आप उन लोगोंकी कतारमें शामिल होनेको एक विशेषाधिकार न समझने लगेंगे, जो अपने अस्तित्वके लिए सहजीवी पशुओंके रक्तपर कभी अवलम्बित नहीं रहते?

हाँ, आप मैंचेस्टर वेजिटेरियन सोसाइटी और उसका मुखपत्र 'वेजिटेरियन मेसेंजर' भी पसन्द कर सकते हैं। मैंने लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी और उसके मुखपत्रकी हिमायत तो सिर्फ इसलिए की है कि वह लंदनमें होनेके कारण बहुत नजदीक पड़ता है। और इसलिए भी कि उसका पत्र साप्ताहिक है।

मुझे भरोसा है कि कमखर्चीके खयालको आप सोसाइटीके सदस्य होने और पत्रके ग्राहक बननेके आड़े नहीं आने देंगे; क्योंकि ग्राहक-चन्दा बहुत कम है, और वह निश्चय ही आपको अपने खर्चसे ज्यादाका लाभ पहुँचा देगा।

आशा है कि आप इसे मेरी धृष्टता नहीं समझेंगे।

आपका स्नेही भाई,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, २८-४-१८९४

३४. अन्नाहार और बच्चे

श्री मो० क० गांधी एक खानगी पत्रमें लिखते हैं:

हालमें ही वेलिंगटनमें पादरी एंड्रयू मरेकी अध्यक्षतामें केसविक ईसाइयोंका एक विराट् सम्मेलन हुआ था। मैं कुछ प्यारे ईसाइयोंके साथ उसमें गया था। उनका ६-७ वर्षका एक लड़का है। उस दौरानमें एक दिन वह मेरे साथ घूमनेके लिए गया। मैं उससे सिर्फ प्राणियोंके प्रति दयाभावकी बात कर रहा था। बातचीतमें अन्नाहारकी भी चर्चा चली थी। मुझे मालूम हुआ कि तबसे उस लड़केने मांस नहीं खाया। यह बातचीत होनेके पहले उसने मुझे भोजनकी मेजपर केवल शाकाहार करते जरूर देखा था और मुझसे पूछा था कि आप मांस क्यों नहीं खाते। उसके माता-पिता स्वयं तो अन्नाहारी नहीं हैं, परन्तु अन्नाहारके गुणोंको माननेवाले हैं। उन्हें इस सम्बन्धमें अपने लड़केसे मेरे बातचीत करनेपर कोई आपत्ति नहीं थी।

मैं आपको यह बतानेके लिए ऐसा लिख रहा हूँ कि हम कितनी आसानीसे बच्चोंको यह महान सत्य समझाकर उनसे मांसाहार छुड़वा सकते हैं। हाँ, शर्त यह है कि माता-पिता इस परिवर्तनके विरोधी न हों। वह बच्चा और मैं अब गहरे दोस्त बन गये हैं। मालूम होता है कि वह मुझे बहुत चाहता है।

लगभग पन्द्रह वर्षकी उम्रके एक अन्य लड़केके साथ मैं बात कर रहा था। उसने कहा कि वह स्वयं तो मुर्गीको नहीं मार सकता, न उसे मारे जाते देख सकता है; परन्तु उसे खानेमें उसको कोई आपत्ति नहीं है।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, ५-५-१८९४

३५. धर्म-सम्बन्धी प्रश्नावली[1]

[प्रिटोरिया
जून, १८९४से पूर्व]

आत्मा क्या है? क्या वह कर्त्ता है? उसपर कर्मका प्रभाव पड़ता है या नहीं?

ईश्वर क्या है? वह जगत्कर्त्ता है, यह सही है?

मोक्ष क्या है?

मोक्ष मिलेगा या नहीं — क्या यह इसी देहमें रहते हुए ठीक तरहसे जाना जा सकता है?

पढ़नेमें आया है कि मनुष्य, देह छोड़नेके बाद, कर्मके अनुसार जानवरोंकी योनि धारण कर सकता है, पेड़ या पत्थर भी बन सकता है। यह सही है?

आर्य धर्म क्या है? क्या सब भारतीय धर्मोंकी उत्पत्ति वेदोंसे ही हुई है?

वेद किसने रचे? क्या वे अनादि हैं? यदि ऐसा हो तो अनादिका अर्थ क्या है?

'गीता' किसने रची? ईश्वरकृत तो नहीं है? यदि ऐसा हो तो इसका कोई प्रमाण?

क्या यज्ञमें पशु आदिकी बलिसे कोई भी पुण्य होता है?

कोई धर्म उत्तम है, ऐसा कहा जाये तो क्या उसका प्रमाण माँगना ठीक है?

ईसाई धर्मके विषयमें आप कुछ जानते हैं? यदि जानते हों तो क्या अपने विचार बतायेंगे?

१. गांधीजीने जून, १८९४ से पहले राजचन्द्रभाईको एक पत्र लिखकर कुछ प्रश्न पूछे थे। मूल पत्र उपलब्ध नहीं है। इसलिए राजचन्द्रभाईके उत्तरोंसे उन प्रश्नोंका अनुमान करके यहाँ दिया जा रहा है। मूल गुजरातीसे मालूम होता है कि गांधीजीने कुछ और प्रश्न भी पूछे थे। परन्तु उन्हें छोड़ दिया गया था। इसलिए उनकी प्रति उपलब्ध नहीं है। राजचन्द्रभाईके उत्तरोंके लिए देखिए खण्ड ३२, परिशिष्ट १, तथा **आत्मकथा**, भाग २, अध्याय १ भी।

ईसाई कहते हैं, 'बाइबिल' ईश्वर-प्रेरित है; ईसा ईश्वरका अवतार, उसका बेटा था। क्या ऐसा था?

'ओल्ड टेस्टामेंट'में जो भविष्य बताया गया है, क्या वह सब ईसामें सही उतरा है?

आगे हमें कौन-सा जन्म मिलेगा, क्या इसका ज्ञान इस जन्ममें हो सकता है? अथवा पिछले जन्ममें हम क्या थे, इसका?

हो सकता है तो किसको?

आपने मोक्ष पाये हुए लोगोंके नाम बताये हैं, सो किस आधारपर?

आप किस आधारपर कहते हैं कि बुद्धदेव तकने मोक्ष नहीं पाया?

अन्तमें दुनियाकी क्या स्थिति होगी?

क्या यह अनीति मिटकर सुनीति स्थापित होगी?

क्या दुनियाका कभी प्रलय होगा?

अपढ़को भक्तिसे ही मोक्ष मिल जाता है — क्या यह सही है?

कृष्णावतार और रामावतार — क्या ये सच बातें हैं? ऐसा हो तो इसका क्या अर्थ है? वे साक्षात् ईश्वर थे या उसके अंश थे? क्या उनको माननेसे सचमुच मोक्ष मिल सकता है?

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कौन हैं?

मुझे साँप काटने आये तो उसे काटने दूँ या मार डालूँ? उसे दूसरे तरीकेसे दूर करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, ऐसा मान लेता हूँ।

[गुजरातीसे]

श्रीमद् राजचन्द्र

३६. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभाको[1]

डर्बन
२८ जून, १८९४

सेवामें
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
विधानसभा, नेटाल उपनिवेश

नेटाल उपनिवेशवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

(१) प्रार्थी भारतसे आकर इस उपनिवेशमें बसी हुई ब्रिटिश प्रजा हैं।

(२) प्रार्थियोंमें से अनेकके नाम मतदाताओंके रूपमें दर्ज हैं। उन्हें आपकी परिषद और सभाके चुनावोंमें मत देनेका बाकायदा हक है।

(३) मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके दूसरे वाचनका जो विवरण अखबारोंमें प्रकाशित हुआ है उसे प्रार्थियोंने सच्चे खेद और भयके साथ पढ़ा है।

(४) आपके माननीय सदनके प्रति अधिकसे-अधिक आदर रखते हुए भी प्रार्थी विभिन्न वक्ताओं द्वारा प्रकट किये गये विचारोंसे पूर्ण मतभेद व्यक्त करते हैं। प्रार्थी यह कहनेपर विवश हैं कि जिन कारणोंसे इस दुर्भाग्यपूर्ण विधेयकको स्वीकार करना उचित बताया गया है, उनका सच्ची परिस्थितियोंसे समर्थन नहीं होता।

(५) आपके प्रार्थियोंका विचार है कि समाचारपत्रोंके अनुसार, विधेयकके समर्थनमें जो कारण दिये गये वे इस प्रकार हैं:

(क) भारतीयोंने अपने देशमें मताधिकारका प्रयोग कभी नहीं किया।

(ख) वे मताधिकारके प्रयोगके लिए योग्य नहीं हैं।

(६) प्रार्थी आदरपूर्वक माननीय सदस्योंकी दृष्टिमें ला देना चाहते हैं कि इतिहास और सारी वस्तुस्थितियाँ दूसरी ही बात सूचित करती हैं।

(७) जब ऐंग्लो-सैक्सन जातियोंको प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तोंका ज्ञान हुआ उसके बहुत पहलेसे भारत-राष्ट्र चुनावके अधिकारोंसे परिचित रहा है और उनका प्रयोग करता आ रहा है।

(८) उपर्युक्त कथनके समर्थनमें प्रार्थी आपकी सम्माननीय परिषद और सभाका ध्यान सर हेनरी समर मेनकी[2] पुस्तक 'विलेज कम्यूनिटीज'की ओर आकर्षित करते

१. पहले यह प्रार्थनापत्र विधानपरिषद और विधानसभा दोनोंके नाम लिखा गया था। बादमें संशोधन करके इसे केवल विधानसभाके नाम कर दिया गया। परिषदको एक अलग प्रार्थनापत्र दिया गया था, देखिए "प्रार्थनापत्र: नेटाल विधान परिषदको", ४-७-१८९४।

२. १८२२-८८; प्रमुख विधिवेत्ता, जिनकी एक कृति **ऐन्शेंट लॉ ऐंड अर्ली हिस्ट्री ऑफ इन्स्टीटयूशन्स** भी है। वे १८६२ से १८६९ तक और १८७१ में भी भारत-परिषदके सदस्य रहे थे।

हैं। उसमें अत्यन्त स्पष्टताके साथ बताया गया है कि भारतीय जातियाँ लगभग स्मरणातीत कालसे प्रातिनिधिक संस्थाओंके सिद्धान्तोंसे परिचित रही हैं। उस महान कानूनविशारद और लेखकने बताया है कि "टयूटानिक मार्क"[1] पर जबतक शुद्ध शास्त्रीय रोमन स्वरूपकी कलम नहीं लगा दी गई, तबतक वह उतना सुसंगठित या तात्त्विक रूपमें उतना प्रातिनिधिक नहीं था, जितनी कि भारतीय ग्राम-पंचायतें थीं।

(९) श्री चिजोम ऐन्स्टीने[2] लंदनमें ईस्ट इंडियन एसोसिएशनके सामने भाषण करते हुए कहा था:

> **जब हम पूर्वके लोगोंको शिक्षा और इसी तरहकी तमाम चीजोंसे नगरपालिकाके शासन और संसदीय शासनके लिए तैयार करनेकी बातें करते हैं, तब कहीं हम भूल न जायें कि पूर्व ही नगरपालिका-प्रणालीका जनक है। स्थानिक स्वराज्य — शब्दके व्यापकतम अर्थमें — उतना ही पुराना है, जितना कि स्वयं पूर्व। जिसे हम पूर्व कहते हैं उसमें रहनेवाले लोगोंका धर्म कोई भी हो, उस देशमें उत्तरसे दक्षिणतक और पूर्वसे पश्चिमतक एक हिस्सा भी ऐसा नहीं है, जो नगरपालिकाओंसे छाया न हो। इतना ही नहीं, हमारी प्राचीन कालकी नगरपालिकाओंके समान, वे सब आपसमें ऐसी आबद्ध हैं, मानो किसी जालमें गुंथी हुई हों। इस तरह, प्रतिनिधित्वकी उस महान प्रणालीका ढाँचा आपको तैयार मिला है।**

प्रत्येक गाँव या कस्बेमें हर जातिके अपने नियम और व्यवस्थाएँ हैं। वे अपने-अपने प्रतिनिधियोंका चुनाव करती हैं। और वे ऐंग्लो-सैक्सनोंके "वाइटन" का[3], जिनसे वर्तमान संसदीय संस्थाओंका विकास हुआ है, हू-ब-हू नमूना हैं।

(१०) "पंचायत" शब्द भारतके कोने-कोनेमें प्रचलित सामान्य शब्द है। और, जैसा कि माननीय सदस्यगण जानते होंगे, उसका अर्थ है पाँच लोगोंकी सभा, जिसका चुनाव इन पाँच व्यक्तियोंकी जाति ही अपने सामाजिक कामकी व्यवस्था और नियंत्रणके लिए करती है।

(११) मैसूर राज्यमें इस समय एक प्रातिनिधिक संसद मौजूद है। वह ठीक ब्रिटिश संसदके नमूनेकी है और उसे मैसूर विधानसभा कहा जाता है।

(१२) डर्बनमें इस समय जो व्यापार करनेवाले भारतीय हैं उनकी भी अपनी चायत या पाँच लोगोंकी सभा मौजूद है। बहुत बड़े महत्त्वकी बातोंमें सारा समाज उनके विचार-विमर्शका नियंत्रण करता है। सभाके संविधानके अनुसार, सारा समाज

१. बहुत प्राचीन कालमें जर्मनीमें गाँवकी जमीनका मालिक उस गाँवका सारा समाज होता था। उसकी व्यवस्था भी संयुक्त होती थी। यह प्रथा संशोधित रूपमें मध्यकालतक जारी रही। शाब्दिक अर्थमें, गाँवके ऐसे क्षेत्रको "टयूटानिक मार्क" कहा जाता था। स्पष्ट है कि उसमें प्रारम्भिक रूपका प्रातिनिधिक तत्त्व सन्निविष्ट था।

२. १८१६-७३; वकील और राजनीतिज्ञ, १८४७ से १८५२ तक संसत्सदस्य।

३. ऐंग्लो-सैक्सन कालकी राष्ट्रीय परिषद।

पर्याप्त बहुमतसे उसके निर्णयोंको बदल सकता है। प्रार्थियोंका निवेदन है कि प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें उनकी योग्यताओंका यह प्रमाण मौजूद है ही।

(१३) सच तो यह है कि सम्राज्ञीकी सरकारने प्रातिनिधिक संस्थाओंको समझनेकी भारतीयोंकी योग्यता इस हदतक मान्य कर ली है कि भारत, शब्दके सच्चेसे-सच्चे अर्थमें, नगरपालिका स्थानिक स्वराज्यका उपभोग कर रहा है।

(१४) १८९१में भारतमें ७५५ नगरपालिकाएँ और ८९२ स्थानीय निकाय [लोकल बोर्ड] थे। उनमें २०,००० भारतीय सदस्य थे। इससे नगरपालिकाओं और उनके निर्वाचक-मंडलोंके विस्तारकी कुछ कल्पना हो सकेगी।

(१५) अगर इस विषयमें अधिक प्रमाणकी जरूरत हो तो प्रार्थी माननीय सदस्योंका ध्यान हालमें ही स्वीकृत हुए भारतीय परिषद विधेयककी[1] ओर आकृष्ट करते हैं। उसके द्वारा भारतके विभिन्न प्रदेशोंकी विधानपरिषदोंमें भी प्रतिनिधि-प्रणाली दाखिल कर दी गई है।

(१६) इसलिए, प्रार्थियोंको विश्वास है, उनका मताधिकारका प्रयोग करना किसी ऐसे नये विशेषाधिकारका दिया जाना नहीं है, जिसे वे पहले कभी जानते ही न रहे हों, या जिसका उपभोग उन्होंने पहले कभी किया ही न हो। उलटे, उन्हें उसका प्रयोग करनेके अयोग्य ठहराना एक अन्यायपूर्ण प्रतिबन्ध होगा, जो ऐसी ही परिस्थितियोंमें उनकी मातृभूमिमें कभी नहीं लगाया जायेगा।

(१७) फलतः प्रार्थियोंका निवेदन है कि कमसे-कम कहा जाये तो भी यह भय निराधार ही है कि अगर भारतीयोंको मताधिकारका प्रयोग करने दिया गया तो वे "जिस महान देशसे आये हैं उसमें आन्दोलनके प्रचारक और राजद्रोहके उपकरण बन जायेंगे।"

(१८) छोटी-छोटी बातोंकी, और दूसरे वाचनकी बहसमें व्यर्थ ही जो कड़े आक्षेप किये गये, उनकी चर्चा करना प्रार्थी अनावश्यक समझते हैं। फिर भी प्रार्थी कुछ ऐसे अंश उद्धृत करनेकी इजाजत चाहते हैं, जिनका विचाराधीन विषयपर असर पड़ता है। प्रार्थी तो यही पसंद करते कि उनके कामोंसे उनके बारेमें मत निर्धारित किया जाता, न कि दूसरोंने उनकी जातिके बारेमें जो खयाल किया है उसे उद्धृत करके अपनी बात सही ठहराई जाती। परन्तु वर्तमान परिस्थितियोंमें हमारे सामने कोई दूसरा रास्ता खुला नहीं है, क्योंकि मुक्त पारस्परिक व्यवहार न होनेके कारण हमारी क्षमताओंके बारेमें बहुत भ्रम फैला हुआ दिखलाई पड़ता है।

(१९) केनिंगटनके विधानसभा भवनमें भाषण करते हुए श्री एफ० पिनकॉटने कहा था :

> **भारतीयोंके अज्ञान और प्रातिनिधिक शासनके महान लाभोंको समझनेसे सम्बन्धित उनकी अयोग्यताके बारेमें हमने इस देशमें बहुत-कुछ सुना है। सच-मुच वह सारा कथन बहुत मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि प्रातिनिधिक शासनका शिक्षाके**

१. इंडिया कौंसिल्ज बिल।

साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका अधिकांश सम्बन्ध तो सामान्य बुद्धिसे है, और भारतके लोगोंको सामान्य बुद्धि उतनी ही मात्रामें प्राप्त है, जितनी मात्रामें हमें। किसी भी प्रकारकी शिक्षा प्राप्त होनेके सैकड़ों वर्ष पूर्व हम चुनावके अधिकारका उपभोग करते थे और हमारे पास प्रातिनिधिक संस्थाएँ थीं। इसलिए शिक्षा-सम्बन्धी कसौटीका कोई मूल्य नहीं है। जो लोग हमारे देशके इतिहाससे परिचित हैं, वे भली-भाँति जानते हैं कि दो सौ वर्ष पहले हमारे यहाँ घोरतम अन्धविश्वास और अज्ञान फैला हुआ था। फिर भी हमारे पास हमारी प्रातिनिधिक संस्थाएँ तो थीं ही।

(२०) सर जॉर्ज बर्डवुडने[1] भारतके लोगोंके चारित्र्यके बारेमें लिखते हुए अपने कथनका उपसंहार इन शब्दोंमें किया है:

> भारतके लोग किसी भी सच्चे अर्थमें हमसे कम नहीं हैं। कुछ झूठे — हमारे लिए ही झूठे — मापदण्डोंसे, जिनपर विश्वास करनेका हम ढोंग करते हैं, नापनेपर वे हमसे ऊँचे हैं।

(२१) मद्रासके एक गवर्नर सर टॉमस मनरोका कथन है:

> मैं नहीं जानता कि भारतके लोगोंको सभ्य बनानेका अर्थ क्या है। अच्छे शासनके सिद्धान्तों और व्यवहारमें सम्भव है वे कम उतरें। परन्तु यदि एक अच्छी कृषि-प्रणाली, उत्तम माल तैयार करना . . . लिखने-पढ़नेके लिए पाठशालाओं-की स्थापना, दयालुता और आतिथ्यका सामान्य व्यवहार . . . ये सब उन बातोंमें से हैं, जिनसे लोगोंकी सभ्यता जानी जाती है, तो हिन्दू लोग सभ्यतामें यूरोपके लोगोंसे पीछे नहीं हैं।

(२२) भारतीयोंको बहुत गालियाँ दी जाती हैं और गलत तो उन्हें बहुत अधिक समझा गया है। उनके ही बारेमें प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं:

> अगर मुझसे पूछा जाये कि किस देशके मानवी मस्तिष्कने अपने कुछ सर्वोत्तम गुणोंका अधिकसे-अधिक पूर्ण विकास किया है, जीवनकी बड़ीसे-बड़ी समस्याओंपर अत्यन्त गंभीरताके साथ विचार किया है और उनके ऐसे हल प्राप्त किये हैं, जो प्लेटो और कांटके दर्शनशास्त्रोंका अध्ययन किये हुए लोगोंके लिए भी भलीभाँति ध्यान देने योग्य हैं, तो मैं कहूँगा कि वह देश भारत है।

(२३) कोमलतर भावनाओंको जगानेके विचारसे प्रार्थी आदरके साथ बताना चाहते हैं कि अगर मताधिकार संशोधन विधेयक मंजूर हो गया तो उससे एकीकरणके

1. १८३२-१९१७; १८५४ के दौरान 'बॉम्बे मेडिकल सर्विस' में और बादमें तीस वर्षतक लन्दन-स्थित "इंडिया ऑफिस" में सेवा की। **रिपोर्ट ऑन द मिस्लेनियस ओल्ड रेकर्ड्स ऑफ द इंडिया ऑफिस** और **इंडस्ट्रियल आर्टस ऑफ इंडिया**के रचयिता।

कार्यको वेग नहीं मिलेगा, बल्कि उसमें बाधा पड़ेगी। और इस एकीकरणके लिए तो भारतीय और ब्रिटिश राष्ट्रोंके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हार्दिक प्रयत्न कर रहे हैं।

(२४) प्रार्थियोंने अपने पक्षमें जान-बूझकर अंग्रेज विद्वानोंके वचन इस तरह पेश किये हैं कि उनके ही मुखसे उनकी बात सुनी जा सके। उपर्युक्त उद्धरणोंको व्याख्या करके बढ़ाया नहीं गया है। इस प्रकारके और भी अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं। परन्तु प्रार्थियोंका दृढ़ विश्वास है कि आपकी सम्माननीय परिषद और सभाको हमारी प्रार्थनाके न्याययुक्त होनेका विश्वास दिला देनेके लिए उपर्युक्त उद्धरण काफी होंगे; और प्रार्थी आपकी सम्माननीय सभासे याचना करते हैं कि वह अपने निर्णयोंपर फिरसे विचार करे। या, विधेयकके सम्बन्धमें आगे कार्रवाई करनेके पहले वह इस प्रश्नकी जाँच करनेके लिए कि उपनिवेशवासी भारतीय मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य हैं या नहीं, एक आयोगकी नियुक्ति करे।

और दया तथा न्यायके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० १७९, खण्ड १८९: वोट्स ऐंड प्रोसीडिंग्ज ऑफ पार्लियामेंट, नेटाल; १८९४

३७. भेंट : नेटालके प्रधानमन्त्रीसे[1]

डर्बन
२९ जून, १८९४

सेवामें
सर जॉन रॉबिन्सन, के० सी० एम० जी०
प्रधानमन्त्री और उपनिवेश-सचिव
नेटाल उपनिवेश

नम्र निवेदन है कि,

श्रीमान्ने अपने बहुमूल्य समयका कुछ अंश इस शिष्टमण्डलसे मिलनेके लिए दिया, इसके लिए हम श्रीमान्का धन्यवाद करते हैं।

हम श्रीमान्को उपनिवेशवासी भारतीयोंका यह प्रार्थनापत्र अर्पित करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि श्रीमान् इसपर ध्यानसे विचार करें।

हम श्रीमान्की शिष्टताका फायदा उतने ही समयतक उठायेंगे जितना बिलकुल जरूरी है। परन्तु हमें इतना पर्याप्त समय नहीं मिला कि हम अपना मामला

१. नेटाल विधानसभाके आदेशसे २१ अप्रैल, १८९६ को प्रकाशित पत्र-व्यवहार सूचीमें सं० १ की मद।

जितने विस्तारसे हो सकता है उतने विस्तारके साथ श्रीमान्‌के सामने पेश कर सकें। इसका हमें खेद है।

महानुभाव, हमें ताने दिये गये हैं कि हम इतनी देरसे जागे, जब कि कुछ भी कर सकना प्रायः असम्भव हो गया है। आपको विश्वास दिलानेके लिए कि हम सदनके सामने सम्भवतः इससे जल्द जा ही नहीं सकते थे, केवल इतना ही जरूरी है कि हम आपको अपनी खास परिस्थितियाँ बता दें। हमारे समाजके जो दो प्रमुख सदस्य हैं, वे जरूरी कामसे उपनिवेशके बाहर गये हुए थे। वे उपनिवेशके लोगोंके साथ किसी भी प्रकारका पत्र-व्यवहार करनेमें असमर्थ थे। इधर, हमारा अंग्रेजी भाषाका ज्ञान बहुत कच्चा है। इसलिए हम महत्त्वपूर्ण विषयोंका यथेष्ट परिचय नहीं रख सकते।

श्रीमान्‌के प्रति अत्यन्त आदरके साथ हम बताना चाहते हैं कि ऐंग्लो-सैक्सन और भारतीय — दोनों जातियोंका उद्‌भव एक ही मूलवंशसे हुआ है। विधेयकके दूसरे वाचनके समय श्रीमान्‌ने जो धाराप्रवाह भाषण किया उसे हमने पूरे ध्यानसे पढ़ा है। हमने यह जाननेके लिए बहुत परिश्रम किया कि आपने दोनों जातियोंके मूलवंशोंके अन्तरपर जो विचार व्यक्त किये हैं उनका समर्थन किसी अधिकारी लेखकने किया है या नहीं। परन्तु मैक्समूलर, मॉरिस, ग्रीन और अनेकानेक दूसरे लेखक एक स्वरसे बहुत स्पष्ट रूपमें यही बताते जान पड़ते हैं कि दोनों जातियोंका उद्‌भव एक ही आर्य वंशसे या, जैसा कि बहुत-से लोग कहते हैं, इंडो-आर्यन वंशसे हुआ है। फिर भी, जो राष्ट्र हमें स्वीकार करनेके लिए तैयार न हो हमें उसके बन्धु-राष्ट्रके सदस्योंके नाते जबरन् उसके गले पड़ जानेकी इच्छा जरा भी नहीं है। परन्तु अगर हम उन बातोंको वास्तविक रूपमें प्रस्तुत करें, जिनके कथित अभावको हमें मताधिकारके अयोग्य घोषित करनेके लिए दलीलके रूपमें पेश किया गया है, तो आशा है हमें क्षमा किया जायेगा।

इसके अलावा बताया जाता है, श्रीमान्‌ने यहाँतक कहा है कि भारतीयोंसे मताधिकारका प्रयोग करनेकी अपेक्षा करना क्रूरता होगी। नम्र निवेदन है कि हमारा प्रार्थनापत्र इसका पर्याप्त उत्तर है।

आपका भाषण हमें अपने दृष्टिकोणसे कितना भी अन्यायपूर्ण क्यों न मालूम हुआ हो, हमें यह जानकर कम सन्तोष नहीं हुआ कि वह न्याय, नीति और, इनके अलावा, ईसाइयतकी भावनाओंसे ओतप्रोत था। जबतक इस भूमिके श्रेष्ठ पुरुषोंमें यह भावना दिखलाई पड़ती है, तबतक हम प्रत्येक मामलेमें न्याय किये जानेकी बाबत हताश नहीं होंगे।

इसीलिए हमने पूरे विश्वासके साथ आपके सामने आनेका साहस किया है। हम मानते हैं कि हमारे नम्र प्रार्थनापत्रमें जो नई हकीकतें स्पष्ट की गई हैं, उनकी रोशनीमें उपर्युक्त भावनाओंके प्रदर्शित किये जानेका परिणाम उपनिवेशवासी भारतीयों-के प्रति ठोस न्याय ही होगा।

हमारा विश्वास है कि प्रार्थनापत्रमें की गई याचना बहुत विनम्र है। अगर अखबारोंके समाचार विश्वास-योग्य हों तो श्रीमान्‌ने स्वीकार करनेकी कृपा की थी कि

कुछ प्रतिष्ठित भारतीय ऐसे हैं, जो इस विशेषाधिकारका प्रयोग करनेके लिए पर्याप्त बुद्धि रखते हैं। हमारी नम्र रायमें, केवल यह कारण ही इस अति महत्त्वपूर्ण प्रश्नकी जाँचके लिए आयोग नियुक्त करनेको काफी है। हम ऐसे आयोगके सामने उपस्थित होनेको तैयार ही नहीं हैं, हम तो उसका स्वागत करते हैं। बादमें, अगर निष्पक्ष न्यायाधिकरण निर्णय कर दे कि भारतीय लोग मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य हैं, तो क्या हमारा यह माँग करना बहुत ज्यादा होगा कि उन्हें उसका प्रयोग करने दिया जाये? अगर हम विधेयकके सही मानी समझ सके हैं तो उसके कानूनमें परिणत हो जानेपर भारतीयोंका दर्जा निचलेसे-निचले देशी लोगोंके दर्जेसे भी नीचा हो जायेगा। क्योंकि वतनी तो शिक्षा प्राप्त करके मताधिकार पानेके योग्य बन सकेंगे किन्तु भारतीयोंको यह मौका कभी नहीं मिलेगा। विधेयक इतना सख्त है कि अगर ब्रिटिश लोकसभाका कोई भारतीय सदस्य भी यहाँ आये तो वह भी मतदाता बननेके योग्य न होगा।

हम जानते हैं कि इतने ही महत्त्वके दूसरे विषयोंपर भी आपको गंभीरतापूर्वक ध्यान देना है। अगर हम यह जानते न होते तो विधेयककी व्याख्यासे निकलनेवाले हानिकारक परिणामोंका और भी वर्णन करते। ये परिणाम ऐसे हैं कि सम्भवतः विधेयकके यशस्वी निर्माताओंका मंशा ऐसा कदापि न रहा होगा कि उससे ये परिणाम निकलते। इसलिए अगर हमें एक सप्ताहका समय दे दिया जाये तो हम विधानसभाके सामने अपना पक्ष अधिक पूर्ण रूपसे रख सकते हैं। तब हम अपना मामला श्रीमान्‌के हाथोंमें सौंप देंगे, और अपनी सारी उत्कटताके साथ श्रीमान्‌से प्रार्थना करेंगे कि श्रीमान् अपने प्रभावका उपयोग करके भारतीयोंके प्रति पूर्ण न्याय करायें। क्योंकि, हम केवल न्याय चाहते हैं; उससे अधिक और कुछ नहीं।

श्रीमान्‌ने हमारे शिष्टमण्डलको जो मुलाकात दी और हमारे प्रति जो शिष्टता प्रदर्शित की उसके लिए हम श्रीमान्‌को धन्यवाद देते हैं।

भारतीय समाजकी ओरसे,

श्रीमान्‌के आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी
तथा तीन अन्य

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० १८१, खण्ड ४१

३८. परिपत्र : संसद-सदस्योंके नाम[1]

डर्बन
१ जुलाई, १८९४

सेवामें . . . .

महोदय,

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवालोंने विधानपरिषद और विधानसभा दोनोंके माननीय सदस्योंके पास इस पत्रकी नकलें रजिस्टर्ड डाकसे भेजी हैं और उनसे साथके प्रश्नोंका उत्तर देनेका अनुरोध किया है। यदि आप संलग्न पत्रमें उत्तरके कालम भरकर और आप जो ठीक समझें वह मन्तव्य दर्ज करके अपने हस्ताक्षरोंके साथ उसे प्रथम हस्ताक्षरकर्ताके पास ऊपरके पतेपर वापस भेज दें तो हम अत्यन्त आभारी होंगे।

आपके . . .
मो० क० गांधी
तथा चार अन्य

प्रश्न	उत्तर	विशेष
(१) क्या आप शुद्ध अन्तःकरणसे कहते हैं कि मताधिकार कानून संशोधन विधेयक बिलकुल न्याययुक्त है, जिसमें किसी संशोधन या परिवर्तनकी जरूरत नहीं है?	हाँ या नहीं	
(२) क्या आप इसे न्याययुक्त समझते हैं कि जो भारतीय किसी कारणसे अपने नाम मतदाता सूचीमें नहीं लिखा सके उन्हें हमेशाके लिए संसदीय चुनावोंमें मत देनेसे रोक दिया जाना चाहिए — भले वे कितने ही योग्य क्यों न हों और उपनिवेशमें उनका कैसा भी हित निविष्ट क्यों न हो?		
(३) क्या आप सचमुच विश्वास करते हैं कि कोई भी भारतीय उपनिवेशका पूरा नागरिक बननेकी या मत देनेकी पर्याप्त योग्यता कभी भी अर्जित नहीं कर सकता?		
(४) क्या आप इसे न्याय समझते हैं कि किसी आदमीको सिर्फ इसलिए मतदाता न बनने दिया जाये कि वह एशियाई वंशका है?		

१. इस परिपत्र और प्रश्नावलीका उल्लेख "प्रार्थनापत्र : लॉर्ड रिपनको", १४-७-१८९४ से पूर्वके आठवें अनुच्छेदमें किया गया है।

(५) क्या आप चाहते हैं कि जो गिरमिटिया भारतीय उपनिवेशमें आते हैं और यहाँ बस जाते हैं वे यदि स्थायी रूपसे भारत वापस चले जाना पसन्द न करें तो सदा अर्ध-दासता और अज्ञानकी अवस्थामें रहें?

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० १७९, खण्ड १८९

३९. भेंट : नेटालके गवर्नरसे[1]

डर्बन
३ जुलाई, १८९४

सेवामें,

परमश्रेष्ठ माननीय सर वॉल्टर फ्रान्सिस हेली-हचिन्सन, के० सी० एम० जी०, गवर्नर, नेटाल उपनिवेश; प्रधान सेनापति तथा वाइस-एडमिरल, नेटाल; और देशी आबादीके सर्वोच्च शासक

नम्रतापूर्वक निवेदन है कि,

जुलाई, १, १८९४ को डर्बनमें प्रमुख भारतीयोंकी एक सभा हुई थी, जिसमें हमसे अनुरोध किया गया था कि हम मताधिकार संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें महानुभावसे भेंट करें। इस विधेयकका तीसरा वाचन कल शामको नेटाल उपनिवेशकी विधानसभामें हो चुका है।

विधेयक अपने वर्तमान रूपमें प्रत्येक भारतीयको, जिसका नाम अभी मतदाता-सूचीमें दर्ज नहीं है, चाहे वह ब्रिटिश प्रजा हो या न हो, मतदाता बननेके अयोग्य ठहराता है।

हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि यदि विधेयकमें कोई शर्तें या मर्यादाएँ शामिल न कर दी गईं तो वह स्पष्टतः अन्यायपूर्ण है और कमसे-कम कुछ भारतीयों पर तो उसका असर बहुत बुरा होगा ही।

इंग्लैंडमें भी आवश्यक योग्यता रखनेवाले किसी भी ब्रिटिश प्रजाजनको जाति, रंग या धर्मके भेद बिना मत देनेका अधिकार प्राप्त है।

महानुभावके शिष्टाचारका अतिक्रमण होनेके खयालसे हम यहाँ इस प्रश्नकी विस्तारके साथ चर्चा नहीं करेंगे। परन्तु हम विधानसभाको दिये गये प्रार्थनापत्रकी एक छपी हुई नकल महानुभावके पास भेजनेकी इजाजत लेते हैं। निवेदन है कि महानुभाव उसे ध्यानसे पढ़ लें।

१. उपनिवेश-मन्त्री लॉर्ड रिपनके नाम नेटालके गवर्नर सर वॉल्टर हेली-हचिन्सनके खरीता सं० ६२, १६ जुलाई, १८९४ का सहपत्र सं० २।

हमें हमारा लक्ष्य इतना न्यायपूर्ण जँचता है कि उसके समर्थनमें किसी दलीलकी आवश्यकता ही नहीं होगी।

हमें भरोसा है कि महाकृपालु महिमामयी सम्राज्ञीके प्रतिनिधिके रूपमें महानुभाव किसी ऐसे कानूनको अनुमति प्रदान नहीं करेंगे, जिससे कोई ऐसी व्यवस्था होती दीखती हो कि सम्राज्ञीका कोई भारतीय प्रजाजन कभी भी मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य नहीं बन सकता।

इस विषयमें हम महानुभावकी सेवामें योग्य अधिकारियोंकी मार्फत उचित प्रार्थनापत्र[1] भेजनेकी आशा करते हैं।

शिष्टमंडलको डर्बनमें मुलाकात देनेके लिए और महानुभावके शिष्टाचार तथा धैर्यके लिए हम महानुभावको बहुत-बहुत धन्यवाद देते हैं।

आपका,
मो० क० गांधी
और छः अन्य

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० १७९, खण्ड १८९

४०. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानपरिषदको[2]

डर्बन
४ जुलाई, १८९४

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटाल निवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थियोंको इस उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीय समाजने आपकी परिषदके सामने यह नम्र प्रार्थनापत्र पेश करनेके लिए नियुक्त किया है। इसका सम्बन्ध मताधिकार कानून संशोधन विधेयकसे है, जिसका तीसरा वाचन विधानसभामें २ जुलाईको हुआ

१. इसके बाद नेटालके गवर्नरको वस्तुतः कोई प्रार्थनापत्र नहीं भेजा गया। स्पष्ट है कि गांधीजी और उनके साथी भेजना तो चाहते थे, परन्तु घटना-चक्र आगे बढ़ गया। यह प्रार्थनापत्र भी अस्वीकृत हो गया और विधेयकको जल्दी-जल्दी सब अवस्थाओंसे गुजारकर सम्राज्ञीकी स्वीकृतिके लिए उपनिवेश मन्त्री लॉर्ड रिपनके पास भेजनेको तैयार कर लिया गया। इसलिए एक दूसरा प्रार्थनापत्र सर वॉल्टर हेली-हचिन्सनके जरिए लॉर्ड रिपनके पास उनके निर्णयके लिए लन्दन भेजना आवश्यक हो गया था; देखिए "प्रार्थनापत्र : लॉर्ड रिपनको", १४-७-१८९४ से पूर्व।

२. ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीय व्यवसायियोंकी ओरसे प्रार्थनापत्रोंके मसविदे तैयार करने और उनको पेश करनेवाले प्रमुख अभीकर्ता और अधिवक्ता माननीय हेनरी कैम्बेलने यह प्रार्थनापत्र विधान-परिषदके अध्यक्ष और सदस्योंको पेश किया था।

था। हम अपनी शिकायतोंका जिक्र विस्तारपूर्वक इस प्रार्थनापत्रमें नहीं करेंगे। उसके लिए हम आपका ध्यान भारतीयोंके उस प्रार्थनापत्रकी ओर सादर आकर्षित करते हैं, जो इस विधेयकके सम्बन्धमें विधानसभाको दिया गया था और जिसकी एक छपी हुई नकल सदस्योंके तत्काल देखनेके लिए इसके साथ नत्थी है। प्रार्थनापत्रपर लगभग ५०० भारतीयोंने हस्ताक्षर किये हैं। ये हस्ताक्षर सिर्फ एक ही दिनकी नगण्य अवधिमें किये गये थे। अगर प्रार्थियोंको अधिक समय मिलता तो विभिन्न जिलोंसे जो विवरण प्राप्त हुए हैं उनसे पूरा विश्वास होता है कि कमसे-कम दस हजार लोगोंने हस्ताक्षर किये होते। प्रार्थियोंको आशा थी कि विधानसभा प्रार्थनाके न्यायको महसूस करके उसे स्वीकार कर लेगी। परन्तु उनकी आशाएँ भग्न हो गईं। इसलिए अब प्रार्थियोंने इस उद्देश्यसे आपकी सम्माननीय परिषदके सम्मुख उपस्थित होनेका साहस किया है कि माननीय सदस्यगण उपर्युक्त प्रार्थनापत्रपर बारीकीसे विचार करें और न्याय तथा औचित्यके अनुरूप अपने संशोधन करनेके अधिकारका प्रयोग करें। कुछ प्रार्थियोंने निम्न सदनके कुछ माननीय सदस्योंसे उपर्युक्त प्रार्थनापत्रके सम्बन्धमें भेंट की थी। वे सब प्रार्थनापत्रमें कही गई बातोंको न्याययुक्त मानते दिखलाई पड़े थे। परन्तु आम भावना यह मालूम हुई थी कि वह प्रार्थनापत्र बहुत विलम्बसे दिया गया। इस बातकी बारीकियोंमें गये बिना, हम आदरके साथ निवेदन करते हैं कि अगर इसे सही मान लिया जाये तो भी विधेयकके कानूनके रूपमें परिणत हो जानेके परिणाम इतने गंभीर होंगे, और हमारी प्रार्थना इतनी न्यायपूर्ण और सौम्य है कि प्रार्थनापत्रपर विचार करते समय विलम्बका महत्त्व सदस्योंके सामने बिलकुल नहीं होना चाहिए था। सभ्य देशोंकी संसदोंके ऐसे उदाहरण खोज निकालना बहुत कठिन न होगा, जिनमें कि इससे कम जोरदार परिस्थितियोंमें समिति द्वारा विचार हो जानेके बाद भी विधेयकोंको संशोधित या अस्वीकार कर दिया गया है। ब्रिटिश लॉर्ड सभाने आयरलैंडकी स्वतन्त्रताके विधेयकको[1] नामंजूर कर दिया था। उसका उदाहरण आपको बतानेकी जरूरत नहीं है। और न जिन परिस्थितियोंमें वह अस्वीकार किया गया था उनकी चर्चा करना ही जरूरी है। हमारा निवेदन है कि मताधिकार कानून संशोधन विधेयकका वर्तमान रूप इतना सर्वग्राही है कि उसके स्वीकार हो जानेपर कोई भी भारतीय, जिसका नाम इस समय मताधिकार-सूचीमें नहीं है, मतदाता नहीं बन सकता, फिर वह कितना ही योग्य क्यों न हो। प्रार्थियोंका विश्वास है कि आपकी सम्माननीय परिषद ऐसे विचारका समर्थन नहीं करेगी, और इसलिए, विधेयकको विधानसभाके पास पुनर्विचारके लिए भेज देगी।

१. यह विधेयक ग्लैडस्टन द्वारा सन् १८८६ में ब्रिटिश संसदमें प्रस्तुत किया गया था। इसमें आयरलैंडका प्रशासन आयरलैंडकी संसद द्वारा नियुक्त कार्य-पालक अधिकारीको सौंपनेकी व्यवस्था तो थी, लेकिन कर आदि लगानेकी शक्तियाँ मुख्यतः ब्रिटिश सरकारके हाथमें ही रहने दी गई थीं। कॉमन्स सभामें इसका तीव्र विरोध हुआ था। सन् १८९३ में ग्लैडस्टनने पुनः सत्तामें आनेपर ऐसा एक विधेयक फिर प्रस्तुत किया था जिसे कॉमन्स सभाने तो पारित कर दिया, पर लॉर्ड सभाने भारी बहुमतसे अस्वीकार कर दिया था।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइजर, ५-७-१८९४

४१. दादाभाई नौरोजीको लिखे पत्रका अंश

डर्बन
५ जुलाई, १८९४

उत्तरदायी शासनमें नेटालकी पहली संसद प्रमुखतः एक भारतीय संसद ही रही है। वह अधिकांशतः भारतीयोंपर असर डालनेवाले कानून बनानेमें व्यस्त रही। ये कानून किसी भी तरह प्रवासी भारतीयोंके अनुकूल नहीं हैं। गवर्नरने विधानपरिषद और विधानसभाका उद्घाटन करते हुए कहा था कि भारतमें कभी मताधिकार प्रयोग न करनेपर भी नेटालमें भारतीय प्रवासी उसका प्रयोग कर रहे हैं; मेरे मन्त्री मताधिकारके इस विषयको सुलझायेंगे। भारतीयोंका मताधिकार छीननेके लिए सर्व-ग्राही कानून बनानेके कारण ये बताये गये थे कि उन्होंने पहले कभी मताधिकारका प्रयोग नहीं किया, और वे उसके लिए योग्य नहीं हैं।

भारतीयोंका प्रार्थनापत्र इसका पर्याप्त उत्तर साबित होता दीख पड़ा। फलतः अब उन्होंने अपना तरीका बदलकर विधेयकका सच्चा ध्येय प्रकट कर दिया है, जो महज यह है: "हम नहीं चाहते कि भारतीय यहाँ और रहें। मजदूर हम जरूर चाहते हैं। परन्तु यहाँ वे गुलाम ही बनकर रहेंगे। जैसे ही वे आजाद हुए, फौरन भारत लौट जायेंगे।" मेरा हार्दिक अनुरोध है कि आप इसपर पूरा-पूरा ध्यान दें और आपका जो प्रभाव हमेशा भारतीयोंके पक्षमें काम आया है — भले वे कहीं भी क्यों न हों — उसका उपयोग करें। भारतीय आपकी ओर वैसे ही आशाकी दृष्टिसे देखते हैं, जैसे बच्चे पिताकी ओर देखते हैं। यहाँकी भावना यथार्थमें ऐसी ही है।

दो शब्द अपने बारेमें भी लिखकर इसे खत्म करूँगा। अभी मैं नौजवान और अनुभवहीन हूँ। इसलिए बिलकुल सम्भव है कि मुझसे कहीं गलती हो जाये। मैंने जो जिम्मेदारी उठाई है वह मेरी योग्यतासे कहीं बड़ी है। यह भी बता दूँ कि मैं यह कार्य बिना मेहनतानेके कर रहा हूँ। इसलिए आप देखेंगे कि मैंने अपने सामर्थ्यसे बाहरका यह काम भारतीयोंके धनसे धनी बननेके लिए नहीं उठाया है। यहाँके लोगोंमें मैं अकेला ही ऐसा हूँ जो इस प्रश्नके दायित्वको निभा सकता है। इसलिए अगर आप कृपाकर मेरा मार्ग-दर्शन करते रहें और मुझे उचित सुझाव देते रहें तो मैं बहुत आभारी हूँगा। मैं आपके सुझावोंको वैसे ही स्वीकार करूँगा जैसे कोई पुत्र अपने पिताके सुझावोंको।

[अंग्रेजीसे]
दादाभाई नौरोजी: द ग्रेंड ओल्ड मैन ऑफ इंडिया

४२. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानपरिषदको[1]

डर्बन
६ जुलाई, १८९४

सेवामें
माननीय अध्यक्ष तथा सदस्यगण
विधानपरिषद, नेटाल

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटालवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र
नम्र निवेदन है कि,

(१) नेटालवासी भारतीयोंने प्रार्थियोंको आपकी माननीय परिषदकी सेवामें "मताधिकार कानून संशोधन विधेयक" के सम्बन्धमें निवेदन करनेके लिए नियुक्त किया है।

(२) प्रार्थियोंको हार्दिक खेद है कि उन्होंने ४ जुलाई, १८९४ को माननीय श्री कैम्बेलके द्वारा जो प्रार्थनापत्र पेश किया था, वह नियमानुकूल नहीं था; इस कारण उन्हें फिरसे यह प्रार्थनापत्र पेश करके आपकी परिषदका अमूल्य समय नष्ट करना पड़ रहा है।

(३) प्रार्थी भारतीय समाजके विश्वासपात्र और जिम्मेदार सदस्य हैं। इस हैसियतसे वे आपकी परिषदका ध्यान आकर्षित करते हैं कि विचाराधीन विधेयकने भारतीय समाजमें व्यापक असंतोष और निराशाकी भावना पैदा कर दी है। जैसे-जैसे भारतीय समाजमें विधेयककी धाराओंका ज्ञान फैलता है, वैसे-वैसे प्रार्थियोंको लोगोंकी ये भावनाएँ अधिकाधिक सुनाई पड़ती जाती हैं: "सरकार जो माँ-बाप है हमें मार डालेगी, हम क्या करें?"

(४) प्रार्थी आपकी परिषदके प्रति अधिकसे-अधिक आदरके साथ निवेदन करते हैं कि यह भावना न सिर्फ तुच्छ गिनी जाने योग्य नहीं है, बल्कि अन्तःकरणसे निकली हुई है और परिषदके अत्यन्त गंभीर विचारके योग्य है।

(५) आपकी परिषदमें विधेयकके दूसरे वाचनकी बहसके समय यह बतानेका प्रयत्न किया गया था कि मत देना क्या चीज है, इसे भारतीय जानते ही नहीं हैं। प्रार्थी आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि यह सच नहीं है। वे भली-भाँति समझते हैं कि मत देनेकी सुविधासे क्या हक मिलता है और उसकी क्या जिम्मेदारी होती है। प्रार्थियोंकी केवल इतनी ही इच्छा है कि परिषद स्वयं यह देख सकती कि विधेयककी प्रगतिकी प्रत्येक अवस्थाको भारतीय समाज किस चिन्ता और उत्तेजनाके साथ देखा करता है।

१. श्री हाजी मुहम्मद दादा तथा अन्य सात व्यक्तियोंका यह प्रार्थनापत्र, ६ जुलाई, १८९४ को माननीय श्री कैम्बेलने नेटाल संसदकी विधानपरिषदके सामने पेश किया था।

(६) प्रार्थी एक क्षणके लिए भी यह नहीं कहना चाहते कि भारतीय समाजके प्रत्येक व्यक्तिको ऐसा ज्ञान है और, इसलिए, उसकी ऐसी भावना है। परन्तु वे कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि साधारण स्थिति यही है। वे यह भी कहना नहीं चाहते कि ऐसे भारतीय हैं ही नहीं जिन्हें मत देनेका अधिकार नहीं मिलना चाहिए। परन्तु वे इतना जरूर कहेंगे कि यह तो कोई कारण नहीं, जिससे कि सारेके-सारे भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित कर दिया जाये।

(७) विधेयकके अमलसे जो परिणाम होंगे उनमें से कुछका परिषदके विचारार्थ निवेदन करनेकी प्रार्थी अनुमति चाहते हैं :

(क) जिन लोगोंके नाम इस समय मतदाता सूचीमें शामिल हैं, उन्हें मनमाने ढंगसे विधेयक सूचीमें कायम रखता है। परन्तु जिन लोगोंने अबतक उस अधिकारका प्रयोग करनेकी इच्छा नहीं की उनको वह हमेशाके लिए उससे वंचित कर देता है।

(ख) जब कि कुछ भारतीय पिताओंको मत देनेका हक होगा, उनके बच्चे कभी मत नहीं दे सकेंगे — भले ही बच्चे अपने पिताओंसे हर तरह आगे बढ़े हुए क्यों न हों।

(ग) विधेयक गिरमिटिया और स्वतन्त्र भारतीयों — दोनोंको एक ही तराजूसे तौलता है।

(घ) विधेयकका आधार राजनीतिक है। यह आधार हाल ही में विकसित हुआ दीखता है। उसे यदि थोड़ी देरके लिए छोड़ दिया जाये तो विधेयकसे ऐसा मालूम होगा कि इस समय भारतमें रहनेवाला एक भी भारतीय मताधिकारका प्रयोग करनेके योग्य नहीं है; और यूरोपीयों तथा भारतीयोंके बीच इतना अन्तर है कि भारतीय यूरोपीयोंके दीर्घ सहवासके बाद भी उस मूल्यवान अधिकारका प्रयोग करनेके योग्य नहीं बन सकते।

(८) प्रार्थी नम्रतापूर्वक पूछते हैं : एक पिता मतदाता है। वह अपने पुत्रकी शिक्षापर इसलिए भारी मात्रामें धन खर्च करता है कि पुत्र लोकपरायण बने। यदि इसके बाद भी अन्तमें उसे यह देखना पड़े कि पुत्रको वह अधिकार भी नहीं मिलता जिसे प्रातिनिधिक संस्थाओंवाले सब सभ्य देशोंमें पैदा हुए प्रत्येक सच्चे शिक्षित व्यक्तिका जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता है, तो क्या यह उचित होगा?

(९) प्रार्थी इस आशंकाकी विवेचना करनेको बहुत इच्छुक हैं कि एशियाइयोंको मताधिकार दे देनेसे वतनी सरकारकी बागडोर अन्तमें रंगदार लोगों, भारतीयोंके हाथमें चली जायेगी। परन्तु हमें लगता है कि इस विषयपर आपकी परिषदके सामने अपने नम्र विचार रखनेका अवसर यह नहीं है। प्रार्थी इतना ही कहकर सन्तोष करेंगे कि उनके विचारसे ऐसी परिस्थिति कभी बननेवाली ही नहीं है। और यदि दूर भविष्यमें कभी बन भी जाये तो भी उसके विरुद्ध कानून बनानेका समय अभी तो नहीं आया है।

(१०) प्रार्थी सादर निवेदन करते हैं कि विधेयक ब्रिटिश प्रजाके एक वर्ग और दूसरे वर्गके बीच द्वेषजनक भेद-भाव उत्पन्न करनेवाला है। परन्तु कहा यह गया है कि यदि भारतीय ब्रिटिश प्रजाके साथ यूरोपीयोंकी बराबरीका बरताव किया जाता है तो वही बरताव दूसरी ब्रिटिश प्रजाओं — अर्थात् उपनिवेशके वतनी लोगोंके साथ भी होना चाहिए। प्रार्थी अप्रिय तुलनामें उतरे बिना सम्राज्ञीकी १८५८ की घोषणाका एक अंश उद्धृत करनेकी इजाजत लेते हैं। उससे मालूम होगा कि भारतीय ब्रिटिश प्रजाके साथ किन सिद्धान्तोंके आधारपर व्यवहार किया जाना चाहिए :

> **हम अपने-आपको अपने भारतीय प्रदेशके निवासियोंके प्रति कर्त्तव्यके उन्हीं दायित्वोंसे बँधा हुआ समझते हैं, जिनसे हम अपनी दूसरी प्रजाओंके प्रति बँधे हैं। और सर्वशक्तिमान परमात्माकी कृपासे हम उन दायित्वोंका निष्ठापूर्वक और सदसद् विवेक-बुद्धिके साथ निर्वाह करेंगे। और इसके अतिरिक्त हमारी यह भी इच्छा है कि हमारे प्रजाजन अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारीसे हमारी जिन नौकरियोंके कर्त्तव्य पूर्ण करनेके योग्य हों उनमें उन्हें जहाँतक हो सके, जाति और धर्मके भेद-भावके बिना मुक्त रूप और निष्पक्ष भावसे सम्मिलित किया जाये। उनकी समृद्धिमें ही हमारी शक्ति होगी, उनके संतोषमें ही हमारी सुरक्षा होगी और उनकी कृतज्ञतामें ही हमारा सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार होगा।**

(११) उपर्युक्त उद्धरण और १८३३ के अधिकारपत्रके[1] अनुसार, भारतीयोंको भारतमें मुख्य न्यायाधीशके जैसे अत्यन्त उत्तरदायी पदोंपर नियुक्त किया जाता है। फिर भी, यहाँ, एक ब्रिटिश उपनिवेशमें, प्रार्थियोंको या उनके भाई-बन्दोंको या उनके बच्चोंको साधारण नागरिकोंके सामान्यतम अधिकारसे वंचित करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

(१२) अब कहा गया है कि भारतीय लोग नगरपालिकाके स्वशासन तो जानते हैं, किन्तु राजनीतिक स्वशासनसे अनभिज्ञ हैं। प्रार्थियोंका निवेदन है कि यह भी बिलकुल सच नहीं है। परन्तु मान लिया जाये कि बात बराबर ऐसी ही है, तो क्या जिस देशमें संसदीय शासन प्रचलित हो उसमें भारतीयोंको राजनीतिक मताधिकारसे वंचित करनेका यह कोई कारण होना चाहिए? प्रार्थियोंका निवेदन है कि सच्ची और एकमात्र कसौटी यह होनी चाहिए कि आपके प्रार्थी और जिनकी वे पैरवी कर रहे हैं वे योग्य हैं अथवा नहीं। जिस देशमें राजाका राज्य है वहाँसे आया हुआ कोई व्यक्ति — उदाहरणार्थ रूसी — भले ही प्रातिनिधिक शासनको समझने या

१. एक संसदीय जाँच आयोगके निष्कर्षोंपर आधारित, इस अधिनियम द्वारा "ईस्ट इंडिया कम्पनी" के भारतमें व्यापार करनेके अधिकार समाप्त कर दिये गये थे और उसका कार्यक्षेत्र उसके स्वामित्वमें आये प्रदेशोंका शासन करनेतक ही रहने दिया गया था। सन् १८५३ में इसकी फिरसे पुष्टि की गई और अधिकारपत्र अधिनियममें व्यवस्था की गई कि किसी भी भारतीयको उसके धर्म, जन्म-स्थान, वंश या रंगके कारण "ईस्ट इंडिया कम्पनी" के अधीन किसी भी पद या नौकरीके लिए अयोग्य नहीं माना जायेगा।

सराहनेकी योग्यता न दिखा सका हो, फिर भी, प्रार्थी मानते हैं कि यदि वह दूसरी दृष्टियोंसे योग्य हो तो परिषद उसे अयोग्य ठहराकर मताधिकारसे वंचित न करेगी।

(१३) इसे पूरा करनेके पहले प्रार्थी आपकी परिषदका ध्यान लॉर्ड मेकॉलेके निम्नलिखित स्मरणीय शब्दोंकी ओर आकर्षित करते हैं: "हम स्वतन्त्र और सभ्य हैं; परन्तु यदि मानव-जातिके किसी भागको स्वतन्त्रता और सभ्यताका समान अंश देनेमें हम आपत्ति करते हैं तो हमारी स्वतन्त्रता और सभ्यता व्यर्थ है।"

(१४) प्रार्थियोंको हार्दिक विश्वास है कि उपर्युक्त तथ्य तथा तर्क कुछ और भले ही सिद्ध न कर सकें, वे इतना तो सन्तोषप्रद रूपमें सिद्ध कर ही देंगे कि भारतीयोंकी मताधिकार प्राप्त करनेकी योग्यता-अयोग्यताकी जाँचके लिए एक आयोग नियुक्त करनेकी सच्ची आवश्यकता है। यदि भारतीयोंको मताधिकार दे दिया गया तो उनके मत यूरोपीयोंके मतोंको निगल जायेंगे और शासनकी बागडोर उनके हाथोंमें चली जायेगी — क्या इस भयका कोई आधार है? इसकी जाँचके लिए तथा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर रिपोर्ट देनेके लिए भी जाँच-आयोगकी नियुक्ति आवश्यक है — यह भी उपर्युक्त तर्कों तथा तथ्योंसे सिद्ध हो जायेगा। इसलिए प्रार्थी विनती करते हैं कि आपकी परिषद जो सिफारिशें न्यायपूर्ण और उचित समझे उनके साथ विधेयकको विधानसभाके पास पुनर्विचारके लिए वापस भेज दे।

न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि।

[अंग्रेजीसे]
कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० १८१, खण्ड ३८

४३. पत्र: 'नेटाल मर्क्युरी' को[1]

डर्बन
७ जुलाई, १८९४

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल मर्क्युरी'

महोदय,

आपका आजके अंकका विद्वत्तापूर्ण और समर्थ अग्रलेख पढ़कर बड़ा आनन्द आया। ऐसी तो आशा ही नहीं थी कि मताधिकार-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रके विरुद्ध कुछ

१. मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें भारतीय समाजने नेटाल विधानपरिषदको जो प्रार्थनापत्र दिया था उसपर ७ जुलाई, १८९४ के नेटाल मर्क्युरीमें "भारतीय ग्राम समाज" शीर्षकसे एक लम्बा अग्रलेख प्रकाशित हुआ था। उसमें यह दलील दी गई थी कि जिसे आज संसदीय शासन समझा जाता है वह भारतके ग्राम-समाजोंमें प्रचलित प्रातिनिधिक संस्थाओंके किसी भी स्वरूपसे भिन्न है। विधेयकमें भारतीयोंको इस आधारपर मताधिकारसे वंचित रखा गया था कि उन्होंने अपने देशमें

कहनेको होगा ही नहीं। इस आधुनिक कालमें जिस चीजके दो पहलू न हों वह तो आश्चर्यजनक — मैं कहनेपर था, मानवोत्तर — वस्तु होगी। इस सिद्धान्तके आधार पर, सर जॉर्ज चेजनी अकेले ही ऐसे लेखक नहीं हैं, जो आपका उद्देश्य सिद्ध करेंगे। आखिरकार, सर हेनरी समनर मेन भी तो मनुष्य ही थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उनके सिद्धान्तों और निष्कर्षोंका खंडन किया जाये। किसी मर्त्यका "विरोधी तत्त्वोंके द्वन्द्व"से बचे रहना संभव नहीं दिखाई देता। फिर भी, मैं इस समय मामलेकी दूसरी बाजू पेश नहीं करूँगा, कभी और भविष्यमें उसपर चर्चा करनेकी इजाजत चाहूँगा।

यह पत्र लिखनेका उद्देश्य आपको अचानक एक खबर देकर "विस्मित करना" है। मुझे यह कहते हर्ष है कि मैसूर राज्यने अपनी प्रजाको राजनीतिक मताधिकार दे दिया है। मैं समाचारपत्रोंकी रिपोर्टसे निम्नलिखित अंश उद्धृत कर रहा हूँ :

> **दीवानने अब जिस प्रणालीकी व्याख्या की है, उसके अनुसार १०० रुपये या इससे ज्यादा लगान या १३ रुपये और इससे ज्यादा 'मोहातर्फा'[1] देनेवाले सब जमीन-मालिकोंको प्रतिनिधि सभाके सदस्य चुननेका या स्वयं सदस्य बननेका अधिकार है। इसके अलावा, किसी भी भारतीय विश्वविद्यालयके ऐसे सब स्नातकोंको, जो साधारणतः राज्यके किसी ताल्लुकेमें रहते हों, और जो सरकारी नौकर न हों, निर्वाचन करने और निर्वाचित होनेका भी अधिकार प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार सम्पत्ति तथा बुद्धि दोनोंके प्रतिनिधि धारासभामें होंगे। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सार्वजनिक संघ, नगरपालिकाएँ और स्थानीय निकाय भी अपने सदस्योंका चुनाव कर सकते हैं। सदस्योंकी कुल संख्या ३४७ निश्चित की गई है और इन सदस्योंका चुनाव लगभग ४,००० निर्वाचक करेंगे।**

महोदय, मैं आपसे सद्भावनाका अनुरोध करता हूँ, और पूछता हूँ कि क्या दोनों समाजोंके भेद-सूचक तत्त्वोंको, जो अकसर बहुत खींच-तानपर आधारित होते

कभी मताधिकारका प्रयोग नहीं किया। भारतीयोंका कहना था कि वे अपने ग्राम-समाजोंमें प्राचीन कालसे ही मताधिकारका प्रयोग करते आ रहे हैं। परन्तु **नेटाल मर्क्युरी**ने भारतीयोंके इस दावेका प्रतिवाद किया था। सर हेनरी समनर मेनने अपनी पुस्तक **विलेज कम्यूनिटीज़ इन द ईस्ट ऐंड वेस्ट**में जो यह मत व्यक्त किया है कि भारतीय लगभग स्मरणातीत कालसे प्रातिनिधिक संस्थाओंसे परिचित हैं, उसका भी उसने प्रतिवाद किया था। उसका कथन था कि भारतीयोंका राजनीतिक प्रतिनिधित्वसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा; जो-कुछ सम्बन्ध रहा है वह लगान-पट्टेके कानूनी पहलूके सिलसिलेमें था। उसकी दलील यह थी कि ग्राम्य सामाजिक जीवन तो सभी आदिम लोगोंमें समान रूपसे प्रचलित था और उससे अगर कोई बात सिद्ध होती है तो वह है उन लोगोंका पिछड़ापन। उसने सर जॉर्ज चेज़नीका **नाइंटीन्थ सेंच्युरी**में व्यक्त किया हुआ यह मत उद्धृत किया था कि भारतीय अब भी अपनी राजनीतिक बाल्यावस्थामें हैं। उत्तरमें गांधीजीने यह पत्र लिखा था।

१. मकान-कर।

हैं या निरे काल्पनिक होते हैं, जनताके सामने फैलाकर दिखानेके बजाय आप उनके साम्य-सूचक मुद्दोंको एकत्र करके प्रदर्शित करें तो मानव-जातिकी अधिक सेवा नहीं होगी? विरोधी तत्त्व तो मनुष्यके बुरेसे-बुरे भावोंको ही जगा सकते हैं न, जब कि किसीका सच्चा लाभ उनसे हो ही नहीं सकता? मैं नहीं समझता कि दोनों राष्ट्रोंके बीच ईर्ष्या और शत्रुताके बीज बोना आपके लिए लाभजनक हो सकता है। मुझे कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करनेकी शक्ति आपमें है, जैसी कि वह हरएकमें कम या ज्यादा मात्रामें होती है। परन्तु इससे बहुत ऊँची और बहुत उदात्त एक चीज भी आपकी पहुँचके अन्दर है — वह एक ऐसी चीज है, जो न केवल आपको महत्ता प्रदान करेगी, बल्कि भला भी बनायेगी। और वह चीज है — उपनिवेशके लोगोंको भारत और उसके लोगोंके बारेमें सही शिक्षा देना। इसके अलावा, आपको एक पूरे राष्ट्रकी, जो १,२०० वर्षके दमन और अत्याचारोंसे भी कुचला नहीं जा सका, कृतज्ञता प्राप्त होगी। उस राष्ट्रका कुचला न जा सकना अपने-आपमें एक चमत्कार है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ११-७-१८९४

४४. प्रार्थनापत्र : नेटालके गवर्नरको[१]

डर्बन
१० जुलाई, १८९४

सेवामें

परमश्रेष्ठ माननीय सर वॉल्टर फ्रान्सिस हेली-हचिन्सन, के०सी०एम०जी०,
गवर्नर, नेटाल उपनिवेश; प्रधान सेनापति तथा वाइस-एडमिरल,
नेटाल; और देशी आबादीके सर्वोच्च शासक

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

सादर निवेदन है कि:

(१) प्रार्थी नेटाल उपनिवेशवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे इस प्रार्थनापत्र द्वारा मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें महानुभावकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं

(२) प्रार्थियोंको मालूम हुआ है कि महानुभाव उपर्युक्त विधेयकको सम्राज्ञीकी सम्मतिके लिए ब्रिटिश सरकारके पास भेजेंगे।

१. उपनिवेश मन्त्री लॉर्ड रिपनके नाम नेटालके गवर्नर सर वॉल्टर हेली-हचिन्सनके खरीता सं० ६२, जुलाई, १८९४ का सहपत्र सं० ६।

(३) ऐसी स्थितिमें, विधेयकके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारके नाम एक प्रार्थनापत्र[1] तैयार किया जा रहा है।

(४) प्रार्थी वह प्रार्थनापत्र, जितनी जल्दी हो सकेगा, महानुभावके पास भेज देंगे।

(५) प्रार्थियोंका आदरपूर्वक निवेदन है कि महानुभाव ब्रिटिश सरकारको अपना इस विषय सम्बन्धी खरीता भेजना तबतक स्थगित रखें, जबतक कि उपर्युक्त प्रार्थनापत्र भी उसके पास भेजनेके लिए महानुभावकी सेवामें न पहुँच जाये?

न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी सदा दुआ करेंगे, आदि।

मो० क० गांधी
तथा सात अन्य

[अंग्रेजीसे]
कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० १७९, खण्ड १८९

४५. प्रार्थनापत्र : लॉर्ड रिपनको[2]

[डर्बन
१४ जुलाई, १८९४ से पूर्व][3]

सेवामें

महामहिम, परममाननीय मार्क्विस ऑफ रिपन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, सम्राज्ञी-सरकार

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले सम्प्रति नेटाल उपनिवेशवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र नम्र निवेदन है कि,

(१) महानुभावके प्रार्थी भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं और नेटाल उपनिवेशके भिन्न-भिन्न भागोंमें निवास करते हैं।

(२) महानुभावके कुछ प्रार्थी व्यापारी हैं, जो इस उपनिवेशमें आकर बस गये हैं। कुछ पहले-पहल इकरारनामेमें बँधकर भारतसे आये थे और इधर कुछ समयसे

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. उपनिवेश-मन्त्री लॉर्ड रिपनके नाम नेटालके गवर्नर सर वॉल्टर हेली-हचिन्सनके ३१ जुलाई, १८९४के खरीता सं० ६६ का सहपत्र सं० १

गांधीजीने अपनी आत्मकथाके भाग २, अध्याय १७ में कहा है कि उन्होंने भारतीयोंके मताधिकार सम्बन्धी इस प्रार्थनापत्रपर बहुत परिश्रम किया था और एक पखवारेमें इसके लिए १०,००० से अधिक हस्ताक्षर प्राप्त कर लिये थे। नेटालके प्रधान-मन्त्रीने इसे गवर्नरके पास भेजते हुए साथके पत्रमें वे कारण बताये थे जिनके आधारपर उन्होंने अपीलको नामंजूर करनेकी सिफारिश की थी।

३. देखिए अगला शीर्षक।

(बीस-तीस वर्षमें भी) स्वतन्त्र हो चुके हैं। कुछ लोग गिरमिटमें बँधे हुए भारतीय हैं, कुछ इसी उपनिवेशमें जन्मे और शिक्षा पाये हुए और कुछ लोग वकीलोंके मुंशी, कम्पाउंडर, कम्पोजीटर, फोटोग्राफर, शिक्षक आदिके भिन्न-भिन्न धंधोंमें लगे भारतीय हैं। इसके अलावा, अनेक प्रार्थी उपनिवेशमें बड़ी-बड़ी जमीन-जायदादके मालिक हैं और माननीय विधानसभाके सदस्योंके चुनावमें मत देनेका वाजिब अधिकार रखते हैं। थोड़े लोग ऐसे भी हैं, जो जमीन-जायदाद होनेके कारण मत देनेका अधिकार तो रखते हैं, फिर भी किसी-न-किसी कारणसे मतदाता-सूचीमें अपने नाम दाखिल नहीं करा सके हैं।

(३) प्रार्थी मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें महानुभावको यह प्रार्थनापत्र दे रहे हैं। उक्त विधेयक उपनिवेशके प्रधानमन्त्री माननीय सर जॉन रॉबिन्सनने गत अधिवेशनमें पेश किया था। विधानसभामें इसका तीसरा वाचन स्वीकार हो चुका है, और माननीय गवर्नर महोदय इसे अपनी स्वीकृति इस शर्तपर दे चुके हैं कि सम्राज्ञी इसे अब भी अस्वीकार कर सकती हैं।

(४) विधेयकका हेतु यह है कि एशियाई वंशोंके जो भी लोग उपनिवेशमें बसे हैं उन सबको संसदीय चुनावोंमें मत देनेके अधिकारसे वंचित कर दिया जाये। परन्तु जिनके नाम इस मतदाता-सूचीमें वाजिब तौरसे दर्ज हैं उनको विधेयकमें अपवादस्वरूप माना गया है।

(५) उपनिवेशके सत्ताधीशोंसे न्याय पानेके लिए जो आन्दोलन किया गया है, प्रार्थी उसका संक्षिप्त इतिहास पेश करनेकी अनुमति चाहते हैं।

(६) महानुभावके प्रार्थियोंने सबसे पहले उस समय विधानसभाके सामने फरियाद की थी, जब मताधिकार कानून संशोधन विधेयकका दूसरा वाचन स्वीकार हुआ था। जब प्रार्थियोंको यह मालूम हुआ कि दूसरे वाचनके बाद दो दिनमें ही समितिने विधेयकको पास कर दिया और एक दिन बाद उसका तीसरा वाचन भी समाप्त हो जायेगा, तब ऐसा जान पड़ा कि यदि तीसरा वाचन स्थगित न किया जाये तो प्रार्थनापत्र पेश करना असम्भव होगा। इसलिए आपके प्रार्थियोंने तार[1] द्वारा विधानसभासे प्रार्थना की कि तीसरा वाचन स्थगित किया जाये। विधानसभाने बड़ी कृपा करके एक दिनके लिए वाचन स्थगित किया। उस एक दिनमें लगभग पाँच सौ भारतीयोंने एक प्रार्थनापत्रपर सही करके दूसरे दिन उसे विधानसभाके सामने पेश किया। मैरित्सबर्गमें प्रार्थियोंका एक शिष्टमण्डल प्रधानमन्त्री और महान्यायवादी सहित विधानसभाके अनेक सदस्योंसे मिला। शिष्टमण्डलको बड़े सौजन्यके साथ स्वीकार किया गया और उसकी बातें धैर्यके साथ सुनी गईं। अधिकतर सदस्योंने, जिनसे शिष्टमण्डलने भेंट की, स्वीकार किया कि प्रार्थियोंने विधानसभासे जो प्रार्थना की थी वह उचित थी। परन्तु सभीका कहना यह रहा कि प्रार्थनापत्र देरीसे दिया गया। प्रार्थनापत्रपर विचार किया जा सके, इस उद्देश्यसे प्रधानमन्त्रीने चार दिनके लिए तीसरा वाचन स्थगित करा दिया। यह भी बता देना अनुचित न होगा कि वेरुलम, रिचमंड रोड

१. उपलब्ध नहीं है।

तथा अन्य स्थानोंसे विधानपरिषदके नाम तार भेजकर प्रार्थनापत्रका समर्थन किया गया था। परन्तु उन तारोंको इस बिनापर अनियमित ठहरा दिया गया कि वे परिषदके किसी सदस्यकी मार्फत पेश नहीं किये गये। प्रार्थी इसके साथ अपने विभिन्न प्रार्थनापत्र नत्थी नहीं कर रहे हैं, क्योंकि उन सबको तो निस्सन्देह सरकार आपके पास भेजेगी ही।

(७) प्रार्थनापत्र पेश करनेके चार दिन बाद, अर्थात् सोमवार, २ जुलाई, १८९४को, प्रार्थियोंकी अपेक्षाके विरुद्ध, और उनके लिए अत्यन्त खेदजनक रूपमें, विधेयकका तीसरा वाचन स्वीकार हो गया।

(८) मंगलवारको आपके प्रार्थियोंने माननीय विधानपरिषदको एक प्रार्थनापत्र भेजा। उसे माननीय श्री कैम्बेलकी मार्फत पेश किया गया था। परन्तु उसमें विधान-सभा सम्बन्धी उल्लेख होनेके कारण उसे नियमबाह्य ठहरा दिया गया, और विधेयक-का दूसरा वाचन हो गया। जैसे ही आपके प्रार्थियोंको इसका पता चला, उन्होंने बिना समय खोये विधानपरिषदके नाम दूसरा प्रार्थनापत्र तैयार करके गुरुवारको भेज दिया। शुक्रवारको उन्हीं माननीय सदस्यने उसे पेश किया। इसी बीच, अर्थात् दूसरे वाचनके बाद एक दिनके अन्दर ही, विधेयक समिति द्वारा स्वीकार हो गया था। माननीय श्री कैम्बेलने विधेयकके तीसरे वाचनको स्थगित करनेका प्रस्ताव किया, ताकि उपर्युक्त प्रार्थनापत्रपर विचार किया जा सके। परन्तु प्रस्ताव इस आधारपर अस्वीकृत हो गया कि प्रार्थनापत्र "बहुत विलम्बसे" पेश किया गया है। आप देखेंगे कि विधेयक मुश्किलसे चार दिन विधानपरिषदके सामने रहा। प्रार्थी यह भी बता दें कि भारतीय समाजके प्रमुख सदस्योंने माननीय सर वॉल्टर एफ० हेली-हचिन्सनसे मिलनेके लिए एक शिष्टमण्डल नियुक्त किया था। सर वॉल्टरने बड़ी सहृदयता और शिष्टताके साथ शिष्टमण्डलकी बातें सुनीं। माननीय सदस्योंके व्यक्तिगत मत जाननेके लिए भारतीयोंकी एक समितिने उन्हें एक छपा हुआ परिपत्र[1] भेजा था और उनसे कुछ प्रश्नोंके उत्तर देनेका अनुरोध किया था। परिपत्र और प्रश्नावली दोनों इसके साथ नत्थी हैं। अबतक तो केवल एक सदस्यने ही उत्तर भेजा है, परन्तु उन्होंने भी प्रश्नोंके उत्तर नहीं दिये।

(९) मताधिकार विधेयककी आलोचना करनेके पहले एक दलीलको, जो प्रार्थि-योंके विरुद्ध काममें लाई गई है, निबटा देनेकी प्रार्थी अनुमति चाहते हैं। दलील यह है कि प्रार्थियोंने विधानसभाको बहुत देरीसे अर्जी दी। इस विषयमें प्रार्थियोंका कहना इतना ही है कि कायदेके मुताबिक देरी नहीं हुई थी। इसके अलावा, प्रश्न इतने महत्त्वके थे, तथा हैं, और विधेयकका सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके साथ इतना गहरा सम्बन्ध था, तथा है, कि अगर सरकारने या विधानसभा या विधानपरिषदने विधेयकका तीसरा वाचन स्वीकार होने देनेके पहले अपने निर्णयपर फिरसे विचार किया होता और प्रार्थियोंके मामलेकी भली-भाँति जाँच कराई होती तो अनुचित न होता।

१. देखिए "परिपत्र : संसद-सदस्योंके नाम", १-७-१८९४।

(१०) बहस और विधेयककी प्रस्तावनामें कहा गया है कि एशियाई लोगोंने कभी मताधिकारका उपभोग नहीं किया है। बहसमें तो यह भी कहा गया था कि एशियाई लोग मताधिकारका उपभोग करनेके योग्य ही नहीं हैं। उस समय भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित रखनेके लिए यही दो मुख्य कारण बताये गये थे। प्रार्थियोंका विश्वास है कि विधानसभाको दिये गये प्रार्थनापत्रसे इन दोनों आपत्तियोंका पूरी तरह निराकरण हो जाता है।

(११) यद्यपि खुले तौरसे यह स्वीकार नहीं किया गया कि एशियाइयोंके मताधिकारके सम्बन्धमें दोनों आपत्तियाँ ढह गई हैं, फिर भी दिखाई तो यह पड़ता है कि भीतर ही भीतर इस बातको मंजूर कर लिया गया है। कारण, विधानसभामें विधेयकके दूसरे वाचनके समय तो कहा गया था कि भारतीयोंको मत देनेसे वंचित रखना नीति तथा न्यायके आधारपर उचित है, परन्तु तीसरे वाचनमें खुले तौरपर उसे शुद्ध राजनीतिक आधारपर उचित बताया गया। तीसरे वाचनके समय कहा गया कि अगर भारतीयोंको मत देनेका अधिकार दिया गया तो उनके मत यूरोपीयोंके मतोंको निगल जायेंगे और यूरोपीयोंके राज्यके बदले भारतीयोंका राज्य स्थापित हो जायेगा।

(१२) प्रार्थी दोनों सदनोंके प्रति अधिकतम आदरके साथ निवेदन करते हैं कि उपर्युक्त भय बिलकुल निराधार है। आज भी यूरोपीय मतदाताओंकी तुलनामें भारतीय मतदाता बहुत कम हैं। जो भारतीय गिरमिटमें बँधकर आते हैं उनमें गिरमिटकी अवधिके अन्दर और उसके बाद भी अनेक वर्षोंतक मताधिकारके लिए काफी साम्पत्तिक योग्यता नहीं हो सकती। फिर, यह भी एक जानी हुई बात है कि जो लोग अपने खर्चसे आते हैं वे हमेशाके लिए उपनिवेशमें नहीं रहते। वे कुछ वर्षोंके बाद स्वदेश वापस चले जाते हैं और उनके बदले दूसरे भारतीय आते हैं। इस तरह जहाँतक व्यापारी वर्गका सम्बन्ध है, उसके मतोंकी संख्या हमेशा उतनी ही बनी रहेगी। इसके अलावा, यह बात भी भुलाई नहीं जा सकती कि यूरोपीय समाज उपनिवेशके राजनीतिक कामोंमें जितनी सक्रिय दिलचस्पी रखता है उतनी भारतीय समाज नहीं रखता। ऐसा मालूम होता है कि उपनिवेशमें ४५,००० यूरोपीय और उतने ही भारतीय हैं। यह हकीकत ही बता देती है कि यूरोपीय और भारतीय मतोंमें कितना बड़ा अन्तर है। प्रार्थी निवेदन करते हैं कि अभी अनेक पीढ़ियोंतक किसी भारतीयका नेटालकी संसदमें प्रविष्ट होनेकी आशा करना असम्भवप्राय है। इसको सिद्ध करनेके लिए किसी प्रमाणकी आवश्यकता है, ऐसा नहीं लगता।

(१३) और अगर महानुभावके प्रार्थी मताधिकारका प्रयोग करनेके लिए अयोग्य न हों और उन्हें उपनिवेशके शासनमें — और विशेषतः अपने ही ऊपर शासन करनेमें — कुछ भाग मिले तो क्या कोई हर्ज है?

(१४) प्रार्थियोंका निवेदन है कि विधेयकका स्वरूप प्रतिगामी है, और वह स्पष्टतः अन्यायपूर्ण है।

(१५) जिन लोगोंके नाम वाजिब तौरसे मतदाता-सूचीमें दर्ज हैं उन्हें रहने देनेकी बातसे ही, प्रार्थियोंकी नम्र रायमें, यह बात स्वीकृत हो जाती है कि मताधि-

कारका उत्तरदायित्व और उसका हक समझनेकी योग्यता प्रार्थियोंमें मौजूद है। बहसके दौरान यह बतानेका प्रयत्न किया गया था कि प्रार्थी मत देनेके योग्य नहीं हैं, फिर भी उन्हें रहने दिया गया है। इसपर प्रार्थी विश्वास नहीं कर सकते।

(१६) यह भी कहा गया है कि विधेयककी दूसरी उपधारासे पूरा न्याय हो जाता है। प्रार्थियोंका निवेदन है कि ऐसी बात नहीं है। इसके उलटे, वह उन दोनोंकी भावनाओंको दुखानेवाला है, जो सूचीमें शामिल हैं, और जो नहीं हैं।

(१७) जिन लोगोंके नाम सूचीमें हैं उनके लिए यह कोई सन्तोषकी बात नहीं है कि वे स्वयं तो मत दे सकते हैं, परन्तु उनके बच्चे, भले वे कितने ही शिक्षित और सुयोग्य क्यों न हों, मत नहीं दे सकते। और यदि विधेयक कानूनमें परिणत हो गया तो वह उपनिवेशमें बसे भारतीय माता-पिताओंके अपने बच्चोंको ऊँची शिक्षा देनेके दृढ़से-दृढ़ उत्साहको भी हर लेगा। वे अपने बच्चोंको समाजमें बिना आदर-मानके या बिना महत्त्वाकांक्षाके, अछूतोंके समान जीवन बिताते देखना पसन्द नहीं करेंगे। अगर मनुष्यको समाजमें आदर-मान न मिले तो धन भी बेकार हो जाता है। इस तरह जिस विचारसे मनुष्य धन-दौलत इकट्ठी करता है, अंकुरित होते ही उसपर पाला पड़ जाता है।

(१८) फिर, जो लोग उपनिवेशमें आकर बसे हैं वे दूसरी उपधाराके प्रति यह जानकर खिन्न होते हैं कि जब उनके भाई उनसे किसी भी तरह बेहतर न होने-पर भी दैवयोगसे मत देनेका अधिकार रखते हैं, तब वे शायद सिर्फ इसलिए मत देनेके अधिकारी नहीं हैं कि वे अपने वशसे बिलकुल बाहरकी परिस्थितियोंके कारण मतदाता-सूचीमें अपने नाम नहीं लिखा सके। इस प्रकार एक ही वर्गकी भारतीय ब्रिटिश प्रजाके बीच संयोगसे बनी परिस्थितियोंके आधारपर विधेयक ईर्ष्याजनक भेद-भाव पैदा करता है।

(१९) यह संकेत भी किया गया है कि दूसरी उपधारा द्वारा जो न्याय हुआ है उसका प्रार्थियोंने उपकार नहीं माना। परन्तु दूसरी उपधारा दाखिल करनेमें सर-कारके न्यायके इरादेका अधिकतम आदर करते हुए भी कहना पड़ता है कि प्रार्थी उसमें न्याय देख नहीं सके। इसे स्वयं कुछ माननीय सदस्योंने भी स्वीकार किया था, क्योंकि उन्होंने दूसरी उपधाराके रहने-न-रहनेके बारेमें इसलिए कोई चिन्ता व्यक्त नहीं की कि वे मत तो थोड़े समयमें उड़ जानेवाले हैं। यह तो स्वयं स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

(२०) दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंके साथ महानुभावके प्रार्थियोंकी बराबरी करनेका जो उत्साहपूर्ण प्रयत्न किया गया है, उसे प्रार्थियोंने शर्म और दुःखके साथ देखा है। बारंबार कहा गया है कि अगर भारतीयोंको सिर्फ इसलिए मत देनेका कोई हक है कि वे ब्रिटिश प्रजा हैं, तो वतनियोंको यह हक और भी ज्यादा है। प्रार्थी इस तुलनाकी कोई विवेचना करना नहीं चाहते, परन्तु सम्राज्ञीकी सन् १८५८ की घोषणा और महानुभावके भारतीय प्रजा-सम्बन्धी अनुभवकी ओर महानुभावका ध्यान अवश्य खींचते हैं। भारतीय और वतनी ब्रिटिश प्रजाकी शासन-व्यवस्थामें जो स्पष्ट अन्तर है वह बताना शायद जरूरी नहीं है।

(२१) अगर यह विधेयक कानून बन गया तो इस समय जो सैकड़ों शिक्षित भारतीय हैं, जिनके हस्ताक्षर इस प्रार्थनापत्रमें पाये जाते हैं, वे संसदीय चुनावोंमें मत नहीं दे सकेंगे। प्रार्थियोंको पूरा विश्वास है कि जिस विधेयकसे ब्रिटिश प्रजाके किसी भी वर्गके प्रति इतना गंभीर अन्याय होता हो, उसे मंजूर करनेकी सलाह महानुभाव सम्राज्ञीकी सरकारको नहीं देंगे।

(२२) २७ मार्च, १८९४ के 'नेटाल गवर्नमेंट गजट'में प्रकाशित १८९३की प्रवासी भारतीय स्कूल बोर्ड रिपोर्टसे मालूम होता है कि उस वर्ष २६ स्कूल थे, जिनमें २,५८९ विद्यार्थी पढ़ते थे। प्रार्थियोंका आदरपूर्वक निवेदन है कि ये बच्चे, जिनमें से अनेक इसी उपनिवेशमें जन्मे हैं, पूरी तरह यूरोपीय ढंगसे पाले-पोसे जाते हैं। आगेके जीवनमें इनका सम्बन्ध मुख्यतः यूरोपीयोंके साथ होता है। इसलिए वे मताधिकारके लिए हर तरहसे उतने ही योग्य बन जाते हैं, जितना कि कोई यूरोपीय होता है। हाँ, उनमें मूलतः ही कोई कमी हो, जिससे वे शिक्षा-योग्यतामें यूरोपीयोंकी बराबरी न कर सकें, तो बात अलग है। परन्तु वे अयोग्य नहीं हैं, यह तो ऐसे विषयोंके बड़ेसे-बड़े पण्डितों द्वारा असंदिग्ध रूपमें सिद्ध किया जा चुका है। इंग्लैंड और भारत दोनोंमें ही अंग्रेज तथा भारतीय विद्यार्थियोंकी प्रतिद्वन्द्विताके परिणामोंसे इसका पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है कि भारतीयोंमें यूरोपीयोंके साथ सफलतापूर्वक होड़ करनेका सामर्थ्य है। संसदीय समितिके सामने जो गवाहियाँ दी गई थीं उनके या इस विषयके महान लेखकोंकी रचनाओंके उद्धरण प्रार्थी जानबूझकर नहीं दे रहे हैं, क्योंकि वैसा करना भरी थालीमें परोसने जैसा व्यर्थ होगा। फिर अगर प्रार्थी माँग करते हैं कि इन लड़कोंको सयाने होनेपर मताधिकार दिया जाये, तो क्या वह एक ऐसी माँग नहीं है, जिसे किसी भी सभ्य देशमें कोई भी आदमी अपना जन्म-सिद्ध हक मानेगा, और जिनमें जरा भी हस्तक्षेप होनेपर उचित रीतिसे उसका मुकाबला करेगा? प्रार्थियोंका दृढ़ विश्वास है कि महानुभाव एक संसदीय संस्थाओं द्वारा शासित देशमें इन बच्चोंको साधारणसे-साधारण नागरिक अधिकारोंसे वंचित किये जानेके अपमानका भाजन न होने देंगे।

(२३) प्रार्थी माननीय श्री कैम्बेल और माननीय श्री डोनके कृतज्ञ हैं कि उन्होंने अपने खर्चसे आये हुए भारतीयोंका मताधिकार छीननेके अन्यायको समझा और उसकी आलोचना की। परन्तु वे भी दूसरे माननीय सदस्योंके समान यह मानते दीखते हैं कि जो लोग गिरमिटिया बनकर आये हैं उन्हें तो मताधिकार कदापि नहीं मिलना चाहिए। प्रार्थी स्वीकार करते हैं (यद्यपि वे यह कहे बिना नहीं रह सकते कि अगर कोई मनुष्य अन्यथा योग्य हो तो उसकी दरिद्रताको अपराध नहीं माना जाना चाहिए) कि गिरमिटिया भारतीयोंको गिरमिटकी अवधिमें भले ही मताधिकार न दिया जाये, परन्तु, अगर बादमें वे पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर लें तो, हमारा नम्र निवेदन है कि उन्हें भी मत देनेके अधिकारसे सदैव वंचित नहीं रखा जाना चाहिए। जो ऐसे लोग यहाँ आते हैं वे साधारणतः हृष्ट-पुष्ट और नौजवान होते हैं। वे यूरोपीयोंके प्रभावमें आ जाते हैं और गिरमिटकी अवधि पूरी करते समय तथा, खास

तौरसे, स्वतन्त्र हो जानेके बाद, वे शीघ्रतासे यूरोपीय सभ्यताको अपनाने लगते हैं और पूरे उपनिवेशी बन जाते हैं। यह स्वीकार किया जा चुका है कि शान्तिपूर्वक रहनेवाले ये लोग बहुत उपयोगी हैं — सचमुच तो अमूल्य हैं। यह बता देना अनुचित न होगा कि इस समय जो शिक्षित भारतीय युवक सरकारी नौकरियोंमें मुहर्रिरों या दुभाषियोंका, या सरकारी नौकरियोंके बाहर शिक्षकों और वकीलोंके मुंशियों आदिका काम कर रहे हैं, उनमें से अधिकतर गिरमिटिया मजदूर बनकर उपनिवेशमें आये थे। प्रार्थियोंका निवेदन है कि उनको या उनके बच्चोंको मत देनेसे या अपने ही शासनमें किसी प्रकारका प्रभाव रखनेसे वंचित करना एक क्रूर कार्य होगा। अगर कोई आदमी दूसरे रूपोंमें नियमानुसार योग्य है, या योग्य बन जाता है, तो सिर्फ इतनी बात ही उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता और राजनीतिक अधिकारोंकी प्राप्तिमें बाधक नहीं होनी चाहिए कि वह एशियाई वंशका है, या गिरमिटिया बनकर उपनिवेशमें आया था।

(२४) महानुभावका ध्यान प्रार्थी इस विरोधी परिस्थितिकी ओर भी आकृष्ट करते हैं कि यह विधेयक भारतीयोंको असभ्यसे-असभ्य वतनी लोगोंसे भी नीची कोटिमें रख देगा। क्योंकि उन्हें तो उचित योग्यता प्राप्त करनेपर मताधिकार प्राप्त हो सकता है, परन्तु आज मताधिकार रखनेवाले भारतीय ब्रिटिश प्रजाजन मताधिकारसे ऐसे वंचित हो जायेंगे कि फिर कभी उन्हें वह अधिकार न मिलेगा, भले ही वे मताधिकार छीननेके समय कितने ही योग्य क्यों न हों, या अपने आगेके जीवनमें कितने भी योग्य क्यों न बन जायें।

(२५) प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि यह विधेयक इतना सर्वग्राही और इतना बेरहम है कि इससे सारे भारतीय राष्ट्रका अपमान होता है, क्योंकि अगर भारतका कोई बड़ेसे-बड़ा सपूत भी नेटालमें आकर बसे तो उसे मत देनेका अधिकार नहीं होगा। कदाचित् इसलिए कि औपनिवेशिक दृष्टिसे वह इस अधिकारके लिए अयोग्य ठहरेगा। यह अड़चन दोनों सदनोंके माननीय सदस्योंने स्वीकार की थी और माननीय कोषाध्यक्ष महोदयने तो यहाँतक कहा था कि अड़चनके खास-खास मामलोंपर संसद भविष्यमें विचार कर सकती है।

(२६) ऊपरकी दलीलको और अधिक स्पष्ट करनेके लिए प्रार्थी महानुभावका ध्यान भूतपूर्व नेटाल विधानपरिषदमें भारतीयोंके मताधिकार-सम्बन्धी प्रश्नपर हुई बहसके कागजात और सरकारी गजटोंकी ओर आकर्षित करते हैं। नेटाल-सम्बन्धी एक 'ब्लू बुक' — सरकारी रिपोर्ट (सी — ३७९६, १८८३) में पृष्ठ ३ पर औपनिवेशिक कार्यालयके नाम श्री सांडर्सका एक पत्र प्रकाशित किया गया है। प्रार्थी उसका निम्नलिखित अंश उद्धृत करते हैं :

यह परिभाषा ही कि ये हस्ताक्षर पूरे हों, निर्वाचकके अपने ही अक्षरोंमें हों और यूरोपीय लिपिमें हों, इस जबरदस्त खतरेको रोकनेमें बहुत हदतक सहायक होगी कि एशियाइयोंके मत अंग्रेजोंके मतोंको दबा देंगे।

इस प्रकार, एशियाई-विरोधी नीतिके उत्साही समर्थक होते हुए भी, श्री सांडर्स इससे आगे नहीं जा सके। उसी पत्रमें वे माननीय महाशय आगे कहते हैं:

> **ऊँची श्रेणीके भारतीय देखते और महसूस करते हैं कि नये कुलियों और उनके बीच एक फर्क है।**

इसलिए, ऐसा मालूम होता है कि उस समयकी सरकार भारतीय-भारतीयके बीच फर्क करनेपर बिलकुल ही राजी थी। दुर्भाग्यवश अब, अधिक स्वतन्त्र राज्यमें, गिरमिटिया, गिरमिट-मुक्त और स्वतन्त्र, सभी भारतीयोंको एक ही तराजूसे तोलनेकी कोशिश की जा रही है। प्रार्थी विनम्रतापूर्वक कहे बिना नहीं रह सकते कि श्री सांडर्सका विधेयक वर्तमान विधेयककी तुलनामें बहुत सौम्य था। परन्तु उस विधेयकका भी सम्राज्ञीकी प्रजावत्सल सरकारने समर्थन नहीं किया था। इसलिए प्रार्थियोंका निवेदन है कि मताधिकार कानून संशोधन विधेयकका समर्थन तो और भी नहीं होना चाहिए। उपर्युक्त पुस्तकमें ही पृष्ठ ७ पर तत्कालीन प्रवासी-संरक्षक श्री ग्रेव्जका यह कथन दिया गया है:

> **मेरा मत है कि केवल वही भारतीय न्यायपूर्वक मताधिकार पानेके हकदार हैं, जिन्होंने अपने और अपने परिवारोंके भारत लौटनेके मुफ्त टिकटका पूरा दावा छोड़ दिया है।**

उन्होंने यह भी ठीक ही बताया कि श्री सांडर्सकी सुझाई हुई हस्ताक्षरकी कसौटी व्यवहारमें यूरोपीय निर्वाचकोंपर लागू नहीं की जाती। उसी पृष्ठपर तत्कालीन महान्यायवादीने अपनी रिपोर्टमें कहा है:

> **यह स्पष्ट है कि मैंने जिस कानूनका मसविदा बनाया है उसमें प्रवर समितिकी सिफारिशोंसे ली गई वे उपधाराएँ शामिल हैं जिनमें श्री सांडर्सके पत्रमें बताई गई वैकल्पिक योजनाको कार्यान्वित करनेकी व्यवस्था की गई है। परन्तु विदेशियोंको विशेष रूपसे मताधिकारके अयोग्य ठहरानेके सुझाव मानने योग्य नहीं समझे गये।**

महानुभावका ध्यान प्रार्थी उसी पुस्तकके पृष्ठ ९१ पर उन्हीं विद्वान सज्जनकी रिपोर्टकी ओर भी आकृष्ट करते हैं। विद्वान् महान्यायवादीकी ही एक अन्य रिपोर्टका अंश उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। पृष्ठ १४ पर उन्होंने कहा है:

> **जहाँतक उपनिवेशके सामान्य कानूनके अन्दर पूरी तरहसे न आनेवाले प्रत्येक राष्ट्र या जातिके सब लोगोंको मताधिकारसे वंचित कर देनेका सुझाव है, यह स्पष्ट है कि इस कानूनका लक्ष्य उपनिवेशवासी भारतीयों और क्रियोलोंका मताधिकार है, जिसका उपभोग वे इन दिनों कर रहे हैं। जैसा कि मैं पहले ही अपनी रिपोर्ट क्रम-संख्या १२ में कह चुका हूँ, मैं ऐसे कानूनको न्यायपूर्ण या जरूरी नहीं मान सकता।**

(२७) इस तरह स्थिति यह है कि जब उपनिवेशका शासन एक अधिक स्वतन्त्र संविधानके अनुसार होने लगा है, और जब इस स्वतन्त्रताका लाभ प्रार्थियोंको भी मिलना चाहिए था, तब प्रथम उत्तरदायी मन्त्रिमण्डलने हमको कम स्वतन्त्र करनेका, हम सब लोगोंका मताधिकार छीन लेनेका प्रयत्न किया है। यह बड़े दुःखकी बात है। यह देखते हुए कि पहलेके शासनमें प्रार्थियोंके अधिकार छीननेके अपेक्षाकृत बहुत दुर्बल प्रयत्नोंको सम्राज्ञी-सरकारने प्रश्रय नहीं दिया, प्रार्थियोंको पूरी आशा है कि वर्तमान प्रयत्नकी भी वही गत होगी और प्रार्थियोंके प्रति न्याय किया जायेगा।

(२८) मताधिकार विधेयकसे अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे दुःखदायी परिणाम इतने हैं कि उन सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता। फिर भी, प्रार्थी उनमें स कुछका विवेचन करनेकी इजाजत चाहते हैं।

(२९) यह तो विदित है कि उपनिवेशके यूरोपीयों और भारतीयोंके बीच एक चौड़ी खाई है। भारतीयोंसे यूरोपीय द्वेष करते हैं और उन्हें दुतकारते हैं। उन्हें अकसर सताया और परेशान किया जाता है। प्रार्थियोंका निवेदन है कि मताधिकार-विधेयकसे इस तरहकी भावना अधिक तीव्र होगी। इसके लक्षण तो अभीसे ही दिखाई पड़ने लगे हैं। इसकी सचाई साबित करनेके लिए प्रार्थी उक्त तारीखोंके समाचारपत्रोंकी ओर, और दोनों सदनोंकी बहसोंकी ओर भी, महानुभावका ध्यान खींचते हैं।

(३०) दूसरे वाचनकी बहसके दौरान कहा गया था कि भारतीयोंपर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है, उससे उपनिवेशके कानून बनानेवालोंपर अधिक जिम्मेदारी आ पड़ेगी और भारतीयोंपर कोई प्रतिबन्ध न होते हुए उनके हितोंका जितना संरक्षण हो सकता है, उससे अब ज्यादा होगा। प्रार्थियोंका निवेदन है कि यह अबतकके सारे अनुभवके प्रतिकूल है।

(३१) कुछ माननीय सदस्योंका खयाल था कि भारतीयोंको नगरपालिकाके चुनावोंमें भी मत प्रदान नहीं करने देना चाहिए। बहसके समय उत्तरदायी क्षेत्रोंमें यह व्यापक रूपसे मशहूर था कि इस प्रश्नपर भविष्यमें, किन्तु शीघ्र ही, ध्यान दिया जायेगा। भावना ऐसी दिखलाई पड़ती है कि मताधिकार-विधेयक तो अँगुली है, जिसे पकड़ लेनेपर पहुँचा पकड़नेमें देर नहीं लगेगी।

(३२) महानुभाव जानते हैं कि गिरमिटमें बँधकर आये हुए भारतीय अगर उपनिवेशमें बसना चाहें तो उनपर कर लगानेका इरादा किया गया है। कहा गया है कि कर इतना भारी होना चाहिए कि उनका उपनिवेशमें रहना निरर्थक हो जाये — वे रुक ही न सकें, और उनका उपनिवेशियोंके साथ प्रतिद्वन्द्विता करना सम्भव ही न रहे। प्रार्थियोंका मताधिकार छीन लेनेपर उनके हितोंका बेहतर संरक्षण कैसे होगा, इसका यह दूसरा उदाहरण है!

(३३) सरकारी-नौकरी विधेयकपर बहसके समय कुछ माननीय सदस्योंने कहा था कि चूँकि भारतीयोंसे मताधिकार छीन लिया जानेवाला है, इसलिए उन्हें सरकारी नौकरियोंमें भरती होनेसे भी रोक देना उचित ही होगा। इस आशयका

एक संशोधन भी पेश किया गया था। सरकारने चतुराई और दूरदर्शितासे काम लेकर माँग की कि उसपर मत लिये जायें और वह संशोधन केवल अध्यक्षके निर्णायक मतसे रद हुआ। प्रार्थी पूरी तरहसे स्वीकार करते हैं कि इस मामलेमें सरकारने बहुत सहानुभूतिका रुख अख्तियार किया। फिर भी इन घटनाओंका रुख और उनसे सूचित अनिष्ट स्पष्ट है। इस संशोधनका अवसर मताधिकार-विधेयकने ही प्रदान किया था।

(३४) प्रार्थियोंको मालूम हुआ है कि केप उपनिवेशमें रंग या जाति-सम्बन्धी ऐसा कोई भेदभाव नहीं है।

(३५) प्रार्थी आदरपूर्वक यह कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि अगर यह विधेयक कानूनके रूपमें परिणत हो गया तो दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंपर इसका असर एकदम विनाशकारक होगा। आज ट्रान्सवालमें वे दमित हैं और द्वेषके शिकार हैं; बादमें तो उनकी स्थिति एकदम असह्य हो उठगी। अगर एक ब्रिटिश उपनिवेशमें भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंके साथ जरा भी भेदभावका व्यवहार होने दिया गया तो, प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है, शीघ्र ही एक समय ऐसा आयेगा जब थोड़ा भी स्वाभिमान रखनेवाले भारतीयका उपनिवेशमें रहना असम्भव हो जायेगा। ऐसी स्थितिसे उनके रोजगार-धंधेमें बहुत बाधा पड़ेगी, और सम्राज्ञीके सैकड़ों प्रजाजन बेरोजगार हो जायेंगे।

(३६) अन्तमें प्रार्थी आशा करते हैं कि उपर्युक्त तथ्यों और दलीलोंसे महानुभावको मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके अन्यायपूर्ण होनेमें विश्वास हो जायेगा और, महानुभाव सम्राज्ञीकी प्रजाके एक वर्गको दूसरे वर्गके अधिकारोंमें अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करने देंगे।

न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी कर्त्तव्य समझकर सदैव दुआ करेंगे, आदि।

हाजी मुहम्मद हाजी दादा[1]
और सोलह अन्य

[अंग्रेजीसे]
कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० १७९, खण्ड १८९

१. नेटाल भारतीय कांग्रेसके उपाध्यक्ष, १८९४-९६

४६. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

मारफत दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनी
डर्बन
१४ जुलाई, १८९४

सेवामें
माननीय श्री दादाभाई नौरोजी, संसद-सदस्य
श्रीमन्,

अपने इसी माहकी ७ ता० के पत्रके[1] सिलसिलेमें मैं आपको मताधिकार कानून संशोधन विधेयक विरोधी आन्दोलनकी प्रगतिकी निम्नलिखित जानकारी दे रहा हूँ:

सात तारीखको विधानपरिषदमें विधेयकका तीसरा वाचन मंजूर हो गया। परिषदको दिया गया दूसरा प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया गया था। एक माननीय सदस्यने प्रस्ताव किया था कि जबतक सदन प्रार्थनापत्र पर विचार न कर ले तबतक तीसरा वाचन स्थगित रखा जाये। वह प्रस्ताव नामंजूर कर दिया गया।

गवर्नरने विधेयकको अपनी अनुमति दे दी है। शर्त यह है कि सम्राज्ञी उसका निषेध न कर दें। विधेयकमें एक व्यवस्था है कि वह तबतक कानूनका रूप न लेगा जबतक कि गवर्नर राजकीय घोषणा द्वारा या अन्यथा सूचित न कर दें कि सम्राज्ञीकी इच्छा विधेयकका निषेध करनेकी नहीं है।

मैं इसके साथ ब्रिटिश सरकारके नाम एक प्रार्थनापत्रकी[2] नकल भेज रहा हूँ। प्रार्थनापत्र यहाँके गवर्नरको शायद १७ ता० को भेजा जायेगा। इसपर लगभग १०,००० भारतीय हस्ताक्षर करेंगे। लगभग ५,००० हस्ताक्षर हो चुके हैं।

अफसोस है कि मैं आपको परिषदके नाम भेजे गये प्रार्थनापत्रकी[3] नकल नहीं भेज पा रहा हूँ। परन्तु एक अखबारकी कतरन भेज रहा हूँ। उसमें प्रार्थनापत्रकी काफी अच्छी रिपोर्ट दी गई है।

और कुछ कहनेको है, ऐसा नहीं लगता। परिस्थिति इतनी नाजुक है कि अगर विधेयक कानून बन गया तो अबसे दस वर्ष बाद उपनिवेशमें भारतीयोंकी स्थिति असह्य हो जायेगी।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० २२५१)की फोटो-नकलसे।

१. उपलब्ध नहीं।
२. देखिए पिछला शीर्षक।
३. देखिए "प्रार्थनापत्र: नेटाल विधान-परिषदको", ६-७-१८९४।

४७. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

पो० ऑ० बॉक्स २५३
डर्बन
२७ जुलाई, १८९४

गोपनीय

सेवामें
माननीय श्री दादाभाई नौरोजी, संसद-सदस्य

श्रीमन्,

अपने इसी माहकी १४ ता० के पत्रके सिलसिलेमें आपको नीचे लिखी जानकारी दे रहा हूँ :

ब्रिटिश सरकारके नाम जिस प्रार्थनापत्रकी एक नकल आपको भेजी जा चुकी है वह, मैं सुनता हूँ, पिछले सप्ताह भेज दिया गया है।

अगर खबर देनेवालेकी बात सही है, तो महान्यायवादी श्री एस्कम्बने[1] इस आशयकी रिपोर्ट दी है कि विधेयक स्वीकार करनेका एकमात्र उद्देश्य एशियाइयोंको देशी लोगोंके शासनका नियंत्रण करनेसे रोकना है। परन्तु सच्चा कारण केवल इतना है — वे भारतीयोंपर ऐसे बन्धन और निषेध लगाना चाहते हैं और उनकी स्थिति ऐसी अपमानास्पद बना देना चाहते हैं कि उपनिवेशमें रुकना उनके लिए लाभप्रद न रह जाये। फिर भी वे सब भारतीयोंको हटाना नहीं चाहते। जो भारतीय अपने साधनोंसे आते हैं, उन्हें तो वे निश्चय ही नहीं हटाना चाहते और गिरमिटिया भारतीयोंकी जरूरत बुरी तरहसे महसूस करते हैं। परन्तु उनके वशमें हो तो वे गिरमिटिया मजदूरोंको अवधि समाप्त होनेपर भारत लौट जानेके लिए बाध्य करेंगे। पक्की शेर-बकरीकी साझेदारी! वे खूब जानते हैं कि एकदम ऐसा करना उनके वशकी बात नहीं है। इसलिए उन्होंने मताधिकार विधेयकसे इसका सूत्रपात किया है। वे इस प्रश्नपर ब्रिटिश सरकारका रुख परखना चाहते हैं। विधानसभाके एक सदस्यने मुझे लिखा है कि उसे विश्वास नहीं है, ब्रिटिश सरकार विधेयकको मंजूर करेगी। कहना न होगा, भारतीय समाजके लिए यह कितना जरूरी है कि विधेयकको स्वीकृति न दी जाये।

भारतीयोंके लिए नेटाल बुरी जगह नहीं है। बहुत-से भारतीय व्यापारी यहाँ इज्जतके साथ जीविकोपार्जन करते हैं। अगर विधेयक कानून बन गया तो वह भारतीयोंकी आगेकी प्रवृत्तियोंपर जबर्दस्त वार करनेवाला होगा।

१. सर हैरी एस्कम्ब (१८३८-९९); १८९७ में नेटालके प्रधान-मन्त्री। इन्होंने गांधीजीको नेटाल उच्चतम न्यायालयके वकील समुदायमें प्रवेश देनेकी पैरवी की थी।

मैं एक बार कह ही चुका हूँ और, बेशक, फिरसे कह दूँ कि देशी लोगोंके शासनके यूरोपीयोंके हाथोंसे भारतीयोंके हाथोंमें चले जानेकी सम्भावना जरा भी नहीं है। इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकारको डराना भी है। यहाँ रहनेवाले लोग — सरकार-सहित — खूब जानते हैं कि ऐसी बात कभी होनेवाली नहीं है। संसदमें अपने हितोंकी हिफाजत करनेके लिए भारतीय दो या तीन गोरे लोगोंको भी चुनें, यह वे नहीं चाहते; ताकि सरकार बिना किसी विघ्न-बाधाके भारतीयोंके सर्वनाशकी तैयारी कर सके।

मैंने सर डब्ल्यू० वेडरबर्न[1] और वहाँके कुछ अन्य सज्जनोंको प्रार्थनापत्रकी नकलें भेजी हैं। कुछ नकलें भारतीय पत्रोंको भी भेज दी हैं।

कृपया मेरे पत्रोंके लम्बे होनेको क्षमा करें। आप मुझे काम करनेके तरीकेपर सुझाव देंगे तो मैं बहुत ही आभारी हूँगा।

आपका विश्वस्त सेवक,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० २२५२) की फोटो-नकलसे।

४८. पत्र : श्रीमती ए० एम० लुईसको

पो० आ० बॉ० २५३
डर्बन
४ अगस्त, १८९४

प्रिय श्रीमती लुईस[2],

आपके २७ जूनके कृपापूर्ण पत्रके लिए धन्यवाद। आपको पत्र[3] लिखनेके बाद मुझे प्रिटोरियाके एक डाक्टरसे मिलनेका अवसर मिला। एक अन्य सज्जन तथा उन्होंने ही थियोसॉफी सम्बन्धी बातोंमें रुचि दिखाई। मैंने उन्हें 'परफैक्ट वे' पढ़नेके लिए दी। उन्हें पुस्तक इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने मुझसे एक प्रति मँगा देनेके लिए कहा। मैंने उन्हें अपनी ही पुस्तक भेंट कर दी। इसलिए यदि आप कृपापूर्वक 'परफैक्ट वे'की एक प्रति मुझे भेज देंगी तो मैं आभारी हूँगा। मैं अगली बार आपको पैसे भेज दूँगा। इस बार इतना कर सकनेके लिए समय नहीं है।

१. सर विलियम वेडरबर्न; बॉम्बे सिविल सर्विसके एक सदस्यके रूपमें २५ वर्ष भारतमें रहे। निवृत्त होनेपर १९०० तक संसदसदस्य रहे। १८९३ में कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके सभापति और १९१० में कांग्रेसके अध्यक्ष रहे।

२. एसोटेरिक क्रिश्चियन यूनियनके अध्यक्ष एडवर्ड मेटलैंडकी मित्र और परफैक्ट वे आदि पुस्तकोंकी लेखिका; ऐना किंग्सफोर्डकी प्रशंसक। वे भी एसोटेरिक यूनियनकी संस्थापिका थी। ऐसा लगता है कि उनसे गांधीजीकी मित्रता इंग्लैंडमें हुई थी जब वे वहाँ वकालतकी शिक्षा प्राप्त करने गये थे।

३. उपलब्ध नहीं है।

मैं वकालतके लिए डर्बनमें रहने लगा हूँ। श्री ओल्डफील्डसे आपको इस विषयमें और जानकारी मिलेगी।

यहाँ रहते हुए मेरा इरादा है कि जहाँतक हो सके, थियोसॉफीका प्रचार करूँ। (मेरे मनमें थियोसॉफी और एसॉटरिक ईसाई धर्ममें बहुत अन्तर नहीं है) इसलिए मैंने वेजिटेरियन सोसाइटीके अध्यक्ष और श्रीमती बेसेंटको[1] पत्र[2] लिखे हैं।

मेरा प्रस्ताव है कि ई० सी० यू०[3] कुछ पुस्तकें बेचनेके लिए मेरे पास भेज दे। मैं ये पुस्तकें लागतमें डाक खर्च और ५ प्रतिशत कमीशन जोड़कर बेच दूँगा। इस कमीशनके पैसे मेरे पास रहेंगे। जहाँतक दामका सवाल है, मुझे अपने विवेकानुसार दाम तय करनेकी स्वतन्त्रता दी जाये। मैं हर तीन महीनेके बाद बिक्रीके पैसे भेज दिया करूँगा। इनके विज्ञापनका[4] खर्च मैं दूँगा। एक वर्षके बाद न बिकनेपर मैं पुस्तकें अपने खर्चसे वापस भेज दूँगा। इन पुस्तकोंको ठीकसे रखने और बिक्रीके पूरे पैसे भेजनेके लिए मैं व्यक्तिगत रूपसे जिम्मेदार हूँ। 'परफैक्ट वे' की ५ प्रतियाँ, 'क्लोद्ड विद द सन' की ५ प्रतियाँ, 'न्यू गॉस्पेल ऑफ इन्टरप्रिटेशन' की १० प्रतियाँ तथा दूसरी पुस्तकें मुझे भेजी जा सकती हैं। यदि पर्याप्त दिलचस्पी दिखाई गई तो मैं विज्ञापनका खर्च भी दाममें लगा दूँगा। निर्देश पत्रमें प्रत्येक पुस्तकका दाम जरूर सूचित कर दिया जाये।

यदि यूनियनको यह पत्र पूरा या उसका कोई अंश पढ़कर सुनाना आवश्यक हो तो आप पढ़कर सुना सकती हैं। मुझे आशा है कि आप यूनियनको या उसके अधिकारियोंको उपर्युक्त माँगसे सहमत होनेके लिए राजी कर लेंगी।

यदि 'सोल्स' की बातके बारेमें आपका विचार खास अच्छा नहीं है, तो इस विशिष्ट साहित्यमें उसे क्या स्थान दिया जाये? यदि लेखकने अपने निजी निरीक्षणके बाद जो-कुछ लिखा है वह बिलकुल सच है तो पुस्तकको महत्त्वहीन भी नहीं मान सकते; किन्तु यदि उसमें आकर्षक असत्य कथन द्वारा लोगोंका सत्यमें विश्वास करानेका प्रयास किया गया है तो फिर यह पुस्तक अत्यधिक निन्दाके योग्य ही ठहरती है। क्योंकि हम झूठी बातोंके जरिए सत्य नहीं समझ सकते। बेशक यह सब लिखते हुए मेरे मनमें लेखिकाके प्रति तनिक भी अनादर भाव नहीं है; उन्हें तो मैं बिलकुल नहीं जानता। हो सकता है कि वे पूर्णतया ईमानदार और सच्ची महिला हों। मैं तो फिर यही कहूँगा कि 'सोल्स' को समझनेके लिए लेखिकाके चरित्रसे परिचित होना एकदम जरूरी है।

आपने जो आवेदनपत्र भेजा था उसके लिए मैं बहुतसे हस्ताक्षर प्राप्त कर सका हूँ। लेकिन मुझे भय है कि नेटालके हस्ताक्षरोंका कुछ प्रभाव नहीं होगा। एक बहुत महत्वपूर्ण, फिर भी हानिरहित और श्रेष्ठ आन्दोलनको पर्याप्त समर्थनका न मिलना

१. डा० एनी बेसेंट।

२. उपलब्ध नहीं हैं।

३. एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन।

४. गांधीजी द्वारा दिये गये विज्ञापनके लिए देखिए "पुस्तकें बिकाऊ हैं", २६-११-१८९४ से पूर्व।

क्या इस युगकी नैतिकताकी दुःखपूर्ण दशा सूचित नहीं करता है? कभी-कभी इन बातोंका विचार करते हुए मैं कर्म-फलके प्रति पूर्णतया निराश हो जाता हूँ। किन्तु 'भगवद्गीता' का एक श्लोक[1] मुझे पूर्ण निराशा और उसके फलस्वरूप होनेवाली निष्क्रियतासे बचा लेता है। श्लोकमें कर्मफलका मोह त्याग देनेका उपदेश है।

आदर सहित,

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

पता बदल गया है। कृपया इसे देख लें।

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकलसे।
सौजन्य : ई० एस० हार्ट

४९. नेटाल भारतीय कांग्रेसका संविधान

(स्थापित : २२ अगस्त, १८९४)

अध्यक्ष

श्री अब्दुल्ला हाजी आदम

उपाध्यक्ष

सर्वश्री हाजी मुहम्मद हाजी दादा, अब्दुल कादिर, हाजी दादा हाजी हबीब, मूसा हाजी आदम, पी० दावजी मुहम्मद, पीरन मुहम्मद, मुरुगेश पिल्ले, रामस्वामी नायडू, हुसेन मीरन, आदमजी मियाँ खाँ, के० आर० नायना, आमद भायात (पीटर-मैरित्सबर्ग), मूसा हाजी कासिम, मुहम्मद कासिम जीवा, पारसी रुस्तमजी, दाउद मुहम्मद, हुसेन कासिम, आमद टिल्ली, दोरास्वामी पिल्ले, उमर हाजी अबा, उस्मानखाँ रहमतखाँ, रंगस्वामी पदयाची, हाजी मुहम्मद (पीटरमैरित्सबर्ग), कमरुद्दीन (पीटर-मैरित्सबर्ग)।

अवैतनिक मन्त्री

श्री मो० क० गांधी

कांग्रेस कमेटी

अध्यक्ष : श्री अब्दुल्ला हाजी आदम। अवैतनिक मन्त्री : श्री मो० क० गांधी। कमेटीके सदस्य : सब उपाध्यक्ष और सर्वश्री एम० डी० जोशी, नरसीराम, माणेकजी,

१. अभिप्राय कदाचित् "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" से है।

दावजी मामूजी मुतालह, मुतुकृष्ण बिमेसर, गुलाम हुसेन रांदेरी, शमसुद्दीन जी० ए० बासा, सरबजीत, एल० गैब्रिएल, जेम्स क्रिस्टोफर, सूबू नायडू, जॉन गैब्रिएल, सुलेमान वोराजी, काममजी आमूजी, आर० कुन्दास्वामी नायडू, एम० ई० कथराडा, इब्राहीम एम० खत्री, शेख फरीद, वरिन्द इस्माइल रनजीत, पेरूमल नायडू, पारसी धनजी शा, रायप्पन, जूमुब अब्दुल करीम, अर्जुनसिंह, इस्माइल कादिर, ईसप कड़वा, मुहम्मद ईसाक, मुहम्मद हाफिजजी, एम० फारुख, सुलेमान दावजी, वी० नारायण पाथेर, लछमन पाण्डे, उस्मान अहमद, मुहम्मद तैयब।

सदस्यताकी शर्तें

कोई भी व्यक्ति, जो कांग्रेसके कामको पसन्द करता है, सदस्यताके फार्मपर दस्तखत करके और चन्दा अदा करके कांग्रेसका सदस्य बन सकता है। कमसे-कम मासिक चन्दा ५ शिलिंग और सालाना चन्दा ३ पौंड है।

नेटाल भारतीय कांग्रेसके ध्येय[1]

(१) उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच मेलजोल और एकता बढ़ाना।

(२) समाचारपत्रोंमें लिखकर, पुस्तिकाएँ प्रकाशित करके और भाषण देकर भारतकी जनताको जानकारी देना।

(३) भारतीयोंको — खास तौरसे उपनिवेशमें पैदा हुए भारतीयोंको — भारतीय इतिहास और भारत-सम्बन्धी साहित्य पढ़नेकी जरूरत समझाना।

(४) भारतीयोंकी हालतोंकी जाँच करना और उनकी कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए उचित कार्रवाइयाँ करना।

(५) गिरमिटिया भारतीयोंकी हालतोंकी जाँच करना और उनके कष्टोंको दूर करनेके लिए उचित कदम उठाना।

(६) गरीबों और असहायोंको सभी युक्तिसंगत तरीकोंसे मदद करना।

(७) ऐसे सब काम करना, जिनसे भारतीयोंकी नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक हालतोंमें सुधार हो।

कमेटी द्वारा रद्द अथवा संशोधित और कांग्रेस द्वारा अनुमोदित नियम

(१) बैठकोंके लिए एक भवन किरायेपर ले लेनेका अधिकार दिया जाता है। उसका किराया १० पौंड मासिकसे अधिक न हो।

(२) कमेटीकी बैठक महीनेमें कमसे-कम एक बार अवश्य होगी।

(३) कांग्रेसका आम अधिवेशन वर्षमें कमसे-कम एक बार अवश्य होगा। यह जरूरी नहीं है कि वह डर्बनमें ही किया जाये।

१. देखिए "पत्र: नेटाल एडवर्टाइजरको", २३-९-१८९५ और "प्रार्थनापत्र: जो० चेम्बरलेनको", २२-५-१८९६।

(४) अवैतनिक मन्त्री उपनिवेशके दूसरे भागके सदस्योंको आमंत्रित करेंगे।

(५) कमेटीको नियम बनाने और पास करनेका अधिकार होगा। उसे अन्य साधारण काम-काज करनेके दूसरे सब अधिकार भी होंगे।

(६) कमेटीको उचित वेतनपर एक वैतनिक मन्त्री नियुक्त करनेका अधिकार होगा।

(७) अगर अवैतनिक मन्त्री उचित समझें तो वे कांग्रेसके हितमें दिलचस्पी रखनेवाले किसी यूरोपीयको उपाध्यक्ष बननेके लिए आमंत्रित करेंगे।

(८) अगर अवैतनिक मन्त्री उचित समझें तो वे कांग्रेसके कोषसे कांग्रेसके पुस्तकालयके लिए अखबार मँगा सकते हैं।

(९) अवैतनिक मन्त्री हिसाबकी किताबमें यह दर्ज करेंगे कि कोई चेक उन्होंने अपने दस्तखतोंसे दी है या किसी दूसरेके साथ संयुक्त हस्ताक्षरोंसे।

कमेटी द्वारा स्वीकृत नियम

(१) अध्यक्ष प्रत्येक बैठकका सभापति होगा। उसकी अनुपस्थितिमें कमेटीका प्रथम सदस्य और यदि वह भी अनुपस्थित हो तो दूसरा सदस्य सभापति होगा। इसी क्रमसे सभापतित्व किया जायेगा।

(२) बैठकके आरंभमें अवैतनिक मन्त्री पिछली बैठककी कार्रवाई पढ़ेगा और इसके बाद सभापति उसपर हस्ताक्षर करेगा।

(३) यदि मन्त्रीको कोई प्रस्ताव पेश करनेकी सूचना पहलेसे न दी जाये तो कमेटीको उसे अमान्य करनेका अधिकार होगा।

(४) कमेटी या कांग्रेस जो द्रव्य पाये या खर्च करे उसका विस्तृत ब्योरा अवैतनिक मन्त्री पढ़कर सुनायेगा।

(५) अगर कोई प्रस्ताव कमेटीके किसी सदस्य द्वारा पेश न किया जाये और कोई दूसरा सदस्य उसका समर्थन न करे तो कमेटीको उसपर विचार न करनेका अधिकार होगा।

(६) सभापति और मन्त्री पदेन कमेटीके सदस्य माने जायेंगे। दोनों पक्षोंमें बराबर मत होनेपर सभापतिको निर्णायक मत देनेका अधिकार होगा।

(७) बैठकमें भाषण करते समय प्रत्येक सदस्य सभापतिकी ओर अभिमुख रहेगा।

(८) प्रत्येक सदस्य कमेटीकी बैठकमें किसी दूसरे सदस्यको संबोधित करनेमें 'श्री' शब्दका उपयोग करेगा।

(९) कमेटीकी बैठककी कार्रवाई इन भाषाओंमें से किसी एक या सबमें की जायेगी — गुजराती, तमिल, हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी।

(१०) अगर जरूरत समझी जाये तो सभापति किसी एक सदस्यको दूसरे सदस्यके भाषणका अनुवाद कर देनेका आदेश देगा।

(११) प्रत्येक प्रस्ताव या सुझाव बहुमतसे स्वीकार किया जायेगा।

(१२) कांग्रेसके पास कमसे-कम ५० पौंडकी रकम होनेपर अवैतनिक मन्त्री उसे अपनी पसन्दगीके किसी बैंकमें नेटाल भारतीय कांग्रेसके नाम जमा कर देगा।

(१३) अवैतनिक मन्त्री यदि द्रव्य बैंकमें जमा न करे तो उसके लिए उसे जिम्मेदार समझा जायेगा।

(१४) ५ पौंडसे अधिक अनियमित खर्च करनेके लिए कमेटीसे पहले अधिकार प्राप्त करना जरूरी होगा। अगर अध्यक्ष या मन्त्री कमेटीकी पूर्व-स्वीकृतिके बिना उपर्युक्त रकमसे अधिक खर्च करे तो यह माना जायेगा कि उसने अपनी जिम्मेदारी पर ऐसा किया है। अवैतनिक मन्त्री ५ पौंड तककी चेकपर स्वयं हस्ताक्षर करेगा। इससे अधिक रकमकी चेकपर इन सदस्योंमें से किसीके साथ संयुक्त हस्ताक्षर करना आवश्यक होगा — सर्वश्री अब्दुल्ला हाजी आदम, मूसा हाजी कासिम, अब्दुल कादर, कोलंदावेलु पिल्ले, पी० दावजी मुहम्मद, हुसेन कासिम।

(१५) बैठकका काम चलानेके लिए कोरम १० सदस्योंका होगा। सभापति और मन्त्री इसके अतिरिक्त होंगे।

(१६) बैठककी सूचना सदस्योंको कमसे-कम दो दिन पहले दी जायेगी। यह सूचना अवैतनिक मन्त्री देंगे।

(१७) अगर डाक अथवा किसी संदेशवाहक द्वारा लिखित सूचना दी जाये तो माना जायेगा कि सोलहवाँ नियम पूरा हो गया।

(१८) यदि कमेटीका कोई सदस्य लगातार ६ बैठकोंमें अनुपस्थित रहे तो उसका नाम सदस्य-सूचीसे खारिज किया जा सकेगा (कमेटी उसे अपने इस इरादे-की सूचना पहले दे देगी)। बैठकमें अनुपस्थित रहनेवाले सदस्यको अगली बैठकमें अपनी अनुपस्थितिका कारण बताना होगा।

(१९) जो सदस्य बिना कोई उचित कारण बताये लगातार तीन महीनेतक अपना चन्दा नहीं देगा, उसकी सदस्यता समाप्त हो जायेगी।

(२०) कमेटीकी किसी भी बैठकमें धूम्रपानकी इजाजत नहीं होगी।

(२१) अगर दो सदस्य एक साथ भाषण देनेके लिए खड़े हो जायें, तो पहले कौन बोले इसका निर्णय सभापति करेगा।

(२२) अगर सदस्य काफी संख्यामें उपस्थित हों तो कमेटीकी बैठक निश्चित समयपर शुरू हो जायेगी। परन्तु यदि निश्चित समयपर या उसके आधे घंटे बाद तक उपस्थित सदस्योंकी संख्या काफी न हो तो बैठक बिना कोई कार्रवाई किये खत्म हो जायेगी।

(२३) नेटाल इंडियन एसोसिएशनको सभा-भवन और पुस्तकालयका उपयोग मुफ्त करनेकी इजाजत होगी। इसके बदलेमें वह लेखन-कार्य आदि जैसी उचित सेवाएँ प्रदान करेगा।

(२४) कांग्रेसके सब सदस्योंको कांग्रेस पुस्तकालयका उपयोग करनेका अधि-कार होगा।

(२५) कमेटीके सदस्य एक घेरेमें और दर्शकगण उसके बाहर बैठेंगे। दर्शक बैठककी कार्रवाइयोंमें कोई हिस्सा नहीं ले सकते। अगर वे शोर-गुल आदि करके कोई गड़बड़ी मचायें तो उन्हें सभाभवनसे निकाला जा सकता है।

(२६) कमेटीको भविष्यमें इन नियमोंमें संशोधन करनेका अधिकार होगा।[1]

अंग्रेजी (एस० एन० १४१) की फोटो-नकलसे।

५०. पत्र : 'टाइम्स ऑफ नेटाल' को[2]

डर्बन
२५ अक्तूबर, १८९४

सेवामें
सम्पादक
'टाइम्स ऑफ नेटाल'

महोदय,

आपकी अनुमतिसे मैं आपके २२ तारीखके अंकमें प्रकाशित "रामीसामी" शीर्षक अग्रलेखपर कुछ राय व्यक्त करनेकी धृष्टता करता हूँ।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' के जिस लेखकका आपने उल्लेख किया है, उसकी सफाई देनेका मेरा इरादा नहीं है। परन्तु क्या आपका अग्रलेख ही उसकी सफाई नहीं दे देता? क्या "रामीसामी" ही गरीब भारतीयोंके प्रति ख्वाहमख्वाह तिरस्कार उगलने-वाला शीर्षक नहीं है? क्या साराका-सारा लेख ही उनका व्यर्थ अपमान करनेवाला नहीं है? आपने कृपा करके स्वीकार किया है कि "भारतमें सुसंस्कृत लोग मौजूद हैं," आदि। और फिर भी, अगर आपके वशकी बात हो तो, आप उनको गोरोंके बराबर राजनीतिक अधिकार नहीं देंगे। क्या इस प्रकार आप जलेपर नमक छिड़कने जैसा काम नहीं कर रहे हैं? अगर आप मानते होते कि भारतीय सुसंस्कृत नहीं हैं, बल्कि बर्बर, ज्ञानहीन प्राणी हैं; और अगर आपने उनको इसी आधारपर राज-नीतिक समानता देनेसे इनकार किया होता, तो आपके मन्तव्य कुछ सकारण होते। परन्तु, आप तो निरपराध लोगोंके अपमानसे प्राप्त आनन्दका अधिकसे-अधिक उपभोग करनेके लिए यह बताना जरूरी समझते हैं कि आप उन्हें बुद्धिमान मानते हैं, और फिर भी उन्हें पैरोंके नीचे कुचले रहेंगे।

फिर, आपने कहा है कि उपनिवेशवासी भारतीय वैसे ही नहीं हैं, जैसे भारतमें रहनेवाले भारतीय। परन्तु महोदय, आप आसानीसे यह भूल जाते हैं कि वे उसी जातिके लोगोंके भाई-बन्द और वंशज हैं, जिसको आपने बुद्धिमानीका श्रेय प्रदान किया

१. गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें लिखी हुई संविधानकी एक अंग्रेजी और एक गुजराती प्रति भी उपलब्ध है।
२. इसे "रामीसामी" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित किया गया था।

है। इसलिए उनके अन्दर वह शक्ति छिपी हुई है जिससे, मौका पानेपर, वे अपने अधिक भाग्यवान भारतवासी भाइयोंके समान योग्य बन सकते हैं। यह ठीक वैसा ही है, जैसे कि लन्दनके ईस्ट एंडमें रहनेवाले, अज्ञान और दुर्गुणोंके गहरे गर्तमें डूबे हुए व्यक्तिमें भी स्वतन्त्र इंग्लैंडका प्रधानमन्त्री बन जानेकी शक्ति छिपी होती है।

लॉर्ड रिपनको जो मताधिकार सम्बन्धी प्रार्थनापत्र भेजा गया है उसका आपने ऐसा अर्थ लगाया है, जिसको उसके द्वारा व्यक्त करनेका कभी इरादा ही नहीं था। भारतीयोंको इसका कोई अफसोस नहीं है कि योग्य वतनी लोगोंको मताधिकार दिया गया है। उन्हें तो अफसोस तब होता जब इसका उलटा होता। किन्तु उनका यह दावा अवश्य है कि उन्हें भी, अगर वे योग्य हों तो, वह अधिकार मिलना चाहिए। आप तो बुद्धिमत्ता इसमें समझते हैं कि वह मूल्यवान विशेषाधिकार, भारतीय या वतनी, किसीको भी किसी अवस्थामें न दिया जाये, क्योंकि उनकी चमड़ी काली है। आप केवल बाहरी रूप-रंग देखते हैं। यदि चमड़ी गोरी है, तो आपको कोई परवाह नहीं कि उसके अन्दर विष छिपा हुआ है या अमृत। आपको तो पब्लिकनके[1] सच्चे प्रायश्चित्तसे फैरिसीकी[2] — क्योंकि वह फैरिसी है — कोरी मौखिक प्रार्थना ज्यादा स्वीकार्य है। और मेरा खयाल है कि इसीको आप ईसाइयत कहेंगे। आप भले ही कहें, मगर यह ईसाकी ईसाइयत तो नहीं है।

अपनी इस तरहकी रायके बावजूद आप, जो उपनिवेशके एक सम्मानित पत्रके सम्पादक हैं, 'टाइम्स ऑफ इंडिया' पर झूठका आरोप लगाते हैं। अभियोग लगा देना एक बात है, मगर उसे साबित करना दूसरी ही बात है।

आपने अपने लेखके अन्तमें यह कहा है कि नागरिक जिस किसी भी अधिकार-की कामना कर सकते हैं, वे सब "रामीसामी" को दिये जा सकते हैं; केवल "राज-नीतिक सत्ता" नहीं दी जा सकती। क्या आपके अग्रलेखका शीर्षक और उसकी विचारधारा, दोनों उपर्युक्त मतके अनुकूल हैं? या सुसंगत रहना ईसाइयत और अंग्रेजियतके अनुकूल नहीं है? प्रभुने कहा था — "छोटे बच्चोंको मेरे पास आने दो!" इस उपनिवेशमें रहनेवाले उनके शिष्य (?) तो "छोटे" के बाद "गोरे" जोड़कर इसमें सुधार कर लेना चाहेंगे। मुझे मालूम हुआ है कि डर्बनके मेयरने बच्चोंका जो मेला आयोजित किया था, उसके जुलूसमें एक भी अश्वेत बच्चा दिखलाई नहीं पड़ता था। क्या यह अश्वेत माता-पितासे पैदा होनेके पापका दण्ड था? क्या यह उस विशेष प्रकारकी नागरिकताकी तैयारी है, जो आप अपने द्वेषभाजन "रामीसामी" को देनेवाले हैं?

अगर प्रभु ईसा हमारे बीच आयें तो क्या वे हममें से बहुतोंके बारेमें यह नहीं कहेंगे कि "मैं तुम्हें पहचानता नहीं?" महोदय, क्या मैं एक सुझाव देनेकी धृष्टता कर सकता हूँ? क्या आप 'नया करार' (न्यू टेस्टामेंट) फिरसे पढ़ेंगे? क्या आप उपनिवेशके अश्वेत निवासियोंके बारेमें अपने लेखपर विचार करेंगे? और

१ व २. फैरिसी — यहूदी पुरोहित — जो धर्मके बाहरी दिखावेमें विश्वास करता था। परन्तु पब्लिकन पापी होता हुआ भी अपने पापोंके लिए दिलसे पश्चात्ताप करता था।

तब क्या आप कह सकेंगे कि वह लेख 'बाइबिल' की शिक्षा या श्रेष्ठतम ब्रिटिश परम्पराओंके अनुकूल है? अगर आपने ईसा और ब्रिटिश परम्पराओं दोनोंसे बिलकुल नाता ही तोड़ लिया है तब तो मुझे कुछ कहना नहीं है; मैं खुशीसे अपनी लिखी हुई सब बातोंको वापस लेता हूँ। सिर्फ इतना कह दूँ कि अगर कभी आपके बहुतसे अनुयायी हो गये तो वह ब्रिटेन और भारतके लिए अफसोसका दिन होगा।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

टाइम्स ऑफ नेटाल, २६-१०-१८९४

५१. पुस्तकें बिकाऊ हैं[1]

डर्बन

[२६ नवम्बर, १८९४ से पूर्व]

स्वर्गीया श्रीमती ऐना किंग्जफ़र्ड और श्री एडवर्ड मेटलैंड[2] कृत निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित मूल्यपर बिकाऊ हैं। ये दक्षिण आफ्रिकामें पहली ही बार लाई गई हैं:

	शि० पें०
परफैक्ट वे	७-६
क्लोद्‌ड विद द सन	७-६
स्टोरी ऑफ द न्यू गॉस्पेल ऑफ इंटरप्रिटेशन	२-६[3]
न्यू गॉस्पेल ऑफ इंटरप्रिटेशन	१-०
बाइबिल्स ओन एकाउंट ऑफ इटसेल्फ	१-०

इन पुस्तकोंके सम्बन्धमें कुछ सम्मतियाँ निम्नलिखित हैं:

"'परफैक्ट वे' भाष्यात्मक और समन्वयात्मक। . . .

पारमार्थिक विषयोंका कोई विद्यार्थी इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।"

'लाइट', लंदन।

"दैवी अनुग्रहके साधनके रूपमें शताब्दीकी तमाम पुस्तकोंमें अद्वितीय।"

—'ऑकल्ट वर्ल्ड'।

१. यह एक विज्ञापनके रूपमें प्रकाशित हुआ था; देखिए "पत्र: श्रीमती ए० एम० लुईसको", ४-८-१८९४।

२. एडवर्ड मेटलैंड (१८२४-९७): लेखक और अन्नाहारके समर्थक; १८९१ में एसोटेरिक क्रिश्चियन यूनियनकी स्थापना की।

३. बादके एक विज्ञापनमें इसकी कीमत ३ शि० ६ पें० दी गई थी; देखिये "पुस्तकें बिकाऊ हैं", २-२-१८९५।

इस विषयकी कुछ पुस्तिकाएँ बिना मूल्य मेरे दफ्तरसे मिल सकती हैं।

मो० क० गांधी
एजेंट, एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन और
लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, २८-११-१८९४

५२. पत्र : 'नेटाल मर्क्युरी' को

डर्बन
२६ नवम्बर, १८९४

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल मर्क्युरी'

महोदय,

आपके विज्ञापन-स्तम्भोंमें एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियनके बारेमें जो विज्ञापन छपा है, उसकी ओर अगर आप अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेकी इजाजत दें तो मैं बहुत आभारी होऊँगा। विज्ञापित पुस्तकोंमें जिस विचारधाराका प्रतिपादन किया गया है, वह किसी भी तरह देखनेपर कोई नई धारा नहीं है, बल्कि पुरानी विचारधाराका ही आधुनिक मानसको स्वीकार होने योग्य रूपान्तर है। इसके अतिरिक्त वह धर्मकी एक विचारधारा है, जो विश्वात्मैक्यकी शिक्षा देती है और सनातन विवि-धतापर आधारित है, केवल परिस्थिति विशेष अथवा ऐतिहासिक तथ्योंपर आधारित नहीं है। उस विचारधारामें ईसाको बड़ा बतानेके लिए मोहम्मद या बुद्धको गाली नहीं दी जाती। उलटे वह ईसाई धर्मके साथ अन्य धर्मोंका समन्वय करती है। ग्रंथ-कारोंके मतसे, ईसाई धर्म उसी सनातन सत्यको प्रस्तुत करनेकी (अनेक प्रणालियोंमें से) एक प्रणाली है। 'पुराने करार' (ओल्ड टेस्टामेंट) की अनेक उलझनोंका इन ग्रंथोंमें बिलकुल पूर्ण और सन्तोषजनक हल मिल जाता है।

अगर आपके पाठकोंमें कोई उच्चतर जीवनकी साधनाका आकांक्षी है और उसे वर्तमान भौतिकवाद तथा उसकी तमाम चमक-दमक अपनी आत्माकी भूख मिटानेके लिए अपर्याप्त मालूम हुई है; और अगर वह देखता है कि आधुनिक सभ्यताकी चमक-दमकके पीछे जो-कुछ छिपा है, उसमें से बहुत-कुछ मनुष्यकी अपेक्षाके प्रतिकूल पड़ता है; और, इस सबसे ऊपर अगर आधुनिक भोग-विलासके साधन और लगातार होनेवाली सरगर्म प्रवृत्तियाँ उसे कोई राहत नहीं पहुँचातीं; तो ऐसे व्यक्तिसे मैं ये पुस्तकें पढ़नेकी सिफारिश करता हूँ। और मैं आश्वासन देता हूँ कि इन्हें पढ़कर,

इनके विचारोंको पूरी तरह अंगीकार न करनेपर भी, वह एक ज्यादा नेक आदमी बन जायेगा।

अगर कोई इस विषयमें मेरे साथ बातचीत करना चाहे तो मुझे इतमीनानके साथ विचार-विनिमय करनेमें बहुत प्रसन्नता होगी। ऐसे जो लोग मेरे साथ व्यक्तिगत रूपसे पत्र-व्यवहार करेंगे उन्हें मैं धन्यवाद ही दूंगा। यह कहना जरूरी नहीं है कि पुस्तकोंकी बिक्री आर्थिक लाभके लिए नहीं की जा रही है। यदि यूनियनके अध्यक्ष श्री मेटलैंड या यूनियनके स्थानिक एजेंटके लिए ये पुस्तकें मुफ्त बाँट देना सम्भव होता, तो वे खुशीके साथ यही करते। कई लोगोंको ये लागत-मूल्यसे भी कमपर दी गई हैं। कुछ लोगोंको मुफ्त भी दे दी गई हैं। बिना मूल्यके व्यवस्थित रूपसे वितरण करना सम्भव नहीं हो सका। कुछ लोगोंको ये पढ़नेके लिए खुशीसे दे दी जायेंगी।

मैं ग्रंथकर्त्ताओंके नाम स्वर्गीय एबे कॉन्स्टैंटके पत्रसे एक उद्धरणके साथ इसे समाप्त करूँगा — "मानव-जाति हमेशासे और हर जगह खुदसे ये तीन परम महत्त्व-पूर्ण प्रश्न पूछती आई है: हम कहाँसे आये हैं, हम क्या हैं, हम कहाँ जायेंगे? अब 'परफैक्ट वे' में इन प्रश्नोंका विस्तृत उत्तर प्राप्त हो गया है, जो पूर्ण, सन्तोषजनक और सान्त्वनादायक है।"

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी ३-१२-१८९४

५३. खुली चिट्ठी

डर्बन

[१९ दिसम्बर, १८९४ से पूर्व][1]

सेवामें
माननीय सदस्यगण
विधान-परिषद व विधानसभा

महोदय,

अगर आपको गुमनाम खत लिखना सम्भव होता, तो मुझे उससे ज्यादा खुशी और किसी बातसे न होती। मगर मुझे इस पत्रमें जो बातें कहनी हैं वे इतनी महत्त्व-पूर्ण और गम्भीर हैं कि मेरा अपना नाम प्रकट न करना बिलकुल कायरताका काम

१. यह चिट्ठी १९ दिसम्बर, १८९४ को नेटालके यूरोपीयोंको भेजी गई थी। देखिए अगला शीर्षक

माना जायेगा। फिर भी, मैं आपको नम्रतापूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि मैं न तो स्वार्थ-भावसे लिख रहा हूँ, न अपना महत्त्व बढ़ाने या नाम फैलानेके लिए ही। मेरा एकमात्र उद्देश्य इस उपनिवेशके यूरोपीयों तथा भारतीयोंके बीच अधिक मेलजोल पैदा करना और भारतकी सेवा करना है, जो जन्म-संयोगके कारण मेरा स्वदेश कहलाता है।

यह एक ही तरीकेसे किया जा सकता है। वह तरीका है, लोकमतका प्रतिनिधित्व और निर्माण करनेवाले व्यक्तियोंसे अपील करनेका।

अतः यदि यूरोपीय और भारतीय निरन्तर झगड़ते रहें तो दोष आपके मत्थे होगा। अगर दोनों बिना संघर्षके, शान्तिसे, मिलजुलकर चलें और रहें, तो सारा श्रेय भी आपको ही मिलेगा।

सबूत देनेकी जरूरत नहीं कि सारी दुनियाकी सामान्य जनता बहुत बड़ी हदतक अपने नेताओंके मतोंका अनुसरण करती है। ग्लैड्स्टनका मत आधे इंग्लैंडका मत है, और सेलिसबरीका मत शेष आधेका। जहाज-घाटके मजदूरोंकी हड़तालके समय उनके निमित्त विचार करनेवाला बर्न्स[1] था। पार्नेलने लगभग पूरे आयरलैंडके निमित्त विचार किया। धर्मग्रंथ — मेरा मतलब सारी दुनियाके धर्मग्रंथोंसे है — यही कहते हैं। एडविन आर्नोल्डके 'सॉंग सेलेस्टियल'[2] में कहा गया है — "बुद्धिमान लोग जो पसन्द करते हैं, दूसरे लोग उसे ग्रहण कर लेते हैं। श्रेष्ठ लोग जैसा आचरण करते हैं, साधारण लोग उसका अनुसरण करते हैं।"

इसलिए इस पत्रके लिए क्षमा-याचनाकी जरूरत नहीं है। इसे धृष्टतापूर्ण नहीं माना जायेगा।

क्योंकि, ऐसी अपील और किससे करना ज्यादा ठीक हो सकता है? या इस पर आपकी अपेक्षा और किसे ज्यादा गम्भीरताके साथ विचार करना चाहिए?

इंग्लैंडमें आन्दोलन चलानेसे तो उपनिवेशके दोनों समाजोंमें संघर्षकी वृद्धि हो सकती है और उससे मिलनेवाली राहत निकम्मी होगी। वह राहत ज्यादासे-ज्यादा सिर्फ अस्थायी हो सकती है। जबतक उपनिवेशके यूरोपीयोंको भारतीयोंके साथ ज्यादा अच्छा व्यवहार करनेके लिए राजी नहीं किया जा सकता तबतक, ब्रिटिश सरकारकी सतर्कताके बावजूद, उत्तरदायी शासनके अधीन भारतीयोंका जीवन बड़ा कष्टमय है।

विस्तारमें न जाकर, मैं समग्र रूपमें भारतीय प्रश्नकी ही चर्चा करूँगा।

मैं मानता हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उपनिवेशमें भारतीयोंको तुच्छ प्राणी माना जाता है, और उनका जो विरोध किया जाता है उस सबका सीधा कारण उनके प्रति यह द्वेष ही है।

अगर इस द्वेषका आधार सिर्फ उनका रंग है तो बेशक, उनको छुटकारेकी कोई आशा नहीं है। ऐसी हालतमें तो वे जितनी जल्दी उपनिवेश छोड़ दें उतना ही

१. जॉन बर्न्स (१८५८-१९४३); ब्रिटिश संसदमें प्रमुख मजदूर प्रतिनिधि (१८९७-१९१८)। सन् १८८९ की लन्दनकी गोदी-हड़तालके दिनोंमें मेहनतकशोंके एक मित्रके रूपमें सामने आये थे।

२. भगवद्गीताका अंग्रेजी पद्यानुवाद।

अच्छा है क्योंकि वे कुछ भी करें, उनकी चमड़ीका रंग तो गोरा होनेवाला नहीं है। परन्तु, अगर उसका आधार कुछ और है — उनके सामान्य चरित्र और उनकी दक्षता के सम्बन्धमें अज्ञान है — तब तो वे उपनिवेशके यूरोपीयोंके हाथों अपने उचित अधिकार प्राप्त करनेकी आशा जरूर कर सकते हैं।

मेरा निवेदन है कि ४०,००० भारतीयोंसे उपनिवेश क्या काम ले यह उपनिवेशियोंके लिए एक बहुत ही विचारणीय प्रश्न है। और जिन लोगोंके हाथमें शासनकी बागडोर है, जिन्हें जनताने कानून बनानेके अधिकार सौंप रखे हैं, उनके लिए तो यह विशेष रूपसे विचारणीय है। इन ४०,००० भारतीयोंको उपनिवेशसे निकाल देना तो, निस्सन्देह, एक असम्भव कार्य है। इनमें से अधिकतर अपने परिवारोंके साथ यहाँ बस गये हैं। एक ब्रिटिश उपनिवेशमें जो कानून बनाये जा सकते हैं उनमें से कोई भी कानून बनानेवालोंको यह अधिकार नहीं दे सकता कि वे उन लोगोंको उपनिवेशसे खदेड़ दें। हाँ, शायद यह हो सकता है कि आगे आनेवाले प्रवासियोंको रोकनेका कोई उपाय निकाला जा सके। परन्तु, इसके अलावा भी, मेरा सुझाया हुआ प्रश्न आपका ध्यान खींचनेके लिए और आपसे इस पत्रको निष्पक्ष भावसे पढ़नेका अनुरोध करनेके लिए काफी गम्भीर है।

यह तो आपको ही कहना है कि आप उन्हें सभ्यताके पैमानेसे नीचे गिरायेंगे। या ऊपर उठायेंगे। क्या आप उन्हें उस स्तरसे नीचे गिरा देंगे जिसपर अपनी वंश परम्पराके कारण उन्हें होना चाहिए? आप उनके दिलोंको अपनेसे दूर कर देंगे या अपने ज्यादा नजदीक खींचेंगे? सारांश यह कि आप उनपर अत्याचारपूर्वक शासन करेंगे या सहानुभूतिके साथ?

आप लोकमतको ऐसा बना सकते हैं कि द्वेष दिन-दिन बढ़ता जाये। और अगर आप चाहें तो उसे ऐसा भी बना सकते हैं कि द्वेष ठंडा पड़ने लगे।

अब मैं प्रश्नकी चर्चा निम्नलिखित शीर्षकोंमें करूँगा:

(१) क्या भारतीयोंका नागरिक बनकर उपनिवेशमें रहना वांछनीय है?

(२) भारतीयोंकी हस्ती क्या है?

(३) क्या उनके साथ इस समय किया जानेवाला व्यवहार सर्वोत्तम ब्रिटिश परम्पराओंके, या न्याय तथा नीतिके सिद्धान्तों, या ईसाइयतके सिद्धान्तोंके अनुरूप है?

(४) शुद्ध भौतिक और स्वार्थमय दृष्टिसे, क्या उनके एकाएक या धीरे-धीरे उपनिवेशसे चले जानेसे उपनिवेशको ठोस, चिरस्थायी लाभ होगा?

१

पहले प्रश्नपर विचार करते हुए, सर्व प्रथम मैं भारतीय मजदूरोंकी चर्चा करूँगा। उनमें से अधिकतर गिरमिटिया बनकर उपनिवेशमें आये हैं।

जो लोग जानकार समझे जाते हैं, जान पड़ता है, उन्होंने मंजूर कर लिया है कि गिरमिटिया भारतीय उपनिवेशकी भलाईके लिए बिलकुल अपरिहार्य हैं। छोटे-छोटे काम करनेवाले नौकरोंके रूपमें हो या हजूरियोंके, रेलवे कर्मचारियोंके रूपमें

हों या बागवानोंके — उनका आना उपनिवेशके लिए लाभदायी ही हुआ है। देशी लोग जो काम नहीं कर सकते, या नहीं करते, उसे गिरमिटिया भारतीय खुशीसे और अच्छी तरह करते हैं। यह तो स्पष्ट है कि इस उपनिवेशको दक्षिण आफ्रिकाका उद्यान-उपनिवेश बनानेमें भारतीयोंकी सहायता काम आई है। उन्हें चीनीकी जायदादोंसे हटा लिया जाये तो उपनिवेशके इस मुख्य उद्योगकी हालत क्या होगी? और न यही कहा जा सकता है कि निकट भविष्यमें देशी लोग वह काम सँभाल सकेंगे। दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य इसका एक उदाहरण है। देशी लोगोंके सम्बन्धमें अपनी तथाकथित जोरदार नीतिके बावजूद, वह धूलभरा रेगिस्तान-सा ही बना हुआ है, हालाँकि जमीन बहुत उपजाऊ है। वहाँ सस्ते मजदूर कैसे प्राप्त किये जायें, यह समस्या हर दिन ज्यादा गम्भीर होती जा रही है। उल्लेखनीय सिर्फ एक नेलमेपियस जायदादका बाग है। और क्या उसकी भी सफलताका सारा श्रेय भारतीयोंको ही नहीं है? चुनाव सम्बन्धी एक भाषणमें कहा गया है:

> . . .और आखिर, एकमात्र उपाय समझकर, भारतीयोंको लाकर बसानेकी योजना शुरू की गई। विधानमण्डलने बहुत बुद्धिमत्तापूर्वक इस सर्वथा महत्त्वपूर्ण योजनाका समर्थन किया और इसमें मदद की। जब इस योजनाको शुरू किया गया था उस समय उपनिवेशकी प्रगति और करीब-करीब उसका अस्तित्व ही डाँवाडोल था। और अब इस प्रवासी-योजनाका परिणाम क्या हुआ? वित्तकी दृष्टिसे, उपनिवेशके खजानेसे प्रति वर्ष दस हजार पौंड दिये गये हैं। और परिणाम क्या है? केवल यह कि उद्योगोंके विकास अथवा इस उपनिवेशके हितोंको किसी भी दृष्टिसे बढ़ानेके लिए स्वीकार की गई किसी भी रकमका इतना आर्थिक प्रतिफल नहीं मिला, जितना कि कुलियोंको मजदूरोंके तौरपर यहाँ लानेसे दिखलाई पड़ा है। . . . मेरा विश्वास है कि उपनिवेशके उद्योगोंके लिए जैसे मजदूरोंकी जरूरत है, ये वैसे ही हैं। इनको लाया न गया होता, तो डर्बनके यूरोपीयोंकी आबादी आजकी अपेक्षा आधीसे भी कम होती, और आज जहाँ बीस मजदूर काम करते हैं वहाँ सिर्फ पाँचकी ही जरूरत रहती। वहाँकी जमीन-जायदादका मूल्य आजकी अपेक्षा तीन-चार सौ फी-सदी कम होता। उपनिवेशके अन्य स्थानों और नगरोंमें भी जमीनका मूल्य इसी अनुपातमें कम होता और तटवर्ती भूमि आज जिस भाव पर बिकती है, वह भाव कभी भी सम्भव न होता।

ये सज्जन और कोई नहीं, श्री गारलैंड हैं। बेचारे भारतीयोंको वे लोग भी तिरस्कारके साथ "कुली" कहकर पुकारते हैं, जिन्हें ज्यादा अच्छी जानकारी होनी चाहिए। इन "कुलियों" से प्राप्त होनेवाली ऐसी अमूल्य सहायताके बावजूद उक्त माननीय सज्जन भारतीयोंकी उपनिवेशमें बसनेकी वृत्तिपर कृतघ्नताके साथ खेद प्रकट करते जाते हैं।

'नेटाल मर्क्युरी' ने अपने ११ अगस्त, १८९४ के अंकमें 'न्यू रिव्यू' से श्री जॉन्स्टनका एक लेख उद्धृत किया है। उसका निम्नलिखित अंश मैं यहाँ देता हूँ:

> लोग समस्याका हल पीली जातिको लानेमें देखते हैं। यह जाति गर्म आबहवा बरदाश्त करनेमें समर्थ है और उन कामोंको करनेमें काफी कुशल है, जिन्हें समशीतोष्ण जलवायुमें यूरोपीय करते हैं। यह पीली जाति पूर्वी आफ्रिकामें अत्यन्त सफल रही है। ये हिन्दुस्तानके निवासी हैं। भिन्न-भिन्न किस्मों और भिन्न-भिन्न धर्मोंवाली इस जातिने, ब्रिटिश या पुर्तगाली शासनमें, पूर्व आफ्रिकी तटवर्ती प्रदेशके व्यापारको शुरू किया और बढ़ाया है। मध्य आफ्रिकामें इन सीधे-सादे, परोपकारी, कमखर्च, मेहनती, कार्य-कुशल और कुशाग्र बुद्धिके भारतीयोंको लानेसे हमें उस क्षेत्रमें अपनी सशस्त्र सेनाओंके लिए ठोस बल मिल जायेगा। हमें तार-बाबू, छोटे-छोटे दूकानदार, कुशल कारीगर, बावरची, छोटे-छोटे कर्मचारी, मुहर्रिर और रेलवे कर्मचारी भी मिलेंगे, जो गर्म आबहवावाले आफ्रिकाके सभ्य शासनके लिए जरूरी हैं। भारतीयोंको काले और गोरे दोनों ही चाहते हैं, इसलिए वे इन दोनों परस्पर-विरोधी जातियोंके बीच सम्बन्ध जोड़नेवाली कड़ीका काम देंगे।

जहाँतक भारतीय व्यापारियोंका सम्बन्ध है, जिन्हें गलत नाम — "अरब" — से पुकारा जाता है, यह अच्छा होगा कि उनके उपनिवेशमें आनेपर जो आपत्तियाँ की जाती हैं, उनपर विचार किया जाये।

समाचारपत्रोंसे खासकर ६-७-१८९४ के 'नेटाल मर्क्युरी' और १५-९-१८९३ के 'नेटाल एडवर्टाइजर' से — आपत्तियाँ ये मालूम होती हैं कि वे सफल व्यापारी हैं और रहन-सहन बहुत सादा होनेके कारण, छोटे-छोटे रोजगारोंमें यूरोपीय व्यापारियोंसे बाजी मार ले जाते हैं। इक्के-दुक्के व्यक्तिगत उदाहरणोंको लेकर जो यह साधारण निष्कर्ष निकाला जाता है कि भारतीय रोजगारमें बेईमानी करते हैं, उसे मैं विचार करनेके अयोग्य मानकर रद करता हूँ। और दिवालियापनके खास उदाहरणके बारेमें तो, उनकी सफाई देनेका कोई खयाल न रखते हुए, मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि "जो निष्पाप हो वह पहला पत्थर फेंके।" कृपा कर दिवाला-अदालतके कागज-पत्रोंकी जाँच कीजिए।

अब उनकी सफल होड़-सम्बन्धी गम्भीर आपत्तिको लें। मैं मानता हूँ कि यह सच है। परन्तु, क्या यह कोई कारण है, जिससे उन्हें उपनिवेशसे खदेड़ दिया जाये? क्या सभ्य लोगोंका समाज ऐसा तरीका पसन्द करेगा? कौन-सा कारण है, जिससे वे इतने सफल प्रतिद्वन्द्वी बने? सरसरी तौरपर देखनेवाला भी जान सकता है कि कारण उनकी आदतें हैं, जो बहुत सीधी-सादी हैं, किन्तु बर्बर नहीं, जैसा कि 'नेटाल एडवर्टाइजर' ने बताया है। मेरे खयालसे उनकी सफलताका सबसे मुख्य कारण शराब और उसके साथकी बुराइयोंके प्रति उनका पूर्ण आत्मनिग्रह है। इससे एकदम भारी परिमाणमें धनकी बचत हो जाती है। इसके अलावा, उनकी रुचियाँ सादी हैं, और

वे अपेक्षाकृत कम मुनाफेसे सन्तुष्ट हो जाते हैं, क्योंकि वे व्यर्थ बहुत बड़ा ठाठ-बाट नहीं जमाते। सारांश यह कि वे अपने ही खरे पसीनेकी रोटी कमाते हैं। ये सब बातें उनके उपनिवेशमें रहनेपर आपत्तिके रूपमें कैसे पेश की जा सकती हैं, यह समझना कठिन है। बेशक, वे जुआ नहीं खेलते, साधारणतः तम्बाकू नहीं पीते, छोटी-छोटी असुविधाओंको बरदाश्त कर सकते हैं और रोजाना आठ घंटेसे ज्यादा काम कर सकते हैं। अगर उनसे अपेक्षा की जाये और क्या यह वांछनीय होगा कि वे इन सद्-गुणोंको तिलांजलि दे दें और जिन दुर्गुणोंसे ग्रस्त होकर पश्चिमी राष्ट्र कराह रहे हैं, उन्हें पकड़ लें, ताकि उन्हें बिना छेड़छाड़के उपनिवेशमें रहने दिया जाये?

भारतीय व्यापारियों और मजदूरों, दोनोंके बारेमें जो सामान्य आपत्ति की जाती है उसपर भी विचार कर लेना बहुत अच्छा होगा। आपत्ति है, उनकी अस्वच्छ आदतोंके सम्बन्धमें। मुझे भारी मर्मवेदनाके साथ यह आरोप आंशिक रूपमें मंजूर करना ही होगा। उनकी अस्वच्छ आदतोंके खिलाफ जो-कुछ कहा जाता है बेशक, उसके बहुत-से अंशका आधार तो सिर्फ ईर्ष्या-द्वेष है, फिर भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इस विषयमें वे पूरे-पूरे वैसे नहीं हैं, जैसे होनेकी उनसे अपेक्षा की जा सकती है। परन्तु उन्हें उपनिवेशसे निकाल देनेका कारण तो इसे कदापि नहीं बनाया जा सकता। इस विषयमें उनसे सुधारकी आशा ही न की जा सकती हो, सो बात नहीं है। मेरा निवेदन है कि सफाई-कानूनके दृढ़, तथापि न्याय और दयापूर्ण प्रयोगसे इस बुराईका सफल मुकाबला और मूलोच्छेद भी हो सकता है। फिर यह बुराई इतनी बड़ी भी तो नहीं है कि उसके खिलाफ किसी कठोर कार्रवाईकी जरूरत हो। आप देखेंगे कि अगर गिरमिटिया भारतीयोंको छोड़ दिया जाये तो शेष भारतीयोंकी व्यक्तिगत आदतें गन्दी नहीं हैं। गिरमिटिया तो इतने गरीब हैं कि वे अपनी व्यक्तिगत सफाईपर ध्यान दे ही नहीं सकते। मैं अपने अनुभवसे यह कहनेकी इजाजत चाहता हूँ कि व्यापारी सम्प्रदायके लोग हफ्तेमें कमसे-कम एक बार स्नान करनेके लिए, और जब-जब नमाज पढ़ें, कुहनियों तक हाथ, मुँह और पैर धोनेके लिए धर्मके द्वारा बाध्य हैं। उनके लिए दिनमें चार बार[1] नमाज पढ़नेका नियम है और ऐसे बहुत कम लोग हैं जो दिनमें कमसे-कम दो बार नमाज नहीं पढ़ते।

मुझे आशा है, यह तो फौरन मान लिया जायेगा कि जो दुर्गुण किसी दलको पूरे समाजके लिए खतरनाक बना देते हैं उनसे वे गैर-मामूली तौरपर बरी हैं। संवैधानिक सत्ताको शिरोधार्य करनेमें वे किसीसे पीछे नहीं हैं। राजनीतिक दृष्टिसे वे कदापि खतरनाक नहीं हैं। और कलकत्ता तथा मद्रासमें अरकाटियोंने बिना जाने कभी-कभी जिन गुण्डोंको छाँट लिया है उन्हें छोड़कर बाकी लोग भयानक अपराधोंसे मुक्त हैं। खेद है कि मैं फौजदारी अदालतोंके आँकड़ोंकी तुलना करनेमें समर्थ नहीं हूँ, इसलिए इस विषयमें अधिक नहीं कह सकता। परन्तु मैं 'नेटाल आलमैनेक'से यह उद्धरण देनेकी इजाजत चाहता हूँ: "भारतीय आबादीके बारेमें कहना ही होगा कि समग्रतः वह व्यवस्थाप्रिय और कानूनका पालन करनेवाली है।"

१. पाँच बार।

मैं निवेदन करता हूँ, उपर्युक्त तथ्य बताते हैं कि भारतीय मजदूर न सिर्फ वांछनीय हैं, बल्कि वे उपनिवेशके उपयोगी नागरिक हैं। उपनिवेशके कल्याणके लिए उनका होना बिलकुल अनिवार्य है। और जहाँतक व्यापारियोंका सम्बन्ध है, उनमें तो कोई ऐसी बात है ही नहीं जो उन्हें उपनिवेशके लिए अवांछनीय बना दे।

इस विषयको समाप्त करनेके पहले मैं यह भी कह देना चाहूँगा कि भारतीय व्यापारी, जहाँतक वे अपनी जोरदार प्रतिद्वन्द्विताके द्वारा जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके भाव मंदे बनाये रखते हैं, यूरोपीय समाजके गरीब तबकेके लिए वे सचमुच वरदान-स्वरूप हैं। और भारतीय मजदूरोंके लिए तो वे अपरिहार्य ही हैं। क्योंकि उनकी जरूरतोंकी वे जानकारी रखते हैं और उनकी पूर्ति करते हैं और उनके साथ वे यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक अपनेपनके साथ व्यवहार कर सकते हैं।

२

हमारी छानबीनका दूसरा शीर्षक, अर्थात् "भारतीयोंकी हस्ती क्या है", सबसे महत्त्वपूर्ण है। मेरा निवेदन है कि आप इसपर विशेष गौर करें। अगर इससे भारत और भारतीयोंके बारेमें अध्ययनको प्रेरणा ही मिल जाये, तो मेरा इसे लिखने-का उद्देश्य पूर्ण हो जायेगा; क्योंकि मेरा पूरा विश्वास है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके मार्गमें जो कठिनाइयाँ पेश की जाती हैं उनमें से आधी, या तीन-चौथाई भी, भारत-सम्बन्धी जानकारीके अभावसे पैदा हुई हैं।

मैं यह पत्र जिनके नाम लिख रहा हूँ उनका मुझे खूब ध्यान है। मुझसे ज्यादा ध्यान किसे हो सकता है? कुछ माननीय सदस्य मेरे पत्रके इस अंशको अपमान-जनक समझकर नाराज हो सकते हैं। ऐसे सज्जनोंसे मैं अत्यन्त आदरपूर्वक निवेदन करता हूँ कि "मुझे मालूम है, आपको भारतके बारेमें बहुत कुछ ज्ञान है। परन्तु क्या यह एक कटु सत्य नहीं है कि उपनिवेशको आपके ज्ञानका लाभ नहीं मिला? भारतीयोंको तो निश्चय ही नहीं मिला। हाँ, यह बात अलग है कि आपने जो ज्ञान प्राप्त किया है वह उसी क्षेत्रमें काम किये हुए दूसरे लोगों द्वारा प्राप्त ज्ञानसे भिन्न हो, या उसके विपरीत हो। फिर, यद्यपि यह विनम्र पत्र प्रत्यक्षतः आपके नाम लिखा जा रहा है, तो भी मान्यता यह है कि यह अनेक लोगोंके पास, सचमुच तो उन सबके पास पहुँचेगा, जिनकी वर्तमान निवासियोंसे आबाद इस उपनिवेशके भविष्य में दिलचस्पी है।"

मताधिकार विधेयकके दूसरे वाचनके समय अपने भाषणमें प्रधानमन्त्रीने जो विपरीत अभिप्राय व्यक्त किया है, उसके बावजूद, उनके प्रति अधिकतम आदर रखते हुए भी, मैं बतानेकी धृष्टता करता हूँ कि अंग्रेज और भारतीय एक ही इण्डो-आर्यन मूलवंशकी संतान हैं। इसके समर्थनमें बहुत-से ग्रंथ-लेखकोंके उदाहरण तो नहीं दे सकूँगा, क्योंकि दुर्भाग्यवश मेरे पास संदर्भ-ग्रंथ बहुत कम हैं; फिर भी सर विलियम विल्सन हंटरकी पुस्तक 'इंडियन एम्पायर' से मैं निम्न लिखित अंश उद्धृत करता हूँ :

> यह उदात्ततर जाति (अर्थात्, प्राचीन आर्य) आर्य या इण्डो-जर्मनिक मूल-वंशकी थी, जिससे कि ब्राह्मण, राजपूत और अंग्रेज एक समान पैदा हुए हैं। इतिहास इसका प्राचीनतम निवासस्थान मध्य एशिया बताता है। उस सामान्य शिविर-स्थलसे कुछ शाखाएँ पूर्वकी ओर चलीं, कुछ पश्चिमकी ओर। एक पश्चिमी शाखाने पर्शियाका साम्राज्य स्थापित किया, दूसरी एथेन्स और लेसीडीमोनका साम्राज्य स्थापित करके हेलेनिक राष्ट्रके रूपमें परिणत हो गई। तीसरी इटली पहुँची और उसने "सात पहाड़ोंका नगर" बसाया, जो शाही रोमके नामसे समृद्ध हुआ। उसी जातिके एक सुदूर उपनिवेशने स्पेनकी प्रागैतिहासिक चाँदीकी खानोंका खनन किया। और जब हम प्राचीन इंग्लैंडकी पहली झलक पाते हैं तो हमें एक आर्य उपनिवेशके दर्शन होते हैं, और हम उसके निवासियोंको नरकुलकी डोंगियोंपर मछलियाँ पकड़ते और कॉर्नवालकी टीनकी खानोंका खनन करते हुए देखते हैं।
>
> यूनानियों और रोमनोंके, अंग्रेज और हिन्दुओंके पूर्वज एक साथ एशियामें रहते थे, एक ही भाषा बोलते थे और एक-से ही देवताओंकी ही पूजा करते थे।
>
> यूरोप और भारतके प्राचीन धर्मोंका मूल एक-जैसा ही था।

इस प्रकार आप देखेंगे कि इस विद्वान इतिहासज्ञने बिना किसी शंका अथवा किन्तु-परन्तुके उपर्युक्त मन्तव्य व्यक्त किया है। उसने तमाम प्रामाणिक ग्रंथोंका अध्ययन किया ही होगा। इसलिए अगर मैं कोई भूल भी कर रहा हूँ तो वह भूल अधिक अच्छे व्यक्तियोंने भी की है। और यह विश्वास, गलत हो या सही, उन लोगोंकी प्रवृत्तियोंके आधारका काम करता है, जो दोनों जातियोंके हृदयोंको जोड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं, जो कानूनी और बाह्य रूपमें तो एक झंडेके नीचे परस्पर एकसूत्रसे बँधी हुई हैं ही।

उपनिवेशमें सामान्यतः यह विश्वास फैला हुआ दीखता है कि अगर भारतीय बेहतर लोग हों भी तो वे बर्बरों या आफ्रिकाके वतनी लोगोंसे बेहतर नहीं हैं। बच्चों तकको ऐसा ही विश्वास करना सिखाया जाता है। परिणाम यह है कि भारतीयोंको निरे काफिरों[1] के दर्जेकी ओर नीचे ढकेला जा रहा है।

मेरा पक्का विश्वास है कि उपनिवेशका ईसाई विधानमण्डल जानबूझकर ऐसी स्थिति पैदा होने और कायम रहने नहीं देगा। इसी भरोसेपर मैं निम्नलिखित विपुल उद्धरण दे रहा हूँ, जिनसे एकदम मालूम हो जायेगा कि हम औद्योगिक, बौद्धिक, राजनैतिक आदि जीवनके विभिन्न अंगोंमें उनके ऐंग्लो-सैक्सन भाइयोंसे — अगर मैं इस शब्दका उपयोग कर सकूँ तो — किसी कदर कम नहीं हैं।

जहाँतक भारतीय दर्शन और धर्मका सम्बन्ध है, 'इंडियन एम्पायर' के विद्वान लेखकने सार-रूपमें यह कहा है:

१. एक दक्षिणी आफ्रिकी जाति; मोटे तौरपर दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासियोंके लिए भी प्रयुक्त।

व्यावहारिक धर्मके जो हल ब्राह्मणोंने निकाले हैं, वे हैं — तप, दान, यज्ञ और ईश्वरका ध्यान। परन्तु आध्यात्मिक जीवनके व्यावहारिक प्रश्नोंके अलावा धर्मकी बौद्धिक समस्याएँ भी हैं, जैसे कि दुनियाकी बुराईके साथ ईश्वर की अच्छाईका समन्वय और जीवनमें सुख और दुःखका विषम विभाजन। ब्राह्मणोंके दर्शनने इन समस्याओंके, और अधिकतर दूसरी भारी समस्याओंके हल खोज निकाले हैं, जब कि यूनानी और रोमन ऋषियों, मध्यकालीन आचार्यों और *आधुनिक वैज्ञानिकोंको* (टाइपमें फर्क मैंने किया है) इन्होंने उलझनमें डाले रखा है। उन्होंने सृष्टिकी, व्यवस्था और विकासकी विभिन्न कल्पनाओंमेंसे प्रत्येकका विस्तार किया है, और *आधुनिक शरीर-शास्त्रियोंके विचार नई सूझबूझके साथ हमें कपिलके विकास-सिद्धान्तकी ही ओर वापस ले जानेवाले हैं।* (यहाँ भी टाइपका फर्क मेरा ही है)। १८७७में भारतकी विविध भाषाओंमें १,१९२ धार्मिक ग्रंथ और, उनके अलावा, ५६ ग्रंथ तत्त्वज्ञानपर प्रकाशित हुए। १८८२ में धार्मिक ग्रंथोंकी कुल संख्या १,५४५ और मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र तत्त्वज्ञानके ग्रंथोंकी १५३ तक बढ़ गई।

भारतीय दर्शनके बारेमें मैक्समूलरने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं। (यह अंश और कुछ दूसरे अंश भी मताधिकार-प्रार्थनापत्रमें अंशतः या पूर्णतः उद्धृत किये गये हैं):

अगर मुझसे पूछा जाये कि किस देशके मानवी-मस्तिष्कने अपने कुछ सर्वोत्तम गुणोंका अधिकसे-अधिक पूर्ण विकास किया है, जीवनकी बड़ीसे-बड़ी समस्याओंपर अत्यन्त गंभीरताके साथ विचार किया है और उनके ऐसे हल प्राप्त किये हैं, जो प्लेटो और काण्टके दर्शनशास्त्रोंका अध्ययन किये हुए लोगोंके लिए भली-भाँति विचार करने योग्य हैं, तो मैं कहूँगा कि वह देश भारत है। और अगर मुझे अपने-आपसे पूछना हो कि यूरोपके हम लोग, जो लगभग यूनानी, रोमन और एक सेमिटिक जाति — यहूदी — के विचारों मात्रपर ही पालित-पोषित हुए हैं, वह संशोधन कहाँके साहित्यसे प्राप्त कर सकते हैं, जो हमारे जीवनको अधिक परिपक्व, अधिक व्यापक, अधिक सार्वलौकिक, दरअसल अधिक सच्चे रूपमें मानवीय — न केवल इस जन्मके लिए बल्कि तमाम जन्मोंके लिए रूपान्तरित व शाश्वत जीवन — बनानेके लिए नितान्त आवश्यक है, तो मैं पुनः भारतकी ही ओर संकेत करूँगा।

जर्मन दार्शनिक शोपेनहारने उपनिषदोंमें निहित भारतीय दर्शनकी भव्यतापर यह साक्षी दी है:

एक-एक वाक्यसे मौलिक और उदात्त विचार उदित होते हैं और सम्पूर्ण वस्तु एक उच्च, पवित्र तथा उत्कट भावनासे व्याप्त है। हम भारतीय वातावरण और सगोत्र आत्माओंके मौलिक विचारोंमें लीन हो जाते हैं।

सारे संसारमें मूल तत्त्वोंको छोड़कर और किसी वस्तुका अध्ययन इतना लाभदायक और इतना उन्नयनकारी नहीं है, जितना कि उपनिषदोंका। उससे मुझे जीवनमें समाधान मिला है और मृत्युमें भी समाधान मिलेगा।

विज्ञानके विषयमें सर विलियमका कथन है:

पश्चिमके वैयाकरण जब भाषा-विज्ञानका विवेचन आकस्मिक समानताओंके आधारपर कर रहे थे, उस समय भारतमें उसे मूलभूत सिद्धान्तोंका रूप मिल चुका था। आधुनिक भाषा-विज्ञानका आरम्भ तो तब हुआ जब यूरोपीय विद्वानोंने संस्कृतका अध्ययन किया। . . . पाणिनीके व्याकरणका स्थान संसारके व्याकरणोंमें सर्वोच्च है। . . . सम्पूर्ण संस्कृत भाषाको उसके द्वारा एक तर्कसंगत और व्यवस्थित रूपमें प्रस्तुत कर दिया गया है। और वह मानवीय आविष्कार और उद्योगकी एक शानदार सिद्धिके रूपमें देदीप्यमान है।

सर एच० एस० मेन अपने रीड-व्याख्यानमें, जो 'विलेज कम्युनिटीज'के नवीनतम संस्करणमें प्रकाशित हुआ है, विज्ञानके उसी अंगपर प्रकाश डालते हुए कहते हैं:

भारतने दुनियाको तुलनात्मक भाषाशास्त्र दिया है और ऐसी पौराणिक कथा-सामग्री भी प्रदान की है, जिससे पुराणोंका तुलनात्मक अध्ययन सम्भव हुआ है। वह अभी एक और नया शास्त्र दे सकता है। उसका महत्त्व भाषाशास्त्र और लोक कथा-शास्त्रसे कम न होगा। मुझे उसको तुलनात्मक न्यायशास्त्र कहनेमें संकोच है, क्योंकि यदि कभी उसका आविर्भाव हुआ तो उसका क्षेत्र कानूनके क्षेत्रसे बहुत विस्तृत होगा। कारण यह है कि भारतमें एक ऐसी आर्य भाषा मौजूद है (या, अधिक सही कहा जाये तो, मौजूद रही है), जो उसी सर्वसामान्य मातृभाषासे निकली अन्य सब भाषाओंसे पुरानी है। उसके पास प्राकृतिक पदार्थोंके ऐसे अनेकानेक नाम भी हैं, जो काल्पनिक व्यक्तियोंके अर्थमें उतने रूढ़ नहीं हुए, जितने कि अन्य देशोंमें। इसके अलावा, असंख्य आर्य संस्थाएँ, आर्य प्रथाएँ, आर्य कानून, आर्य विचार और आर्य विश्वास उसके पास सुरक्षित हैं। उसकी सीमाके बाहर इनमेंसे भी जो वस्तुएँ अब भी अवशिष्ट रह गई हैं, उन सबकी अपेक्षा ये विकास तथा वृद्धिकी अधिक प्राचीन अवस्थामें हैं।

भारतीय खगोलशास्त्रके बारेमें वही इतिहासकार कहता है:

ब्राह्मणोंके खगोलशास्त्रकी कभी बहुत अधिक सराहना हुई है, कभी अनुचित तिरस्कार हुआ है। . . . कुछ बातोंमें ब्राह्मण यूनानी खगोलविज्ञानसे आगे बढ़ गये थे। उनकी कीर्ति सारे पश्चिममें फैली और उसे 'क्रॉनिकन पास्केल'[1]में

१. ईसाइयोंकी पौराणिक पुस्तक, जिसमें आदमसे लेकर सन् ६२९ ई० तककी सृष्टि-कथाका काल-क्रम दिया गया है। माना जाता है कि यह सातवीं शताब्दीमें लिखी गई थी।

स्थान मिला। आठवीं और नौवीं शताब्दीमें अरब लोग उनके शिष्य बन गये।

मैं फिर सर विलियमका ही उद्धरण दे रहा हूँ:

बीजगणित और अंकगणितमें ब्राह्मणोंने पश्चिमी सहायताके बिना स्वतन्त्र रूपसे ऊँचे दर्जेकी दक्षता प्राप्त कर ली थी। दशमलव प्रणालीके आविष्कारका उनका हमपर ऋण है। . . . अरबोंने ये अंक हिन्दुओंसे प्राप्त करके यूरोपमें फैलाये। . . . गणित और यंत्रशास्त्र पर भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित ग्रंथोंकी संख्या १८७७में ८९ और १८८२में १६६ थी।

वही प्रतिष्ठित इतिहासकार आगे लिखता है:

ब्राह्मणोंने चिकित्साशास्त्रका विकास भी स्वतन्त्र रूपसे किया। . . . पाणिनिके व्याकरणमें विशेष रोगोंके जो नाम पाये जाते हैं, उनसे मालूम होता है कि चिकित्साशास्त्रका विकास उनके काल (सन् ३५० ईसापूर्व)के पहले हो चुका था। . . . अरब चिकित्सा-प्रणालीकी आधारशिला संस्कृत ग्रंथोंके अनुवादोंपर रखी गई। . . . यूरोपीय चिकित्साशास्त्रका आधार १७वीं शताब्दी तक अरब चिकित्साशास्त्र ही था। १८७७ में भारतीय भाषाओंमें चिकित्साशास्त्रपर १३० और १८८२ में २१२ ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। प्राकृतिक विज्ञानपर जो ८७ ग्रंथ प्रकाशित हुए वे इनमें शामिल नहीं हैं।

युद्ध-कलापर लिखते हुए लेखक कहता है:

ब्राह्मण लोग केवल चिकित्साशास्त्रको ही नहीं, बल्कि युद्धकला, संगीत और शिल्पकलाको भी अपने देव-प्रेरित ज्ञानके पूरक अंग समझते थे। . . . संस्कृत महाकाव्योंसे सिद्ध होता है कि युद्धकलाको ईसाके जन्मके पूर्व ही एक सर्वमान्य विज्ञानकी अवस्था प्राप्त हो चुकी थी। बादमें लिखे गये अग्निपुराणमें लम्बे-लम्बे परिच्छेदोंमें उसका व्यवस्थित वर्णन किया गया है।

भारतीय संगीतकलाका प्रभाव अधिक व्यापक हुए बिना रह नहीं सकता था। . . . यह स्वरलिपि ब्राह्मणोंके पाससे ईरानियोंके द्वारा अरब पहुँची। वहाँसे गाइडो ड आरेजोने ११वीं शताब्दीके आरम्भमें इसे यूरोपीय संगीतमें दाखिल किया।

स्थापत्य-कलापर वही लेखक कहता है:

भारतके बौद्ध लोग पत्थरकी भवन-निर्माण कलामें अत्यन्त कुशल थे। उनके विहार और मठ बाईस शताब्दियोंके कला-इतिहासका परिचय देनेवाले हैं, जो पर्वतशिलाओंको काट कर बनाये गये प्राचीनतम गुहा-मन्दिरोंसे लेकर ईंट-चूनेके बने, झिलमलाते हुए और अलंकारोंसे अति-सज्जित आधुनिकतम जैन मंदिरों तकमें प्रदर्शित हैं। असम्भव नहीं कि यूरोपके गिरजाघरोंकी मीनारें

बौद्ध स्तूपोंसे ही विकसित हुई हों। . . . हिन्दू कलाकारोंने ऐसे स्मारक बना रखे हैं, जो इस युगमें बरबस हमें कौतुहल और आश्चर्यमें डाल देते हैं।

दक्षिण भारतके अनेक हिन्दू मन्दिरोंके साथ-साथ, ग्वालियरके राजमहलकी हिन्दू स्थापत्य-कला, भारतीय मुसलमानोंकी मसजिदें और दिल्ली तथा आगराके मकबरे अपने सौन्दर्य, रूपरेखा और प्रचुर अलंकार-सम्पत्तिमें कोई सानी नहीं रखते।

हमारे युगकी ब्रिटिश अलंकार-कलाने भारतीय आकृतियों और नमूनोंसे बहुत-कुछ ग्रहण किया है। सच्चे स्वदेशी नमूनोंकी भारतीय कलाकृतियोंका अब भी यूरोपकी अन्तर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनियोंमें अधिकतम सम्मान होता है।

एंड्रू कार्नेगीने अपनी पुस्तक 'राउंड द वर्ल्ड' में आगराके ताजमहलके बारेमें लिखा है:

कुछ विषय इतने पवित्र होते हैं कि उनका विश्लेषण तो क्या, वर्णन भी नहीं किया जा सकता। और अब मैं मनुष्यकी बनाई एक ऐसी इमारतको जानता हूँ, जिसकी उत्कृष्टता या अलौकिकताने उसे ऐसे ही पवित्र क्षेत्रमें उठा दिया है। ताजमहल हलके सफेद संगमर्मरका बना है, जिससे वह दर्शकको ठिठुरा नहीं देता, जैसा कि शुद्ध ठंडा सफेद संगमर्मर करता है। वह स्त्रीके समान गरमाहट देनेवाला और हमदर्द है। . . . एक महान समालोचकने ताज-महलकी बनावटको रमणी-सुलभ कहा है। वह कहता है कि उसमें पौरुषेय कुछ नहीं है, उसकी सम्पूर्ण रम्यता स्त्री-सुलभ है। इस मखलिया संगमर्मरमें संगमूसाकी बारीक काली रेखाओंकी पच्चीकारी की गई है और, कहा जाता है, इस प्रकार अरबी लिपिमें पूरीकी पूरी कुरानशरीफ अंकित कर दी गई है। . . . चाहे पहाड़ी झरनोंके बीच हो, चाहे छिटकी हुई चांदनीमें और चाहे जंगलमें सैर करते हुए हो, जबतक मैं मरता नहीं, जहाँ-कहीं भी और जब-कभी भी ऐसा मनोभाव पैदा होगा, जिसमें वह सब जो अत्यन्त पवित्र, अत्यन्त उन्नत, और अत्यन्त शुद्ध है, शान्त-स्थिर मानसपर अपना तेज बरसानेके लिए लौटता है, तब और तहाँ ही मेरी संचित निधियोंमें उस सुकुमार मोहिनी —— उस ताजमहलकी स्मृति पाई जायेगी।

और ऐसा भी नहीं कि भारतमें उसके-अपने संहित या असंहित कानून न हों। मनुकी व्यवस्थाएँ सदासे अपने न्याय और अचूकताके लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी न्याय भावनासे सर एच० एस० मेन इतने प्रभावित दिखलाई पड़ते हैं कि उन्होंने उनका बखान इन शब्दोंमें किया है —— "ब्राह्मणोंके मतानुसार, कानून क्या होना चाहिए, इसका आदर्श चित्र।" श्री पिनकॉटने १८९१ में 'नेशनल रिव्यू' में लेख लिखकर उनको "मनुके दार्शनिक उपदेश" कहा है।

नाट्यकलामें भी भारतीय ओछे नहीं रहे। सबसे प्रसिद्ध भारतीय नाटक 'शकुन्तला'का वर्णन गेटेने इस प्रकार किया है:

यदि तुम नववसन्तके पुष्प और प्रौढ़
मधुऋतुकी फलराशि
और हृदयको आनन्दविभोर, मुग्ध, पुष्ट
और तुष्ट करनेवाले सर्वस्वको
देखना चाहते हो;
यदि तुम स्वर्गलोक और भूलोकको
एक ही नाममें एकीभूत हुआ
देखना चाहते हो;
तो हे शकुन्तला! मैं तेरा नाम लेता हूँ——
और इतना ही कहना सब-कुछ कह देना है।

भारतीय चारित्र्य और सामाजिक जीवनके बारेमें तो राशि-के-राशि प्रमाण मौजूद हैं। मैं संक्षिप्त उद्धरण-मात्र दे सकता हूँ।

हंटरकी 'इंडियन एम्पायर' नामक पुस्तकसे ही मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ:

> यूनानका प्रतिनिधित्व करनेवाले यात्री (मैगेस्थनीज) ने भारतमें गुलामीके अभाव और स्त्रियोंके सतीत्व तथा पुरुषोंकी वीरताको कौतूहलमय सराहनाके साथ देखा। पराक्रममें वे एशियाके शेष सब लोगोंसे बढ़े-चढ़े थे; उन्हें अपने दरवाजोंमें ताले लगानेकी जरूरत नहीं होती थी; सबसे ऊपर, कोई भारतीय कभी झूठ बोलता नहीं पाया जाता था। वे संयमी और उद्योगी थे, अच्छे किसान और कुशल कारीगर थे। वे शायद ही कभी मुकदमेबाजीका आश्रय लेते थे और अपने स्थानके मुखियोंके अधीन शान्तिपूर्वक जीवन-निर्वाह करते थे। राजाके शासनका चित्र मैगेस्थनीजने लगभग वैसा ही खींचा है, जैसा कि मनुने बताया है——परिषदों और सैनिकोंकी वंशपरम्परागत जातियोंके साथ। . . . ग्राम-व्यवस्थाका वर्णन बड़ी भली-भाँति किया गया है। . . . *प्रत्येक छोटा-छोटा गाँव उस यूनानीको एक स्वतन्त्र गणराज्य दीखता था।* (टाइपका अन्तर मैंने किया है)।

बिशप हेबर[1] भारतीय जनताके बारेमें कहते हैं:

> जहाँतक उनके स्वाभाविक चारित्र्यका सम्बन्ध है, समग्रतः मेरा बहुत अनुकूल अभिप्राय बना है। वे बड़े ऊँचे और बहादुराना साहसवाले पुरुष हैं——

१. रेजीनाल्ड हेबर (१७८३-१८२६); कलकत्ताके बिशप और वहाँ बिशप्स कालेज के संस्थापक; इन्होंने भारतकी विस्तृत यात्राएँ की थीं।

शिष्ट, बुद्धिमान और ज्ञान तथा सुधारके लिए अत्यन्त उत्सुक। . . . वे संयमी हैं, उद्योगी हैं, अपने माता-पिताके प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ और अपने बच्चोंके प्रति स्नेहशील हैं। स्वभावमें वे लगभग समान रूपसे सज्जन और धैर्यवान हैं। उनके प्रति यदि कोई कृपा दिखाता है और उनकी जरूरतों या भावनाओंका खयाल करता दीखता है तो वे, जिन दूसरे लोगोंसे भी मैं मिला हूँ, लगभग उन सभीकी अपेक्षा ज्यादा आसानीसे प्रभावित हो जाते हैं।

सर टामस मनरोका जो कभी मद्रासके गवर्नर रहे हैं, कथन है:

मैं नहीं जानता कि भारतके लोगोंको सभ्य बनानेका अर्थ क्या है। अच्छे शासनके सिद्धान्तों और व्यवहारमें सम्भव है वे कम उतरें, परन्तु यदि एक अच्छी कृषि-प्रणाली, उत्तम माल तैयार करना, सुविधा और विलासकी सामग्री उत्पन्न करनेकी शक्ति, लिखने-पढ़नेके लिए पाठशालाओंकी स्थापना, दयालुता तथा आतिथ्यके सामान्य व्यवहार और, सबसे ऊपर, स्त्रियोंके प्रति विवेकपूर्ण सम्मान और कोमलताकी गिनती उन बातोंमें है, जिनसे लोगोंकी सभ्यता जानी जाती है, तो हिन्दू लोग सभ्यतामें यूरोपके लोगोंसे पीछे नहीं हैं।

भारतीयोंके साधारण चारित्र्यपर सर जॉर्ज बर्डवुडने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

वे लम्बे समयतक कष्ट सहनेवाले और धैर्यवान, मजबूत और डटे रहनेवाले, कममें गुजारा करनेवाले और उद्योगी, कानूनका पालन करनेवाले और शान्तिप्रिय हैं। . . . शिक्षित और उच्चतर व्यापारी वर्गके लोग ईमानदार और सच्चे हैं। जितने निरपेक्ष अर्थमें मैं शब्दोंका उपयोग कर सकता हूँ उतने अर्थमें वे ब्रिटिश सरकारके प्रति वफादार और आस्था रखनेवाले हैं। और इन शब्दोंको आप समझते हैं। नैतिक सत्यनिष्ठा बम्बईके (ऊँचे) सेठिया वर्गका उतना ही बड़ा गुण है, जितना कि स्वयं ट्यूटॉनिक[1] जातिका। संक्षेपमें, भारतके लोग किसी सच्चे अर्थमें हमसे कम नहीं हैं। कुछ झूठे — हमारे लिए ही झूठे — मापदण्डोंसे, जिनपर विश्वास करनेका हम ढोंग करते हैं, नापने पर वे हमसे ऊँचे हैं।

सर सी० ट्रेवेलियनका कथन है:

वे बहुत बड़ी शासनिक योग्यता, महान धैर्य, महान उद्योगशीलता और महान कुशाग्रता तथा बुद्धिके धनी हैं।

कौटुम्बिक सम्बन्धोंके बारेमें सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर यह कहते हैं:

अंग्रेजों और हिन्दुओंके मनमें कौटुम्बिक हितों और कौटुम्बिक प्रेमका जो स्थान है उसकी दृष्टिसे उन दोनोंके बीच कोई तुलना हो ही नहीं सकती।

१. जर्मन, स्कैंडिनेवियन और ऐंग्लो-सैक्सन।

बच्चोंके प्रति माता-पिताके, और माता-पिताके प्रति बच्चोंके उस प्रेमका कोई प्रतिरूप इंग्लैंडमें शायद ही मिलेगा। हमारे पूर्वीय नागरिक बन्धुओंमें मातृ-पितृ प्रेम और अपत्य-प्रेमका वह स्थान है जो इस देशमें स्त्री-पुरुषके बीचकी वासनाने ले रखा है।

और श्री पिनकॉटका खयाल है कि :

तमाम सामाजिक बातोंमें अंग्रेज लोग हिन्दुओंके गुरु बननेके प्रयत्न करनेकी अपेक्षा उनके चरणोंके पास बैठने और शिष्य बनकर उनसे शिक्षा लेनेके ही बहुत अधिक योग्य हैं।

एम० लुई जेकोलियट कहता है :

प्राचीन भारतकी भूमि, मानव जातिका पालना, तेरी जय हो! जय हो, अयि कुशल धात्री, तेरी, जिसे शताब्दियोंके क्रूर आक्रमण अबतक विस्मृतिकी धूलमें दबा नहीं सके। अयि श्रद्धा, प्रेम, काव्य और विज्ञानकी मातृभूमि, तेरी जय हो! हम अपने पश्चिमके भविष्यमें तेरे अतीतके पुनर्जन्मका स्वागत करें!

विक्टर ह्यूगो कहता है :

इन राष्ट्रों — फ्रांस और जर्मनीने यूरोपका निर्माण किया है। पश्चिमके लिए जर्मनी जो-कुछ है, वही पूर्वके लिए भारत है।

इसमें यह तथ्य भी जोड़ लीजिये : भारतने बुद्धको जन्म दिया है, जिनके जीवनको कुछ लोग तमाम मनुष्योंके जीवनोंमें श्रेष्ठ और पवित्रतम मानते हैं, और कुछ केवल ईसाके जीवनसे दोयम बताते हैं; भारतने ऐसे अकबरको जन्म दिया है, जिसकी नीतिका ब्रिटिश सरकारने इनेगिने संशोधनोंके साथ अनुसरण किया है; अभी थोड़े ही वर्ष पहले भारतमें एक ऐसे पारसी बैरोनेट[1] सज्जन थे जिन्होंने अपनी दानशीलतासे न केवल भारतको वरन् इंग्लैंडको भी आश्चर्य-चकित कर दिया था; भारतने पत्रकार क्रिस्टोदास पालको जन्म दिया है, जिसकी वर्तमान वाइसराय लॉर्ड एलगिनने यूरोपके सर्वश्रेष्ठ पत्रकारोंसे तुलना की है; भारतने न्यायमूर्ति मोहम्मद और न्यायमूर्ति मुतुकृष्ण अय्यर[2] को जन्म दिया है, जो दोनों ही भारतके उच्च न्यायालयोंके न्यायधीश हैं और जिनके फैसले भारतके उच्च न्यायालयोंमें न्यायाधीशोंके आसनोंको सुशोभित करनेवाले भारतीय तथा यूरोपीय न्यायाधीशों के निर्णयोंमें सबसे योग्य माने गये हैं; और, आखिरमें, भारतमें बदरुद्दीन[3]

१. उपसामन्तक।

२. उल्लेख सर टी० मुतुस्वामी अय्यरका है।

३. बदरुद्दीन तैयबजी (१८४४-१९०६) : बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशनके कर्मठ सहायक और उसके वास्तविक अध्यक्ष। कांग्रेसके मद्रास अधिवेशनके अध्यक्ष, १८८७। बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश, १८९५। दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहार विरोधी आन्दोलनके जोरदार समर्थक। बम्बई विधान-परिषदके नामजद सदस्य, १८८२।

बनर्जी[1] और मेहता[2] जैसे वक्ता हैं, जिन्होंने अनेक अवसरोंपर इंग्लिस्तानके श्रोताओं-को मन्त्रमुग्ध किया है।

ऐसा है भारत। अगर यह चित्र आपको कुछ अतिरंजित अथवा लहरी मालूम होता हो, तो भी यह सच्चा है। अवश्य ही इसका दूसरा पहलू भी है। मगर उस पहलूका चित्रण वह करे, जिसे दोनों राष्ट्रोंको मिलानेकी अपेक्षा अलग करनेमें आनन्द मिलता हो। बादमें आप डैनिएलकी निष्पक्षतासे दोनोंको परखें। मेरा दावा है कि तब भी ऊपर कही हुई बातोंका भारी अंश अक्षुण्ण रहेगा और वह आपको विश्वास दिला देगा कि भारत आफ्रिका नहीं है, वह सभ्यता शब्दके शुद्धतम अर्थमें एक सभ्य देश है।

तथापि, इस विषयको समाप्त करनेके पहले मैं एक सम्भव आपत्तिको ताड़ लेनेकी इजाजत माँगता हूँ। वह होगी: "आप जो कह रहे हैं वह अगर सत्य है, तो इस उपनिवेशके जिन लोगोंको आप भारतीय कहते हैं वे भारतीय नहीं हैं। कारण यह है कि उनके आचार-व्यवहारसे आपके मन्तव्यकी पुष्टि नहीं होती। देखिए, कैसे ठेठ झूठे हैं वे।" इस उपनिवेशमें मैं जिससे भी मिला हूँ, हर-एकने भारतीयोंकी असत्यवादिताकी बात कही है। कुछ हदतक मैं इस आरोपको स्वीकार भी करता हूँ। परन्तु अगर मैं इस आपत्तिका उत्तर यह कहकर दूँ कि दूसरे वर्ग भी, खास तौरसे इन अभागे भारतीयोंकी हालतोंमें रखे जानेपर, ज्यादा अच्छे नहीं ठहरते, तो यह मेरे लिए बड़े अल्प संतोषकी बात होगी। फिर भी, अंदेशा है कि मुझे उस तरहके तर्कका सहारा लेना ही होगा। मैं चाहता तो बहुत हूँ कि वे ऐसे न हों, परन्तु यह सिद्ध करनेमें अपनी पूरी असमर्थता कबूल करता हूँ कि वे मनुष्य नहीं, मनुष्यसे कुछ ज्यादा हैं। वे भुखमरीकी मजदूरीपर नेटाल आये हैं। (मेरा मतलब सिर्फ गिरमिटिया भारतीयों से है)। वे अपने-आपको एक विचित्र स्थिति और प्रतिकूल वातावरणमें पाते हैं। जिस क्षण वे भारतसे रवाना होते हैं, उसी क्षणसे, अगर वे उपनिवेशमें बस जाते हैं तो, सारा जीवन उन्हें बिना किसी नैतिक शिक्षाके रहना पड़ता है। हिन्दू हों या मुस-लमान, उन्हें नाम-लायक कोई नैतिक या धार्मिक शिक्षा बिलकुल ही नहीं दी जाती और वे खुद इतने पढ़े-लिखे होते नहीं कि दूसरोंकी सहायताके बिना स्वयं शिक्षा प्राप्त कर लें। ऐसी हालतमें वे झूठ बोलनेके छोटेसे-छोटे प्रलोभनके भी शिकार हो सकते

१. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (१८४८-१९२५): नरम दलीय नेता। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके शिष्टमण्डलके सदस्यकी हैसियतसे १८९० में ब्रिटेन गये थे। बंगालकी विधान परिषदके सदस्य (१८९३-१९०१)। कलकत्तेके प्रमुख समाचारपत्र **बंगालीके** मालिक और सम्पादक। मॉन्टफर्ड सुधारोंके अन्तर्गत वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषदके सदस्य। १८९५ और १९०२ में कांग्रेसके अध्यक्ष।

२. फीरोजशाह मेहता (१८४५-१९१५): भारतीय नेता; बहुत दिनोंतक बम्बईके सार्वजनिक जीवनका सूत्र-संचालन इनके ही हाथोंमें रहा। बम्बई प्रेसिडेंसी एसोसिएशनके एक संस्थापक और तीन बार बम्बई कारपोरेशनके अध्यक्ष। बम्बई विधानपरिषद और बादमें वाइसरायकी कार्यकारिणीके सदस्य। १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापना करवाले नेताओंमें से एक। १८९० और १९०९ में दो बार उसके अध्यक्ष निर्वाचित।

हैं। होते-होते उन्हें झूठ बोलनेकी लत पड़ जाती है, बीमारी हो जाती है। वे बिना किसी कारणके, बिना किसी फायदेकी आशाके झूठ बोलने लगते हैं। सचमुच तो वे जानते ही नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। वे जिन्दगीकी एक ऐसी मंजिलपर पहुँच जाते हैं, जहाँ कि उनकी नैतिक शक्तियाँ उपेक्षाके कारण बिलकुल मंद पड़ जाती हैं। झूठ बोलनेका दूसरा एक बहुत दुःखद रूप भी है। अपने मालिक द्वारा सताये जानेके डरसे वे अपने उन भाइयोंके लिए भी सच बोलनेका साहस नहीं करते, जिन्हें दुराग्रहपूर्वक सताया जाता है। अपने मालिकोंके खिलाफ गवाही देनेका साहस करनेपर उनकी रूखी-सूखी खुराकमें कटौती कर दी जाये और उन्हें कठोर शारीरिक दण्ड दिया जाये तो उसे समचित्तसे सहन करने योग्य तत्त्वज्ञानी वृत्तिवाले तो वे नहीं हैं। तब क्या उन लोगोंपर दया करनेकी अपेक्षा उनका तिरस्कार करना उचित है? क्या उनके साथ दयाके अयोग्य बदमाशों जैसा बरताव किया जायेगा, या उन्हें ऐसे असहाय प्राणी माना जायेगा, जिन्हें हमदर्दीकी बुरी तरहसे जरूरत है? क्या कोई ऐसा वर्ग देखनेमें आता है, जो इसी तरहकी परिस्थितियोंमें उनके समान ही व्यवहार नहीं करेगा?

परन्तु मुझसे पूछा जायेगा कि व्यापारी भी उतने ही झूठे हैं; उनके पक्षमें आप क्या कह सकते हैं? इस विषयमें मेरा निवेदन है कि यह आरोप निराधार है। व्यापार अथवा कानूनका निर्वाह करनेके लिए दूसरे वर्ग जितना झूठ बोलते हैं उससे ज्यादा झूठ वे नहीं बोलते। उन्हें बहुत ज्यादा गलत समझा जाता है। पहले तो इसलिए कि वे अंग्रेजी भाषा नहीं बोल सकते; दूसरे, उनकी बातोंका भाषान्तर बहुत त्रुटिपूर्ण होता है, जिसमें स्वयं दुभाषियोंका कोई दोष नहीं है। दुभाषियोंसे चार भाषाओंमें सफलतापूर्वक उलथा करनेकी कठिन जिम्मेदारी अदा करनेकी अपेक्षा की जाती है। ये भाषाएँ हैं — तमिल, तेलुगु, हिन्दुस्तानी और गुजराती। व्यापारी भारतीय अनिवार्यतः हिन्दुस्तानी या गुजराती बोलते हैं। जो लोग सिर्फ हिन्दुस्तानी बोलते हैं वे ऊँचे दर्जेकी हिन्दुस्तानी बोलते हैं। दुभाषियोंमें से एकको छोड़कर शेष सब स्थानीय हिन्दुस्तानी बोलते हैं। यह भाषा तमिल, गुजराती और दूसरी भारतीय भाषाओंका एक भद्दा मिश्रण है, जिसे बहुत गलत ढंगसे हिन्दुस्तानी व्याकरणका जामा पहना दिया गया है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि दुभाषियेको गवाहका आशय समझनेके लिए उससे तर्क-वितर्क करना पड़ता है। ऐसा होते समय न्यायाधीश अधीर हो उठता है और सोचता है कि गवाह चालबाजी कर रहा है। बेचारे दुभाषियेसे जब सवाल किया जाता है तो वह, मनुष्य स्वभावके अनुसार ही, अपने सदोष भाषाज्ञानको छिपानेके लिए कह देता है कि गवाह सीधा जवाब नहीं देता। बेचारे गवाहको अपनी स्थिति साफ करनेका कोई मौका नहीं होता। गुजराती बोलनेवालोंके बारेमें तो बात और भी गंभीर है। अदालतोंमें गुजरातीका दुभाषिया एक भी नहीं है। दुभाषिया, बहुत सिरपच्ची करनेके बाद, गवाह जो कुछ कहता है उसका सारमात्र निकाल पाता है। गुजराती बोलनेवाले गवाहोंको अपनी बात समझानेके लिए और और दुभाषियोंको उनकी गुजराती हिन्दुस्तानी समझनेके लिए मगजमारी करते हुए

मैंने खुद देखा है। दुभाषियोंके लिए तो यह भारी श्रेयकी बात है कि वे अनजान शब्दोंके जालसे आशयमात्र भी निकाल लेते हैं। परन्तु जितने समय यह संघर्ष होता है, उतनेमें न्यायाधीश अपने मनमें गवाहके एक शब्दपर भी विश्वास न करनेका फैसला कर लेता है और उसे झूठा करार दे देता है।

३

अब यह तीसरा प्रश्न — "क्या उनके साथ किया जानेवाला वर्तमान व्यवहार सर्वोत्तम ब्रिटिश परम्पराओं, या न्याय और नीतिके सिद्धान्तों या ईसाई धर्मके सिद्धान्तोंके अनुरूप है?" इसका उत्तर देनेके लिए यह जाँच लेना आवश्यक होगा कि उनके साथ किया जानेवाला व्यवहार है कैसा? मैं समझता हूँ कि यह तो फौरन मंजूर कर लिया जायेगा कि भारतीयोंके प्रति इस उपनिवेशमें बड़ा तीव्र द्वेष है। साधारण लोग भी उनसे द्वेष करते हैं, उन्हें कोसते हैं, उनपर थूकते हैं और अकसर उन्हें पैदल-पटरियोंसे बाहर ढकेल देते हैं। अखबारोंको तो मानो उनकी निन्दा करनेके लिए अच्छेसे-अच्छे अंग्रेजी कोशमें भी काफी जोरदार शब्द ढूँढ़े नहीं मिलते। कुछ उदाहरण लीजिए — "सच्चा घुन जो समाजका कलेजा ही खाये जा रहा है"; "वे परोपजीवी"; "मक्कार, मुए अर्ध-बर्बर एशियाटिक"; "दुबली और काली, कोई चीज, निराली; सफाई न निकली छू, कहाते मुए हिन्दू"; "भरा नाक तक बुराइयों से, जीता खा तन्दूल; कोसूँगा दिल भर कर उसको, वह हिन्दू चण्डूल"; "गंदे कुली की झूठी जबान और धूर्त आचार"। अखबार उन्हें सही नामोंसे पुकारनेमें लगभग एक स्वरसे इनकार करते हैं। उन्हें "रामीसामी" कहा जाता है, "मिस्टर सामी" कहा जाता है, "मिस्टर कुली" और "ब्लैक मैन" कहकर पुकारा जाता है। और ये सन्तापकारक उपाधियाँ इतनी आम बन गई हैं कि इनका प्रयोग (कमसे-कम इनमें से एक — "कुली" — का तो अवश्य ही) अदालतकी पवित्र सीमामें भी किया जाता है — मानो, "कुली" कोई कानूनी और व्यक्तिवाचक नाम है, जो किसी भी भारतीयको दिया जा सकता है। लोकपरायण व्यक्ति भी इस शब्दका स्वच्छन्दतासे उपयोग करते दिखाई पड़ते हैं। मैंने ऐसे लोगोंको भी इन दुःखदायी शब्दों — "कुली क्लर्क" — का प्रयोग करते सुना है, जिनको वस्तुस्थितिका ज्यादा अच्छा ज्ञान होना चाहिए। ये शब्द अपने-आपमें परस्पर विरोधी हैं और जिसके लिए काममें लाये जाते हैं उसे सन्तापकारक होते हैं परन्तु इस उपनिवेशमें तो भारतीय ऐसे जानवर हैं, जिनकी कोई भावनाएँ होती ही नहीं!

ट्राम गाड़ियाँ भारतीयोंके लिए नहीं हैं। रेलवे-कर्मचारी भारतीयोंके साथ जानवरोंके जैसा व्यवहार कर सकते हैं। भारतीय चाहे कितने भी स्वच्छ क्यों न हों, उपनिवेशके प्रत्येक गोरे व्यक्तिको उन्हें देखकर ही सन्ताप हो आता है। और वह सन्ताप इतना होता है कि वे थोड़ी देरके लिए भी भारतीयोंके साथ रेलगाड़ीके एक ही डिब्बेमें बैठना पसन्द नहीं करते। होटलोंके दरवाजे उनके लिए बन्द हैं। मुझे सम्माननीय भारतीयोंके ऐसे उदाहरण मालूम हैं, जिन्हें रात भरके लिए होटलमें स्थान

नहीं मिला। सार्वजनिक स्नानगृह भी भारतीयोंको उपलब्ध नहीं होते, फिर वे भारतीय कोई भी क्यों न हों।

विभिन्न जायदादोंमें गिरमिटिया भारतीयोंके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहारकी जो रिपोर्टें मुझे मिली हैं उनके दसवें हिस्सेपर भी अगर मैं विश्वास करूँ, तो वे उन जायदादोंके मालिकोंकी मनुष्यता और गिरमिटियोंके संरक्षक द्वारा की जानेवाली उनकी देखभालके खिलाफ भयानक आरोप-स्वरूप होंगी। परन्तु इस विषयका मुझे बहुत सीमित अनुभव है, इसलिए इसपर मैं अधिक विचार व्यक्त नहीं करूँगा।

आवारा-कानून गैर-जरूरी तौरपर उत्पीड़क है। अकसर वह प्रतिष्ठित भारतीयों को बड़ी अड़चनमें डाल देता है।

इस सबमें उन अफवाहोंको जोड़ लीजिए जो हवामें फैली हुई हैं। अफवाहोंका सार यह है कि भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें रहनेके लिए समझाया या बाध्य किया जाये। हो सकता है कि यह सिर्फ इरादा ही हो। फिर भी, भारतीयोंके खिलाफ यूरोपीयोंकी भावनाओंका परिचय तो इससे मिलता ही है। मेरी प्रार्थना है, आप कल्पना करके देखें कि अगर ऐसे सब इरादोंको पूरा करना सम्भव हो तो नेटालमें भारतीयोंकी हालत क्या होगी।

अब, क्या यह व्यवहार ब्रिटिश न्याय-परम्परा, या नीति या ईसाइयतके अनुरूप है?

आपकी इजाजतसे मैं मेकॉलेके विचारोंका एक अंश पेश करता हूँ और इसका निर्णय आपपर छोड़ता हूँ कि क्या भारतीयोंके प्रति आज जो व्यवहार हो रहा है, उसे वह पसन्द करता। भारतीयोंके प्रति व्यवहारके विषयमें भाषण करते हुए उसने निम्नलिखित भावनाएँ व्यक्त की थीं:

> **मैं एक सम्पूर्ण समाजको अफीम खिलानेकी, अपने हाथोंमें ईश्वर द्वारा सौंपे हुए एक महान राष्ट्रको सिर्फ इसलिए मदहोश और पंगु बना देनेकी सम्मति कभी न दूँगा कि वह हमारे नियन्त्रणमें रहनेके अधिक उपयुक्त बन जाये। उस सत्ताका क्या मूल्य, जिसकी नींव दुर्गुणोंपर, अज्ञानपर और दुःख-दैन्यपर रखी गई हो; जिसका संरक्षण हम उन अत्यन्त पवित्र कर्त्तव्योंको भंग करके ही कर सकते हों, जिनके लिए हम शासकोंकी हैसियतसे शासितोंके प्रति जिम्मेदार हैं; और जिन कर्त्तव्योंके रूपमें साधारणसे अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता और बौद्धिक प्रकाशके धनी होनेके नाते हमें उस जातिका ऋण चुकाना है, जो तीन हजार वर्षके निरंकुश शासन और पुरोहितोंकी धूर्ततासे अधःपतित हो गई है? अगर हम मानव-जातिके किसी अंगको अपने ही बराबर स्वतन्त्रता और सभ्यता प्रदान करनेको तैयार नहीं हैं, तो हम व्यर्थ ही स्वतन्त्र हैं, व्यर्थ ही सभ्य हैं।**

इसके अलावा, मिल, बर्क, ब्राइट और फॉसेट[1] जैसे लेखक भी भारतीयोंके प्रति इस उपनिवेशमें होनेवाले व्यवहारको बरदाश्त नहीं कर सकते थे। यह बतानेके लिए इनकी ओर संकेत कर देना-भर काफी होगा।

१. हेनरी फॉसेट (१८३३-१८८४)। कैम्ब्रिजमें राजनीतिक अर्थ-व्यवस्थाके प्राध्यापक और राजनीतिज्ञ।

किसी आदमीको अधपेटकी मजदूरीपर यहाँ लाना, उसे गुलामीम जकड़ कर रखना, और जब वह स्वतन्त्रताका जरा-सा भी चिह्न दिखाये, या कम दुःखदर्दकी हालतमें रहनेके योग्य हो, तब उसे उसके घर वापस भेज देनेकी इच्छा करना — जब कि वहाँ जाकर वह अपेक्षाकृत एक अजनबी होगा और शायद अपनी जीविका भी कमा न सकेगा — ब्रिटिश राष्ट्रके स्वाभाविक न्याय या निष्पक्ष व्यवहारका सूचक नहीं है।

भारतीयोंके प्रति किया जानेवाला व्यवहार ईसाइयतके प्रतिकूल है, यह साबित करनेके लिए तर्ककी आवश्यकता नहीं है। जिस विभूतिने हमें अपने शत्रुओंसे प्रेम करनेकी, और जिसे हमारे कोटकी जरूरत हो उसे अपना चोगा दे देनेकी, और जब बायें गालपर तमाचा मारा जाये, तब दाहिना गाल सामने कर देनेकी शिक्षा दी, और जिसने यहूदी और गैर-यहूदीके भेदको उखाड़ फेंका, वह ऐसी वृत्तिको कभी बरदाश्त नही करेगा, जो आदमीको इतना अहंकारी बनाती है कि वह अपने सह-जीवीके स्पर्शसे भी अपने-आपको नापाक हुआ माने।

४

आखिरी प्रश्नकी चर्चा, मैं मानता हूँ, पहले प्रश्नकी चर्चामें काफी हो गई है। और अगर प्रत्येक भारतीयको उपनिवेशसे खदेड़ देनेका प्रयोग किया जाये तो व्यक्तिगत रूपसे मुझे बहुत दुःख न होगा। वैसा करनेपर मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि उपनिवेशी लोग शीघ्र ही उस दिनपर मातम मनाने लगेंगे, जब कि उन्होंने यह कदम उठाया होगा। और वे सोचने लगेंगे कि वैसा न किया होता तो अच्छा होता। उन्हें खदेड़ देनेपर छोटे-छोटे धंधे और जिन्दगीके छोटे-छोटे काम पड़े रहेंगे। जिस कामके लिए वे खास तौरसे उपयुक्त हैं, उसे यूरोपीय नहीं करेंगे। और आज भारतीयोंसे उपनिवेशको राजस्वके रूपमें जो भारी रकमें प्राप्त होती हैं, वे समाप्त हो जायेंगी। दक्षिण आफ्रिकाकी आबहवा ऐसी नहीं है, कि उसमें यूरोपीय लोग वे सब काम कर सकें जो यूरोपमें वे सरलतासे कर लेते हैं। तथापि, मैं तो अत्यन्त आदरके साथ यह निवेदन करना चाहता हूँ कि अगर भारतीयोंका उपनिवेशमें रखा जाना लाजिमी ही है, तो फिर उनके साथ ऐसा व्यवहार कीजिए जिसके, अपनी योग्यता और ईमानदारीके आधारपर, वे लायक हों। अर्थात् वे जिसके अधिकारी हों वह उन्हें दीजिए; आपकी निष्पक्ष और भेद-भावरहित न्यायबुद्धि जो कमसे-कम देनेकी प्रेरणा करे वह उन्हें दीजिए।

अब मुझे आपसे सिर्फ यह प्रार्थना करनी है कि आप इस विषयपर सच्चे दिलसे विचार करें। और मुझे आपको (यहाँ मेरा मतलब सिर्फ अंग्रेजोंसे है) याद दिलाना है कि विधिने अंग्रेजों और भारतीयोंको एक-साथ रखा है, और भारतीयोंका भाग्य-सूत्र अंग्रेजोंके हाथमें सौंपा है। प्रत्येक अंग्रेज भारतीयोंके साथ जैसा बरताव करेगा उसपर ही निर्भर करेगा कि इस एक-साथ रखे जानेका परिणाम उदार सहानुभूति, प्रेम, मुक्त पारस्परिक व्यवहार और भारतीय स्वभावके सही ज्ञानसे उत्पन्न चिरन्तन ऐक्य होना है, या इस एक-साथ रखे जानेको सिर्फ उतने ही समय टिकना

है, जबतक कि अंग्रेजोंके पास भारतीयोंको नियन्त्रणमें रखनेके साधन पर्याप्त हैं और स्वभावसे शान्त भारतीय परेशान होकर विदेशी प्रभुत्वके विरुद्ध सक्रिय विरोध आरंभ नहीं कर देते। मैं यह याद भी दिलाता हूँ कि इंग्लैंडके अंग्रेजोंने अपने लेखों, व्याख्यानों और कृतियों द्वारा दिखा दिया है कि उनका आशय दोनों राष्ट्रोंके हृदयोंको एक करने का है और वे रंग-भेदमें विश्वास नहीं करते। वे भारतके विनाशपर अपनी उन्नति साधना नहीं, बल्कि उसे अपने साथ-साथ ऊपर उठाना पसन्द करेंगे। इसके समर्थनमें मैं आपको ब्राइट, फॉसेट, ग्लैड्स्टन, वेडरबर्न, पिनकाट, रिपन, रे, नॉर्थब्रुक, डफरिन और लोकमतका प्रतिनिधित्व करनेवाले अनेकानेक अन्य अंग्रेजोंके नामोंका हवाला देता हूँ। तत्कालीन प्रधानमंत्रीके विरोध व्यक्त करनेपर भी, एक अंग्रेज मतदाता-क्षेत्रने एक भारतीयको ब्रिटिश लोकसभाका सदस्य चुन दिया है।[1] सारे उदार और अनुदार ब्रिटिश पत्रोंने उस भारतीय सदस्यको उसकी सफलतापर बधाई दी है। उन्होंने इस अनोखी घटनाकी सराहना भी की है। और, फिर, उदार और अनुदार दोनों दलोंके पूरे सदनने उसका हार्दिक स्वागत किया है। सिर्फ एक इस वस्तुस्थितिको ही ले लिया जाये तो, मेरा निवेदन है, मेरे कथनकी पुष्टि हो जाती है। यह सब देखते हुए आप उनका अनुसरण करेंगे या अपने लिए एक अलग रास्ता बनायेंगे? आप एकताको बढ़ायेंगे, "जो प्रगतिका निमित्त होती है," या वैमनस्यको बढ़ायेंगे, "जो अधःपतनका निमित्त होता है"?

अन्तमें मेरी प्रार्थना है कि आप इस पत्रको उसी भावसे ग्रहण करें, जिससे यह लिखा गया है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पुस्तिकासे।

५४. पत्र : यूरोपीयोंके नाम[2]

बीच ग्रोव
डर्बन
१९ दिसम्बर, १८९४

महोदय,

मैं संलग्न 'खुली चिट्ठी' आपके अवलोकनार्थ भेज रहा हूँ और इसकी विषय-सामग्रीपर आपके अभिप्रायकी याचना करता हूँ।

आप धर्मोपदेशक, सम्पादक, लोकसेवक, व्यापारी या वकील, कोई भी हों, यह विषय आपके ध्यानकी अपेक्षा रखता है। अगर आप धर्मोपदेशक हैं तो, जहाँतक आप

१. आशय १८९३ में सेंट्रल फिन्सबरी क्षेत्रसे दादाभाई नौरोजीके चुनावसे है।
२. छपा हुआ यह परिपत्र गांधीजीने नेटालके यूरोपीयोंको भेजा था।

ईसाके उपदेशोंका निरूपण करते हैं, आपका कर्त्तव्य होना चाहिए कि आप अपने सह-जीवी भाइयोंके साथ किये जानेवाले किसी भी ऐसे व्यवहारके प्रति, जो ईसाको खुश करनेवाला न हो, प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी प्रकारकी कोई अनुकूलता न दिखायें। अगर आप पत्र-सम्पादक हैं तो भी जिम्मेदारी उतनी ही बड़ी है। पत्रकारकी हैसियतसे आप अपने प्रभावका उपयोग मानव-जातिके विकासके लिए कर रहे हैं या ह्रासके लिए — यह इस बातपर निर्भर करेगा कि आप विभिन्न वर्गोंके बीच फूटको उत्तेजना देते हैं, या एकता स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यही विचार लोकसेवककी स्थितिमें भी आपपर लागू होंगे। अगर आप व्यापारी या वकील हैं तो भी आपका अपने ग्राहकों या मुवक्किलोंके प्रति कुछ कर्त्तव्य है, क्योंकि उनसे आपको बहुत आर्थिक लाभ होता है। यह आपके हाथ है कि आप उनके साथ कुत्तों-जैसा व्यवहार करें या उन्हें अपने सहजीवी भाई मानें, जो उपनिवेशमें भारतीयोंके सम्बन्धमें फैले हुए अज्ञानके कारण क्रूरतापूर्ण अत्याचारोंके शिकार बने हुए हैं और इसमें आपकी सहानुभूतिकी अपेक्षा करते हैं। आपका उनके साथ अपेक्षाकृत अधिक निकट सम्पर्क होता है। इसलिए अवश्य ही आपको उन्हें समझनेका मौका और प्रयोजन भी है। सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखनेपर शायद वे आपको उस रूपमें दीख पड़ेंगे, जिस रूपमें मौका पानेवाले और मौकेका ठीक उपयोग करनेवाले सैकड़ों यूरोपीयोंने उन्हें देखा है।

अगर मान लिया जाये कि उपनिवेशवासी भारतीयोंके साथ जैसी अपेक्षा की जाती है, ठीक वैसा व्यवहार नहीं होता, तो क्या यहाँ कोई ऐसे यूरोपीय हैं जो उनके साथ सक्रिय सहानुभूति रखें और उनके प्रति आत्मीयता प्रदर्शित करें? 'खुली चिट्ठी' की विषय-सामग्रीपर आपकी राय यही तय करनेके लिए माँगी गई है।

आपका विश्वस्त सेवक,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० २०१) से।

५५. पत्र : 'नेटाल एडवर्टाइजर'को

डर्बन
२१ जनवरी, १८९५

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल एडवर्टाइजर'

महोदय,

आपके विज्ञापन-स्तम्भोंमें एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन और लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी सम्बन्धी जो सूचना छपी है उसकी ओर अगर आप मुझे अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेका अवसर दें तो मैं आपका आभारी होऊँगा।

यूनियन जिस विचारधाराका प्रतिनिधित्व करती है उसके अनुसार दुनियाके सब महान धर्मोंमें समानता है और उन सबका एक ही स्रोत है। जैसा कि विज्ञापित पुस्तकोंसे भली-भाँति ज्ञात हो जायेगा, वह भौतिकवादकी पूर्ण अपर्याप्तता दिखाती है; और भौतिकवादका यह कथन कि उसने संसारको एक अभूतपूर्व सभ्यता प्रदान की है। शेखी बघारना है कहा जाता है, उसने मानव-जातिका सबसे बड़ा कल्याण किया है। परन्तु कहनेवाले लोग आसानीसे भूल जाते हैं कि उसकी सबसे बड़ी सिद्धि है — विनाशके भयानकतम अस्त्रोंका आविष्कार, अराजकताकी आतंकजनक वृद्धि, पूँजीपतियों और श्रमिकोंके बीच भयावह झगड़े और 'नामधारी' विज्ञानके नामपर निर्दोष, निर्वाक् प्राणियोंपर स्वच्छन्द और पैशाचिक क्रूरता।

तथापि अब प्रतिक्रियाके लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं। थियोसॉफिकल सोसाइटी की प्रायः अनुपम सफलता और ईसाई धर्मगुरुओं द्वारा मनुष्यके अन्दर निहित पवित्रता या ईश्वरीय अंशका[1] शनैः-शनैः स्वीकार उस प्रतिक्रियाका परिचायक है। प्रोफेसर मैक्समूलरका अवतारवादको स्वीकार करना, जो इतने निर्णायक तरीकेसे 'परफेक्ट वे' में स्पष्ट किया गया है, उनका यह कथन कि यह विचारधारा इंग्लैंड तथा अन्य देशोंके विचारशील लोगोंके मनमें जड़ें पकड़ रही हैं और 'अननोन लाइफ ऑफ जीसस क्राइस्ट'[2] का प्रकाशन — ये सब तो उस प्रतिक्रियाके और भी बड़े उदाहरण हैं। दक्षिण आफ्रिकामें ये पुस्तकें पाना सम्भव नहीं है, इसलिए इनके बारेमें मेरा ज्ञान इनकी समालोचनाएँ पढ़नेतक ही सीमित है। मेरा निवेदन है कि ये सब और ऐसे ही दूसरे भी बहुत-से तथ्य अचूक रूपसे बताते हैं कि जिन भौतिक वृत्तियोंने हमें इतनी क्रूरताकी हदतक स्वार्थी बना दिया है उनसे हटकर हम केवल ईसाकी ही नहीं, बल्कि बुद्ध, ज़रथुस्त और मुहम्मदकी भी शुद्ध शिक्षाओंकी ओर मुड़ रहे हैं। सभ्य जगत अब इनको झूठे पैगम्बर या अवतार कहकर नहीं पुकारता, बल्कि इनकी और ईसाकी शिक्षाओंको एक-दूसरेकी पूरक मानने लगा है।

खेद है कि मैं अभी अन्नाहार-सम्बन्धी पुस्तकोंका विज्ञापन नहीं कर सकता। गलतीसे वे पुस्तकें भारतको भेज दी गई हैं और उनके डर्बन पहुँचनेमें कुछ समय लगेगा। फिर भी मैं अन्नाहारके गुणोंके बारेमें एक महत्त्वकी बात बता दूँ। बुराईका साधन शराबखोरीसे ज्यादा जोरदार दूसरा नहीं है और मैं यह कहनेकी अनुमति चाहता हूँ कि जो लोग शराबकी तलबसे पीड़ित रहते हैं, परन्तु उससे छुटकारा पानेके इच्छुक हैं, वे कमसे-कम एक मासतक मुख्यतः ब्राउन ब्रेड, संतरों या अंगूरके आहारपर रहकर देखें। इससे उनकी शराबकी तलब पूरी तरह मिट जायेगी। मैंने स्वयं अनेक प्रयोग किये हैं और मैं साक्षी दे सकता हूँ कि मैं बिना मसालेके अन्नाहारपर, जिसमें बड़ी मात्रामें रसीले ताजे फल शामिल थे, कई दिनोंतक रहा हूँ और मुझे चाय, काफी, कोको और यहाँतक कि पानीकी भी जरूरत महसूस नहीं हुई। इसी कारण इंग्लैंडमें सैकड़ों लोग अन्नाहारी बन गये हैं और जो कभी पक्के पियक्कड़ थे उन्हें अब शराबकी बू भी नहीं रुचती। डाक्टर बी० डब्ल्यू० रिचर्डसनने अपनी पुस्तक 'फूड

१. डॉक्ट्रिन ऑफ़ होलीनेस।

फॉर मैन' में शुद्ध शाकाहारको शराबखोरीका इलाज बताया है। नेटाल-जैसे अपेक्षाकृत गरम देशमें, जहाँ फलों और शाकोंकी बहुतायत है, रक्तरहित आहार हर प्रकारसे बहुत लाभदायक होना चाहिए। वैज्ञानिक, स्वच्छता-सम्बन्धी, आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे वह मांसाहारकी अपेक्षा बेहद बेहतर तो है ही।

कदाचित् यह कहना आवश्यक न होगा कि एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियनकी पुस्तकोंकी बिक्री आर्थिक लाभके लिए नहीं की जाती। कुछ लोगोंको तो पुस्तकें मुफ्त बाँट दी गई हैं। कुछ लोगोंको वे पढ़नेके लिए खुशीसे उधार दी जायेंगी। अगर आपके कोई पाठक एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन अथवा लंदन वेजिटेरियन सोसाइटीके बारेमें अधिक जानकारी चाहते हों तो मैं खुशीसे उनके साथ पत्रव्यवहार करूँगा। या, अगर कोई इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर (जो कमसे-कम मेरे लिए तो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ही —) मुझसे इतमीनानके साथ चर्चा करना चाहे तो भी मुझे खुशी होगी।

एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियनकी शिक्षाओंके बारेमें पादरी जॉन पुल्सफर्ड, डी० डी० ने जो-कुछ कहा है, उसके साथ मैं अपना यह वक्तव्य समाप्त करूँगा। उन्होंने कहा है :

> **आध्यात्मिक प्रतिभा रखनेवाले पाठकके लिए इस बातमें शंका करना असम्भव है कि ये शिक्षाएँ दिव्य आवरणके अन्दरसे प्राप्त हुई हैं। इनमें दिव्य धाम और परमात्मा-सम्बन्धी ज्ञानका सार लबालब भरा हुआ है। अगर ईसाई लोग अपना धर्म जानते हों तो उन्हें इन अमूल्य लेखोंमें प्रभु ईसा और उनकी पद्धतिका परिपूर्ण चित्रण और परिपुष्टि दीख पड़ेगी। इस प्रकारके संदेश संभव हैं और संसारको दिये जा सकते हैं, यह हमारे युगका एक चिह्न और बहुत आशाप्रद चिह्न है।**

आपका,

मो० क० गांधी

एजेंट

एसॉटरिक क्रिश्चियन यूनियन

तथा लन्दन वेजिटेरियन सोसाइटी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइजर, १-२-१८९५

५६. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

३२८, स्मिथ स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
२५ जनवरी, १८९५

सेवामें
श्री दादाभाई नौरोजी, संसद-सदस्य
लंदन

महोदय,

यद्यपि सरकार चुप है, अखबार जनताको बता रहे हैं कि सम्राज्ञीने मताधिकार विधेयकका निषेध कर दिया है। क्या आप इस विषयमें हमें कोई जानकारी दे सकते हैं ?

आपने प्रवासी भारतीयोंकी ओरसे जो कष्ट उठाया उसके लिए वे आपको और कांग्रेस कमेटीको जितना भी धन्यवाद दें, थोड़ा ही होगा।

आपका विश्वस्त सेवक,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]
मैं आपके देखनेके लिए साथके कागजात भेजनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० २२५३) की फोटो-नकलसे।

५७. पुस्तकें बिकाऊ हैं

स्वर्गीय डाक्टर एना किंग्जफर्ड और श्री एडवर्ड मेटलैंडकृत निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित मूल्यपर बिकाऊ हैं। दक्षिण आफ्रिकामें ये पहली ही बार लाई गई हैं :

	शि० पें०
परफेक्ट वे	७—६
क्लोद्ड विद द सन	७—६
स्टोरी ऑफ द न्यू गॉस्पेल ऑफ इंटरप्रिटेशन	३—६
बाइबिल्स ओन एकाउंट ऑफ इटसेल्फ	१—०
न्यू गास्पेल ऑफ इंटरप्रिटेशन	१—०

“पढ़नेसे ऐसा मालूम होता है मानो देव या प्रधान देवदूतकी वाणी सुन रहे हों। साहित्यमें इसके बराबरकी कोई दूसरी कृति मुझे ज्ञात नहीं है (‘परफेक्ट वे’)।”
—स्वर्गीय सर एफ० एच० डॉयल।

"उन्नीसवीं शताब्दीमें प्रकाशित पुस्तकोंमें 'परफेक्ट वे' को हम सबसे अधिक ज्ञानपूर्ण और उपयोगी पुस्तक मानते हैं।" —'नॉस्टिक' (संयुक्त राज्य अमेरिका)

मो० क० गांधी
एजेंट, एसॉटेरिक क्रिश्चियन यूनियन
तथा लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइजर, २-२-१८९५

५८. पत्र: 'नेटाल विटनेस' को[1]

डर्बन
२३ मार्च, १८९५

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल विटनेस'
महोदय,

आपके २२ तारीखके अंकमें मुस्लिम कानूनके एक मुद्देके सम्बन्धमें सर वॉल्टर रैग और श्री टैथमके बीचका वार्तालाप प्रकाशित हुआ है। उसपर, मुझे भरोसा है, न्यायके हितमें आप मुझे कुछ विचार व्यक्त करनेका अवसर देंगे।

१. **नेटाल विटनेस**के २२-३-१८९५ के अंकमें निम्नलिखित रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी:

श्री टैथमने कल सर्वोच्च न्यायालयमें अर्जी दी है कि हसन दावजीकी बिला वसीयत जायदादके बारेमें अधिकारी (सर्वोच्च न्यायालयके 'मास्टर') की रिपोर्टकी पुष्टि कर दी जाये। उन्होंने कहा कि बैरिस्टर गांधीकी बनाई हुई बँटवारेकी तजवीज रिपोर्टमें शामिल कर ली गई है। यह तजवीज मुस्लिम कानूनके अनुसार की गई है।

सर वॉल्टर रैग: इसमें बात सिर्फ इतनी ही है कि श्री गांधी मुस्लिम कानूनके बारेमें कुछ नहीं जानते। वे मुस्लिम कानूनसे उतने ही अपरिचित हैं, जितना कि कोई फ्रांसीसी। उन्होंने जो-कुछ कहा है, उसके लिए उन्हें किताबोंका सहारा लेना पड़ा होगा, जैसा कि आप भी कर सकते हैं। उनकी अपनी विशेष जानकारी कुछ नहीं है।

श्री टैथमने कहा कि बँटवारेकी एक-एक तजवीज काजियों और श्री गांधीसे हासिल की गई है। इनके अलावा वह और किससे बनवाई जाती, मैं नहीं जानता। विशेषज्ञोंके जो भी प्रमाण उपलब्ध थे उन सबकी छानबीन हमने कर ली है।

सर वॉल्टर रैग: जो हिस्सा श्री गांधीके कथनानुसार मृत व्यक्तिके भाईको मिलना चाहिए वह, मुस्लिम कानूनके अनुसार गरीबोंके हिस्सेमें जाना चाहिए। श्री गांधी एक हिन्दू हैं और वे बेशक अपना धर्म जानते हैं, मगर मुस्लिम कानूनके बारेमें वे कुछ नहीं जानते।

श्री टैथम: सवाल यह है कि हम श्री गांधीका मत मानें या काजियोंका?

सर वॉल्टर रैग: आपको काजियोंका मत मानना चाहिए। जब भाई साबित कर सके कि वह गरीबोंका प्रतिनिधित्व करता है तब उसे श्री गांधीके कथनानुसार चौबीसमें से पाँच हिस्सोंका हक मिलेगा।

इसकी आलोचना करते हुए गांधीजीने उपर्युक्त पत्र लिखा था:

मैंने आपके सौजन्यका लाभ उठानेका साहस अपनी सफाई देनेके मंशासे नहीं, बल्कि सर्वोच्च न्यायालयके उस निर्णयके कारण किया है, जो सर वॉल्टर रैगके प्रति उचित सम्मान रखते हुए भी, मेरा विश्वास है, मुस्लिम कानूनकी गलत धारणापर आधारित है और भारतीय बाशिन्दोंकी भारी संख्यापर गहरा आघात करनेवाला होगा।

अगर मैं मुसलमान होता और मेरा निर्णय कोई ऐसा मुसलमान करता जिसकी एकमात्र योग्यता यह होती कि वह जन्मसे मुसलमान है, तो मुझे बहुत खेद होता। यह तो एक नई बात मालूम हुई कि मुसलमान तो सहज ज्ञानसे ही कानून जानते हैं और कोई गैर-मुसलमान मुस्लिम कानूनके किसी मुद्देपर कोई मत दे ही नहीं सकता।

अगर आपकी रिपोर्ट सही है तो, मुझे आशंका है, यह निर्णय कि भाईको सम्पत्तिके चौबीसमें से पाँच भागोंका हक तभी होगा जब वह "साबित कर सके कि वह गरीबोंका प्रतिनिधि है", भारतमें प्रचलित और 'कुरान' में बताये गये मुस्लिम कानूनको उलट देनेवाला होगा। मैंने मैकनॉटनकी 'मोहम्मडन लॉ' नामक पुस्तकके वसीयत-सम्बन्धी अध्यायोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा है। (यह पुस्तक, प्रसंगवश मैं कह दूँ, एक गैर-मुसलमान भारतीयने सम्पादित की है, और श्री बिन्स तथा मेसनने भारतसे लौटनेके बाद इसे मुस्लिम कानूनपर एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक बताया है।) मैंने 'कुरान' का वह अंश भी पढ़ा है, जो इस विषयसे सम्बन्ध रखता है। इन दोनोंमें मैंने एक शब्द भी ऐसा नहीं पाया, जिससे कि किसी मृत मुसलमानकी सम्पत्तिका कोई भाग पानेका हक गरीबोंको मिलता हो। अगर 'कुरान शरीफ' और उपर्युक्त पुस्तक उस कानूनकी जरा भी अधिकारी पुस्तकें हैं, तो विचाराधीन सम्पत्तिके किसी अंशपर गरीबोंका हक नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि किसी भी हालतमें, किसी भी बिला-वसीयत जायदादके अंशपर गरीबोंका कोई अधिकार नहीं है। मैं यह साबित कर सकनेकी आशा रखता हूँ कि जब भाई (सचमुच तो सौतेला भाई होना चाहिए) उस कानूनके अनुसार कुछ प्राप्त करता है, तब वह उसे अपने ही हकसे प्राप्त करता है और इसलिए प्राप्त करता है कि 'वह भाई है'।

सम्भवतः न्यायाधीश महोदय उत्तराधिकारके बारेमें बातें करते समय सचमुच परन्तु अनजाने खैरातके बारेमें सोच रहे थे, जो प्रत्येक मुसलमानके लिए लाजिमी है। खैरात मुसलमानोंकी ईश्वर-निष्ठाका एक अंग है। परन्तु जो सिद्धान्त जीवित अवस्थामें खैरातका निर्देश करता है, वह विरासतके बँटवारेपर लागू नहीं होता। जीवन-कालमें खैरात बाँटकर मुसलमान जन्नतका, या जन्नतमें आदरके योग्य स्थानका हक कमा लेता है। उसकी मौतके बाद सरकार द्वारा उसकी जायदादसे बाँटी गई खैरात उसे कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं पहुँचा सकती, क्योंकि यह काम तो उसका नहीं होता। किसी मुसलमानकी मृत्युके बाद उसकी जायदादपर तो उसके रिश्तेदारोंका पहला — नहीं, एकमात्र उनका ही — हक होता है।

'कुरान' का वचन है :

हमने मुकर्रर किया है कि माँ-बाप और रिश्तेदार अपनी मौतके बाद जो जायदाद छोड़ जायें उसका हिस्सा हर रिश्तेदारको मिले।

कानून कहता है:

> **मरनेवाले आदमीकी जायदादपर चार क्रमिक जिम्मेदारियाँ होती हैं —पहली, बिना फिजूल खर्चके, फिर भी बिना किसी कमीके, उस आदमीकी दफन-क्रिया वगैरा; दूसरी उसकी बची हुई जायदादसे उसके कर्जका भुगतान; फिर जो-कुछ बचे उसके एक-तिहाई हिस्सेसे उसकी वसीयतका भुगतान; और आखिरी, उसके बचे हुए धनका वारिसोंके बीच बँटवारा।**

वारिसोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है:

> **(१) कानूनी हिस्सेदार, (२) शेषके हिस्सेदार, (३) दूरके रिश्तेदार, (४) इकरारनामेकी बदौलत वारिस, (५) माने हुए रिश्तेदार, (६) सार्वजनीन विरासतदार, (७) सरकार या राजा।**

"कानूनी हिस्सेदारों" की व्याख्या इस प्रकार की गई है: "वे सब लोग, जिनको कुरानपाकके मुताबिक, परम्परासे या आम रायसे निश्चित हिस्सोंका अधिकारी माना गया हो।" और हिस्सेदारोंके बारह वर्गोंके बयानमें सौतेले भाई भी शामिल किये गये हैं। "शेषके हिस्सेदार" वे "सब लोग हैं, जिनके लिए कोई हिस्सा निश्चित नहीं किया गया और जो हिस्सेदारोंमें बँटवारा हो जानेके बाद बचा हुआ हिस्सा प्राप्त करते हैं, या अगर हिस्सेदार न हों तो सारी जायदादके अधिकारी होते हैं।" यहाँ यह बता देना होगा कि कुछ कानूनी हिस्सेदार कुछ खास परिस्थितियोंमें वारिस नहीं रहते और उस हालतमें वे शेषके हिस्सेदारोंमें शामिल हो जाते हैं। "दूरके रिश्तेदार" वे "सब रिश्तेदार हैं, जो न तो कानूनी हिस्सेदार हैं न शेषके हिस्सेदार हैं।" "हिस्सेदारोंका हिस्सा बँट जानेके बाद अगर मरे हुए व्यक्तिकी जायदादका कुछ हिस्सा बच जाये तो वह "शेषके अधिकारी कहलानेवाले दूसरे वर्गके लोगोंमें बाँटा जायेगा। अगर ऐसे शेषके अधिकारी न हों तो शेष जायदाद कानूनी हिस्सेदारोंमें उनके हिस्सोंके हिसाबसे बाँट दी जायेगी।"

मैं दूसरे वारिसोंकी परिभाषाएँ देकर आपके मूल्यवान स्थानको नहीं भरूँगा। इतना कहना काफी है कि उनमें गरीब शामिल नहीं किये गये हैं। गरीब केवल तभी कोई हिस्सा "ले" सकते हैं जब कि पहले तीन वर्गोंका निबटारा हो जाये।

शेषके अधिकारियोंमें दूसरे लोगोंके साथ "मृत व्यक्तिके पिताकी 'सन्तान' —अर्थात् भाई, सगोत्र भाई, और उनके पुत्र भी शामिल हैं, चाहे वे कितने भी नीचे दरजके क्यों न हों।" धारा १ का नियम १२ कहता है: "यह आम कायदा है कि बहनकी अपेक्षा भाई दूना हिस्सा पायेगा। इसमें अपवाद सिर्फ उन भाई-बहनोंके बारेमें है, जिनकी माता एक ही होनेपर भी पिता भिन्न हों।" और धारा ११ के नियम २५ में कहा गया है: "जहाँ केवल लड़कियाँ और लड़केकी लड़कियाँ ही हों और 'भाई' न हों, वहाँ लड़कियों और लड़केकी लड़कियोंके अपना हिस्सा पा लेनेपर जो-कुछ बचे वह बहनें पायेंगी। अगर लड़की या लड़केकी लड़की एक

ही हो तो यह शेष भाग आधा रहेगा, परन्तु उनकी संख्या दो या दोसे ज्यादा हो तो यह शेष एक-तिहाई रहेगा।" दोनों नियमोंको मिलाकर पढ़नेसे हमें यह निश्चय करनेमें बहुत मदद मिलती है कि प्रस्तुत विवादग्रस्त मामलेमें भाईका हिस्सा क्या है।

जिस पुस्तकसे मैंने ये उद्धरण दिये हैं उसमें नमूनोंके तौरपर ऐसे मामलोंके उदाहरण दिये गये हैं। निम्नलिखित उदाहरण अपने हलके साथ मिलता है: "उदाहरण ७ — पति, पुत्र, भाई और तीन बहनें।" हलको पूरे विस्तारके साथ उद्धृत करनेकी जरूरत नहीं है। शेषका अधिकारी होनेके कारण भाईको 'अपने हकसे' बीसमें से दो हिस्से मिलते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगा कि भाई, और उनके न होनेपर सौतेले भाई अपने ही अधिकारसे या तो हिस्सेदार होते हैं, या शेषके अधिकारी। इसलिए, प्रस्तुत विवादग्रस्त मामलेमें सर वॉल्टरके मतके प्रति अधिकतम आदरके बावजूद मुझे कहना होगा कि, अगर भाई कुछ 'लेता' ही है, तो वह अपने अधिकारसे 'लेता' है, न कि गरीबोंके प्रतिनिधियोंके रूपमें। और अगर वह नहीं 'लेता' (जो, अगर कानूनका पालन करना है तो ऐसे मामलेमें हो नहीं सकता), तो बची हुई जायदाद हिस्सेदारोंके बीच 'फिरसे बँट जाती' है।

परन्तु रिपोर्टमें कहा गया है कि मैं और काजी लोग भिन्न मतके हैं। अगर आप 'मैं' को निकाल दें और उसके स्थानपर 'कानून' को रख दें (क्योंकि मैंने तो सिर्फ यही कहा है कि कानून क्या है), तो मैं कहूँगा कि काजियोंके मत और कानूनमें फर्क होना ही नहीं चाहिए। और अगर फर्क होता है, तो कानूनको नहीं, काजीको मुँहकी खानी पड़ेगी। तथापि, अगर काजीने वैसा ही बँटवारा मंजूर किया है, जैसा कि श्री टैथमके पाससे मेरे पास आई हुई रिपोर्टमें बताया गया है, तो इस मामलेमें मेरे और काजीके बीच कोई मतभेद नहीं है। और श्री टैथमने रिपोर्टके साथ मुझे जो पत्र भेजा है उससे तो मालूम होता है कि काजीकी मंजूर की हुई बँटवारेकी योजना यही है। काजीने इस बारेमें एक शब्द भी नहीं कहा कि सौतेले भाईको गरीबोंके प्रतिनिधिके रूपमें जायदादका हिस्सा मिलना चाहिए।

आखिरी बात — रिपोर्ट देखनेके बाद, मैं खास तौरसे कुछ मुसलमान मित्रोंसे मिला। सर वॉल्टरके कथनानुसार उन्हें तो मुस्लिम कानूनका ज्ञान होना चाहिए। और जब मैंने उन्हें निर्णयके बारेमें बताया तो वे आश्चर्यमें पड़ गये। बात उन्हें इतनी साफ दिखलाई पड़ती थी कि उन्हें सोचनेमें कोई समय नहीं लगा। उन्होंने कहा, "गरीबोंको बिला-वसीयत जायदादका कभी कोई हिस्सा नहीं मिलता। सौतेले भाईको अपने ही हकसे हिस्सा मिलना चाहिए।"

इसलिए मेरा निवेदन है कि न्यायाधीशका निर्णय मुस्लिम कानून, काजीके मत और दूसरे मुस्लिम सज्जनोंकी रायके प्रतिकूल है। अगर किसी मृत मुसलमानकी सम्पत्तिके हिस्से, जिनपर उसके रिश्तेदारोंका अधिकार है, तबतक अटकाये रखे जायें, जबतक कि रिश्तेदार यह साबित न कर दें कि वे 'गरीबोंके प्रतिनिधि' हैं, तो यह

सरासर एक कठिनाई हो जायेगी। यह शर्त लगानेका मंशा तो कानूनमें कभी था ही नहीं, और न मुसलमानी रिवाजोंमें ही यह मंजूर-शुदा है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल विटनेस २८-३-१८९५

५९. स्मरणपत्र : प्रिटोरिया-स्थित एजेंटको[1]

प्रिटोरिया
१६ अप्रैल, १८९५

सेवामें

श्रीमान् सर जेकब्स डी'वेट, के० सी० एम० जी०
एजेंट, सम्राज्ञी-सरकार, प्रिटोरिया

गणराज्यके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी ओरसे समितिके रूपमें काम करनेवाले प्रिटोरिया-निवासी तैयबखाँ तथा अब्दुल गनी[2] और जोहानिसबर्ग निवासी हाजी हबीब हाजी दादाका स्मरणपत्र।

हम श्रीमान्‌से सादर निवेदन करते हैं कि सम्राज्ञी-सरकार और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य सरकारके बीच भारतीय प्रश्नका जो पंच-फैसला हाल ही ब्लूमफॉन्टीन —— ऑरेंज फ्री स्टेट —— में किया गया है, उसके बारेमें यह तय करनेके लिए परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त महोदयसे लिखा-पढ़ी की जाये कि क्या सम्राज्ञी-सरकार उससे संतोष मान लेगी। श्रीमान् जानते ही हैं, पंचने फैसला किया है कि १८८५ का कानून[3] ३ जिस

१. मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य-स्थित ब्रिटिश उच्चायुक्तके २९ अप्रैल, १८९५ के खरीता सं० २०४ का सहपत्र।

२. जोहानिसबर्गमें मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन पेढ़ीके साझीदार और प्रबन्धक।

३. ट्रान्सवालका एक कानून। इसके अनुसार "तथाकथित कुलियों, अरबों, मलायियों, और तुर्की साम्राज्यके मुसलमान प्रजाजनों" को अधिक समयतक नागरिकताके अधिकार पानेके अयोग्य ठहरा दिया गया था। उन्हें गणराज्यमें अचल सम्पत्ति खरीदनेका भी अधिकार नहीं था। बादमें फोक्सरॉड्के १८८७के प्रस्तावके अनुसार 'कुलियों' को अपवाद रूप मान लिया गया और उन्हें जमीन-जायदाद खरीदनेकी इजाजत तो दी गई, परन्तु अस्वच्छताका बहाना बनाकर यह तय कर दिया गया कि वे निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और पृथक् बस्तियोंमें ही जमीन-जायदाद खरीद सकते हैं। १८९३ में फोक्सराडने एक और प्रस्ताव पास करके तय किया कि सब एशियाइयोंको पृथक् बस्तियोंमें रहने और केवल वहीं व्यापार करनेके लिए बाध्य करना चाहिए। व्यापार करनेके लिए सरकारी दफ्तरमें नाम दर्ज (रजिस्टर) करना और तीन पौंडका शुल्क अदा करना जरूरी कर दिया गया। यह कानून लन्दन-समझौतेके विरुद्ध माना गया था।

रूपमें फोक्सराड[1] १८८६ के अधिनियमसे संशोधित हुआ है, इस सरकार द्वारा कार्यान्वित किया ही जाना चाहिए। उसने यह फैसला भी किया है कि जब कभी उक्त कानूनके आशयके बारेमें कोई झगड़ा उठे तो मतभेदका निर्णय गणराज्यका उच्च न्यायालय करे।

गणराज्य सरकारने पंचके सामने जो ग्रीन बुक्स[2] पेश की थीं उनमें से पुस्तक सं० २१८९४ के पृष्ठ ३१ और ३५ पर कुछ वक्तव्य दिये गये हैं। उनका आशय यह है कि उच्च न्यायालयके सामने पेश इस्माइल सुलेमान ऐंड कंपनीकी[3] कुछ अर्जियों पर निर्णय देते हुए मुख्य न्यायाधीशने कहा है कि जिन जगहोंमें व्यापार किया जाता है और जहाँ भारतीय निवास करते हैं उनमें कोई फर्क नहीं माना जा सकता। इन तथ्योंकी दृष्टिसे हम, उच्च न्यायालयकी मानहानि किये बिना, सादर निवेदन करते हैं कि यदि मुख्य न्यायाधीशके निर्णयसे सम्बन्ध रखनेवाला उपर्युक्त कथन सही है, तो तय है कि उपर्युक्त कानूनके मातहत जो भी मामला अदालतमें जायेगा उसका फैसला सम्राज्ञीकी गणराज्यवासी भारतीय प्रजाके विरुद्ध होगा। इस तरह, जो मामला समर्पण-पत्रके निर्देशोंके अनुसार पंचको सौंपा गया था उसका निर्णय उसने नहीं किया, बल्कि अमली तौरपर उसे गणराज्यके उच्च न्यायालयके निर्णयके लिए छोड़ दिया है। इसलिए हम आदरपूर्वक कहेंगे कि जहाँतक पंचको दिये गये निर्देशोंका सम्बन्ध है, उसने मामलेका निर्णय किया ही नहीं। अतएव श्रीमान्से हमारा सादर निवेदन है कि सम्राज्ञी-सरकारसे पत्र-व्यवहार करके जाना जाये कि क्या वह उपर्युक्त निर्णयसे संतोष मानेगी और उसे स्वीकार कर लेगी।

तैयब हाजी खानमुहम्मद
अब्दुल गनी
हाजी हबीब हाजी दादा

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सं० ४१७, खण्ड १४८।

१. कभी-कभी संक्षिप्त रूपमें 'राड'; इस दक्षिण आफ्रिकी शब्दका अर्थ ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेटमें राष्ट्रीय विधान-सभा है।

२. विवरण पुस्तिकाएँ।

३. यह एक ऐसा मामला था, जिसमें इस्माइल सुलेमान नामक एक अरब व्यापारीको, १८८८ में, पृथक् बस्ती छोड़कर अन्यत्र व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया था। जब ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशको पंच नियुक्त किया गया, तो उन्होंने फैसला दिया कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यको इस सम्बन्धमें १८८५ के कानून ३ का, देशकी अदालतें जैसी व्याख्या कर दें उस रूपमें, अमल करानेका पूरा अधिकार है। बादमें ट्रान्सवालकी सर्वोच्च अदालतने इस निर्णयको पलट दिया और फैसला किया कि सरकारको एशियाइयोंको परवाने न देनेका अधिकार नहीं है।

६०. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभाको[1]

[डर्बन
५ मई, १८९५ से पूर्व]

सेवामें

माननीय अध्यक्ष तथा सदस्यगण
विधानसभा, नेटाल

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, नेटालवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र
नम्र निवेदन है कि,

हम इस उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीयोंके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें आपकी माननीय विधानसभाकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं। उक्त विधेयक इस समय आपके विचाराधीन है।

प्रार्थियोंका सादर निवेदन है कि विधेयकके जिस अंशमें गिरमिटको फिरसे नया करने और उसे मंजूर न करनेवालोंपर कर लगानेकी व्यवस्था है, वह स्पष्टतः अन्यायपूर्ण, बिलकुल अनावश्यक और ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंका सीधा विरोधी है।

विधेयक अन्यायपूर्ण है, इसको सिद्ध करनेके लिए, प्रार्थियोंका निवेदन है कि बहुत कहनेकी जरूरत नहीं है। गिरमिटकी अधिकतम अवधिको पाँच वर्षसे अनिश्चित काल तकके लिए बढ़ा देना अपने-आपमें ही अन्यायपूर्ण है, क्योंकि इससे गिरमिटिया भारतीयोंके मालिकोंके सामने कठोर व्यवहार करने अथवा अत्याचार करनेका ज्यादा प्रलोभन पैदा होता है। उपनिवेशवासी मालिक लोग कितने भी दयालु क्यों न हों, वे रहेंगे तो हमेशा मनुष्य ही। और प्रार्थियोंके लिए यह बताना जरूरी नहीं कि जब मनुष्य स्वार्थकी प्रेरणासे काम करने लगता है तो उसका स्वभाव कैसा बन जाता है। इसके अलावा, प्रार्थी यह भी कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि उपर्युक्त विधेयक बिलकुल एकतरफा है। उससे मालिकको तो प्रत्येक रियायत मिलती है, मगर मजदूरको बदलेमें लगभग कुछ भी नहीं मिलता।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि विधेयक अनावश्यक है, क्योंकि उसके पेश किये जानेका कोई कारण मौजूद नहीं है। उसका उद्देश्य उपनिवेशको किसी आर्थिक विनाशसे बचाना नहीं, और न किसी उद्योगकी उन्नतिमें मदद करना ही है। उलटे, जिन उद्योगोंके लिए भारतीय मजदूरोंकी विशेष आवश्यकता थी, उन्हें अब किसी असाधारण सहायताकी आवश्यकता नहीं रही। इस बातको मंजूर किया जा चुका है और १०,००० पौंड सहायताकी व्यवस्था अभी गत वर्ष ही रद की गई है। इससे साफ है कि ऐसे कानूनकी कोई सच्ची जरूरत नहीं है।

१. यह प्रार्थनापत्र **नेटाल ऐडवर्टाइज़रके** ५ मई, १८९५ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

यह बतानेके लिए कि विधेयक ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंका प्रत्यक्ष विरोधी है, प्रार्थी आपकी माननीय सभाका ध्यान गत एक शताब्दीकी उन बड़ी-बड़ी घटनाओंकी ओर आकर्षित करते हैं, जिनमें ब्रिटेनने प्रमुख भाग लिया है। जबरिया मजदूरी ब्रिटिश परम्पराओंके सदैव प्रतिकूल रही है — भले ही वह गुलामीके भयानकतम रूपसे लेकर सौम्यतम ढंगकी बेगारतक कैसी भी क्यों न रही हो। और जहाँतक सम्भव हो सका है, हर जगह उसका उच्छेद कर दिया गया है। गिरमिटिया प्रथा इस उपनिवेशके जैसी असममें भी है। अभी थोड़े ही समय पहले सम्राज्ञीकी सरकारने स्वीकार किया था कि गिरमिटिया प्रथा एक बुरी चीज है, और उसे तभीतक बरदाश्त किया जाना चाहिए जबतक कि वह किसी महत्त्वपूर्ण उद्योगको शुरू करने या सँभालनेके लिए आवश्यक हो, और पहला अनुकूल अवसर आते ही उसको मिटा देना चाहिए। प्रार्थियोंका आदरपूर्वक निवेदन है कि विचाराधीन विधेयक उपर्युक्त सिद्धान्तोंको भंग करनेवाला है।

यदि गिरमिटकी अवधि बढ़ानेका प्रस्ताव अन्यायपूर्ण, अनावश्यक और ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंका विरोधी है (जैसा कि आपके प्रार्थियोंको आशा है, उन्होंने आपकी सम्माननीय सभाके सामने संतोषजनक रूपमें सिद्ध कर दिया है), तो कर लगानेका प्रस्ताव और भी ज्यादा वैसा है। यह तो दीर्घ कालसे स्वयंसिद्ध सत्य माना जा चुका है कि करका प्रयोजन सिर्फ सरकारी आय है। प्रार्थियोंके नम्र विचारसे, यह तो एक क्षणके लिए भी नहीं कहा जा सकता कि प्रस्तावित करका लक्ष्य कोई ऐसा प्रयोजन सिद्ध करना है। प्रस्तावित करका संकल्पित अभिप्राय भारतीयोंको अपने गिरमिटकी अवधि पूरी कर लेनेपर उपनिवेशसे खदेड़ देना है। इसलिए यह कर निषेधक होगा और मुक्त व्यापारके सिद्धान्तोंके विरुद्ध बैठेगा।

इसके अतिरिक्त, प्रार्थियोंको अंदेशा है कि गिरमिटिया भारतीयोंको इससे अनुचित कष्ट पहुँचेगा, क्योंकि भारतसे सारा नाता तोड़कर सपरिवार यहाँ आये हुए भारतीयोंके लिए फिरसे भारत जाकर वहाँ जीविकोपार्जन करनेकी आशा करना बिलकुल असंभव है। प्रार्थी अपने अनुभवसे यह कहनेकी आज्ञा चाहते हैं कि साधारणतः वे भारतीय ही गिरमिट प्रथाके मातहत इस उपनिवेशमें आते हैं जो भारतमें काम करके अपना उदर-पोषण नहीं कर सकते। भारतीय समाजका ताना-बाना ही ऐसा है कि भारतीय अपना घर छोड़ते ही नहीं। जब वे एक बार घर छोड़नेको बाध्य हो जाते हैं, तो वे भारत लौटकर धन कमानेकी तो बात दूर, अपनी रोटी कमा लेनेकी भी आशा नहीं कर सकते।

यह तो माना हुआ सत्य है कि मजदूर उपनिवेशकी समृद्धिके लिए अनिवार्य हैं। अगर ऐसा है, तो प्रार्थियोंका निवेदन है कि जो भारतीय उपनिवेश समृद्धि बढ़ानेमें इतनी ठोस सहायता पहुँचाते हैं वे बेहतर रियायतके हकदार हैं।

कहना न होगा कि यह विधेयक एक वर्ग-विशेषसे सम्बन्ध रखनेवाला है। भारतीयोंके विरुद्ध उपनिवेशमें मौजूद द्वेषको यह उत्तेजन देता है और उसे बढ़ाता है। इस तरह यह ब्रिटिश प्रजाके दो वर्गोंके बीचकी खाईको चौड़ा करेगा। इसलिए

प्रार्थी विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आपकी सम्माननीय विधानसभा यह फैसला करे कि गिरमिटको पुनः नया करने और कर लगानेसे सम्बन्ध रखनेवाला विधेयकका अंश ऐसा नहीं है, जिसपर आपकी सम्माननीय विधानसभा अनुकूल विचार कर सके। और न्याय तथा दयाके कार्यके लिए प्रार्थी सदैव दुआ करेंगे, आदि।

अब्दुल्ला हाजी आदम
और अन्य अनेक

अंग्रेजी (एस० एन० ४३४) की फोटो-नकलसे।

६१. प्रार्थनापत्र : लॉर्ड रिपनको[1]

प्रिटोरिया
दक्षिण आफ्रिकाकी गणराज्य
[५ मई, १८९५ से पूर्व][2]

सेवामें

श्रीमान् परमश्रेष्ठ मार्क्विस ऑफ रिपन
सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश मन्त्री, लंदन

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी ब्रिटिश भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें प्रार्थियोंकी जो स्थिति है और खास तौरसे भारतीयोंके मामलेमें ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके हाल ही दिये गये पंच-फैसलेका उसपर जो असर पड़ा है, उसके सम्बन्धमें प्रार्थी महानुभावके सामने आदरपूर्वक यह प्रार्थनापत्र पेश करनेकी इजाजत लेते हैं।

(२) आपके प्रार्थी चाहे व्यापारी हों, चाहे दूकानदारोंके सहायक, फेरीवाले, रसोइये, हजूरिये, या मजदूर, सारे ट्रान्सवालमें बिखरे हुए हैं। और जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें तो वे सबसे बड़ी संख्यामें बसे हैं। व्यापारी लगभग २०० हैं। उनकी चुकता पूँजी १,००,००० पौंड होगी। उनकी करीब तीन पेढ़ियाँ इंग्लैंड, डर्बन, पोर्ट एलिजाबेथ, भारत तथा अन्य स्थानोंसे सीधे माल आयात करती हैं। इस तरह दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें उनकी शाखाएँ हैं, जिनका अस्तित्व मुख्यतः उनके ट्रान्सवालके व्यापारपर निर्भर करता है। शेष लोग छोटे-छोटे विक्रेता हैं। उनकी दूकानें विभिन्न स्थानोंमें हैं। गणराज्यमें लगभग २,००० फेरीवाले हैं। वे माल खरीदकर, घर-घर घूमकर बेचते हैं। और इन प्रार्थियोंमें जो लोग मजदूर हैं वे यूरोपीयोंके घरों या होटलोंमें साधारण नौकरोंके कामपर लगे हुए हैं। उनकी संख्या लगभग १,५०० है। उनमें से लगभग १,००० जोहानिसबर्गमें रहते हैं।

१. सर जेकब्स डी वेटने इसे ३० मई, १८९५ को केपटाउन-स्थित उच्चायुक्तके पास भेजा था।
२. देखिए "पत्र : मु० का० कमरुद्दीनको", ५-५-१८९५।

(३) राज्यमें उनकी जो चिन्ताजनक स्थिति है उसकी विवेचनामें उतरनेके पहले प्रार्थी अत्यन्त आदरपूर्वक महानुभावको बताना चाहते हैं कि यद्यपि हमारा हिताहित दाँवपर चढ़ा था, हमसे पंच-फैसलेके बारेमें कभी एक बार भी सलाह नहीं की गई। हम यह भी बताना चाहते हैं कि जिस क्षण पंच-फैसलेका विषय छेड़ा गया था, उसी क्षण हमने पंच-फैसलेके सिद्धान्त और पंचके चुनाव दोनोंपर आपत्ति प्रकट की थी। आपत्ति जबानी तौरपर प्रिटोरिया-स्थित ब्रिटिश एजेंटको सूचित कर दी गई थी। हम इस अवसरपर यह कह देना चाहते हैं कि ट्रान्सवालके भारतीयोंकी शिकायतोंके बारेमें जिन प्रार्थियोंको समय-समयपर ब्रिटिश एजेंट महोदयकी सेवामें उपस्थित होनेका मौका पड़ा है, उनसे वे सदैव अत्यन्त शिष्टतासे मिले हैं और उनकी बातें उन्होंने उतने ही ध्यानसे सुनी हैं। प्रार्थी महानुभावका ध्यान इस बातकी ओर भी आकर्षित करते हैं कि सम्राज्ञीके केपटाउन स्थित उच्चायुक्तके पास एक लिखित विरोधपत्र भी भेजा गया था। तथापि, इस विषयकी चर्चा करनेमें प्रार्थियोंकी इच्छा ऑरेंज फ्री स्टेटके विद्वान् मुख्य न्यायाधीशकी उच्चाशयता अथवा ईमानदारीपर आक्षेप करनेकी जरा भी नहीं है। वे सम्राज्ञीके अफसरोंकी बुद्धिमत्तापर भी कोई आक्षेप करना नहीं चाहते। विद्वान् मुख्य न्यायाधीशके भारतीय-विरोधी रुखसे प्रार्थी परिचित थे, अतएव उन्होंने सोचा, और अब भी उनका यही नम्र खयाल है कि न्यायाधीश महोदय जोरदार प्रयत्न करनेपर भी प्रश्नपर संतुलित विचार नहीं कर सकते थे, जो किसी भी मामलेको सही और उचित रूपसे समझनेके लिए बहुत जरूरी है। ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि पूर्व मामलोंका परिचय रखनेवाले न्यायाधीशोंने इस तरहके मामलोंका फैसला करनेसे अपने हाथ खींच लिए हैं क्योंकि उन्होंने सोचा कि कहीं वे पहलेसे जमी हुई धारणाओं अथवा पूर्वग्रहोंके कारण गलत निर्णय न कर डालें।

(४) सम्राज्ञी-सरकारकी ओरसे विद्वान् पंचको मामलेके सम्बन्धमें निम्नलिखित निर्देश दिया गया था :

पंचको स्वतंत्रता होगी कि वह सम्राज्ञी-सरकार और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य-सरकारकी ओरसे पेश किये गये दावोंमें से किसी एकके पक्षमें फैसला दे दे। वह उक्त अध्यादेशोंको विचाराधीन विषय सम्बन्धी खरीतोंके साथ पढ़कर उनपर भी अपनी समझके अनुसार उचित निर्णय देनेको स्वतन्त्र है।

(५) पंच-फैसला, पत्रोंमें जैसा प्रकाशित हुआ है, यों है :

(क) सम्राज्ञी-सरकार और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके दावे खारिज किये जाते हैं। वे सिर्फ निम्नलिखित हद और अंशतक स्वीकार्य हैं, अर्थात् :

(ख) दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यको अधिकार है और वह बाध्य है कि भारतीय व्यापारियोंके प्रति व्यवहार करनेमें फोक्सराड द्वारा १८८६ में संशोधित १८८५ के कानून सं० ३ को पूरा-पूरा अमलमें लाये। जो अन्य एशियाई व्यापारी ब्रिटिश प्रजाजन हों उनके साथ भी ऐसा ही किया जाये। शर्त यह है कि (किसी व्यक्तिके द्वारा या उसकी ओरसे आपत्ति उठाई जानेपर कि उसके

साथ किया जानेवाला व्यवहार संशोधित कानूनके अनुकूल नहीं है) देशके साधारण न्यायाधिकरणोंका निर्णय अन्तिम होगा।

(६) अब, प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि उपर्युक्त निर्णय विचारणीय विषयोंके अनुकूल न होनेके कारण निःसत्त्व है। इसलिए सम्राज्ञी-सरकार उसे माननेके लिए बाध्य नहीं है। जिस उद्देश्यको लेकर पंच-फैसला करानेका निश्चय किया गया था वह स्वयं ही विफल हो गया है। आदेश-पत्र पंचको यह विकल्प देता है कि वह या तो किसी एक सरकारके दावेको सही करार दे दे, या अध्यादेशोंकी ऐसी व्याख्या कर दे, जो प्रस्तुत विषय सम्बन्धी खरीतोंका ध्यान रखते हुए, उसे सही जँचे। विद्वान् पंचने स्वयं व्याख्या करनेके बजाय उसकी जिम्मेदारी दूसरोंको सौंप दी है। फिर, यह जिम्मेदारी ऐसे लोगोंतक सीमित रखी गई है, जिनका पद ही उन्हें उन तमाम प्रमाणों और प्रक्रियाओंका उपयोग करने नहीं दे सकता, जिनका उपयोग इस कार्यके लिए किया जा सकता है। इतना ही नहीं, जिनका उपयोग करनेका पंचने खास निर्देश भी किया है और, जिनकी सहायतासे वे शायद ठीक कानूनी तो नहीं, मगर न्यायपूर्ण और उचित व्याख्या कर सकेंगे।

(७) हमारा निवेदन है कि निर्णय दो आधारोंपर अवैध है। पहले तो इसलिए कि पंचने अपना अधिकार दूसरोंको सौंप दिया है। यह दुनियाका कोई पंच नहीं कर सकता। दूसरे, पंचने निर्देशोंका पालन नहीं किया, क्योंकि उसे जिस प्रश्नका निर्णय करनेका विशेष आदेश दिया गया था उसे उसने अनिर्णीत ही छोड़ दिया है।

(८) स्पष्ट है कि उद्देश्य यह नहीं था कि व्याख्याके प्रश्नका निर्णय अदालतमें कराया जाये, बल्कि यह था कि उसे हमेशाके लिए समाप्त कर दिया जाये। अगर ऐसा न होता तो सम्राज्ञी-सरकार व्याख्याके प्रश्नको लेकर इतना पत्र-व्यवहार कदापि न करती, जो ट्रान्सवाल ग्रीन बुक्स सं० १ और २ — सन् १८९४ में पाया जाता है। हमारा निवेदन है कि जिस प्रश्नका निर्णय सिर्फ कूटनीतिक और राजनीतिक तरीके पर होना था, और हो सकता है, उसका निर्णय, अगर पंच-फैसलेको वैध माना जाये तो, सिर्फ अदालती तरीकेके लिए छोड़ दिया गया है। और, जैसा कि सरकारकी ओरसे पेश किये गये मामलेमें खास तौरसे कहा गया है, ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशने इस्माइल सुलेमानके मामलेमें इस विषयपर अपना मत पहले ही व्यक्त कर दिया है। अगर यह सच है कि तो इस प्रश्नका फैसला क्या होगा, यह तय-सा ही है। इसके प्रमाणके लिए प्रार्थी महानुभावका ध्यान उन दिनोंके समाचारपत्रों, खास तौरसे 'जोहानिसबर्ग टाइम्स' (साप्ताहिक संस्करण) के २७ अप्रैल, १८९५ के अंककी ओर आकर्षित करते हैं।

(९) परन्तु महानुभावके प्रति प्रार्थियोंके निवेदनका आधार ज्यादा ऊँचा और ज्यादा व्यापक है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रश्नका असर सम्राज्ञीके हजारों प्रजाजनोंपर पड़ता है, जिसके उचित हलपर सैकड़ों ब्रिटिश प्रजाजनोंकी रोटीका सवाल निर्भर है और जिसके कानूनी हलसे सैकड़ों कुटुम्ब बरबाद तथा पैसे-पैसेके मुहताज हो सकते हैं, उसे महज अदालतके फैसलेके लिए न छोड़ा जायेगा जहाँ हर आदमीके

हाथ बँधे होते हैं और इस तरहके विचारोंकी गुंजाइश नहीं होती। अगर ट्रान्सवाल सरकारका ही पक्ष आखिरकार बहाल रखा गया तो जहाँतक व्यापारियोंका सम्बन्ध है, उसका अर्थ न सिर्फ उनका ही सर्वथा विनाश होगा, बल्कि ट्रान्सवाल और भारत दोनोंमें रहनेवाले और उनपर निर्भर करनेवाले उनके रिश्तेदारों और नौकरोंका भी सर्वनाश होगा। महानुभाव देखेंगे कि प्रार्थियोंके खिलाफ कुछ स्वार्थी लोगोंने गलत प्रचार किया है। अगर प्रार्थियोंको बिना किसी अपराधके, केवल उस प्रचारके ही कारण उनकी वर्तमान जगहोंसे खदेड़ दिया गया तो उनमें से कुछके लिए, जो लम्बे समयसे ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहे हैं, उदर-पोषणके नये स्थान खोजना और जीवन-निर्वाह करना बिलकुल असम्भव हो जायेगा।

(१०) प्रश्न बहुत गंभीर है, और बहुत अधिक हित दाँवपर हैं। इसलिए हम महानुभावके विचारके लिए अपनी स्थितिका थोड़ा विस्तृत विवरण नीचे दे रहे हैं। हमारा नम्र अनुरोध है कि महानुभाव उसपर पूरा-पूरा ध्यान दें।

(११) १८८१ के[1] समझौतोंकी १४ वीं उपधाराका जो 'देशी लोगोंको छोड़कर शेष सबके हितोंका समान' रूपसे संरक्षण करती है, उल्लंघन दुर्भाग्यपूर्ण है और वह इस धारणासे किया गया है कि भारतीय आवश्यक स्वच्छताका पालन नहीं करते। यह धारणा गिने-चुने स्वार्थी लोगोंके गलत प्रचारके कारण बँधी है। १८८५ के तीसरे कानून-सम्बन्धी सारे पत्र-व्यवहारमें सम्राज्ञी-सरकारने जोरोंके साथ कहा है कि जनताके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भारतीयोंके लिए पृथक् गलियाँ भले ही निश्चित कर दी जायें, परन्तु उन्हें शहरोंके कुछ निश्चित भागोंमें ही व्यापार करनेके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। १८८५ के कानून ३ का कुछ दिनों जोरोंसे विरोध करनेके बाद तत्कालीन उच्चायुक्त सर एच० रॉबिन्सनने १८८६ के संशोधनका विरोध समेटते हुए अपने २६ सितम्बर, १८८६ के पत्र (ग्रीन बुक स० १, १८९४, पृष्ठ ४६) में कहा: "यद्यपि संशोधित कानून अब भी लंदन-समझौतेकी[2] १४ वीं धाराका भंग करनेवाला है, महानुभावके इस मतके कारण कि वह 'जनताके स्वास्थ्यकी रक्षा'के लिए आवश्यक है, मैं सम्राज्ञी-सरकारको उसका और विरोध करनेकी सलाह नहीं दूँगा।" पंचके हाथों मामलेके सौंपे जाने तथा १८८५ के कानून ३ सम्बन्धी उल्लेखसे भी साफ यही मालूम होता है कि समझौतेसे हटनेकी अनुमति केवल स्वच्छताके कारणोंसे दी गई थी।

(१२) प्रार्थी अत्यन्त आदरके साथ किन्तु जोरदार शब्दोंमें इस मान्यताका विरोध करते हैं कि ऐसे समझौता-त्यागके लिए स्वच्छता-सम्बन्धी कारण मौजूद हैं। प्रार्थियोंको आशा है कि वे सिद्ध कर सकते हैं, ऐसे कोई कारण मौजूद नहीं हैं।

(१३) प्रार्थी इसके साथ डाक्टरोंके तीन प्रमाणपत्र नत्थी कर रहे हैं। ये प्रमाणपत्र स्वयंस्पष्ट हैं। इनसे मालूम होता है कि भारतीयोंके मकान स्वच्छताकी

१ व २. यहाँ १८८४ होना चाहिए। बोअरों और ब्रिटिशोंके बीच लन्दन समझौतेपर २७ फरवरी, १८८४ को हस्ताक्षर हुए थे। धारा १४ के द्वारा देशी लोगोंको छोड़कर शेष सबको दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य (या ट्रान्सवाल) में प्रवेश, यात्रा, निवास, सम्पत्ति खरीदने और व्यापार करनेकी स्वतन्त्रताका आश्वासन दिया गया था। बोअर सरकारने 'देशी लोगों' का अर्थ यह लगानेका प्रयत्न किया कि उसमें भारतीय भी शामिल हैं; मगर ब्रिटिश सरकारने यह भाष्य स्वीकार नहीं किया।

दृष्टिसे यूरोपीयोंके मकानोंसे किसी तरह ओछे नहीं पड़ते। (परिशिष्ट क, ख, ग)। प्रिटोरियामें प्रार्थियोंके मकानों और वस्तु-भंडारोंके अगल-बगल यूरोपीयोंके मकान और वस्तु-भंडार भी मौजूद हैं। अतएव हम चुनौती देते हैं कि हमारे मकानोंकी उन यूरोपीयोंके मकानोंसे तुलना की जाये जो हमारे पड़ोसमें रहते हैं।

(१४) निम्नलिखित बेमाँगा प्रमाणपत्र अपनी बात आप ही कहेगा। १६ अक्तूबर, १८८५ को स्टैंडर्ड बैंकके तत्कालीन संयुक्त प्रबंधक श्री मिचेलने उच्चायुक्त सर एच० रॉबिन्सनको लिखा था :

> **अगर मैं यह कहूँ तो अनुचित न माना जायेगा कि जहाँतक मैं जानता हूँ, वे (भारतीय व्यापारी) सबके-सब हर तरहसे व्यवस्थित, उद्योगी और इज्जतदार हैं। उनमें से कुछ ऊँची स्थितिके और धनवान व्यापारी हैं। मॉरीशस, बम्बई तथा दूसरे स्थानोंमें उनकी बड़ी-बड़ी पेढ़ियाँ हैं (ग्रीन बुक १, पृ० ३७)।**

(१५) लगभग ३५ सुविख्यात यूरोपीय पेढ़ियाँ

स्पष्ट घोषणा करती हैं कि उपर्युक्त भारतीय व्यापारी, जिनमें से अधिकांश बम्बईसे आये हैं, अपने व्यापार और रहनेके स्थानोंको स्वच्छ तथा स्वास्थ्य-नियमोंके अनुकूल रखते हैं। वास्तवमें वे उन्हें उतनी ही अच्छी हालतमें रखते हैं, जितनी अच्छी हालतमें यूरोपीय रखते हैं। (परिशिष्ट घ)

(१६) फिर भी, यह सही है कि ये बातें समाचारपत्रोंमें प्रकशित नहीं होतीं। समाचारपत्र मानते हैं कि आपके प्रार्थी "गन्दे कीड़े" हैं। फोक्सराडको जो अर्जियाँ भेजी जाती हैं उनमें भी यही कहा जाता है। कारण स्पष्ट हैं। इन सब बहसोंमें भाग लेने या अपने बारेमें की जानेवाली तमाम गलतबयानियोंसे परिचित रहने योग्य अंग्रेजी न जाननेके कारण, प्रार्थी हमेशा ऐसे प्रचारका खंडन करनेकी स्थितिमें नहीं होते। वे तभी यूरोपीय पेढ़ियों और डाक्टरोंके पास अपनी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतोंके बारेमें उनका अभिप्राय माँगने गये, जबकि उन्होंने देखा कि उनका अस्तित्व ही खतरेमें है।

(१७) परन्तु प्रार्थियोंको भी अपने बारेमें स्वयं निवेदन करनेका अधिकार तो है ही। वे समझ-बूझकर और निस्संकोच कह सकते हैं कि सामूहिक रूपमें उनके मकान भले ही भद्दे हों, और निस्सन्देह वे सजे-धजे तो हैं ही नहीं, फिर भी सफाईकी दृष्टिसे वे यूरोपीयोंके मकानोंकी अपेक्षा किसी तरह ओछे नहीं हैं। और जहाँतक उनकी व्यक्तिगत आदतोंका सम्बन्ध है, वे पूरे विश्वासके साथ कह सकते हैं कि वे ट्रान्सवाल-वासी यूरोपीयोंकी अपेक्षा, जिनके साथ उनका बार-बार सम्बन्ध आता है, ज्यादा पानी काममें लाते हैं, और ज्यादा बार स्नान करते हैं। परन्तु, प्रार्थियोंकी यह इच्छा जरा भी नहीं कि वे तुलना करके अपने-आपको अपने यूरोपीय भाइयोंसे श्रेष्ठ सिद्ध करनेका प्रयत्न करें। यहाँ उन्हें जो यह तुलनाका मार्ग अंगीकार करना पड़ा है उसका एकमात्र कारण परिस्थितियोंकी मजबूरी है।

(१८) ग्रीन बुकके पृष्ठ १९-२१ पर दी हुई दो अच्छी-खासी अर्जियोंमें सब एशियाइयोंको पृथक् कर देनेकी प्रार्थना की गई है। उनमें तमाम एशियाइयों, चीनियों आदिको समग्र रूपमें धिक्कारा गया है और इसी कारण उपर्युक्त बातें कहना बिलकुल जरूरी हो गया। पहली अर्जीमें उन भयानक दुर्गुणोंको गिनाया गया है जो उसमें कहे अनुसार, चीनियोंमें विशेष रूपसे हैं। दूसरी अर्जीमें पहलीका उल्लेख करते हुए तमाम एशियाइयोंको शामिल कर लिया गया है, और उन्हें धिक्कारा गया है। इसमें चीनियों, कुलियों और अन्य एशियाइयोंकी खास तौरसे चर्चा करते हुए "इन लोगोंकी गन्दी आदतों और अनैतिक चरित्रसे उत्पन्न कोढ़, उपदंश तथा इसी तरहके अन्य घृणित रोगोंके कारण समाजके समक्ष उपस्थित खतरे" का उल्लेख किया गया है।

(१९) अधिक तुलनामें न उतरकर, और चीनियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नमें न जाकर, प्रार्थी अत्यन्त बलपूर्वक निवेदन करते हैं कि जहाँतक प्रार्थियोंका सम्बन्ध है, उपर्युक्त आरोप पूर्णतः निराधार है।

(२०) स्वार्थी आन्दोलनकारी कहाँतक गये हैं, यह बतानेके लिए प्रार्थी नीचे एक प्रार्थनापत्रका अंश उद्धृत करते हैं। यह प्रार्थनापत्र ऑरेंज फ्री स्टेटकी संसदको दिया गया था। इसकी एक नकल प्रिटोरिया व्यापार संघकी सम्मतिसे ट्रान्सवाल सरकारको भेजी गई थी :

> **ये लोग पत्नियों या स्त्री-सम्बन्धियोंके बिना राज्यमें आते हैं, इसलिए परिणाम स्पष्ट है। इनका धर्म इन्हें सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है—। (ग्रीन बुक सं० १, १८९४, पृ० ३०)।**

(२१) प्रार्थी पूछते हैं कि क्या भारतके महान् धर्मोंपर इससे भी ज्यादा निरंकुश कोई लांछन, या भारत राष्ट्रका इससे भी बड़ा कोई अपमान हो सकता है?

(२२) उल्लिखित 'ग्रीन बुक्स'से दीख पड़ेगा कि भारतीयोंके खिलाफ मामला तैयार करनेमें इसी तरहके कथनोंका उपयोग किया गया है।

(२३) सच्चा और एकमात्र कारण हमेशा छिपाया गया है। प्रार्थियोंको लाचार करने या उनके सम्मानके साथ जीविका उपार्जित करनेके मार्गमें हर प्रकारकी बाधा डालनेका एकमात्र कारण व्यापारिक ईर्ष्या है। सारीकी-सारी जिहाद प्रायः उन्हीं प्रार्थियोंके विरुद्ध है जो व्यापारी हैं। वे अपनी होड़से और अपनी मितव्ययी आदतोंके कारण जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके भाव घटानेमें समर्थ हुए हैं। यह यूरोपीय व्यापारियोंके अनुकूल नहीं पड़ता। वे तो भारी मुनाफा कमाना चाहते हैं। भारतीयोंकी आदतें सीधी-सादी हैं। इसलिए वे थोड़े-से लाभसे सन्तुष्ट रहते हैं। उनके विरुद्ध आन्दोलनका एकमात्र कारण यही है। दक्षिण आफ्रिकामें हर कोई इसे भलीभाँति जानता है। दक्षिण आफ्रिकाके पत्रोंसे भी जाना जा सकता है कि बात ऐसी ही है। वे कभी-कभी स्पष्ट कहकर द्वेषभावको सच्चे रूपमें प्रकट कर देते हैं। भारतीयोंके प्रश्नको तिरस्कारके साथ 'कुलियोंका प्रश्न' कहा जाता है। उसकी चर्चा करते

हुए और यह बतानेके बाद कि सच्चा 'कुली' दक्षिण आफ्रिकाके लिए अनिवार्य है, 'नेटाल एडवर्टाइजर' ने १५ सितम्बर, १८९३ के अंकमें ये उद्‌गार व्यक्त किये थे :

> **भारतीय व्यापारियोंका दमन करनेके और सम्भव हो तो उन्हें बाध्य करनेके कदम जितनी जल्दी उठाये जायें उतना ही अच्छा। ये लोग असली घुन हैं, जो समाजका कलेजा खाये जा रहे हैं।**

(२४) और भी, ट्रान्सवाल सरकारके मुखपत्र 'प्रेस' ने इस प्रश्नकी विवेचना करते हुए लिखा है : "अगर एशियाई आक्रमण समयपर न रोका गया तो यूरोपीय दूकानदारोंको गरदनियाँ दे दी जायेंगी, जैसा कि नेटालमें और केप कालोनीके अनेक भागोंमें हुआ है।" यह पूराका-पूरा लेख बड़ा मनोरंजक है और दक्षिण आफ्रिकामें गैर-गोरे लोगोंके प्रति यूरोपीयोंकी भावनाओंका यह एक अच्छा नमूना है। यद्यपि इसका साराका-सारा रुख ही होड़से पैदा हुए भयका सूचक है, फिर भी यह हिस्सा लाक्षणिक है :

> **अगर ये लोग हमारे ऊपर छा ही जानेवाले हैं, तो यूरोपीयोंका व्यापार करना असम्भव हो जायेगा। और, जिन लोगोंमें उपदंश तथा कोढ़ सामान्य रोग हैं, घृणित अनैतिकता जीवनकी साधारण चर्या है, उनके विशाल समुदायके निकट सम्पर्कसे अनिवार्य भयानक खतरा हममें से प्रत्येक व्यक्तिपर आ टूटेगा।**

(२५) और फिर भी, इसके साथ संलग्न प्रमाणपत्रमें डा० वीलने अपना समझा-बूझा अभिप्राय यह दिया है कि "निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं"। (परिशिष्ट क)

(२६) इसके अलावा, उक्त डाक्टरने लिखा है कि "प्रत्येक राष्ट्रके एक या अधिक रोगी तो कभी न कभी संक्रामक रोगोंके अस्पतालमें रहे, परन्तु भारतीय कभी एक भी नहीं रहा।" जोहानिसबर्गके दो डाक्टरोंके प्रमाणपत्र इस आशयके भी हैं कि भारतीय अपनी ही स्थितिके यूरोपीयोंकी अपेक्षा किसी कदर ओछे नहीं हैं। (परिशिष्ट ख और ग)

(२७) अपने पक्षका और भी प्रमाण देनेके लिए प्रार्थी १३ अप्रैल, १८८९ के 'केप टाइम्स' के एक अग्रलेखका अंश उद्धृत कर रहे हैं। उसमें भारतीयोंके पक्षको यथेष्ट न्यायके साथ पेश किया गया है :

> **भारतीय और अरब व्यापारियोंके कार्योंके बारेमें सुबहके अखबारोंमें जब-तब कुछ लेखांश पढ़नेसे उस चीख-पुकारकी याद आ जाती है जो थोड़े ही दिन पहले ट्रान्सवालकी राजधानीमें 'कुली व्यापारियों' के सम्बन्धमें मची थी।**

भारतीयोंके बारेमें एक अन्य पत्रके प्रशंसायुक्त वर्णनका उद्धरण देनेके बाद लेखमें कहा गया है :

उन आदरास्पद और कठोर परिश्रम करनेवाले लोगोंकी स्थितिको इतना गलत समझा गया है कि उनकी राष्ट्रीयताकी ही उपेक्षा हो गई है। उनपर एक ऐसा बुरा नाम जड़ दिया गया है, जो उन्हें उनके सहजीवियोंकी दृष्टिमें नितान्त निम्न स्तरपर रखनेवाला है। फिर, यदि उपर्युक्त यादवेहानियोंके होते हुए कोई क्षणभरके लिए उनकी चर्चा छेड़ दे तो शायद वह क्षमा किया जानेकी न्यायपूर्वक अपेक्षा कर सकता है। उनकी आर्थिक प्रवृत्तियोंकी दृष्टिसे भी, जिनकी सफलतापर उनको बदनाम करनेवाले अनेक लोग ईर्ष्या करेंगे, वह आन्दोलन समझमें नहीं आता। वह तो प्रवृत्तियाँ चलानेवालोंको अर्धसभ्य देशी लोगोंकी कोटिमें ढकेल देगा, उन्हें पृथक् बस्तियोंमें ही रहनेके लिए बाध्य कर देगा और काफिरोंपर लागू किये गये कानूनोंसे भी सख्त कानूनोंके प्रतिबन्ध में रखेगा। ट्रान्सवाल और इस उपनिवेशमें यह धारणा फैली हुई है कि शान्त और नितान्त निर्दोष 'अरब' दूकानदार और उतने ही निर्दोष वे भारतीय, जो अपने बढ़िया मालके गट्ठर पीठपर लादे घर-घर घूमते हैं, 'कुली' हैं। इसका कारण जिस जातिमें वे उत्पन्न हुए हैं उसके बारेमें हमारा अवमानकारी अज्ञान है। अगर कोई सोचे कि काव्यमय तथा रहस्यपूर्ण पुराणोंवाले ब्राह्मण धर्मकी कल्पनाने 'कुली व्यापारियों' की भूमिमें ही जन्म पाया था, चौबीस शताब्दियोंके पूर्व उसी भूमिमें देवतुल्य बुद्धने आत्मत्यागके महान् सिद्धान्तका प्रचार और पालन किया था और हम जो भाषा बोलते हैं उसके मौलिक तत्त्वोंकी खोजें उसी प्राचीन देशके पर्वतों और मैदानोंमें हुई थीं, तो वह अफसोस किये बिना नहीं रह सकता कि उस जातिके वंशजोंके साथ तत्त्वशून्य बर्बरों और बाह्य जगत्के अज्ञानमें डूबे हुए लोगोंकी सन्तानोंके तुल्य बरताव किया जाता है। जिन लोगोंने भारतीय व्यापारियोंके साथ बातचीत करनेमें कुछ मिनट भी बिताये हैं, वे यह देखकर शायद आश्चर्यमें पड़े होंगे कि वे तो विद्वानों और सज्जनोंसे बातें कर रहे हैं। . . . और उसी ज्ञानभूमिकी सन्तानको आज 'कुली' कहकर अपमानित किया जा रहा है और उनके साथ काफिरोंका-सा व्यवहार हो रहा है।

अब तो ऐसा समय आ गया है कि जो लोग भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध चीख-पुकार मचाते हैं, वे उन्हें बतायें कि वे कौन हैं और क्या हैं। उनके घोरतम निन्दकोंमें अनेक ब्रिटिश प्रजाजन हैं, जो एक शानदार समाजकी सदस्यताके अधिकारों तथा विशेषाधिकारोंका उपभोग कर रहे हैं। अन्यायसे घृणा और औचित्यसे प्रेम उनका जन्मसिद्ध गुण है और जब उनका मामला होता है तब चाहे अपनी सरकारके प्रति हो, चाहे विदेशी सरकारके, वे अपने ही एक विशेष तरीकेसे अपने अधिकारों और स्वतन्त्रताओंका आग्रह भी रखते हैं। शायद यह उन्हें कभी सूझा ही नहीं कि भारतीय व्यापारी भी ब्रिटिश

प्रजाजन हैं और वे उतने ही न्यायके साथ उन्हीं स्वतन्त्रताओं और अधिकारोंका दावा करते हैं। अगर पामर्स्टनके जमानेके एक वाक्यांशका प्रयोग किया जा सके, तो कमसे-कम यह कहना होगा कि, जो अधिकार कोई दूसरेको देनेके लिए तैयार न हो, उसपर अपना दावा जताना ब्रिटिश स्वभावके बहुत विपरीत है। एलिजाबेथ-कालीन एकाधिकार जबसे मिटे, तबसे सबको व्यापारका समान अधिकार प्राप्त हो गया है और यह ब्रिटिश संविधानका एक अंग-सा बन गया है। अगर कोई इस अधिकारमें हस्तक्षेप करे तो ब्रिटिश नागरिकताके विशेषाधिकार एकाएक उसके आड़े आ जायेंगे। भारतीय व्यापारी स्पर्धामें अधिक सफल हैं और वे अंग्रेज व्यापारियोंकी अपेक्षा कममें गुजारा कर लेते हैं — यह तर्क सबसे कमजोर और सबसे अन्यायपूर्ण है। ब्रिटिश वाणिज्यकी नींव ही दूसरे देशोंके साथ अधिक सफलतापूर्वक स्पर्धा करनेकी शक्तिपर रखी गई है। जब अंग्रेज व्यापारी चाहते हैं कि सरकार उनके प्रतिद्वन्द्वियोंके अधिक सफल व्यापारके खिलाफ हस्तक्षेप करके उन्हें संरक्षण प्रदान करे, तब तो सचमुच संरक्षण पागलपनकी हद तक पहुँच जाता है। भारतीयोंके प्रति अन्याय इतना स्पष्ट है कि अपने ही देशभाइयोंको इन लोगोंके साथ सिर्फ इसलिए आदिवासियोंके जैसा व्यवहार करनेकी कामना करते देखकर कि ये सफल व्यापारी हैं, शर्म आती है। वे प्रबल जातिके मुकाबलेमें इतने सफल हुए हैं, केवल यह कारण ही उन्हें उस अपमानजनक स्तरसे ऊपर उठा देनेके लिए पर्याप्त है। . . . जिन लोगोंको समाचारपत्र, डच और हताश दूकानदार 'कुली' कहकर पुकारते हैं उनसे भारतीय व्यापारी कोई बड़ी चीज हैं — यह बतानेके लिए इतना ही कहना काफी होगा।

(२८) उपर्युक्त उद्धरणसे यह भी दीख पड़ेगा कि यूरोपीयोंकी भावना स्वार्थसे अंधी न होनेपर भारतीयोंके विरुद्ध नहीं होती। परन्तु चूँकि उपर्युक्त ग्रीन बुक्समें सर्वत्र जोर दिया गया है कि राज्यके नागरिक[1] और यूरोपीय निवासी दोनों ही भारतीयोंके विरोधी हैं, इसलिए प्रार्थी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके माननीय अध्यक्षके पास दो प्रार्थनापत्र भेज रहे हैं। एक प्रार्थनापत्रमें बताया गया है कि नागरिकोंकी एक बहुत बड़ी संख्या न केवल भारतीयोंके ट्रान्सवालमें स्वतन्त्रतापूर्वक निवास तथा व्यापार करनेकी विरोधी नहीं है, बल्कि यदि इन त्रासदायक कानूनोंका आखिरी परिणाम उनका राज्य छोड़कर चले जाना हुआ, तो वे लोग इसे एक संकट मानेंगे। (परिशिष्ट ङ) दूसरे प्रार्थनापत्रपर यूरोपीयोंने हस्ताक्षर किये हैं। उसमें बताया गया है कि हस्ताक्षर-कर्त्ताओंके मतसे, भारतीयोंकी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतें यूरोपीयोंकी आदतसे किसी कदर हीन नहीं हैं और भारतीयोंके विरुद्ध आन्दोलनका कारण व्यापारिक ईर्ष्या-द्वेष है। (परिशिष्ट च) परन्तु यदि बात उलटी होती — अगर

१. बर्गर।

राज्यका प्रत्येक नागरिक और प्रत्येक यूरोपीय भारतीयोंका घोर विरोधी होता तो उसका भी, हमारा निवेदन है, मुख्य मुद्देपर कोई असर न पड़ता। हाँ, अगर इस विरोधके कारण कुछ ऐसे होते कि उनसे भारतीय समाजपर, जिसके खिलाफ ये भावनाएँ फैली हैं, कलंक लगता होता, तो बात दूसरी होती। छपनेको देते समय (१४-५-१८९५) तक डच प्रार्थनापत्रपर ४८४ नागरिकोंके और यूरोपीय प्रार्थनापत्रपर १,३४० यूरोपीयोंके हस्ताक्षर हो चुके हैं।

(२९) ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशका निर्णय प्रश्नको जरा भी सरल नहीं करता। उससे प्रश्नका हल जरा भी आसान नहीं होता। नीचे लिखी बातोंसे यह स्पष्ट हो जायेगा।

निर्णयके बाद भी सम्राज्ञीके संरक्षणका सक्रिय प्रयोग ठीक उतना ही जरूरी रहेगा, जैसे कि निर्णय दिया ही न गया हो। अगर दलीलके लिए — और केवल दलीलके लिए ही — मान लिया जाये कि निर्णय उचित और अन्तिम है, और ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशने फैसला कर दिया है कि भारतीयोंको सरकार द्वारा निश्चित जगहोंमें ही रहना तथा व्यापार करना होगा, तो एकदम प्रश्न उठता है कि उन्हें कहाँ रखा जायेगा? क्या उन्हें निचली जमीनपर बसाया जायेगा, जहाँ सफाईके नियमोंका पालन असम्भव है और जो शहरोंसे इतनी दूर हैं कि भारतीयोंके लिए व्यापार करना और सभ्यतासे रहना बिलकुल असम्भव हो जायेगा? यह बिलकुल सम्भव है। मलायी लोगोंके बसनेके लिए १८९३ में रहनेके अयोग्य स्थान निश्चित करनेके विरुद्ध श्रीमान ब्रिटिश एजेंटने ट्रान्सवाल सरकारको जो निम्नलिखित जोरदार विरोधपत्र भेजा था (ग्रीन बुक सं० २, पृष्ठ ७२) उससे यह सम्भावना स्पष्ट दीख पड़ेगी :

> **जिस स्थानका उपयोग शहरका कूड़ा-करकट इकट्ठा करनेके लिए होता है और जहाँ शहर और बस्तीके बीचके नालेमें झिरझिरकर जानेवाले पानीके सिवा दूसरा पानी है ही नहीं, उसपर बसी हुई छोटी-सी बस्तीमें लोगोंको ठूँस देनेका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि उनके बीच भयानक किस्मके बुखार और दूसरे रोग फैल जायेंगे। इससे उनके प्राण और शहरमें रहनेवाले लोगोंका स्वास्थ्य भी खतरेमें पड़ जायेगा। परन्तु इन गम्भीर आपत्तियोंके अलावा, इन लोगोंमें से कुछके पास बताई गई जमीनपर (या और कहीं) वैसे मकान बना लेनेके साधन भी नहीं हैं, जैसेमें रहनेकी इनकी आदत है। इसलिए इन्हें इनके वर्तमान मकानोंसे निकालनेका परिणाम इन सबका प्रिटोरिया छोड़कर चले जाना होगा। इससे इन्हें जो कठिनाइयाँ होंगी उनका तो कहना ही क्या, जो गोरे लोग इनसे मजदूरी कराते हैं उन्हें भी भारी असुविधा और हानिका सामना करना पड़ेगा। . . .**

(३०) उसी किताबके आखिरी पृष्ठ पर अपने २१ मार्च, १८९४के खरीतेमें उच्चायुक्तने कहा है :

> **. . . सम्राज्ञी-सरकार मानती है कि पंच-फैसला एशियाकी उन सब आदिम जातियों पर लागू होगा, जो ब्रिटिश प्रजा हों।**

(३१) अगर इस खरीतेकी दृष्टिसे पंच-फैसला एशियाकी आदिम जातियोंपर लागू होना है, तो प्रश्न यह उठता है कि यदि तमाम एशियाइयोंको ही आदिम जातिके लोग न मान लिया जाये तो क्या ट्रान्सवालमें कोई भी एशियाई आदिम जातिके हैं? और, हमारा विश्वास है, सारेके-सारे एशियाइयोंको आदिम जातिके मान लेनेकी धृष्टता तो क्षणभरके लिए भी नहीं की जायेगी। इसलिए, निश्चय ही प्रार्थी आदिम जातिके लोगोंकी श्रेणीमें नहीं आयेंगे।

(३२) अगर भारतीयोंके प्रति सारे विरोधका मूल सफाई ही है, तब तो निम्नलिखित प्रतिबन्ध बिलकुल समझमें आने योग्य नहीं हैं:

(१) काफिरोंकी तरह भारतीय भी अचल सम्पत्तिके मालिक नहीं हो सकते।

(२) भारतीयोंके लिए अपने नाम पंजीकृत कराना अनिवार्य है, जिसका शुल्क ३ पौंड १० शिलिंग होगा।

(३) जबतक भारतीयोंके पास पंजीकरणके टिकट न हों तबतक गणराज्यमें यात्रा करते समय उन्हें, देशी लोगोंके समान, परवाना दिखाना पड़ता है।

(४) रेलगाड़ियोंमें वे पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा नहीं कर सकते। वे देशी लोगोंके साथ उसी डिब्बेमें ठूँस दिये जाते हैं।

(३३) इन तमाम अपमानोंका डंक तब और भी पीड़ाजनक हो उठता है, जब यह स्मरण आता है कि अनेक प्रार्थी डेलागोआ-बेमें बड़ी-बड़ी जायदादोंके मालिक हैं। वहाँ उनका इतना आदर है कि उन्हें रेलगाड़ीका तीसरे दर्जेका टिकट लेने ही नहीं दिया जाता। वहाँ यूरोपीय खुशीके साथ उनका स्वागत करते हैं। उन्हें परवाने नहीं रखने पड़ते। फिर, प्रार्थी पूछते हैं, ट्रान्सवालमें, उनके साथ भिन्न व्यवहार क्यों होना चाहिए? क्या उनकी सफाईकी आदतें ट्रान्सवालमें प्रवेश करते ही गन्दी हो जाती हैं? अकसर देखा जाता है कि वही यूरोपीय उसी भारतीयके साथ डेलागोआ-बे और ट्रान्सवालमें भिन्न व्यवहार करता है।

(३४) परवानेका कानून कितना त्रासदायक है, यह बतानेके लिए प्रार्थी इसके साथ श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादाका हलफनामा नत्थी कर रहे हैं, जो स्वयंस्पष्ट है। (परिशिष्ट छ) हलफनामेके साथ एक पत्रकी नकल है। (परिशिष्ट ज) उससे मालूम हो जायेगा कि श्री हाजी मुहम्मद कौन हैं? दक्षिण आफ्रिकाके वे एक अग्रगण्य भारतीय हैं। प्रार्थियोंने सिर्फ उदाहरणके तौरपर और यह बतानेके लिए हलफनामा नत्थी किया है कि जब एक अग्रगण्य भारतीय अपमान और प्रत्यक्ष कठिनाइयाँ सहे बिना यात्रा नहीं कर सकता, तब दूसरे भारतीयोंका भाग्य क्या होगा। अगर जरूरी हो तो दुर्व्यवहारके ऐसे सैकड़ों मामलोंको पूरी-पूरी तरह साबित किया जा सकता है।

(३५) यह भी कहा गया है कि भारतीय परोपजीवी बनकर रहते हैं और खर्च कुछ नहीं करते। जहाँतक भारतीय मजदूरों और उनके बच्चोंका सम्बन्ध है, यह आरोप ज़रा भी ठहर नहीं सकता। उन्हें तो उनके प्रति सबसे ज्यादा मनोमालिन्य

रखनेवाले यूरोपीय भी परोपजीवी नहीं मानते। प्रार्थी अपने व्यक्तिगत अनुभवसे कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि जहाँतक बहुसंख्य मजदूरोंका सम्बन्ध है, वे अपने रहन-सहन पर वित्तसे ज्यादा खर्च करते हैं, और अपने परिवारोंके साथ बसे हुए हैं। व्यापारी भारतीयोंके बारेमें, जो सारे राग-द्वेषके लक्ष्य हैं, थोड़ा-सा स्पष्टीकरण आवश्यक हो सकता है। प्रार्थियोंमें जो व्यापारी हैं वे इस बातसे इनकार नहीं करते कि वे भारतमें अपने आश्रितोंको रुपया भेजते हैं। उलटे, वे इसे स्वीकार करनेमें गौरव मानते हैं। परन्तु ये रकमें उनके खर्चके अनुपातमें कुछ भी नहीं हैं। वे सफलतापूर्वक प्रति-द्वन्द्विता सिर्फ इस कारणसे कर पाते हैं कि वे यूरोपीय व्यापारियोंकी अपेक्षा विलासकी वस्तुओंपर खर्च कम करते हैं। फिर भी उन्हें यूरोपीय मकान-मालिकोंको किराया, देशी नौकरोंको मजदूरी और डच पशु-पालकोंको मांसके लिए जानवरोंका मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है। अन्य सामग्रियाँ, जैसे चाय, काफी आदि भी उपनिवेशमें ही खरीदनी पड़ती हैं।

(३६) तो फिर, सच्चा सवाल यह नहीं है कि भारतीयोंको इस गलीमें रहना है या उसमें। सच्चा प्रश्न तो बल्कि यह है कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें उनकी क्या हैसियत होगी। क्योंकि, ट्रान्सवालमें जो कुछ किया जाता है उसका असर अन्य दो उपनिवेशोंकी कार्रवाइयोंपर भी पड़ेगा। साधारण रूपसे इस विषयमें सब लोगोंका एक ही मत दिखलाई पड़ता है कि, इस सवालका निबटारा सबकी दृष्टिसे एक सर्व-मान्य आधारपर करना होगा। स्थानिक परिस्थितियोंके अनुकूल उसमें आवश्यक संशोधन किये जा सकते हैं।

(३७) जो भी भावना 'व्यक्त की गई है', वह भारतीयोंको काफिरोंकी स्थितिमें गिरा देनेकी है। परन्तु यूरोपीय समाजके एक बड़े हिस्सेकी भावना बिलकुल इसकी उलटी है। वह जोरोंसे व्यक्त तो नहीं की गई, फिर भी जहाँ-तहाँ समाचारोंमें ध्वनित होती रहती है।

(३८) नेटाल उपनिवेश दूसरे दक्षिण आफ्रिकी राज्योंको एक 'कुली' सम्मे-लनके लिए आमन्त्रित कर रहा है। इस प्रकार 'कुली' शब्दको सरकारी तौरपर काममें लाया गया है। इससे मालूम होता है कि भारतीयोंके खिलाफ व्यक्त भावना कितनी उग्र है और अगर सम्मेलन कर सका तो वह इस प्रश्नके बारेमें क्या करेगा। पंचके सामने पेश किये हुए मामलेमें ट्रान्सवाल सरकारने कहा है कि 'कुली' शब्द एशियासे आये हुए किसी भी व्यक्तिपर लागू होता है।

(३९) जब दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके विरुद्ध इतनी उग्र भावना फैली हुई है, जब उस भावनाका मूल स्वार्थमय आन्दोलन है (जैसा कि, आशा है, ऊपर पर्याप्त रूपसे दर्शा दिया गया है), जब यह ज्ञात है कि वह भावना सब यूरोपीयोंकी नहीं है, जब दक्षिण आफ्रिकामें धनके लिए आम तौरपर छीनाझपटी मची हुई है, जब लोगोंकी नैतिक अवस्था विशेष ऊँची नहीं है, जब भारतीयोंकी आदतोंके खिलाफ बड़ीसे-बड़ी गलतबयानियाँ की जा रही हैं, जिनसे कानूनका आविर्भाव हुआ है, तब, प्रार्थियोंका निवेदन है, महानुभावसे यह प्रार्थना करना बहुत ज्यादा न होगा कि

प्रार्थियोंके विरुद्ध जो वक्तव्य प्राप्त हुए हों और भारतीय समस्याके जो हल सुझाये गये हों, उन्हें ग्रहण करनेमें महानुभाव अधिकसे-अधिक सावधानी बरतें।

(४०) प्रार्थी महानुभावके विचारके लिए यह निवेदन भी करना चाहते हैं कि उन्हें न केवल १८५८ की घोषणासे ही सम्राज्ञीकी अन्य प्रजाओंके बराबर अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त हैं, बल्कि स्वयं महानुभावने अपने खरीतेके द्वारा इस प्रकारके व्यवहारका विशेष आश्वासन दिया है। खरीतेमें कहा गया है:

> **सम्राज्ञी-सरकारकी इच्छा है कि सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाओंके साथ उनकी अन्य प्रजाओंकी बराबरीका व्यवहार किया जाये।**

(४१) यह स्थानिक नहीं, मुख्यतः साम्राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रश्न है। इस प्रश्नके निबटारेका असर उन दूसरे उपनिवेशों और देशोंपर पड़े बिना नहीं रह सकता, जहाँ पारस्परिक संधिके द्वारा सम्राज्ञीकी प्रजाओंको व्यापार आदिकी स्वतन्त्रता है, और जहाँ जाकर सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजन भी बस सकते हैं। फिर, इस प्रश्नका असर दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी बहुत बड़ी आबादीपर पड़ता है। जो लोग दक्षिण आफ्रिकामें बसे हैं उनके लिए यह लगभग जीवन और मरणका प्रश्न है। लगातार दुर्व्यवहारसे उनका ह्रास हुए बिना नहीं रह सकता। यहाँतक कि वे अपनी सभ्य आदतोंसे गिरकर आदिवासी देशी लोगोंके स्तरपर पहुँच जायेंगे। और फिर, अबसे एक पीढ़ी बाद, इस प्रकार अधःपतनके मार्गपर चलते हुए भारतीयोंकी सन्तानों और देशी लोगोंकी आदतों, रीति-नीति और विचारोंमें बहुत कम अन्तर रह जायेगा। इस तरह देशान्तर-प्रवासका उद्देश्य ही विफल हो जायेगा और सम्राज्ञीकी प्रजाका एक भारी भाग सभ्यताके पैमानेमें ऊपर चढ़नेके बदले नीचे गिर जायेगा। ऐसी स्थितिका परिणाम विनाशकारी हुए बिना नहीं रह सकता। किसी आत्म-सम्मानी भारतीयको दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा करनेका साहसतक न होगा। भारतीयों के सारेके-सारे उद्योगका गला घुट जायेगा। प्रार्थियोंको कोई सन्देह नहीं है कि जिस स्थानमें सर्वोच्च सत्ता सम्राज्ञीकी है, या जहाँ ब्रिटिश झंडा फहराता है, वहाँ महानुभाव इस तरहकी दुःखद घटना कदापि न होने देंगे।

(४२) प्रार्थी आदरके साथ बताना चाहते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय-विरोधी भावनाओंकी वर्तमान हालतके रहते हुए भी यदि सम्राज्ञी-सरकार प्रार्थियोंके विरुद्ध की जानेवाली स्वार्थपूर्ण चीख-पुकारके सामने झुक गई तो यह प्रार्थियोंके प्रति गम्भीर अन्यायका कार्य होगा।

(४३) अगर यह सच है कि प्रार्थियोंकी सफाई-सम्बन्धी आदतें यूरोपीय समाजके स्वास्थ्यको खतरेमें डालने योग्य नहीं हैं, और अगर यह भी सच है कि उनके विरुद्ध आन्दोलनका कारण व्यापारिक ईर्ष्या है, तो ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशका निर्णय आदेशोंके बिलकुल अनुकूल हो तो भी बन्धनकारक नहीं हो सकता। क्योंकि उस हालतमें तो जिस लिए सम्राज्ञी-सरकारने समझौतेसे हटकर कार्य करनेकी अनुमति दी है, उस कारणका अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

(४४) फिर भी, अगर महानुभावको प्रार्थियोंकी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतोंके बारेमें यहाँ कही गई बातोंपर सन्देह हो तो, निवेदन है कि चूँकि प्रार्थियोंके बहुत बड़े हित दाँवपर चढ़े हैं और उनकी सफाई-सम्बन्धी आदतोंके बारेमें परस्पर-विरोधी बयान दिये गये हैं तथा दक्षिण आफ्रिकामें उनके विरुद्ध भावनाएँ भी बहुत उग्र हैं, अतः प्रार्थियोंका विनम्र अनुरोध है कि इन सब दृष्टियोंसे विचार किया जाये और समझौतेका उल्लंघन करनेकी अन्तिम अनुमति देनेके पहले परस्पर-विरोधी वक्तव्योंके सत्यासत्यकी निष्पक्ष जाँच और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी मान-मर्यादाके सारे प्रश्नकी छानबीन करा ली जाये।

अन्तमें प्रार्थी अपना मामला महानुभावके हाथोंमें छोड़ते हैं। वे सच्चे दिलसे प्रार्थना और पूरी आशा करते हैं कि उन्हें रंग-भेदका शिकार न होने दिया जायेगा। उनकी यह भी प्रार्थना और आशा है कि सम्राज्ञी-सरकार दक्षिण आफ्रिकी गण-राज्यमें भारतीयोंके साथ ऐसा व्यवहार करनेकी अनुमति नहीं देगी, जो उन्हें पतित और अस्वाभाविक स्थितिमें डाल दे और ईमानदारीके साथ जीविकोपार्जन करनेके साधनोंसे वंचित कर दे।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।[1]

परिशिष्ट क

प्रिटोरिया, द० आ० ग०[2]
२७ अप्रैल, १८९५

मैं इस पत्रके द्वारा प्रमाणित करता हूँ कि मैं गत पाँच वर्षोंसे प्रिटोरिया नगरमें साधारण चिकित्सकका धंधा कर रहा हूँ।

इस अवधिमें, और खास तौरसे तीन वर्ष पहले, जब भारतीयोंकी संख्या अबसे ज्यादा थी, उनके बीच मेरा धंधा खासा अच्छा रहा है।

मैंने उनके शरीरोंको आम तौरसे स्वच्छ और उन लोगोंको गन्दगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त पाया है। उनके मकान साधारणतः साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं। वर्गकी दृष्टिसे विचार किया जाये

१. छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिपर हस्ताक्षर नहीं हैं। इस प्रार्थनापत्रके बारेमें समाचारपत्रोंकी प्रतिक्रियाके लिए, देखिए **अर्ली फेज** पृष्ठ ५३४-३६। लेकिन साम्राज्ञीकी सरकारने जून १८९५ में निर्णयको इस अनुबन्धके साथ स्वीकार कर लिया था कि 'फोक्सराड' को ८ सितम्बर १८९३ के प्रस्तावोंको रद कर देना चाहिये और दक्षिण आफ्रिकी गणतन्त्रकी सरकारको दिसम्बर १८९३ के परिपत्रको वापस ले लेना चाहिए जिससे कि न्यायालय १८८५ के कानून ३ के संशोधित रूपकी व्याख्या मुक्तभावसे कर सकें। आगेकी घटनाओंके लिए, देखिए **अर्ली फेज**, पृष्ठ ५३७-९।

२. दक्षिण आफ्रिकी गणतंत्र।

तो मेरा यह मत है कि निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत अच्छे उतरते हैं। अर्थात्, निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं।

मैंने यह भी देखा है कि जिस समय शहर और जिलेमें चेचकका प्रकोप था — और जिलेमें अब भी है — तब प्रत्येक राष्ट्रके एक या अधिक रोगी तो कभी-न-कभी संक्रामक रोगोंके अस्पतालमें रहे, परन्तु भारतीय कभी एक भी नहीं रहा।

मेरे खयालसे, आम तौरपर भारतीयोंके विरुद्ध सफाईके आधारपर आपत्ति करना असम्भव है। शर्त हमेशा यह है कि सफाई-अधिकारियोंका निरीक्षण भारतीयोंके यहाँ उतना ही सख्त और नियमित हो, जितना कि यूरोपीयोंके यहाँ होता है।

एच० प्रायर वील
बी० ए०, एम० बी०, बी० एस० (कैंटब)

परिशिष्ट ख

जोहानिसबर्ग
१८९५

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने पत्र-वाहकोंके मकानोंका निरीक्षण किया है। वे स्वच्छ तथा आरोग्यजनक हालतमें हैं। वास्तवमें तो वे ऐसे हैं कि उनमें कोई भी यूरोपीय रह सकता है। मैं भारतमें रहा हूँ। मैं प्रमाणित कर सकता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें उनके मकान उनके भारतके मकानोंसे कहीं बेहतर हैं।

सी० पी० स्पिंक
एम० आर० सी० पी० और एल० आर० सी० एस०
(लंदन)

परिशिष्ट ग

जोहानिसबर्ग
१४ मार्च, १८९५

मुझे अपने धंधेके सिलसिलेमें जोहानिसबर्गके उच्चतर भारतीय वर्ग (बम्बईसे आये हुए व्यापारियों आदि) के घरोंमें जानेके मौके अकसर मिलते हैं। इस आधार पर मैं यह मत देता हूँ कि वे अपनी आदतों और घरेलू जीवनमें अपने समकक्ष यूरोपीयोंके बराबर ही स्वच्छ हैं।

डा० नामेचर, एम० डी०, आदि

परिशिष्ट घ

जोहानिसबर्ग
१४ मार्च, १८९५

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवालोंको सूचना मिली है कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके भारतीय व्यापारियोंके प्रश्नपर पंच-फैसला आयोग इस समय ब्लूमफॉटीनमें अपनी बैठकें कर रहा है। हमें यह भी बताया गया है कि उक्त व्यापारियोंके विरुद्ध यह आरोप है कि उनकी गंदी आदतोंके कारण उनका यूरोपीय आबादीके बीच रहना खतरनाक है। इसलिए हम इस वक्तव्यके द्वारा स्पष्ट रूपसे घोषणा करते हैं कि:

प्रथम : उक्त भारतीय व्यापारी, जिनमें से अधिकतर बम्बईसे आये हैं, अपने व्यापारके स्थानों और मकानोंको स्वच्छ और समुचित आरोग्यजनक हालतमें, वास्तवमें, ठीक यूरोपीयोंके बराबर ही अच्छी हालतमें रखते हैं।

द्वितीय : उन्हें 'कुली' या 'नीची जाति' के ब्रिटिश भारतवासी कहना सरासर गलत है, क्योंकि वे निश्चयपूर्वक भारतकी अच्छी और ऊँची जातियोंके हैं।

हेमान गॉर्डन ऐंड कं०
ब्रैंड ऐंड मेयकर्स
लिंडसे ऐंड इन्स
गस्टाव श्नाइडर
सी० लीबे
क्रिस्टोफर पी० स्पिक
ए० वेंटवर्थ बॉल
एच० वुडक्राफ्ट
वास्ते जे० गार्लिक
आर० कोर्टर
वास्ते गॉर्डन मिचेल ऐंड कं०
जोहानिसबर्ग, द० आ० ग०
पी० बार्नेट ऐंड कं०
एच० क्लैपहम
वास्ते इजराएल ब्रदर्स
एच० एफ० बेयर्ट
वास्ते पेयन ब्रदर्स
जोजेफ लाजरस ऐंड कं०
जिओ० जास० केट्ल ऐंड कं०

बॉर्टन्स ब्रदर्स
टी० चार्ली
वास्ते जे०डब्ल्यू० जैगर ऐंड कं०
आर० जी० क्रैमर ऐंड कं०
बी० इमैन्युएल
वास्ते होल्ट ऐंड होल्ट
ऐडम एलेक्जैंडर
बी० एलेक्जैंडर
ए० बेहरेन्स
एस० कोलमैन
एलेक्जैंडर पी० के
जे० एच० हॉपकिन्स
वास्ते जी० कोएनिग्जबर्ग
जे० एच० हॉपकिन्स
वास्ते लीबरमान, बेल्स्टेड ऐंड कं
जे० एच० हॉपकिन्स
श्लोम ऐंड आर्म्सबर्ग
जास० डब्ल्यू० सी०
वास्ते ह्यूगो बिजेन

ई० नील
वास्ते एच० बर्नबर्ग ऐंड कं०
जनरल मर्चेट्स ऐंड इम्पोर्टर्स
जोहानिसबर्ग
जे० कुस्टिंग
एन० डबल्यू० लुईस
स्पेन्स ऐंड हरी
फ्राइजमैन ऐंड शैपिसो
जे० फाजेलमैन
टी० रेट्स ऐंड कं०
जे० गंडेलफिंगर
वास्ते बी० गंडेलफिंगर

परिशिष्ट ङ

(सही अनुवाद)
सेवामें
श्रीमान् अध्यक्ष महोदय
दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य, प्रिटोरिया

नम्र निवेदन है कि,

गणराज्यवासी कतिपय स्वार्थी यूरोपीयोंने इस आशयकी ठेठ गलतबयानियाँ की हैं कि इस राज्यके नागरिक भारतीयोंके इस राज्यमें रहने और व्यापार करनेके विरोधी हैं। वे भारतीयोंके खिलाफ आन्दोलन भी कर रहे हैं। इस सबकी दृष्टिसे हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नागरिक आदरपूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि भारतीयोंके इस राज्यमें रहने और व्यापार करनेका विरोध करना तो बहुत दूर, उलटे हम उन्हें शान्तिप्रिय और कानूनका पालन करनेवाले, अतः वांछनीय मानते हैं। गरीबोंके लिए तो वे वरदान जैसे ही हैं, क्योंकि वे अपनी जोरदार होड़के द्वारा जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके भाव सस्ते रखते हैं। उनके लिए ऐसा करना उनके कमखर्च और संयमी आदतोंके कारण सम्भव है।

हम निवेदन करनेकी इजाजत चाहते हैं कि उनका राज्यसे चले जाना हमारे लिए घोर संकटका कारण बन जायेगा। हममें से जो लोग व्यापारिक केन्द्रोंसे बहुत दूर रहते हैं और अपनी रोजमर्राकी जरूरतें पूरी करनेके लिए भारतीयोंपर निर्भर करते हैं, वे तो खास तौरसे संकटमें पड़ जायेंगे। इसलिए उनकी स्वतन्त्रताको मर्यादित करनेवाला और अन्ततः उनको, खास तौरसे व्यापारियों और फेरीवालोंको, निकाल देनेके लक्ष्यवाला कोई भी कानून हमारे आराम-चैनमें बाधक हुए बिना न रहेगा। इसलिए हम नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं कि सरकार ऐसे कोई कदम न उठाये जिनसे भारतीय डरकर ट्रान्सवालसे चले जायें।[1]

१. इसपर अनेक नागरिकोंके हस्ताक्षर थे।

परिशिष्ट च

सेवामें
श्रीमान् अध्यक्ष
दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य
प्रिटोरिया

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, गणराज्यके यूरोपीय निवासी भारतीय-विरोधी आन्दोलनका विरोध करते हैं। यह आन्दोलन भारतीयोंको इस देशमें स्वतन्त्रतापूर्वक रहने और व्यापार करने न देनेके उद्देश्यसे कुछ स्वार्थी लोगोंने छेड़ा है।

जहाँतक हमारे अनुभवका सम्बन्ध है, हमें विश्वास है कि भारतीयोंकी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतें यूरोपीयोंकी आदतोंसे किसी प्रकार हीन नहीं हैं। और उनके बीच — खास तौरसे भारतीय व्यापारियोंके बीच — छुतहे रोगोंके प्रसारके बारेमें कही गई बातें निश्चय ही बेबुनियाद हैं।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि आन्दोलनका मूल उनकी स्वच्छता-सम्बन्धी आदतें नहीं, बल्कि व्यापार-सम्बन्धी ईर्ष्या है। कारण यह है कि अपने मितव्ययी रहन-सहन और संयमी आदतोंके कारण वे जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके भाव सस्ते रखते हैं। इस तरह वे राज्यके गरीब लोगोंके लिए अतुल वरदानरूप सिद्ध हुए हैं।

हम नहीं मानते कि उन्हें पृथक् क्षेत्रोंमें रहने या वहीं व्यापार करनेके लिए बाध्य करनेका कोई भी मजबूत कारण मौजूद है।

इसलिए हम नम्रतापूर्वक श्रीमान्से अनुरोध करते हैं कि ऐसा कोई कानून न तो मंजूर किया जाये न बरदाश्त ही किया जाये, जिसका मंशा उनकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगाना हो, और जिसके परिणामस्वरूप अन्ततः वे गणराज्य छोड़कर चले जायें। यह परिणाम उनकी जीविकाके साधनोंपर ही आघात करनेवाला होगा और, इसलिए, हमारा नम्र निवेदन है, एक ईसाई देशमें आत्मसन्तोषके साथ इसका खयाल नहीं किया जा सकता।[1]

परिशिष्ट छ

मेरा नाम हाजी मुहम्मद हाजी दादा है। मैं हाजी मुहम्मद हाजी दादा ऐंड कम्पनी, मर्चेंट्स, डर्बन, प्रिटोरिया, डेलागोआ-बे आदिका प्रबन्धक और बड़ा साझेदार हूँ। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि :—

(१) सन् १८९४ में किसी समय मैं घोड़ागाड़ी द्वारा जोहानिसबर्गसे चार्ल्सटाउन जा रहा था।

१. उपर्युक्त प्रार्थनापत्र अंग्रेजी और आफ्रिकन, दोनों भाषाओंमें छपा है। फाइल की हुई प्रतिमें प्राथियोंके हस्ताक्षर नहीं हैं।

(२) जब मैं ट्रान्सवालकी सीमापर पहुँचा तब एक वर्दीधारी यूरोपीय मेरे पास आया। उसके साथ एक अन्य व्यक्ति भी था। उसने मुझसे परवाना दिखानेको कहा। मैंने जवाब दिया कि मेरे पास परवाना नहीं है और इसके पहले मुझसे कभी माँगा भी नहीं गया।

(३) इसपर उसने अशिष्टताके साथ मुझसे कहा कि तुम्हें परवाना लेना होगा।

(४) मैंने उससे ले आनेको कहा और उसका पैसा देनेकी तैयारी दिखाई।

(५) तब उसने बहुत अशिष्टतासे मुझे अपने साथ परवाना अधिकारीके पास चलनेको कहा। मुझे धमकी भी दी कि मानोगे नहीं तो गाड़ीसे बाहर घसीट लूँगा।

(६) अधिक संकटको टालनेके लिए मैं उतर पड़ा। उसने मुझे दो मील पैदल चलाया और खुद घोड़ेपर गया।

(७) दफ्तर पहुँचनेपर मुझे परवाना लेनेके लिए बाध्य नहीं किया गया। सिर्फ इतना पूछा गया कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। फिर मुझसे चले जानेको कह दिया गया।

(८) जो आदमी घोड़ेपर सवार था और जो मेरे साथ गया था वह भी मुझे छोड़कर चला गया। मुझे दो मील वापस पैदल जाना पड़ा। वहाँ जाकर मैंने देखा कि घोड़ागाड़ी भी चली गई है।

(९) यद्यपि मैंने चार्ल्सटाउन तक का किराया दे दिया था, मुझे दो मीलसे ज्यादा पैदल चलकर वहाँ जाना पड़ा।

(१०) मुझे व्यक्तिगत जानकारी है कि ऐसी ही हालतोंमें अन्य अनेक भारतीयोंको ऐसा ही कष्ट और अपमान सहना पड़ा है।

(११) कुछ दिन पूर्व, मुझे डेलागोआ-बे से दो मित्रोंके साथ प्रिटोरिया जाना पड़ा था।

(१२) ट्रान्सवालमें यात्रा कर सकें, इसके लिए हम सबको, ठीक देशी लोगोंके समान, परवानोंसे लैस हो जानेके लिए बाध्य किया गया।

हाजी मुहम्मद हाजी दादा

आज २४ अप्रैल, १८९५ को प्रिटोरियामें मेरे सामने हलफपर बयान दिया गया।

एनवारालोहेन्गे
बी० रासक

परिशिष्ट ज

पाइंट, पोर्ट नेटाल
२ मार्च, १८९५

तार और केबलका पता : "बोटिंग"
प्रेषक
आफ्रिकन बोटिंग कम्पनी लिमिटेड

सेवामें
श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादा
(हाजी मुहम्मद हाजी दादा ऐंड कं०)

प्रिय महोदय,

यह जानकर कि आप भारतकी यात्रापर जानेवाले हैं, हम इस अवसरपर आपकी व्यापारिक योग्यताके बारेमें अपना बहुत ऊँचा सराहना-भाव अंकित करते हैं। सराहनाके इस भावको हम आपके साथ अपने व्यापारिक सम्बन्धके गत पन्द्रह वर्षोंमें साबित कर चुके हैं। हमें यह कहते हुए बहुत आनन्द है कि यहाँ आपके निवास-कालमें व्यापारिक समाजके किसी व्यक्तिने कभी आपकी ईमानदारीपर सन्देह नहीं किया। हमें विश्वास है कि आप फिर नेटाल आयेंगे और तब, हमें आशा है, हम आपके साथ अपना व्यापारिक सम्बन्ध फिरसे स्थापित करेंगे। आशा है, आपकी यात्रा आनन्दमय होगी।

आपके विश्वस्त,
चार्ल्स टी० हचिन्स
आफ्रिकन बोटिंग कम्पनीके लिए

अंग्रेजी (एस० एन० ४१७-४२४) तथा (एस० एन० ४५१ (३–१६) की फोटो-नकलसे।

६२. प्रार्थनापत्र : लॉर्ड एलगिनको[1]

[५ मई, १८९५ से पूर्व]

सेवामें

परमश्रेष्ठ परममाननीय लॉर्ड एलगिन, पी० सी०, जी० एम० एस० आई०,
जी० एम० आई० ई०, आदि
वाइसराय और गवर्नर जनरल, भारत
कलकत्ता

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी
भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे इस प्रार्थनापत्र द्वारा सम्राज्ञीके दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंके सम्बन्धमें निवेदन करनेकी इजाजत लेते हैं।

प्रार्थी यहाँ उन तथ्यों और तर्कोंको दुहराना नहीं चाहते जो उन्होंने परम माननीय उपनिवेश मन्त्रीके नाम एक हजारसे अधिक व्यक्तियोंके हस्ताक्षरसे भेजे गये इसी प्रकारके एक प्रार्थनापत्रमें[2] दिये हैं। बदलेमें, उस प्रार्थनापत्रकी और उसके सहपत्रोंकी एक नकल इसके साथ नत्थी करके प्रार्थी अनुरोध करते हैं कि महानुभाव उसे देख लें।

पूर्ण विचार-विमर्शके बाद आपके प्रार्थी इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि महानुभाव भारतमें सम्राज्ञीके प्रतिनिधि और समस्त भारतके वास्तविक शासक हैं; अतएव यदि हम महानुभावके सीधे संरक्षणकी याचना न करें और यदि महानुभाव ऐसा संरक्षण देनेकी कृपा न करें तो दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके ही नहीं, समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थिति अत्यन्त निःसहाय हो जायेगी और दक्षिण आफ्रिकाके उद्यमी भारतीयोंको, बिना किसी अपराधके, जबरन दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगोंके स्तर पर गिरा दिया जायेगा।

मान लीजिए, कोई बुद्धिमान अजनबी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें आता है। उसे बताया जाता है कि इस राज्यमें एक वर्ग ऐसे लोगोंका है जो अचल सम्पत्ति नहीं रख सकते; बिना परवानोंके राज्यमें घूम-फिर नहीं सकते; व्यापारके लिए राज्यमें प्रवेश करते ही सिर्फ उन्हींको साढ़े तीन पौंडका एक विशेष पंजीकरण शुल्क देना पड़ता है; वे व्यापार करनेके परवाने नहीं पा सकते; उन्हें शीघ्र ही शहरोंसे

१. यह प्रार्थनापत्र सर जेकब्स डी' वेटने ३० मई, १८९५ को पिछले शीर्षकके साथ केपटाउन स्थित उच्चायुक्तके पास भेजा था।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

बहुत दूरके स्थानोंमें हट जानेका आदेश दे दिया जायेगा; वे केवल उन्हीं स्थानोंमें निवास तथा व्यापार कर सकेंगे; और वे ९ बजे रातके बाद अपने घरोंसे निकल नहीं सकते। इतना बतानेके बाद उस अजनबीसे कहा जाये कि अनुमान लगाओ, इन खास निर्योग्यताओंका कारण क्या होगा, तो क्या वह ऐसा निष्कर्ष न निकालेगा कि वे लोग बिलकुल गुंडे, अराजक और राज्य तथा समाजके लिए राजनीतिक दृष्टिसे खतरनाक होंगे? इसपर भी प्रार्थी महानुभावको विश्वास दिलाते हैं कि जो भारतीय उपर्युक्त सब निर्योग्यताओंके अधीन जीवन-यापन कर रहे हैं वे न तो गुंडे हैं और न अराजक हैं। उलटे, वे दक्षिण आफ्रिकाके और खासकर दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके सबसे ज्यादा शान्तिप्रिय और कानूनका पालन करनेवाले लोगोंमें हैं।

प्रमाण यह है कि जोहानिसबर्गमें यूरोपीय समाजके ऐसे लोग हैं, जो राज्यके लिए सच्चे खतरेके हेतु बने हुए हैं और हाल ही में जिनकी अपनी प्रवृत्तियोंसे पुलिस-बलमें वृद्धि करना आवश्यक हो गया है और खुफिया विभागपर बहुत भार लाद दिया गया है; परन्तु भारतीय समाजने इन विषयोंमें राज्यको चिन्ताका कोई कारण नहीं दिया।

इसके समर्थनमें प्रार्थी आपका ध्यान सारे दक्षिण आफ्रिकाके अखबारोंकी ओर आकर्षित करते हैं।

जिस सक्रिय आन्दोलनसे भारतीयोंकी वर्तमान हालत हुई है उसमें भी भारतीयों पर इस प्रकारके आरोप मढ़नेकी इच्छा नहीं की गई।

भारतीयोंपर केवल एक आरोप लगाया गया है कि वे समुचित स्वच्छताका पालन नहीं करते। प्रार्थियोंका विश्वास है कि परमश्रेष्ठ परममाननीय लॉर्ड रिपनको भेजे गये निवेदनमें इस आरोपको पूर्णतः निराधार सिद्ध किया जा चुका है। फिर भी यदि मान लिया जाये कि आरोपमें कुछ आधार है ही, तो भी स्पष्ट है कि वह भारतीयोंको अचल सम्पत्ति रखने, या देशमें स्वेच्छा तथा स्वतन्त्रताके साथ घूमने-फिरनेसे रोकनेका कारण नहीं हो सकता। वह भारतीयोंपर साढ़े तीन पौंडका विशेष भुगतान लादनेका कारण भी नहीं हो सकता।

यह कहा जा सकता है कि अब तो दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकारने कतिपय कानून मंजूर कर लिये हैं। ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशने अपना निर्णय भी दे दिया है और, उस निर्णयसे सम्राज्ञी सरकार बंधी हुई है।

प्रार्थियोंकी नम्र मान्यता है कि साथके कागजातमें इन आपत्तियोंका जवाब दिया जा चुका है। लंदन समझौता सम्राज्ञीकी सब प्रजाओंके अधिकारोंका विशेष रूपसे संरक्षण करता है। यह एक माना हुआ सत्य है। सम्राज्ञी सरकारने समझौतेसे विलग होने और पंच-फैसला करानेकी अनुमति स्वच्छताके आधारपर दी थी। और प्रार्थियोंको बताया गया है कि समझौतेकी इस प्रकार अवहेलना करनेकी अनुमति महानुभावके पूर्वाधिकारीसे परामर्श किये बिना ही दी गई थी। इस तरह, जहाँतक भारत सरकारका सम्बन्ध है, प्रार्थियोंका निवेदन है, वह अनुमति बन्धनकारक नहीं है। यह तो स्वयंस्पष्ट है कि भारत सरकारसे परामर्श किया जाना चाहिए था। और अगर महानुभावका इरादा वर्तमान अवस्थामें और केवल इसी आधारपर प्रार्थियोंकी ओरसे हस्तक्षेप

करनेका न हो तो प्राथियोंका निवेदन है कि जिन कारणोंसे यह अनुमति दी गई वे न तो तब मौजूद थे, न अब मौजूद हैं। वास्तवमें सम्राज्ञी सरकारको गलतबयानी द्वारा गुमराह किया गया है, इसलिए ये बातें महानुभावसे हस्तक्षेपकी प्रार्थना करनेके लिए और महानुभाव द्वारा उस प्रार्थनाको मान्य करनेके लिए काफी औचित्य रखती हैं।

और इसमें निहित समस्याएँ इतनी महत्त्वपूर्ण और इतनी साम्राज्यव्यापी हैं कि प्राथियोंने स्वच्छता-सम्बन्धी आरोपका जो कड़ा किन्तु आदरपूर्ण विरोध किया है उसकी दृष्टिसे पूरी जाँचके बिना इस प्रश्नका ऐसा निबटारा नहीं किया जा सकता जिससे दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंपर अन्याय न हो।

महानुभावका मूल्यवान समय और अधिक लिये बिना प्रार्थी फिरसे अनुरोध करते हैं कि महानुभाव इसके साथके कागजातपर पूरा ध्यान दें। अन्तमें, प्रार्थी सच्चे दिलसे आशा करते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंको महानुभावका संरक्षण उदारतापूर्वक प्रदान किया जायेगा।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी सदैव दुआ करेंगे, आदि।[१]

अंग्रेजी (एस० एन० ४५१) की फोटो-नकलसे।

६३. पत्र : मु० का० कमरुद्दीनको

पोस्ट बॉक्स ६६
डर्बन, नेटाल
५ मई, १८९५

प्रिय श्री मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन,

आपकी ओरसे भारतीयोंकी सहियाँ मिलीं। डचोंकी सहियाँ लेकर तुरन्त प्रिटोरिया भिजवा दी होंगी। यह काम बहुत जरूरी है, इसलिए इसमें ढील नहीं होनी चाहिए। मैंने प्रिटोरियाको तार भी किया है कि डचोंकी अर्जीकी नकल वहाँ भेजें। यह सब काम बुधवार तक समाप्त हो जाना चाहिए। क्या किया है, सो समाचार विस्तारसे लिखें।

सब हिन्दुस्तानियोंके इसमें मेहनत करनेकी पूरी जरूरत है। नहीं तो पीछे पछताना होगा।[२]

आपका हितैषी,
मोहनदास गांधी

गुजराती (एस० एन० ३१७) की फोटो-नकलसे।

१. इस प्रार्थनापत्रका भी कोई असर नहीं पड़ा। दादाभाई नौरोजी २९ अगस्तको कलोनियल ऑफिस में चेम्बरलेनसे मिलने एक शिष्टमण्डल लेकर गये, जिसने दक्षिण आफ्रिकाके चार राज्योंमें बसने वाले भारतीयोंका मामला पेश किया।

२. कमरुद्दीनने ८ मईको उत्तरमें लिखा था (एस० एन० ३९) कि वह लॉर्ड रिपनको पेश किये जानेवाले प्रार्थनापत्रपर एक भी व्यक्तिके हस्ताक्षर नहीं करा सके थे।

६४. अन्नाहारी मिशनरियोंकी टोली

इंग्लैंडमें मैंने श्रीमती ऐना किंग्जफर्डकी पुस्तक 'परफेक्ट वे इन डायट' में पढ़ा था कि दक्षिण आफ्रिकामें ट्रैपिस्ट[1] लोगोंकी एक बस्ती है और वे लोग अन्नाहारी हैं। तबसे ही मैं इन अन्नाहारियोंसे मिलनेका इच्छुक था। आखिर वह इच्छा पूरी हो गई।

पहले मैं यह कह दूँ कि दक्षिण आफ्रिका, और खास तौरसे नेटाल, अन्नाहारियोंके लिए विशेष अनुकूल बना लिया गया है। भारतीयोंने नेटालको दक्षिण आफ्रिकाका उद्यान-उपनिवेश बना दिया है। दक्षिण आफ्रिकाकी भूमिमें लगभग कोई भी चीज पैदा की जा सकती है, और सो भी भारी मात्रामें। केला, संतरा और अनन्नासकी उपज तो लगभग अक्षय है, और माँगसे बहुत ज्यादा है। फिर क्या ताज्जुब कि अन्नाहारी लोग नेटालमें खूब भले-चंगे रह सकते हैं? ताज्जुब तो सिर्फ इस बातका है कि इस तरहकी सुविधाओं और गर्म आबहवाके बावजूद उनकी संख्या इतनी कम है। परिणाम यह है कि बड़ी-बड़ी जमीनें अब भी उपेक्षित और बंजर पड़ी हैं। मुख्य भोजन-सामग्री आयात की जाती है, जब कि सारीकी-सारी चीजोंको दक्षिण आफ्रिकामें ही पैदा कर लेना बिलकुल सम्भव है, और जब कि विशाल नेटाल प्रदेशमें ४०,००० गोरोंकी छोटी सी आबादी भारी मुसीबतमें जकड़ी हुई है। इस सबका कारण यही है कि वे कृषिके कार्यमें नहीं लगना चाहते।

जीवनकी अप्राकृतिक रीतिका एक विलक्षण किन्तु दुःखद परिणाम यह भी है कि भारतीय आबादीके प्रति, जिसकी संख्या भी ४०,००० है, जोरदार द्वेषभाव फैला हुआ है। भारतीय, अन्नाहारी होनेके कारण, बिना किसी कठिनाईके कृषि-कार्यमें लग जाते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि सारे उपनिवेशमें छोटे-छोटे खेत उनके ही हैं, और उनकी जोरदार होड़से गोरी आबादीको चिढ़ होती है। ऐसा बरताव करके वे 'खाय न खाने दे' की आत्मघाती नीतिका अवलम्बन कर रहे हैं। वे देशके विशाल कृषि-साधनोंको अविकसित छोड़े रखना पसन्द करेंगे, परन्तु यह पसन्द नहीं करेंगे कि भारतीय उनका विकास करें। ऐसी मन्द बुद्धि और अदूरदर्शिताके परिणामस्वरूप जो उपनिवेश यूरोपीय तथा भारतीय निवासियोंकी दूनी या तिगुनी संख्याका भरण-पोषण करनेमें समर्थ है, वह कठिनाईसे केवल ८०,००० यूरोपीयों और भारतीयोंका भरण-पोषण करता है। ट्रान्सवालकी सरकार तो अपने द्वेष-भावमें यहाँतक बढ़ी-चढ़ी है कि जमीन बहुत उपजाऊ होनेपर भी, साराका-सारा गणराज्य धूलका एक रेगिस्तान बना हुआ है। अगर किसी कारणसे वहाँकी सोनेकी खानें न चल सकें तो हजारों लोग बेकार हो जायेंगे और अक्षरशः भूखों मर जायेंगे। क्या इससे एक भारी सबक

१. सिस्टर्शियन ईसाई साधुओंका सन् ११४० में संस्थापित एक पंथ, जो मौन तथा अन्य साधनाओंके लिए प्रसिद्ध है।

नहीं मिलता है? मांस खानेकी आदत वास्तवमें समाजकी प्रगतिमें बाधक हुई है। इसके अलावा, जिन दो महान समाजोंको एकताके साथ कंधेसे-कंधा मिलाकर काम करना चाहिए उनके बीच उसने अप्रत्यक्ष रूपमें फूट पैदा कर दी है। यह महत्त्वपूर्ण वस्तुस्थिति भी देखने योग्य है कि उपनिवेशके भारतीयोंका स्वास्थ्य उतना ही अच्छा है जितना कि यूरोपीयोंका। मैं जानता हूँ कि यदि यूरोपीय या उनकी मांसकी बटलोइयाँ न होतीं तो बहुत-से डाक्टर भूखों मरते होते। भारतीय अपनी कमखर्चीकी और शराबसे परहेजकी आदतोंके कारण सफलताके साथ यूरोपीयोंकी बराबरी कर सकते हैं। इन दोनों आदतोंका मूल अन्नाहार ही है। अलबत्ता, इतना तो समझ लेना चाहिए कि उपनिवेशके भारतीय शुद्ध अन्नाहारी नहीं हैं; वे लगभग अन्नाहारी माने जा सकते हैं।

अब हम देखेंगे कि पाइनटाउनके निकटवर्ती मेरियन हिलके ट्रैपिस्ट लोग उपर्युक्त सत्यके कैसे स्थायी साक्षी हैं।

पाइनटाउन एक छोटा-सा गाँव है। वह डर्बनसे १६ मील रेलमार्गपर है। वह समुद्रके स्तरसे लगभग १,१०० फुटकी ऊँचाईपर है और उसकी आबहवा बहुत अच्छी है।

ट्रैपिस्ट मठ पाइनटाउनसे लगभग तीन मीलपर है। वह एक पहाड़ीपर, या यों कहिए कि, पहाड़ियोंके एक समूहपर बना हुआ है। उस पहाड़ीको मेरियन हिल कहा जाता है। मैं अपने एक साथीके साथ वहाँ पैदल गया। छोटी-छोटी पहाड़ियोंके बीचसे, जो सब हरी घाससे आच्छादित है, यह यात्रा बड़ी ही आनन्दप्रद रही।

बस्तीमें पहुँचनेपर हमने एक सज्जनको देखा, जो मुँहमें विलायती पाइप दबाये हुए था। हमने एकदम ताड़ लिया कि यह उस भ्रातृमण्डलका नहीं है। तथापि, वह हमें प्रेक्षकोंके कमरेमें ले गया। वहाँ प्रेक्षकोंके लिए एक रजिस्टर रखा हुआ था, जिसमें वे अपनी सम्मतियाँ दर्ज करते हैं। रजिस्टरसे मालूम हुआ कि वह १८९४ में शुरू किया गया था, परन्तु तबतक मुश्किलसे उसके बीस पृष्ठ भरे थे। सचमुच, मिशनकी जानकारी लोगोंको जितनी होनी चाहिए उतनी नहीं है।

इस समय भ्रातृमण्डलका एक सदस्य आया और उसने बहुत झुककर नमस्कार किया। हमें इमलीका पानी और अनन्नास दिये गये। ताजे हो जानेपर हम मार्ग-दर्शकके साथ, जहाँ-जहाँ वह हमें ले गया वहाँ-वहाँ, विभिन्न स्थान देखनेके लिए गये। जो भिन्न-भिन्न इमारतें दिखाई देती थीं वे सब ठोस लाल ईंटोंकी थीं। सब जगह शान्ति थी। यह शान्ति सिर्फ कारखानेके औजारों या देशी बच्चोंकी आवाजसे ही भंग होती थी।

यह बस्ती एक छोटा-सा, शान्त, आदर्श गाँव है। वह किसी व्यक्ति-विशेषकी सम्पत्ति नहीं, सच्चेसे-सच्चे गणतन्त्रीय सिद्धान्तोंके आधारपर सबकी सम्पत्ति है। वहाँ स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्वके सिद्धान्तका पूरी-पूरी तरह पालन किया जाता है। प्रत्येक पुरुष भाई है, प्रत्येक स्त्री बहन है। व्रती-पुरुष (मॉंक्स) की संख्या आश्रममें १२० है, और व्रती-स्त्रियोंकी संख्या लगभग ६० है। व्रती-स्त्रियोंको सिस्टर कहा जाता है। बहनोंका विहार भाइयोंके विहारसे लगभग आधा मील है। भाई और बहन

दोनों ही कड़े मौन-व्रत और ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। मठाधीश जिन लोगोंको इजाजत देता है उनके सिवा कोई दूसरे भाई या बहन बोल नहीं सकते। मठाधीश नेटालके ट्रैपिस्ट लोगोंका प्रमुख है। बोलनेकी इजाजत सिर्फ उन लोगोंको दी जाती है, जिन्हें खरीदी करने या देखने आनेवालोंकी व्यवस्था करनेके लिए शहर जाना पड़ता है।

भाई लोग लम्बा चोगा पहनते हैं। छाती और पीठपर एक काला कपड़ा होता है। बहनें सादेसे सादे लाल कपड़े पहनती हैं। कोई भी मोजे पहनता दिखलाई नहीं पड़ा।

भ्रातृमण्डलमें शामिल होनेके उम्मीदवारोंको पहले दो वर्षका व्रत लेना पड़ता है। इस बीच उन्हें नौसिखिया माना जाता है। दो वर्षके बाद या तो उन्हें आश्रम छोड़ देना पड़ता है या जीवन-भरके लिए व्रत ले लेना पड़ता है। आदर्श ट्रैपिस्ट २ बजे रातको उठता है और चार घंटे प्रार्थना तथा ध्यानमें लगाता है। ६ बजे सुबह वह नाश्ता करता है, जिसमें डबलरोटी और काफी या इसी तरहका कुछ सादा भोजन होता है। बारह बजे दिनको वह डबलरोटी तथा शोरबा और फलोंका भोजन करता है। ६ बजे शामको ब्यालू करता है और ७ या ८ बजे सोने चला जाता है। ये भाई लोग जानवरोंका मांस, मछली या पक्षियोंका मांस — कुछ नहीं खाते; अंडे खानातक छोड़ देते हैं। दूध लेते हैं, परन्तु उन्होंने बताया कि नेटालमें दूध सस्ता नहीं मिलता। बहनोंको हफ्तेमें चार दिन मांस खानेकी अनुमति है। यह पूछनेपर कि इस तरहका फर्क क्यों पाला जाता है, उपकारशील मार्गदर्शकने कहा: "क्योंकि बहनें भाइयोंसे ज्यादा सुकुमार होती हैं।" इस तर्कका बल मेरी समझमें नहीं आया। मेरा साथी करीब-करीब अन्नाहारी है, परन्तु उसकी समझमें भी नहीं आया। यह समाचार हमारे लिए आश्चर्यजनक था। इससे हमें बहुत दुःख भी हुआ, क्योंकि हमने तो अपेक्षा की थी कि भाई और बहन दोनों ही अन्नाहारी होंगे।

वे डाक्टरकी सलाहके अलावा शराब नहीं पीते। खानगी उपयोगके लिए कोई अपने पास पैसा नहीं रखता। सब एक-समान धनी या एक-समान गरीब हैं।

हमें यद्यपि उस स्थानका कोना-कोना देखनेको मिला परन्तु हमने कहीं भी कपड़े रखनेकी आलमारियाँ या सन्दूकें नहीं देखीं। आश्रमवासियोंको जबतक कामके लिए बाहर जानेकी इजाजत नहीं दी जाती, वे आश्रमकी सीमाके बाहर नहीं जाते। समाचारपत्र और गैर-धार्मिक पुस्तकें वे नहीं पढ़ते। जिन धार्मिक पुस्तकोंको पढ़नेकी अनुमति होती है उन्हें छोड़कर वे अन्य धार्मिक पुस्तकें भी नहीं पढ़ सकते। जिस पाईप लिये हुए व्यक्तिसे हम पहले-पहल मिले थे उससे हमने पूछा था कि क्या आप ट्रैपिस्ट हैं? उसने इस कठोर, तपोमय जीवनके कारण ही उत्तर दिया था: "डरो मत, मैं कोई भी होऊँ, मगर ट्रैपिस्ट नहीं हूँ।" और फिर भी वे भले भाई-बहन यह मानते नहीं दीख पड़े कि उनका जीवन दुस्सह परिस्थितियोंमें पड़ गया है।

एक प्रोटेस्टेंट धर्मगुरुने अपने श्रोताओंसे कहा था कि रोमन कैथोलिक लोग दुर्बल, रोगी और दुःखी हैं। परन्तु, कैथॉलिक लोग कैसे हैं, यह निश्चय करनेके लिए

अगर ट्रैपिस्ट लोगोंको कोई कसौटी माना जा सके तो, उलटे, वे स्वस्थ और प्रसन्न हैं। हम जहाँ भी गये, प्रफुल्ल मुसकान और विनम्र नमस्कारसे हमारा अभिनन्दन हुआ — भले ही हम किसी भाईसे मिले हों या बहनसे। मार्गदर्शक भी जब हमें उस जीवन-प्रणालीका वर्णन सुनाता था, जिसकी वह इतनी कद्र करता था, तब उस स्वयंवृत्त अनुशासनको दुःसह मानता हुआ दिखलाई नहीं पड़ता था। अमर श्रद्धा और पूर्ण, बेशर्त आज्ञापालनका इससे ज्यादा अच्छा उदाहरण अन्यत्र ढूँढ़े नहीं मिल सकता।

अगर उनका भोजन यथासम्भव सादेसे-सादा है तो उनकी भोजनकी मेजें और उनके शयनके कमरे भी कम सादे नहीं हैं।

मेजें आश्रममें ही बनी हुई हैं और उनमें कोई वार्निश नहीं है। मेजपोशोंका उपयोग नहीं किया जाता। डर्बनके बाजारमें उपलब्ध सस्तीसे सस्ती छुरियाँ और चम्मच हैं। काँचके बर्तनोंके स्थानपर वे तामचीनीके बर्तन काममें लाते हैं।

शयनके लिए एक लंबा-चौड़ा कमरा है (परन्तु वह आश्रमवासियोंकी संख्याकी दृष्टिसे बड़ा नहीं है)। उसमें ८० बिस्तर हैं। सारी उपलब्ध जगहका बिस्तरोंके लिए उपयोग किया जाता है।

देशी लोगोंके सोनेके हिस्सेमें, बहुत अधिक संख्यामें बिस्तर लगाये गये जान पड़ते थे। जैसे ही हम उनके सोनेके कमरेमें घुसे, हमने वहाँ बन्द और दम घोंटनेवाली हवा महसूस की। तमाम बिस्तर एक-दूसरेसे सटे हुए थे। उन्हें पृथक् करनेके लिए सिर्फ एक-एक तख्ता लगा था। चलनेके लिए भी जगह मुश्किलसे थी।

वे रंग-भेदमें विश्वास नहीं करते। देशी लोगोंके साथ वैसा ही बरताव किया जाता है, जैसा कि गोरोंके साथ। देशी लोग अधिकतर बच्चे हैं। उन्हें वही भोजन दिया जाता है, जो कि 'भाइयों'को मिलता है। कपड़े भी उतने ही अच्छे होते हैं। आम तौर पर यद्यपि कहा जाता है कि काफिरोंको ईसाई बनाना व्यर्थ हुआ है, और इसमें कुछ सत्य न हो सो बात भी नहीं है, परन्तु यह तो हर व्यक्ति — बड़ेसे-बड़ा अविश्वासी भी मानता है कि ट्रैपिस्ट लोगोंकी मिशन, सचमुच, अच्छे देशी ईसाई बनानेमें अत्यन्त सफल सिद्ध हुई है। जब दूसरे पंथोंके मिशन स्कूल देशी लोगोंको पश्चिमी सभ्यताके तमाम भयानक दुर्गुण ग्रहण कर लेनेका अवसर देते हैं और उनपर नैतिक असर कभी-कभी ही डाल पाते हैं, तब ट्रैपिस्ट मिशनके देशी सदस्य सादगी, सद्गुण और शिष्टताके नमूने हैं। उन्हें राहगीरोंको नम्रतापूर्वक फिर भी गौरवपूर्ण ढंगसे, अभिवादन करते देखना एक आनन्दकी बात थी।

मिशनमें लगभग १,२०० देशी लोग हैं। इनमें बच्चे और वयस्क सब शामिल हैं। उन सबने आलस्य, अकर्मण्यता और अंधविश्वासका जीवन छोड़कर उद्यम, उपयोगिता और एक परमात्माकी भक्तिका जीवन ग्रहण कर लिया है।

आश्रममें लोहारी, टीनसाजी, बढ़ईगीरी, जूते बनाने, चमड़ा पकाने, आदिके तरह-तरहके काम-घर या कारखाने हैं। उनमें देशी लोगोंको ये सब उपयोगी उद्योग सिखाये जाते हैं। इनके अलावा अंग्रेजी और जूलू भाषाएँ भी पढ़ाई जाती हैं। यहाँ

यह कह देना अनुचित न होगा कि यद्यपि इन प्रवासियोंमें करीब-करीब सभी जर्मन हैं, वे देशी लोगोंको जर्मन भाषा सिखानेका प्रयत्न कभी नहीं करते। यह उन उदात्त प्रवासियोंकी उच्चाशयताका परिचायक है। ये सब देशी लोग गोरोंके साथ कंधेसे-कंधा मिलाकर काम करते हैं।

बहनोंके विहारमें इस्तिरी करने, सिलाई, बुनाई और तिनकोंके टोप बनानेके विभाग हैं। वहाँ देशी बालिकाओंको स्वच्छ वस्त्र पहने परिश्रमके साथ काम करते देखा जा सकता है।

मठसे लगभग दो मीलपर छपाईका विभाग और एक जल-प्रपातसे चलनेवाली आटा-चक्की है। इमारत बहुत बड़ी है। वहाँ एक तेल निकालनेकी मशीन —— घानी —— भी है, जिसमें मूँगफलीका तेल निकाला जाता है। कहना आवश्यक नहीं कि उपर्युक्त कारखानोंसे आश्रमवासियोंकी अधिकतर जरूरतें पूरी हो जाती हैं।

आश्रमवासी गरम आबहवामें होनेवाले अनेक प्रकारके फल अपने बागोंमें पैदा कर लेते हैं और आश्रम लगभग आत्मनिर्भर है।

वे अपने आसपास रहनेवाले देशी लोगोंसे प्रेम करते हैं और उनका आदर करते हैं। बदलेमें उन्हें भी देशी लोगोंका प्रेम और आदर प्राप्त होता है। आम तौरपर इन्हींमें से उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करनेवाले लोग मिलते हैं।

आश्रमका सबसे मुख्य पहलू यह है कि उसमें धर्म हर जगह दिखलाई पड़ता है। प्रत्येक कमरेमें एक क्रूस है और प्रवेश-द्वारपर पवित्र जलकी एक छोटी-सी टंकी है। प्रत्येक आश्रमवासी भक्तिभावसे इस जलको अपनी पलकों, माथे और छाती पर लगाता है। आटा-चक्कीको यदि शीघ्रतासे चलकर जायें तो भी कोई न कोई चीज सूलीका स्मरण करा ही देती है। वहाँ जानेके लिए एक बड़ी सुन्दर पगडण्डी है। उसके एक ओर भव्य घाटी है, जिससे मधुरतम गान करता हुआ एक छोटा-सा झरना बहता है; दूसरी ओर छोटी-छोटी चट्टानें हैं, जिनपर सूलीके दृश्योंका स्मरण करानेवाले तरह-तरहके खुदाव कर दिये गये हैं। पूरीकी-पूरी घाटी वनस्पतियोंके हरे कालीनसे छाई हुई है, जिसमें जहाँ-तहाँ सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंके नगीने जड़े हैं। इससे अधिक मनोहर सैर या दृश्यावलीकी भली-भाँति कल्पना करना भी संभव नहीं है। ऐसे स्थानपर किये गये खुदाव मनपर अच्छा प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकते। वे ऐसे नियत अन्तरपर किये गये हैं कि जैसे ही आदमी एक खुदावपर अपने विचार समाप्त करता है वैसे ही दूसरा खुदाव उसकी दृष्टिके सामने आ जाता है।

इस प्रकार उस रास्तेसे चलनेवालेको किन्हीं भी दूसरे विचारों या बाहरी शोर-गुलकी बाधासे मुक्त रहकर शांतिपूर्ण ध्यान करनेका अभ्यास हो जाता है। कुछ खुदाव ये हैं: "प्रभु ईशु पहली बार गिरे", "प्रभु ईशु दूसरी बार गिरे", "साइमन क्रूसको ले जाता है", "प्रभु ईशुको क्रूसमें कीलोंसे जड़ दिया गया", "प्रभु ईशुको उनकी माँकी गोदमें लिटा दिया गया", आदि।

हाँ, देशी लोग भी मुख्यतः अन्नाहारी हैं। यद्यपि उन्हें मांस खानेकी मनाही नहीं है, फिर भी आश्रममें उन्हें वह नहीं दिया जाता।

दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे आश्रमोंकी संख्या कोई बारह होगी। उनमें से अधिक-तर नेटालमें हैं। उनमें कुल मिलाकर लगभग ३०० पुरुष और १२० स्त्री व्रतधारी हैं।

इस तरहके हैं हमारे नेटालके अन्नाहारी। उन्होंने अन्नाहारको धर्म नहीं बनाया। उसका आधार वे सिर्फ इस बातको मानते हैं कि अन्नाहारसे स्थूल शरीरका दमन करनेमें सहायता मिलती है। शायद वे अन्नाहार-मण्डलोंके अस्तित्वसे भी अभिज्ञ नहीं हैं और अन्नाहार-सम्बन्धी किसी साहित्यको पढ़नेकी परवाह भी न करेंगे। फिर भी, इस टोलीके साथ एक सांयोगिक समागमसे मनुष्यका हृदय प्रेम, उदारता और आत्म-त्यागकी भावनासे ओतप्रोत हो जाता है। यह आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे अन्नाहारकी विजयका सजीव प्रमाण है। ऐसी हालतमें, वह कौन-सा अन्नाहारी है, जो इस उदात्त टोलीपर अभिमानसे सिर ऊँचा न कर लेगा? मैं व्यक्तिगत अनुभवसे जानता हूँ कि आश्रमकी यात्रा करनेके लिए लंदनसे नेटाल तककी यात्रा भी ज्यादा न होगी। आश्रम-यात्रा मनपर चिरस्थायी पवित्र प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। भले ही कोई प्रोटेस्टेंट, ईसाई, बौद्ध, या कुछ भी क्यों न हो, आश्रमको देखनेके बाद यह उद्‌गार निकाले बिना नहीं रह सकता कि "अगर रोमन कैथोलिक पंथ यही है, तो इसके विरुद्ध कही गई प्रत्येक बात झूठ है।" मेरा खयाल है, इससे निर्णायक रूपमें सिद्ध हो जाता है कि किसी भी धर्मको उसके पालन करनेवाले अपने आचरणसे जैसा दिखाते हैं, वैसा ही वह दैवी अथवा शैतानी होता है।

[अंग्रेजीसे]
वेजिटेरियन, १८-५-१८९५

६५. 'नेटाल एडवर्टाइजर'को लिखे पत्रके अंश[1]

[२२ मई, १८९५ से पूर्व]

विवरणमें कहा गया है कि "भारतीय लकड़ीके कुन्दोंके टुकड़े उठाकर ले जाते पाये गये।"[2] साक्ष्य था कि . . .[3] "जिन सातको पकड़ा गया वे सिरपर कुन्दोंके टुकड़ोंके साथ. . .[4] भी उठाए हुए थे। कुन्दे लाकर दिखानेको कहा गया, किन्तु उन्हें अदालतमें पेश किया ही नहीं गया। विवरणमें कहा गया है कि उन्हें पकड़नेका

१. **नेटाल एडवर्टाइजरके** २०-५-१८९५ के अंकमें प्रकाशित एक विवरणकी अशुद्धिओंका उल्लेख करते हुए गांधीजीने एक लम्बा पत्र लिखा था। मूल पत्र उपलब्ध नहीं है। २२-५-१८९५ के **एडवर्टाइजरमें** प्रकाशित पत्रके उद्धरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

२. विवरणके अनुसार बहुतसे भारतीय रेलके बाड़ेसे लकड़ीके कुन्दोंके टुकड़े ले जाते पाये गये थे। इससे पूर्व अधिकारियोंने उन्हें जलानेके लिए लकड़ीके स्थानपर कोयला देनेकी आज्ञा दी थी। इसका उन्होंने विरोध किया था।

३ व ४. यहाँ कुछ शब्द अस्पष्ट हैं।

प्रयत्न करते ही ७१ लोगोंने मुड़कर खुलेआम डण्डे, टीन, लोहेके टुकड़े और बर्तन पुलिस पर फेंके और पुलिसको अपना बचाव करनेके लिए भागना पड़ा। अतिरिक्त सहायताके लिए पी० सी० मैडन लोगोंको लेकर घटनास्थलपर पहुँचे।" साक्ष्यमें बताया गया था कि जिन सात लोगोंको ललकारा गया उन्होंने घूम कर डण्डोंसे मुकाबला किया और दो ने विरोध करनेके लिए उन्हें उकसाया। पहले सिर्फ एक ही पुलिसका सिपाही था और वह वतनी सिपाही था, फिर पी० सी० मैडन अतिरिक्त सहायकोंके बिना अकेले ही वहाँ आये। लोगोंपर वतनी सिपाहीका विरोध करनेका आरोप तो लगाया गया है किन्तु पी० सी० मैडनने स्पष्ट कहा है कि लोगोंने उनकी कोई मुखालिफत नहीं की। विवरणमें आगे कहा गया है: "बाकी सब एक साथ पीछे-पीछे यह कहते हुए आये कि जबतक उनके साथियोंको रिहा नहीं किया जायेगा तबतक वे नहीं जायेंगे।" श्री मेसनने जो साक्ष्य दिया है उससे स्पष्ट है कि 'बाकी' के ये लोग भी गिरफ्तार कर लिये गये थे और श्री मैडनने श्री मेसनको बताया था कि रेलविभाग उनपर काम छोड़कर भागनेका आरोप लगायेगा। श्री मेसन जानते थे कि वह क्या कह रहे हैं और उनके साक्ष्यका कोई खंडन नहीं किया गया। अब वे भारतीय दूसरी बार श्री मेसनसे शिकायत करने गये हैं कि वे भूखों मर रहे हैं। विवरणमें कहा गया है, "तीन-चार सिपाही अदालतमें पेश हुए। उनके चेहरोंपर घाव थे और उनके कपड़े फटे हुए थे। तथ्य यह है कि वहाँ सिर्फ वतनी सिपाही ही था जिसका कहना है कि उसे डंडोंसे पीटा गया। जब उससे पूछा गया कि क्या वह चोटोंके निशान दिखा सकता है तो उसने कहा: "चोट सिरपर 'कहीं' लगी है, उसे कोई नहीं देख सकता।" उसके शरीरपर कोई घाव नहीं थे। न तो उसके कपड़े ही फटे हुए थे और न उसने कपड़ोंके फटनेकी शिकायत ही की। जहाँतक मैं अपनी स्मृतिपर विश्वास कर सकता हूँ, मुझे याद आता है कि "बर्तनों और लोहेके टुकड़ों के" बारेमें एक शब्द भी नहीं कहा गया। और यदि सबके सिरपर लकड़ीका ढेर था, तब वे बर्तन आदि कैसे उठा पाये यह समझमें नहीं आता। श्री पी० सी० मैडन ही गवाही देनेवाले अकेले सिपाही थे। पर लोगोंने उनकी कोई मुखालिफत नहीं की थी और सिपाहीके पीटे जानेकी उन्हें व्यक्तिगत जानकारी है ऐसा वे नहीं कह सके हैं . . .।[1] मैंने पहले भी देखा है कि आपके विवरणोंमें तथ्य गलत या बढ़ा-चढ़ा कर बताये जाते हैं और मुझे यह कहते हुए दुःख है कि जब भी ऐसा हुआ है तब तथ्योंकी यह गलतबयानी या अत्युक्ति भारतीय जातिको हानि पहुँचानेके लिए की गई है।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइजर, २२-५-१८९५

१. विवरणमें यहाँ कहा गया है कि गांधीजी द्वारा दोहराये गये कुछ साक्ष्यको छोड़ दिया गया है।

६६. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधान-परिषदको[1]

डर्बन
[२६ जून, १८९५ से पूर्व]

सेवामें

माननीय अध्यक्ष तथा सदस्यगण
विधान-परिषद

नेटाल उपनिवेशमें व्यापारियोंकी हैसियतसे रहनेवाले
निम्न हस्ताक्षरकर्त्ता भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी उपनिवेशवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयकके[2] सम्बन्धमें आपकी सम्माननीय परिषदके सामने यह प्रार्थनापत्र पेश कर रहे हैं। इसका सम्बन्ध विधेयकके उस अंशसे है, जिसका असर गिरमिटकी वर्तमान अवधिपर पड़ता है और जिसके द्वारा गिरमिटकी अवधि पूरी कर लेनेके बाद उपनिवेशमें ठहरनेके इच्छुक भारतीयोंको तीन पौंड सालाना देकर परवाना लेनेके लिए बाध्य करनेकी व्यवस्था की गई है।

प्रार्थियोंका सादर निवेदन है कि उपर्युक्त दोनों उपधाराएँ बिलकुल अन्यायपूर्ण और अनावश्यक हैं।

प्रार्थी इस सम्माननीय सदनका ध्यान इस विषयमें भारत भेजे गये प्रतिनिधियों —श्री बिन्स[3] और श्री मेसनकी रिपोर्टके इस अंशकी ओर आकर्षित करते हैं :

> **अबतक किसी देशको — जिसमें भी कुली गये हैं — गिरमिटकी अवधि फिर नई करनेकी मंजूरी नहीं दी गई है यद्यपि भारत सरकारसे बार-बार अनुरोध किया गया, और न गिरमिटकी अवधि पूरी होनेके बाद उनका लाजिमी तौरपर लौटा दिया जाना ही मंजूर किया गया है।**

इस तरह तमाम ब्रिटिश उपनिवेशोंमें इस समय जैसा व्यवहार चलता है उससे विधेयककी उपधाराएँ बिलकुल अलग हैं और बिगाड़की ओर ले जानेवाली हैं।

१. यह प्रार्थनापत्र २६ जून १८९५ के **नेटाल मर्क्युरी**में प्रकाशित हुआ था।

२. विधेयक २५ जूनको नेटाल परिषदमें प्रस्तुत किया गया, अगले दिन उसका द्वितीय वाचन करके उसे पारित कर दिया गया था।

३. सर हेनरी बिन्स (१८३७-९९); १८९७ में नेटालके प्रधान-मन्त्री।

अगर मान लिया जाये कि गिरमिटमें बँधनेके समय गिरमिटिया भारतीयोंकी औसत उम्र २५ वर्ष होती है, तो दस वर्षतक काम करानेकी अपेक्षा रखनेवाले विधेयकके अधीन उनकी उम्रका सर्वोत्तम भाग सिर्फ गुलामीमें ही बीत जायेगा।

एक भारतीयके लिए लगातार दस वर्षतक उपनिवेशमें रहकर भारत लौटना मूर्खता मात्र होगा। उसके तमाम आत्मीयताके सम्बन्ध तबतक कट जायेंगे और ऐसा भारतीय अपनी ही मातृभूमिमें अपेक्षाकृत पराया बन जायेगा। उसके लिए भारतमें काम पाना करीब-करीब असम्भव होगा। व्यापारके क्षेत्रमें पहलेसे ही बहुत भीड़ है और उसके पास इतनी सम्पत्ति भी नहीं होगी कि वह अपनी पूँजीपर गुजर कर सके।

दस वर्षकी कुल कमाई ८७ पौंड होती है। अगर गिरमिटिया इन तमाम दस वर्षोंमें ५० पौंड बचा ले और अपने कपड़ों तथा दूसरी आवश्यकताओंपर सिर्फ ३७ पौंड खर्च करे, तो भी उस पूँजीका ब्याज इतना काफी न होगा कि वह भारत जैसे गरीब देशमें भी अपना जीवन-निर्वाह कर सके। इसलिए, अगर ऐसा भारतीय वापस जानेका साहस करे भी तो वह गिरमिट प्रथामें बँधकर फिर लौट आनेके लिए बाध्य हो जायेगा और उसकी सारीकी-सारी जिन्दगी गुलामीमें ही कटेगी। इसके अलावा, अगर किसी गिरमिटिया भारतीयका कुटुम्ब हो तो इन दस वर्षोंतक वह उसकी बिलकुल परवाह न कर सकेगा। और कुटुम्बवाला तो ५० पौण्डकी बचत भी नहीं कर पायेगा। प्रार्थियोंको परिवारवाले ऐसे गिरमिटिया भारतीयोंके अनेक उदाहरण मालूम हैं, जो कोई बचत नहीं कर पाये।

जहाँतक तीन पौंडी परवानेकी दूसरी उपधाराका सम्बन्ध है, प्रार्थियोंका निवेदन है कि वह व्यापक असन्तोष और अत्याचारको जन्म देनेवाली होगी। प्रार्थियोंके नम्र खयालसे, यह समझना कठिन है कि सम्राज्ञीकी प्रजाके एक ही वर्गको, और सो भी उपनिवेशके लिए सबसे ज्यादा उपयोगी वर्गको, यह कर मढ़नेके लिए क्यों चुना जाये।

हम आदरके साथ निवेदन करते हैं कि जो आदमी दस वर्ष तक गुलामीकी हालतमें उपनिवेशमें रह चुका हो उसे, बादमें, स्वतन्त्र नागरिककी हैसियतसे रहनेके लिए भारी कर चुकानेको बाध्य करना सामान्य न्याय और औचित्यके सिद्धान्तोंके अनुरूप नहीं है।

माना कि ये धाराएँ सिर्फ उन लोगोंपर लागू होंगी, जो कानून बन जानेके बाद उपनिवेशमें आयेंगे और जिन्हें अपने आनेकी शर्तोंकी पहलेसे ही जानकारी होगी। परन्तु इससे उक्त उपधाराएँ आपत्तिरहित नहीं बन जातीं। कारण यह है कि इकरार करनेवाले दोनों पक्षोंको कार्रवाई करनेकी बराबर स्वतन्त्रता नहीं होगी। गरीबीकी मारसे व्याकुल होकर और अपने परिवारका पालन-पोषण करना असम्भव देखकर जब कोई भारतीय गिरमिटपर हस्ताक्षर करता है, तब उसे स्वतन्त्रतासे हस्ताक्षर करने वाला नहीं कहा जा सकता। ऐसे आदमी देखे गये हैं जिन्होंने तात्कालिक कष्टोंसे छूटनेके लिए इससे भी ज्यादा सख्त बातोंको मंजूर किया है।

इसलिए, प्रार्थी नम्रतापूर्वक आशा और प्रार्थना करते हैं कि उपर्युक्त उपधाराओं को यह सम्माननीय सदन स्वीकृति न दे। और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी सदैव दुआ करेंगे, आदि।

अब्दुल्ला हाजी आदम
और अन्य अनेक भारतीय

अंग्रेजी (एस० एन० ४३५) की फोटो-नकलसे।

६७. प्रार्थनापत्र : जो० चेम्बरलेनको

[डर्बन
११ अगस्त, १८९५]

सेवामें

परममाननीय जोज़ेफ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री
सम्राज्ञी-सरकार, लन्दन

नेटाल उपनिवेशवासी नीचे हस्ताक्षर करनेवाले भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

नेटालकी विधानसभा और विधान-परिषदने हालमें ही भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयक मंजूर किया है। उसके सम्बन्धमें अर्ज करनेके लिए प्रार्थी नेटाल उपनिवेशवासी भारतीयोंके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे आदरपूर्वक महानुभावकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं। हम प्रार्थी विधेयकके बारेमें उस हदतक अर्ज करना चाहते हैं, जहाँतक उसका असर गिरमिटियोंकी वर्तमान स्थितिपर पड़ता है और जहाँतक वह कानून अपने दायरेमें आनेवाले तथा उपनिवेशमें स्वतन्त्र नागरिकोंके रूपमें रहनेके इच्छुक भारतीयोंको प्रतिवर्ष ३ पौंड शुल्कका विशेष परवाना निकालनेके लिए बाध्य करता है।

(२) प्रार्थियोंने ऊपरके विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली उपधाराओंको निकलवा देनेके उद्देश्यसे दोनों सदनोंको आदरयुक्त प्रार्थनापत्र[1] भेजे थे। परन्तु यह बताते हुए खेद होता है कि उनका कोई लाभ नहीं हुआ। प्रार्थनापत्रोंकी नकलें इसके साथ संलग्न हैं और उनपर क्रमशः 'क' तथा 'ख' चिह्न लगा दिये गये हैं।

(३) उपर्युक्त विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली उपधाराएँ निम्नलिखित हैं:

उपधारा २: जिस तारीखसे यह कानून अमलमें आयेगा उससे और उसके बाद, १८९१ के भारतीय प्रवासी कानूनकी अनुसूची 'ख' तथा 'ग' के

१. देखिए "प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभाको", ५-५-१८९५ से पूर्व और पिछला शीर्षक।

अनुसार, जिनका उल्लेख उस कानूनके खंड ११में हुआ है, भारतीय प्रवासी जिन इकरारनामोंपर हस्ताक्षर करेंगे उनमें गिरमिटिया भारतीयोंकी ओरसे निम्नलिखित शब्दोंमें एक प्रतिज्ञा होगी :

हम यह भी मंजूर करते हैं कि अवधि समाप्त होने या अन्य तरीकेसे इकरारनामा खत्म होनेके बाद हम या तो भारत लौटेंगे या समय-समयपर किये जानेवाले इकरारनामेके अनुसार नेटालमें रहेंगे। शर्तें ये हैं कि नई प्रतिज्ञाबद्ध सेवाकी हरएक अवधि दो वर्षकी होगी और इस इकरारनामे में वेतनकी जो व्यवस्था की गई है उसके बाद प्रत्येक वर्षका मासिक वेतन इस प्रकार होगा — पहले वर्ष १६ शिलिंग, दूसरे वर्ष १७ शिलिंग, तीसरे वर्ष १८ शिलिंग, चौथे वर्ष १९ शिलिंग और पाँचवें तथा बादके हर वर्ष २० शिलिंग मासिक।

उपधारा ६ इस प्रकार है :

इस कानूनके खंड २ में दी हुई प्रतिज्ञा करनेवाले प्रत्येक गिरमिटिया भारतीयको, जो नेटालमें फिरसे मजदूरीका इकरारनामा लिखने या भारत लौटनेसे इनकार करे, या उसकी उपेक्षा करे, या उसमें चूक जाये, हर वर्ष उपनिवेशमें रहनेके लिए एक परवाना निकालना होगा जो उसे अपने जिलेके मजिस्ट्रेटसे प्राप्त होगा। उस परवानेके लिए उसे तीन पौंड वार्षिक शुल्क देना होगा। यह शुल्क कोई भी 'क्लार्क ऑफ पीस' या तदर्थ नियुक्त अधिकारी सरसरी कार्रवाई द्वारा वसूल कर सकता है।

ऊपर उद्धृत उपधारा २ में उल्लिखित अनुसूची 'ख' का मजदूरीकी अवधि-सम्बन्धी अंश यह है :

हम . . . से नेटाल जानेवाले निम्न हस्ताक्षरकर्त्ता प्रवासी प्रतिज्ञा करते हैं कि नेटाल-स्थित भारतीय प्रवासी-संरक्षक हमें जिस मालिकके पास भेजेगा उसका काम हम करेंगे। शर्त यह है कि हमें नीचे अपने-अपने नामके सामने लिखी हुई मजदूरी और दूसरा अतिरिक्त खर्च हर माह नकद दिया जायेगा।

(४) ऊपर दिये गये अंशोंसे मालूम होगा कि यदि विचाराधीन विधेयक कानून बन गया तो अगर कोई गिरमिटिया भारतीय अपनी गिरमिटिया सेवाके पहले पाँच वर्षोंके बाद उपनिवेशमें बसना चाहेगा तो उसे सदा गिरमिटिया बनकर रहना होगा, या तीन पौंड वार्षिक कर देना होगा। प्रार्थियोंने 'कर' शब्दका उपयोग जानबूझकर किया है, क्योंकि कमेटीकी चर्चाके स्तरसे गुजरनेके पहले मूल विधेयकमें इसी शब्दका उपयोग किया गया था। प्रार्थियोंका निवेदन है कि सिर्फ नाम बदल देनेसे — कर न कहकर परवाना कह देनेसे — विधेयक कम आघातकारी नहीं हो जाता; बल्कि उससे विधेयक बनानेवालोंके इस ज्ञानका परिचय मिलता है कि उपनिवेशमें रहनेवाले एक खास वर्गके लोगोंपर एक खास व्यक्ति-कर लगाना ब्रिटिश न्याय-भावनाके बिलकुल विपरीत है।

(५) अब, प्रार्थी नम्रतापूर्वक किन्तु दृढ़ताके साथ निवेदन करते हैं कि गिरमिट की अवधिको पाँच वर्षसे बढ़ाकर लगभग अनिश्चित कालतक की कर देना अत्यन्त अन्यायपूर्ण है। वह इसलिए खास तौरसे अन्यायपूर्ण है कि जहाँतक गिरमिटिया भारतीयों द्वारा संरक्षित या प्रभावित उद्योगोंका सम्बन्ध है, इस प्रकारका कानून नितान्त अनावश्यक है।

(६) इन उपधाराओंका आविर्भाव १८९४ में नेटाल सरकार द्वारा भारत भेजे गये आयोग और श्री बिन्स तथा श्री मेसनकी रिपोर्टके कारण हुआ है। वह आयोग इन दो प्रतिनिधियोंका बना था। रिपोर्टमें इस प्रकारका कानून बनानेके लिए जो कारण बताये गये हैं वे "प्रवासी संरक्षककी वार्षिक रिपोर्ट १८९४" के पृष्ठ २० और २१ पर दिये हैं। प्रार्थी आयुक्तोंकी रिपोर्टका निम्नलिखित अंश उद्धृत करनेकी इजाजत लेते हैं:

> एक ऐसे देशमें, जहाँ देशी लोगोंकी आबादी यूरोपीयोंकी आबादीसे संख्यामें इतनी अधिक है, भारतीयोंका अमर्यादित संख्यामें बसना वांछनीय नहीं माना जाता। और सामान्य लोगोंकी इच्छा यह है कि अपने गिरमिटकी अन्तिम अवधि समाप्त कर लेनेपर वे भारतको लौट जायें। २५,००० के लगभग स्वतन्त्र भारतीय तो उपनिवेशमें बसे हुए हैं ही। इनमें से अनेकने अपने मुफ्त वापसी टिकट रद हो जाने दिये हैं। यह संख्या व्यापार करनेवाले बनियोंकी भारी आबादीके अलावा है!

(७) इस प्रकार, इस विशेष व्यवस्थाके कारण सिर्फ राजनीतिक हैं। सही बात तो यह है कि बहुत ज्यादा भीड़भाड़ हो जानेका कोई प्रश्न ही नहीं है। एक नये बसे हुए देशमें, जहाँ विशाल भूमिक्षेत्र अभी जनहीन और बंजर पड़े हैं, ऐसा कोई प्रश्न हो ही नहीं सकता।

(८) उसी रिपोर्टमें आयुक्तने आगे कहा है:

> अरबोंके बारेमें व्यापारियों और दूकानदारोंमें बड़ी उग्र भावना फैली हुई है। ये अरब सबके-सब व्यापारी हैं, मजदूर नहीं। परन्तु चूँकि इनमें से अधिकतर ब्रिटिश प्रजा हैं और किसी प्रकारके इकरारनामेके अधीन उपनिवेशमें नहीं आते, इसलिए मंजूर कर लिया गया है कि उनके मामलेमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।
>
> * * *
>
> कुली लोग किसी बड़ी हदतक यूरोपीयोंके प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं। समुद्र-तटपर यूरोपीयोंका खेती-बाड़ी करना असंभव है। परन्तु बाग सारेके-सारे वहीं हैं। वहाँ कुलियों तथा देशी लोगोंको छोड़कर दूसरे नौकरोंकी संख्या हमेशा ही बहुत कम रही है।
>
> * * *

यद्यपि हमारा निश्चित मत है कि अबतक जो भारतीय मजदूर *यहाँ बसे हैं,* (अक्षरोंका फर्क प्रार्थियोंने किया है), **उनसे उपनिवेशको भारी लाभ पहुँचा है, फिर भी हम भविष्यका खयाल टाल नहीं सकते। दक्षिण आफ्रिकामें अबतक देशी लोगोंकी भारी समस्या हल करनेको बाकी है और उसके होते हुए हम उस चिन्तासे मुक्त नहीं हो सकते, जो अब महसूस की जा रही है। अगर कुली-जनसंख्याके एक भारी भागने वापसी टिकटका फायदा जो उनके लिए उपलब्ध है, उठा लिया होता तो भयका कारण कम रहता।**

(९) उपर्युक्त उद्धरण, गिरमिट-मुक्त भारतीयोंको उपनिवेशमें बसनेसे रोकनेवाले कानूनके लिए बताये गये कारणोंके अंश हैं। परन्तु, प्रार्थियोंका अत्यन्त आदरके साथ निवेदन है कि इनसे बिलकुल उलटी ही बात सिद्ध होती है। क्योंकि, आपके अधिकतर प्रार्थी जिन भारतीय व्यापारियोंमें से हैं, वे "किसी प्रकारके इकरारनामेके अधीन उपनिवेशमें नहीं आते।" यदि उनके मामलेमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता, तो गिरमिटिया भारतीयोंके मामलेमें तो और भी नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि वे भी समान रूपमें ब्रिटिश प्रजा हैं और यों कहना चाहिए कि उन्हें इस उपनिवेशमें निमन्त्रण देकर बुलाया गया है। इसके अलावा उनका वास (आयुक्तोंके अपने ही शब्दोंमें) "उपनिवेशके लिए बहुत लाभप्रद हुआ है।" इसलिए उपनिवेशियोंकी शुभेच्छा और उनके द्वारा हिफाजतके वे विशेष अधिकारी हैं।

(१०) और, अगर 'कुली' लोग "किसी बड़ी हदतक यूरोपीयोंके प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं" तो फिर, प्रार्थी नम्रतापूर्वक पूछना चाहते हैं कि ऐसे कानूनके बनानेमें औचित्य क्या है, जिससे गिरमिटिया भारतीयोंका शान्तिपूर्वक और ईमानदारीसे अपनी रोटी कमाना कठिन हो जाये? गिरमिटिया भारतीयोंमें कोई ऐसे खास दोष हैं, जो उन्हें समाजके खतरनाक सदस्य बना देते हैं और, इसलिए ऐसे कानून बनाना उचित है, सो बात तो निश्चय ही सही नहीं है। भारतीय राष्ट्रका शान्तिप्रिय स्वभाव और उसकी सौम्यता लोक-प्रसिद्ध है। अपने अधिकारियोंके प्रति आज्ञाकारिता भी उसके चरित्रकी कम प्रमुख विशेषता नहीं है। आयुक्त इसके विरुद्ध बात नहीं कह सकेंगे, क्योंकि प्रवासी संरक्षकने, जो आयुक्तोंमें से ही एक था, अपनी रिपोर्टमें उसी पुस्तकके पृष्ठ १५ पर कहा है :

मैं जानता हूँ कि बहुत-से लोग भारतीयोंकी जातिगत रूपमें निन्दा करते हैं। फिर भी, यदि ये लोग अपने चारों ओर नजर दौड़ायें तो यह देखे बिना न रह सकेंगे कि उन्हींमें से सैंकड़ों भारतीय ईमानदारी और शान्तिके साथ अपने अनेकानेक उपयोगी तथा वांछनीय धंधोंमें लगे हैं।

* * *

मुझे यह कह सकनेमें खुशी है कि उपनिवेशवासी भारतीय आम तौरपर समाजके समृद्धिशाली, उद्यमी, कानूनका पालन करनेवाले अंग हैं।

(११) बताया गया है कि माननीय महान्यायवादीने विधेयकका दूसरा वाचन पेश करते हुए कहा था कि:

> **हमारा ऐसा कोई इरादा नहीं है कि मजदूरोंके आनेमें बाधा डालकर किसी उद्योगको हानि पहुँचाई जाये। परन्तु ये भारतीय स्थानिक उद्योगोंके विकासके लिए मजदूर बनाकर लाये गये हैं; इस मंशासे नहीं कि विभिन्न राज्योंमें जिस दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रका निर्माण हो रहा है उसके ये अंग बन जायें।**

(१२) विद्वान महान्यायवादीके प्रति अधिकसे-अधिक सम्मानके साथ प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि उपर्युक्त आक्षेपसे विचाराधीन उपधाराएँ एकदम निन्दनीय प्रमाणित हो जाती हैं। हमें विश्वास है कि सम्राज्ञीकी सरकार विधेयकको अनुमति देकर ऐसे आक्षेपोंका समर्थन नहीं करेगी।

(१३) प्रार्थी मानते हैं कि जिन कानूनोंका रुख मनुष्योंको सदा गुलामीमें जकड़े रहनेका हो उन्हें बरदाश्त करना ब्रिटिश संविधानकी भावनाके प्रतिकूल है। कहनेकी जरूरत नहीं कि अगर यह विधेयक मंजूर हो गया तो यह ऐसा ही करनेवाला है।

(१४) सरकारी मुखपत्र 'नेटाल मर्क्युरी'ने ११ मई, १८९५ के अंकमें उक्त विधयकको इस प्रकार न्यायसंगत ठहराया है:

> **तथापि, इतना तो सरकार मंजूर नहीं कर सकती कि जिन लोगोंने उचित मजदूरीपर उपनिवेशियोंकी मदद करनेका इकरार किया है, उन्हें अपना इकरार तोड़ने और उपनिवेशियोंका प्रतिस्पर्धी बनकर रहने दिया जाये — उन उपनिवेशियोंके प्रतिस्पर्धी बनकर, जिनकी केवल सेवा करनेके लिए वे यहाँ आये हैं, किसी दूसरे हेतुके लिए या किसी दूसरी शर्तके लिए नहीं। इसके विपरीत कुछ करनेका अर्थ सही और गलतके बीचका सारा भेद मिटा देना और कानून तथा औचित्यके अस्तित्वकी उपेक्षा करना होगा। इसमें किसी प्रकारकी न तो कोई सख्ती है और न वैसा करनेकी कोई इच्छा ही है; न कुछ और ही ऐसा है, जो निष्पक्ष विचार करनेपर आपत्तिजनक ठहर सके।**

(१५) उपर्युक्त उद्धरण प्रार्थियोंने यह बतानेके लिए दिया है कि भारतीयोंके विरुद्ध उत्तरदायी लोगोंमें भी कैसी भावना फैली हुई है। और, इस भावनाका कारण सिर्फ यही है कि कुछ — बहुत थोड़े — लोग न केवल गिरमिटके मातहत और उसकी अवधिमें, बल्कि अवधि समाप्त हो जानेके बाद भी लम्बे समयतक मजदूरोंकी हैसियतसे सेवा करनेके पश्चात्, उपनिवेशमें व्यापार करनेका हौसला करते हैं।

(१६) प्रार्थियोंको दृढ़ विश्वास है, सम्राज्ञीकी सरकार इस बयानको मंजूर नहीं करेगी कि उपनिवेशके कल्याणके लिए अनिवार्य माने गये लोगोंसे उपनिवेशमें निरन्तर गुलामीमें रहने या ३ पौंड वार्षिक कर देकर 'नेटाल एडवर्टाइज़र' (९-५-१८९५) के शब्दोंमें — 'स्वतन्त्रता खरीदने' की माँग करना न तो सख्ती है न अन्याय है।

(१७) उपधाराओंमें अन्याय इतना स्पष्ट और प्रबल दिखाई पड़ता है कि 'नेटाल एडवर्टाइज़र' ने भी उसे महसूस किया है। यह पत्र भारतीयोंका पक्षपाती बिलकुल ही नहीं है। उसने १६ मई, १८९५ को निम्नलिखित शब्दोंमें अपना विचार व्यक्त किया है :

विधेयककी दण्ड-सम्बन्धी उपधारा मूलतः इस आशयकी थी कि जो भारतीय भारत न लौटे, उसे "सरकारको एक वार्षिक कर देना चाहिए।" मंगलवारको महान्यायवादीने प्रस्ताव किया कि इसे इन शब्दोंमें बदल दिया जाये: "उपनिवेशमें रहनेके लिए एक परवाना निकालना चाहिए", जिसके लिए तीन पौंडकी रकम देनी होगी। निश्चय ही यह एक बेहतर परिवर्तन है। इससे वही उद्देश्य कम अप्रिय तरीकेसे पूरा हो जाता है। फिर भी, कुली प्रवासियों-पर एक विशेष कर लगानेके इस प्रस्तावसे एक मोटा प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। यदि साम्राज्यके ही एक अन्य भागसे आनेवाले कुलियोंपर यह निर्योग्यता लादी जाती है, तो निश्चय ही इसका क्षेत्र अन्य गैर-यूरोपीय जातियों तक भी बढ़ाया जाना चाहिए। उदाहरणके लिए, वह चीनियों, अरबों, राज्यके बाहरसे आने वाले काफिरों और इस तरहके सभी यात्रियोंपर लागू होना चाहिए। कुलियोंको खास तौरसे चुनकर उनपर ही इस प्रकारकी रुकावटें लगाना और दूसरे सब विदेशियोंको बिना किसी विघ्न-बाधा और निर्योग्यताके बसने देना न्याय नहीं है। अगर विदेशियोंपर कर लगानेकी प्रथा शुरू करनी ही है, तो उसका आरम्भ उन जातियोंसे होना चाहिए जो अपने देशमें ब्रिटिश झंडेके अधीन नहीं हैं। उन जातियोंसे नहीं जो, हम पसन्द करें या न करें, उसी सम्राज्ञीकी प्रजा हैं, जिसकी हम हैं। हमें असाधारण रुकावटें लादना है तो उसके लिए ये लोग पहले नहीं, अन्तिम होने चाहिए।

(१८) प्रार्थी निवेदन करते हैं कि यह व्यवस्था किसी भी न्यायशील व्यक्तिको जरा भी पसन्द नहीं आई। भारत सरकारको, भले ही वह कितनी ही अनिच्छुक क्यों न रही हो, गिरमिटकी अवधि असीमित रूपमें बढ़ा देनेके लिए नेटालके प्रतिनिधियोंने किस तरह राजी किया, यह जाननेका दावा प्रार्थी नहीं करते। परन्तु वे यह आशा अवश्य करते हैं कि गिरमिटिया भारतीयोंके मामलेपर, जिस रूपमें उसे यहाँ पेश किया गया है, भारत तथा ब्रिटेन दोनोंकी सरकारें पूरा ध्यान देंगी। और, एकतरफा आयोगकी दलीलोंपर दी गई किसी भी मंजूरीके कारण गिरमिटिया भारतीयोंके मामलेको बिगड़ने न दिया जायेगा।

(१९) तात्कालिक संदर्भके लिए, प्रार्थी नेटालके गवर्नरके नाम वाइसराय महोदयके १७ सितम्बर, १८९४ के खरीतेके निम्नलिखित अंश यहाँ उद्धृत करते हैं :

मैंने खुद वर्तमान व्यवस्थाका जारी रहना पसन्द किया होता, जिसके अधीन गिरमिटियोंके लिए अवधि पूरी हो जानेके बाद स्वतन्त्र रूपसे उपनिवेशमें बस जानेका मार्ग खुला रहता है। जिन विचारोंके अनुसार ब्रिटिश झंडेके अधीन

किसी भी उपनिवेशमें सम्राज्ञीके किसी भी प्रजाजनके बसनेमें रुकावट आती है, उनके साथ मेरी कोई सहानुभूति नहीं है। परन्तु नेटालमें भारतीय प्रवासियोंके प्रति इस समय जो भावनाएँ प्रकट की जा रही हैं उनका खयाल करके मैं आयुक्तोंके पिछले अनुच्छेदमें उल्लिखित २० जनवरी, १८९४ के स्मरणपत्रके सुझाव ('क' से 'च' तक) निम्नलिखित शर्तोंपर स्वीकार करनेको तैयार हूँ :

(क) किसी भी कुलीको शुरूमें ही इस इकरारपर भरती किया जायेगा कि अगर उसने गिरमिटकी अवधिके बाद उन्हीं शर्तोंपर फिरसे इकरार करना पसन्द न किया तो उसे अवधिके अन्दर या उसके समाप्त होनेपर तत्काल भारत लौटना होगा।

(ख) जो कुली लौटनेसे इनकार करें उन्हें किसी भी हालतमें फौजदारी कानूनके अनुसार दण्ड नहीं दिया जायेगा, और

(ग) प्रत्येक नया इकरारनामा दो वर्षके लिए होगा। पहली अवधिके और बादकी प्रत्येक अवधिके अन्तमें मुफ्त वापसी टिकटकी व्यवस्थाकी जायेगी।

वर्तमान व्यवस्थामें मैं सम्राज्ञी सरकारकी अनुमति प्राप्त होनेपर जो परिवर्तन मंजूर करनेको राजी हूँ, वे संक्षेपमें इस प्रकार हैं :[1]

(२०) प्रार्थी राहत महसूस करते हैं कि सम्राज्ञी सरकारने अबतक आयुक्तोंके सुझावोंको मंजूर नहीं किया है।

(२१) अनिवार्य वापसी या फिरसे इकरार करनेकी कल्पना जबसे शुरू हुई तभीसे वह कितनी अधिक अन्यायपूर्ण मालूम होती रही है, इसे और भी स्पष्ट करनेके लिए प्रार्थी नेटालमें १८८५ में बैठे प्रवासी आयोगकी रिपोर्ट और उसके सामने ली गई गवाहियोंके उद्धरण देनेकी इजाजत चाहते हैं।

(२२) आयुक्तोंमें से एक श्री जे० आर० सांडर्सने अतिरिक्त रिपोर्टमें जोरोंके साथ अपने निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं :

> यद्यपि आयोगने ऐसा कानून बनानेकी कोई सिफारिश नहीं की कि अगर भारतीय अपने गिरमिटकी अवधि पूरी होनेके बाद नया इकरार करनेको तैयार न हों तो उन्हें भारत लौटनेके लिए बाध्य किया जाये, फिर भी मैं ऐसे किसी भी विचारकी जोरोंसे निन्दा करता हूँ। मेरा पक्का विश्वास है कि आज जो अनेक लोग इस योजनाकी हिमायत कर रहे हैं वे जब समझेंगे कि इसका अर्थ क्या होता है तब वे भी मेरे समान ही जोरोंसे इसे ठुकरा देंगे। भले ही भारतीयोंका आना रोक दीजिए और उसके फल भोगिए, परन्तु ऐसा कुछ करनेकी कोशिश मत कीजिए जो, मैं साबित कर सकता हूँ, भारी अन्याय है।
>
> यह इसके सिवा क्या है कि हम अपने अच्छे और बुरे दोनों तरहके नौकरोंका ज्यादासे-ज्यादा लाभ उठा लें और जब उनकी अच्छीसे-अच्छी उम्र

१. उपलब्ध अंग्रेजी प्रतिमें परिवर्तनोंका सारांश नहीं दिया गया है।

हमें फायदा पहुँचानेमें कट जाये तब (अगर हम कर सकें तो, मगर कर नहीं सकते) उन्हें अपने देश लौट जानेके लिए बाध्य करें और इस प्रकार उन्हें अपने पुरस्कारका सुख भोगने देनेसे इनकार कर दें? और आप उन्हें भेजेंगे कहाँ? उन्हें उसी भुखमरीकी परिस्थितिको झेलनेके लिए फिर क्यों वापस भेजा जाये, जिससे अपनी जवानीके दिनोंमें भागकर वे यहाँ आये थे? अगर हम शाइलाकके[1] समान एक पौंड मांस ही चाहते हैं, तो विश्वास रखिए, हमें शाइलाकका ही प्रतिफल भोगना होगा।

आप चाहें तो भारतीयोंका आगमन रोक दें। अगर अभी खाली मकान काफी न हों तो अरबों या भारतीयोंको, जो इस आधेसे कम आबाद देशकी उपज व खपतकी शक्ति बढ़ाते हैं, निकालकर और भी मकान खाली करा लें। परन्तु इस एक विषयको उदाहरणके तौरपर उठाकर जाँचिए, और इसके परिणामोंका पता लगाइए। पता लगाइए कि किस तरह मकानोंके खाली पड़े रहनेसे जायदाद और सेक्युरिटीजकी कीमत घटती है और इसके बाद, कैसे गृह-निर्माणका धन्धा तथा अपने मालकी खपतके लिए इस धन्धेपर निर्भर अन्य धन्धे और दुकानें अनिवार्यतः ठप हो जाती हैं। देखिए कि इससे गोरे मिस्त्रियोंकी माँग कैसे कम होती है, और इतने लोगोंकी खर्च करनेकी शक्ति कम हो जानेसे कैसे राजस्वमें कमीकी अपेक्षा करनी होगी। इसी तरह छँटनीकी या कर बढ़ानेकी या दोनोंकी जरूरत! इस परिणामका और दूसरे परिणामोंका, जो इतने अधिक हैं कि उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता, मुकाबला कीजिए, और फिर अगर अंधी जाति-भावना या ईर्ष्याको ही प्रबल होने देना है तो होने दीजिए। उपनिवेश भारतीयोंके आगमनको जरूर रोक सकता है, और 'लोकप्रियताके दीवाने' जितना चाहेंगे उससे कहीं अधिक सरलताके साथ और स्थायी रूपमें भी, परन्तु सेवाके अन्तमें उन्हें जबरन निकाल देना उसके वशकी बात नहीं है। और मैं उससे अनुरोध करता हूँ कि इसकी कोशिश करके वह एक अच्छे नामको कलंकित न करे।

(२३) भूतपूर्व विधानपरिषदके भूतपूर्व सदस्य और वर्तमान महान्यायवादी (माननीय श्री एस्कम्ब) ने आयोगके सामने गवाही देते हुए कहा था (पृ० १७७)

जहाँतक अवधि पूरी कर लेनेवाले भारतीयोंका सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता कि किसी व्यक्तिको, जबतक वह अपराधी न हो और उस अपराधके लिए उसे देशनिकाला न दिया गया हो, दुनियाके किसी भी भागमें जानेके लिए बाध्य किया

१. शेक्सपियरके नाटक **मर्चेंट ऑफ वेनिस**का खलनायक। वह, शर्तके अनुसार, कर्जके बदले अपने कर्जदार मित्रके शरीरसे एक पौंड मांस काट लेनेपर अड़ गया था। आखिर अदालतमें उससे कहा गया कि वह एक पौंड मांस काट ले, न कम हो न ज्यादा, और न एक बूँद भी खून ही निकले। इस तरह उसे धन और मांस दोनोंसे हाथ धोना पड़ा।

जाना चाहिए। मैंने इस प्रश्नके बारेमें बहुत-कुछ सुना है। मुझसे बार-बार अपना दृष्टिकोण बदलनेको कहा गया है, परन्तु मैं वैसा नहीं कर सका। एक आदमी यहाँ लाया जाता है — *सिद्धान्ततः रजामंदीसे, व्यवहारतः बहुधा बिना रजामंदीके* (अक्षरोंमें अन्तर प्रार्थियोंने किया है)। वह अपने जीवनके सर्वश्रेष्ठ पाँच वर्ष दे देता है। नये सम्बन्ध स्थापित करता है। शायद पुराने सम्बन्धोंको भुला देता है। यहाँ अपना घर बसा लेता है। ऐसी हालतमें मेरे न्याय और अन्याय की दृष्टिसे, उसे वापस नहीं भेजा जा सकता। भारतीयोंसे जो-कुछ काम आप ले सकते हैं वह लेकर उन्हें चले जानेका आदेश दें, इससे तो यह कहीं अच्छा होगा कि आप उनको यहाँ लाना ही बिलकुल बन्द कर दें। ऐसा दीखता है कि उपनिवेश या उपनिवेशका एक भाग भारतीयोंको बुलाना तो चाहता है, परन्तु उनके आगमनके परिणामोंसे बचना चाहता है। जहाँतक मैं जानता हूँ, भारतीय हानि पहुँचानेवाले लोग नहीं हैं। कुछ बातोंमें तो वे बहुत परोपकारी हैं। फिर, ऐसा कोई कारण तो मेरे सुननेमें कभी नहीं आया, जिससे पाँच वर्ष तक अपना चाल-चलन अच्छा रखनेपर भी किसी व्यक्तिको देश-निकाला दे दिया जाये, और इस कार्यको उचित ठहराया जा सके। मैं नहीं समझता कि किसी भारतीयको, उसकी पाँच वर्षकी सेवा समाप्त होनेपर पुलिसकी निगरानीमें रखना चाहिए। हाँ, अगर वह अपराधी वृत्तिका हो तो बात दूसरी है। मैं नहीं जानता कि अरबोंको यूरोपीयोंकी अपेक्षा पुलिसकी निगरानीमें क्यों अधिक रखा जाना चाहिए। कुछ अरबोंके सम्बन्धमें तो यह बात बिलकुल हास्यास्पद है। वे बहुत साधन-सम्पन्न हैं। उनके सम्बन्ध भी बहुत फैले हुए हैं और अगर उनके साथ कारोबार करना ज्यादा फायदेमन्द हो, तो व्यापारमें उनका उपयोग हमेशा किया जाता है।

(२४) प्रार्थी आपका ध्यान उपर्युक्त उद्धरणकी ओर आकर्षित करते हुए खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि जिन महोदयने दस वर्ष पूर्व उपर्युक्त विचार व्यक्त किये थे, वही अब इस विधेयकको पेश करनेवाले सदस्य हैं।

(२५) श्री एच० बिन्सने, जो श्री मेसनके साथ प्रतिनिधिके रूपमें भारत सरकारको भारतीय मजदूरोंकी अनिवार्य वापसी या फिरसे प्रतिज्ञाबद्ध करनेकी योजना पर राजी करने गये थे, आयोगके सामने अपनी गवाहीमें यह कहा था :

मैं समझता हूँ कि गिरमिटकी अवधि समाप्त होनेपर तमाम भारतीय मजदूरोंको भारत लौटनेके लिए बाध्य करनेका जो विचार पेश किया गया है, वह भारतीयोंके लिए नितान्त अन्यायपूर्ण है। भारत सरकार उसे कभी मंजूर नहीं करेगी। मेरे खयालसे स्वतन्त्र भारतीय आबादी समाजका सबसे उपयोगी अंग है। ये भारतीय एक बहुत बड़े अनुपातमें — साधारणतः जो माना जाता है उससे कहीं बड़े अनुपातमें — उपनिवेशकी नौकरियोंमें लगे

हुए हैं। खास तौरसे वे शहरों और गाँवोंमें घरेलू नौकरोंका काम कर रहे हैं। . . . स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादी होनेके पहले पीटरमैरित्सबर्ग और डर्बन में फल, शाक-सब्जी और मछली बिलकुल नहीं मिलती थी। यूरोपसे कभी कोई ऐसे प्रवासी यहाँ नहीं आये, जिन्होंने बड़े पैमानेपर बागवानी या मछलीके धंधेमें रुचि दिखाई हो। और मेरा खयाल है कि अगर भारतीय न हों तो पीटरमैरित्सबर्ग और डर्बनके बाजारोंमें आज भी इन चीजोंकी वैसी ही कमी रहेगी जैसी दस वर्ष पूर्व रहती थी। (पृ० १५५-१५६)

(२६) वर्तमान मुख्य न्यायाधीश और तत्कालीन महान्यायवादीने यह मत व्यक्त किया था :

भारतीय जिन क़ानूनोंके अनुसार उपनिवेशमें लाये जाते हैं उनकी शर्तोंमें कोई भी परिवर्तन करनेपर मुझे आपत्ति है। मेरे खयालसे, जो भारतीय भारी संख्यामें तटवर्ती प्रदेशमें जाकर बसे, उन्होंने बहुत बड़ी मात्रामें वह कमी पूरी की है, जो यूरोपीयोंसे पूरी नहीं हो सकी थी। जो जमीन उनके न होनेपर बंजर पड़ी रहती उसे उन्होंने जोता है और ऐसी फसलें पैदा की हैं, जो उपनिवेश वासियोंके सच्चे लाभकी हैं। जो बहुत-से लोग मुफ्त वापसी टिकटका फायदा उठाकर भारत वापस नहीं गये वे विश्वस्त और अच्छे घरेलू नौकर साबित हुए हैं। (पृ० ३२७)

(२७) उस वृहद् रिपोर्टसे और भी अनेक उद्धरण देकर बताया जा सकता है कि इस व्यवस्थाके बारेमें उपनिवेशके सबसे बड़े लोगोंके विचार क्या थे।

(२८) प्रार्थी श्री बिन्स और श्री मेसनकी रिपोर्टके निम्नलिखित अंशपर भी आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं :

यद्यपि अनुमति बार-बार माँगी गई है, फिर भी जहाँ-कहीं भी कुली गये हैं, भारत सरकारने अबतक इकरारनामा दुहरानेकी अनुमति किसी देशको नहीं दी है। गिरमिटकी अवधि समाप्त होनेपर अनिवार्य वापसीकी शर्त भी किसी मामलेमें मंजूर नहीं की गई।

(२९) कानूनका समर्थन करते हुए उपनिवेशमें कहा गया है कि जहाँ दोनों पक्ष स्वेच्छासे किसी बातको मंजूर करते हैं वहाँ अन्याय हो ही नहीं सकता। और भारतीयोंको नेटाल आनेके पहले मालूम ही रहेगा कि उन्हें किन शर्तोंपर यहाँ आना है। विधान परिषद और विधानसभाको भेजे गये प्रार्थनापत्रमें इस विषयकी विवेचनाकी गई है। प्रार्थी फिरसे यह बात दोहरानेकी इजाजत लेते हैं कि जब इकरार करनेवाले पक्षोंकी स्थिति समान नहीं है, तब यह तर्क बिलकुल ही लागू नहीं होता। जो भारतीय, श्री सांडर्सके शब्दोंमें, "भुखमरीसे भाग निकलनेके लिए" इकरारमें बँधता है, उसे स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता।

(३०) अभी, १८९४ में ही, संरक्षककी रिपोर्टमें भारतीयोंके उपनिवेशके लिए अनिवार्य होनेकी बात कही गई है। इस विषयके प्रमाणोंकी चर्चा करते हुए संरक्षकने पृष्ठ १५ पर कहा है:

> **अगर थोड़े-से समयके लिए भी इस उपनिवेशसे सारेके-सारे भारतीयोंको हटा लेना सम्भव हो तो, मेरा पक्का विश्वास है, केवल कुछ अपवादोंको छोड़ कर, तमाम वर्तमान उद्योग बैठ जायेंगे। और इसका एकमात्र कारण विश्वस्त मजदूरोंका अभाव होगा। इस वस्तुस्थितिकी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि देशी लोग आम तौरपर काम करनेको तैयार नहीं हैं। इसलिए सारे उपनिवेशमें मंजूर किया जाता है कि भारतीय मजदूरोंके बिना महत्त्वके किसी भी उद्योगको —— चाहे वह कृषि हो या कोई अन्य —— सफलतापूर्वक चलाना असम्भव है। इतना ही नहीं, नेटालके प्राय: प्रत्येक घरमें नौकर नहीं रहेंगे।**

(३१) जिन्हें इस विषयका विशेषज्ञ कहा जा सकता है अगर उनके कथनकी सारीकी-सारी धारा शुरूसे आखिरतक भारतीयोंकी उपयोगिता सिद्ध करनेवाली ही है तो, प्रार्थियोंका निवेदन है, यह कहना ज्यादती न होगी कि ऐसे लोगोंको निरन्तर गुलामीमें रखना या उन्हें तीन पौंड वार्षिक कर देनेके लिए —— चाहे वे दे सकते हों या नहीं —— बाध्य करना, कमसे-कम कहा जाये तो, बिलकुल एकपक्षीय और स्वार्थमय कार्रवाई है।

(३२) प्रार्थी आदरपूर्वक आपका ध्यान इस वस्तुस्थितिकी ओर आकर्षित करते हैं कि यदि विधेयक कानूनमें परिणत हो गया तो भारतीयोंके देशान्तरवासका मूल उद्देश्य ही हर तरहसे निष्फल हो जायेगा। अगर देशान्तरवासका उद्देश्य यह है कि उससे अन्तत: भारतीय अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनेमें समर्थ हों, तो वह उद्देश्य उनके निरन्तर इकरारमें बँधे रहनेसे निश्चय ही पूरा न होगा। अगर उद्देश्य भारतके घने भागोंकी भीड़ कम करना हो तो वह भी विफल ही होगा। क्योंकि कानूनका ध्येय उपनिवेशमें भारतीयोंकी संख्या बढ़ने न देना है। उसके पीछे मंशा यह है कि जो लोग गिरमिटके जुए का भार वहन करने योग्य नहीं रहे उन्हें जबरन भारत वापस कर दिया जाये और उनके बदले नये आदमी लाये जायें। इसलिए, प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि पहलेकी स्थितिसे बादकी स्थिति ज्यादा खराब होगी। क्योंकि, जहाँ तक नेटालसे निकासका सम्बन्ध है, घनी आबादीके हलकोंमें भारतीयोंकी संख्या तो वही रहेगी, और जो लोग अपनी इच्छाके विरुद्ध नेटालसे वापस आयेंगे वे अतिरिक्त चिन्ता तथा कष्टके कारण बन जायेंगे। क्योंकि, उन्हें न तो काम पानेकी आशा होगी और न अपने जीवन-निर्वाहके लिए उनके पास कोई पूँजी ही होगी। फलत: उनका पालन शायद सरकारी खर्चसे करना पड़ेगा। इस आपत्तिके जवाबमें कहा जा सकता है कि इसके पीछे एक ऐसी मान्यता है, जो कभी सच न उतरेगी। अर्थात्, भारतीय खुशीसे वार्षिक कर चुका देंगे। इसपर प्रार्थी कहनेकी इजाजत चाहते हैं कि अगर ऐसा तर्क किया जाये तो उससे वास्तवमें यही सिद्ध होगा कि

इकरारको दुहरानेकी और कर-सम्बन्धी उपधाराएँ बिलकुल बेकार हैं, क्योंकि उनसे वांछित परिणाम नहीं होगा। और, यह तो कभी कहा ही नहीं गया कि उसका उद्देश्य आमदनी बढ़ाना है।

(३३) इसलिए प्रार्थी निवेदन करते हैं कि यदि ये उपनिवेश भारतीयोंको बरदाश्त नहीं कर सकते, तो हमारी रायसे, उसका एकमात्र उपाय यह है कि भविष्यमें नेटालको मजदूर भेजना बिलकुल बंद कर दिया जाये। कमसे-कम हालमें तो यही हो सकता है। प्रार्थी ऐसी व्यवस्थाका नम्रतापूर्वक परन्तु जोरोंके साथ विरोध करते हैं, जिससे साराका-सारा लाभ एक पक्षको और सो भी उस पक्षको मिलता है, जिसे उसकी सबसे कम जरूरत है। इस प्रकार गिरमिटिया भारतीयोंका आना रोक देनेसे भारतकी घनी आबादीके हलकोंपर बहुत बुरा असर नहीं पड़ेगा।

(३४) अबतक प्रार्थियोंने गिरमिट और परवाना दोनोंकी धाराओंकी एक साथ विवेचना की है। जहाँतक परवानेका सम्बन्ध है, हम आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि ट्रान्सवालमें भी — जो एक पराया राज्य है — सरकारने अपनी इच्छा और अपने खर्चसे आनेवाले भारतीयोंपर वार्षिक कर नहीं लगाया। वहाँ सिर्फ एक बार ३ पौंड १० शिलिंगका परवाना ही लेना जरूरी है। इसपर भी, हमें मालूम हुआ है, सम्राज्ञी सरकारको प्रार्थनापत्र[१] तो भेजा ही गया है। इसके अलावा, यहाँका परवाना अत्यन्त अनिष्टकारी ढंगका वार्षिक कर है। इसका अभागा शिकार इसे देनेका सामर्थ्य रखता हो या न रखता हो, उसे देना तो पड़ेगा ही। बहसके समय एक सदस्यने पूछा कि अगर कोई भारतीय इस कर पर आपत्ति करे या इसे न चुकाये तो यह वसूल कैसे किया जायेगा? इसपर माननीय महान्यायवादीने उत्तर दिया कि न देनेवाले भारतीयके घरमें सरसरी कार्रवाईसे कुर्क कर लेनेके लिए हमेशा ही काफी माल मिल जायेगा।

अन्तमें, प्रार्थियोंका निवेदन है कि परवाना-सम्बन्धी धाराको पेश करनेसे वाइसरायके उपर्युक्त खरीतेमें निर्धारित मर्यादाका अतिक्रमण होता है।

अतएव, हम व्यग्रतापूर्वक प्रार्थना और दृढ़ आशा करते हैं कि जिन धाराओंकी यहाँ विवेचना की गई है उन्हें सम्राज्ञी-सरकार स्पष्टतः अन्याययुक्त मानेगी, और, इसलिए, उपर्युक्त भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयकको अनुमति नहीं देगी। अथवा, वह ऐसी अन्य राहतें प्रदान करेगी, जिनसे न्यायका उद्देश्य पूरा हो।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।

अंग्रेजी (एस० एन० ४३३) की फोटो-नकलसे।

१. इसका पाठ उपलब्ध नहीं हुआ।

६८. प्रार्थनापत्र : लॉर्ड एलगिनको

[डर्बन
११ अगस्त, १८९५]

सेवामें

महामहिम परममाननीय लॉर्ड एलगिन
वाइसराय तथा सपरिषद गवर्नर जनरल भारत,
कलकत्ता

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटाल निवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजन हैं और महानुभावका ध्यान अपने उस विनम्र प्रार्थनापत्रकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जो उन्होंने भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयकके बारेमें सम्राज्ञी-सरकारको भेजा है। यह विधेयक हालमें ही नेटाल की विधानसभा और विधान परिषदने मंजूर किया है। इसका आंशिक आधार नेटालके गवर्नर महोदयके नाम महानुभावका तत्सम्बन्धी खरीता है, जिसकी एक नकल इसके साथ नत्थी की जा रही है।

उपर्युक्त प्रार्थनापत्रकी[1] ओर महानुभावका ध्यान आकर्षित करनेके अलावा, प्रार्थी विधेयकके सम्बन्धमें आदरके साथ निम्नलिखित निवेदन करना चाहते हैं।

प्रार्थियोंको यह देखकर खेद हुआ है कि महानुभाव मजदूरोंके अनिवार्य रूपसे पुनः प्रतिज्ञाबद्ध किये जाने अथवा अनिवार्य रूपसे भारत लौटा दिये जानेके सिद्धान्तको स्वीकार करनेके लिए रजामन्द हैं।

प्रार्थियोंको इस बातका भी खेद है कि जब नेटालके प्रतिनिधि[2] भारतके लिए रवाना हुए थे उस समय प्रार्थियोंने महानुभावको अपनी अर्जी नहीं भेजी। ऐसी कार्रवाईकी राहमें किन कारणोंसे रुकावट पड़ी, इसकी चर्चा करना व्यर्थ होगा। फिर भी, यदि विधेयकने कानूनका रूप ले लिया तो उससे होनेवाला अन्याय बहुत बड़ा होगा। इसलिए प्रार्थियोंको आशा है कि उसे टालनेमें प्रार्थियोंके अर्जी न देनेको बाधक न माना जायेगा।

प्रार्थी अधिकतम आदरके साथ बतानेकी इजाजत लेते हैं कि यदि अनिवार्य वापसीकी शर्तका पालन न करनेपर फौजदारी कानूनका प्रयोग न किया जा सका तो इकरारनामेमें इस तरहकी उपधाराका समावेश करना सरासर हानिकारक नहीं तो बिलकुल व्यर्थ जरूर होगा। क्योंकि, उससे इकरारी पक्षको अपना इकरार तोड़नेका प्रोत्साहन मिल सकता है, और कानून ऐसी अवहेलनाकी उपेक्षा करेगा। ऐसी उग्र

१ व २. देखिए पिछला शीर्षक।

एहतियाती कार्रवाईमें पहलेसे ही यह मान्यता है कि इकरारनामा अन्यायपूर्ण है। इसलिए प्रार्थियोंका निवेदन है कि उसकी मंजूरी प्राप्त करनेके लिए जो कारण दिये गये हैं जिनसे उसे न्यायसंगत ठहराया जा सके वे बिलकुल अपर्याप्त हैं।

जैसा कि साथ नत्थी किये गये पत्रमें संकेत किया गया है, प्रार्थी महानुभावसे विनती करते हैं कि जिन उपधाराओंपर आपत्ति की गई है, उनमें से किसीके लिए अनुमति न दी जाये; बल्कि, इसके साथ नत्थी पत्रमें[1] श्री जे० आर० सांडर्स और माननीय श्री एस्कम्बका जो जोरदार मत उद्धृत किया गया है उसके अनुसार नेटालको प्रवासी भेजना बन्द कर दिया जाये।

सम्राज्ञीकी प्रजाके किसी भी अंगको, भले ही वह गरीबसे-गरीब क्यों न हो, व्यावहारिक रूपमें गुलाम बना लिया जाये, या उसपर कोई विशेष हानिकारक व्यक्ति-कर लादा जाये, ताकि उपनिवेशी जिन लोगोंसे पहले ही अधिकसे-अधिक लाभ उठा रहे हैं उनसे, किसी प्रकारका बदला चुकाये बिना, और भी अधिक लाभ उठानेकी अपनी सनक या इच्छा पूरी कर सकें — इसका प्रार्थी आदरके साथ विरोध करते हैं। अनिवार्य रूपसे पुनः इकरार कराने या उसके बदलेमें व्यक्ति-कर वसूल करनेके विचार को प्रार्थियोंने सनक कहा है। उनका विश्वास है कि उन्होंने सही शब्दका प्रयोग किया है। क्योंकि, प्रार्थियोंका दृढ़ विश्वास है कि उपनिवेशमें भारतीयोंकी संख्या यदि तिगुनी भी हो जाये तो भी खतरेका कोई कारण उपस्थित न होगा।

परन्तु प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि ऊपर-जैसे विषयका निर्णय करनेमें उपनिवेश की इच्छा ही महानुभावकी मार्गदर्शिका नहीं हो सकती। उपधाराओंसे प्रभावित होनेवाले भारतीयोंके हितोंका भी खयाल करना जरूरी है। और हमें उचित आदर-पूर्वक यह कहनेमें कोई पसोपेश नहीं है कि यदि कभी उन उपधाराओंको स्वीकार कर लिया गया तो सम्राज्ञीकी अत्यन्त निस्सहाय भारतीय प्रजाके प्रति एक गम्भीर अन्याय होगा।

हमारा निवेदन है कि पाँच वर्षका इकरारनामा काफी लम्बा होता है। उसे असीम अवधितक बढ़ा देनेका अर्थ होगा कि जो भारतीय व्यक्ति-कर देने या भारत लौटनेमें असमर्थ हो, उसे हमेशा बिना स्वतन्त्रताके, बिना कभी अपनी स्थिति सुधरनेकी आशाके रहना होगा — यहाँतक कि, वह अपनी झोंपड़ी, अपनी तुच्छ आमदनी और अपने फटे-पुराने कपड़े बदलकर ज्यादा अच्छे मकान, तृप्तिकारक भोजन और आदरके योग्य कपड़ोंका विचार भी नहीं कर सकेगा। उसे अपने बच्चोंको अपनी रुचिके अनुसार शिक्षा देने या अपनी पत्नीको आनन्द अथवा मनोरंजनके द्वारा सांत्वना प्रदान करनेका भी विचार नहीं करना होगा। प्रार्थियोंका निवेदन है कि इस जीवनकी अपेक्षा भारतमें स्वतन्त्रताके साथ और अपनी ही हालतके मित्रों तथा सम्बन्धियोंके बीच आधी भुखमरीका जीवन ही कहीं ज्यादा अच्छा और ज्यादा इष्ट होगा। उस हालतमें रहते हुए भारतीय अपना जीवन सुधारनेकी आशा कर सकते हैं, और उन्हें उसका मौका भी मिल सकता है। परन्तु यहाँकी हालतोंमें वैसा कभी नहीं हो

१. देखिए पृष्ठ २४६-४७।

सकता। हमारा विश्वास है कि मजदूरोंके प्रवासको प्रोत्साहित करनेका उद्देश्य यह कभी नहीं था।

इसलिए, आखिरमें प्रार्थी उत्कटतासे निवेदन तथा दृढ़ आशा करते हैं कि यदि उपनिवेश उपर्युक्त आपत्तिजनक व्यवस्थाके स्वीकार हुए बिना भारतीय मजदूरोंको नहीं चाहता, तो महानुभाव भविष्यमें नेटालको मजदूर भेजना बन्द कर देंगे, या दूसरी ऐसी राहतें देंगे, जो न्यायपूर्ण मालूम हों।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए आपके प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।[1]

अब्दुल करीम हाजी आदम
तथा अन्य

अंग्रेजी (एस० एन० ४३२) की फोटो-नकलसे।

६९. नेटाल भारतीय कांग्रेसका कार्य-विवरण

अगस्त, १८९५

स्थापना

१८९४ के जून महीनेमें नेटाल सरकारने विधानसभामें एक विधेयक पेश किया था, जिसका नाम मताधिकार कानून संशोधन विधेयक था। विधेयकके बारेमें ऐसा माना गया कि इससे तो उपनिवेशवासी भारतीयोंका अस्तित्व ही खतरेमें पड़ गया है। इसलिए उसे मंजूर न होने देनेके लिए क्या कार्रवाईकी जाये, इस विषयपर विचार करनेके लिए दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनीके मकानमें सभाएँ की गईं। दोनों सदनोंको प्रार्थनापत्र भेजे गये और एक प्रतिनिधिने डर्बनसे पीटरमैरित्सबर्ग जाकर दोनों सदनोंके सदस्योंसे मुलाकातें कीं। तथापि विधेयक दोनों सदनोंमें स्वीकार हो गया। इस सम्बन्धमें जो आन्दोलन हुआ, उसके परिणामस्वरूप सभी भारतीयोंको एक ऐसी स्थायी संस्था बनानेकी आवश्यकता महसूस हुई, जो भारतीयोंके सम्बन्धमें उपनिवेशकी पहली उत्तरदायी सरकारकी प्रतिगामी वैधानिक प्रवृत्तियोंका मुकाबला और भारतीयोंके हितोंकी रक्षा करे।

१. प्रार्थना निष्फल रही। नये प्रवासी कानून संशोधन विधेयकमें व्यवस्थित प्रवासी-संरक्षककी शक्तियों और कार्योंके बारेमें भारत सरकार द्वारा प्रकट किये गये हल्केसे विरोधको अनदेखा कर दिया गया। उपनिवेश मन्त्रीने वाइसरायको लिखा कि विधेयकको सम्राट्की अनुमति मिलनेके पूर्व नेटालसे मिले प्रार्थनापत्रोंको देखते हुए वे विधेयकपर पुनर्विचार करें। पर लॉर्ड एलगिन अपने पहले मतपर ही कायम रहे। (देखिए **अर्ली फेज**, पृष्ठ ५२१-२) १८ अगस्तको विधेयकको शाही मंजूरी दे दी गई और वह कानून बन गया।

दादा अब्दुल्लाके मकानमें कुछ आरम्भिक बैठकें होनेके बाद, २२ अगस्तको बड़े उत्साहके साथ नेटाल भारतीय कांग्रेसकी विधिवत स्थापना की गई। भारतीय समाजके सभी प्रमुख सदस्य कांग्रेसमें शामिल हो गये। पहली शामको ७६ सदस्योंने अपने नाम लिखाये। धीरे-धीरे सूची २२८ तक बढ़ गई। श्री अब्दुल्ला हाजी आदम अध्यक्ष चुने गये। अन्य प्रमुख सदस्योंको उपाध्यक्ष बनाया गया। श्री मो० क० गांधी अवैतनिक मन्त्री चुने गये। एक छोटी-सी कमेटी भी बनाई गई। परन्तु चूँकि कांग्रेसके शुरू-शुरूके दिनोंमें अन्य सदस्योंने भी कमेटीकी बैठकोंमें शामिल होनेकी इच्छा प्रकट की, इसलिए कमेटीको आप ही आप भंग हो जाने दिया गया और सब सदस्योंको बैठकोंमें आनेके लिए आमन्त्रित किया जाता रहा।

कमसे-कम मासिक चन्दा ५ शिलिंग रखा गया था। अधिकसे-अधिक रकम बाँधी नहीं गई थी। दो सदस्योंने दो-दो पौंड मासिक चन्दा दिया। एकने २५ शिलिंग, दसने २०-२० शिलिंग, पच्चीसने १०-१० शिलिंग, तीनने ७ शि० ६ पें० और तीनने ५ शि० ३ पेंस, दोने ५ शि० १ पेंस और एक सौ सतासीने ५-५ शिलिंग मासिक चन्दा देना स्वीकार किया। नीचे दी हुई तालिकासे विभिन्न वर्गोंके चन्दादाताओंकी संख्या, उनके दिये हुए चन्दे और बकाया चन्देका विवरण मिल जायेगा :[1]

वर्ग	संख्या	वार्षिक पौं०शि०पें०	वसूली	बकाया
०-४०-०	२	४८-००-०	४८-००-०	कुछ नहीं
०-२५-०	१	१५-००-०	१५-००-०	कुछ नहीं
०-२०-०	१०	१२०-००-०	९३-००-०	२७-००-०
०-१०-०	२२	१३२-००-०	८८-०५-०	४३-१५-०
०-०७-६	३	१३-१०-०	८-१२-६	४-१७-६
०-०५-३	२	६-०६-०	३-०८-३	२-१७-९
०-०५-१	२	६-०२-०	५-०६-९	०-१५-३
०-०५-०	१८७	५५९-१०-०	२७३-०५-०	२८६-१५-०
	२२८	९००-०८-०	५३५-१७-६	३६६-००-६

ऊपरके हिसाबसे मालूम होगा कि ९०० पौंड ८ शिलिंगकी सम्भावित आयमें से कांग्रेस अबतक सिर्फ ५०० पौंड १७ शि० ६ पें० या लगभग ५० % रकम वसूल कर सकी है। ५ शिलिंग देनेवालोंमें बकाया सबसे ज्यादा है। इसके कई कारण हैं। यह याद रखना चाहिए कि कुछ लोग बहुत देरसे सदस्य बने थे और इसलिए स्वाभाविक है कि उन्होंने सारे वर्षका चन्दा नहीं दिया। बहुत-से लोग भारत चले गये हैं। कुछ लोग इतने गरीब हैं कि वे दे ही नहीं सकते। परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि सबसे बड़ा कारण है देनेकी अनिच्छा। फिर भी अगर कुछ कार्यकर्त्ता आगे आकर मेहनत करें तो ३० % बकाया रकम वसूल हो जाना सम्भव

१. तालिकाका हिसाब उपर्युक्त हिसाबसे मेल नहीं खाता और योग भी सही नहीं है।

है। बेनेट-मामलेके लिए साधारण तथा विशेष दान और न्यूकैसल तथा चार्ल्सटाउनसे प्राप्त चन्देका ब्योरा[1] इस प्रकार है:

यह ब्योरा पूरा-पूरा दिया गया है, क्योंकि छपे हुए ब्योरेमें ये नाम नहीं हैं। इस तरह कुल आय निम्नलिखित है:

चन्दा	पौंड	५३५-१७-६
दान	पौंड	८०-१७-०
	पौंड	६१६-१४-६

उपर्युक्त हिसाब छपे हुए ब्योरेके आधारपर लगाया गया है।

बैंकमें जमा रकम ५९८ पौंड १९ शिलिंग ११ पेंस है। ऊपर दी हुई रकम पूरी करनेके लिए इस रकममें नकद खर्च और खातेमें तबादलेकी रकमें जोड़नी होंगी।

नकद खर्च ७ पौंड ५ शिलिंग १ पेंसका हुआ है। तबादलेकी रकम १० पौंड १० शिलिंग है। इसमें श्री नायडूके ८ पौंड, श्री अब्दुल कादिरके २ पौंड और श्री मूसा एच० आदमके १० शि० शामिल हैं, जो उन्हें किरायेके रूपमें पाने थे। तीनोंने ये रकमें वसूल न करके चन्देमें कटा दी हैं। इस तरह:

पौंड	५९८-१९-११
	७-०५-०१
	१०-१०-००
पौंड	६१६-१५-००

छपी हुई सूचीसे जमा रकमकी तुलना करनेपर ६ पेंसका फर्क दीख पड़ता है। ये ६ पेंस प्राप्त तो हो गये हैं, परन्तु सूचीमें दिखाये नहीं गये। यह इसलिए हुआ कि एक सदस्यने एक बार २ शिलिंग ६ पेंस दिये और दूसरी बार ३ शि० दिये थे। ३ शिलिंगको सूचीमें ठीक तरहसे दिखाया नहीं जा सका।

आजतक चेक द्वारा १५१ पौंड ११ शिलिंग १½ पेंस खर्च हुए हैं। पूरा विवरण[2] इसके साथ संलग्न है। इसके बाद बैंकमें पौंड ४४७-८-९½ शेष रहे हैं। देनदारी अभी चुकता नहीं हुई और प्रवास-सम्बन्धी प्रार्थनापत्र तथा टिकटोंका खर्च नीचे बताया गया है।

चेक देनेके नियमोंका पूरी तरहसे पालन किया गया है। यद्यपि अवैतनिक मन्त्रीको केवल अपने हस्ताक्षरोंसे ५ पौंड तककी चेक देनेका अधिकार है, फिर भी इस अधिकारका उपयोग कभी नहीं किया गया है। चेकोंपर अवैतनिक मन्त्री और श्री अब्दुल करीम हस्ताक्षर करते हैं। श्री अब्दुल करीमकी गैरहाजिरीमें श्री दोरा-स्वामी पिल्ले तथा श्री पी० दावजी और उनकी भी गैरहाजिरीमें श्री हुसेन कासिमके हस्ताक्षर कराये जाते हैं।

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

२. यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

कांग्रेसकी प्रवृत्ति: उसका काम, उसके कार्यकर्त्ता और उसकी कठिनाइयाँ

आखिरी बातकी चर्चा पहले करें, तो कहना पड़ेगा कि कांग्रेसको काफी मुसीबतोंसे गुजरना पड़ा है। यह अनुभव जल्दी ही हो गया कि चन्दा उगाहनेका काम बड़ा कठिन है। अनेक सुझाव पेश किये गये, लेकिन कोई भी पूरी तरह सफल सिद्ध नहीं हुआ। आखिरकार कुछ कार्यकर्त्ताओंने स्वेच्छासे काम किया और उन्हींके परिश्रमके फलस्वरूप ४४८ पौंडकी सम-राशि जमा दिखाना सम्भव हो सका है। सर्वश्री पारसी रुस्तमजी, अब्दुल कादिर, अब्दुल करीम, दोरास्वामी, दावजी कठराडा, रांदेरी, हुसेन कासिम, पीरन मुहम्मद, जी० एच० मियाखाँ और आमोद जीवाने किसी-न-किसी समयपर चन्दा उगाहनेका प्रयत्न किया है, इनमेंसे सब या अधिकतर एकसे ज्यादा बार चन्देके लिए घूमे हैं। श्री अब्दुल कादिरने अकेले ही अपने खर्चसे पीटरमैरित्सबर्ग जाकर लगभग ५० पौंडकी रकम वसूल की। अगर वे ऐसा न करते तो इसमें से अधिकांश रकम कांग्रेसको न मिलती। श्री अब्दुल करीम अपने खर्चसे वेरुलम गये और उन्होंने लगभग २५ पौंड वसूल किये।

चेक पर हस्ताक्षर करनेके बारेमें प्रमुख सदस्योंके बीच मतभेद भी था। मूल नियम यह था कि उनपर अवैतनिक मन्त्रीके हस्ताक्षर और श्री अब्दुल्ला एच० आदम, श्री मूसा हाजी कासिम, श्री पी० दावजी मुहम्मद, श्री हुसेन कासिम, श्री अब्दुल कादिर और श्री दोरास्वामी पिल्लेमें से किन्हीं एकके प्रति हस्ताक्षर हों। एक सुझाव यह था कि अधिक सदस्य हस्ताक्षर करें। एक समय तो इस मतभेदसे कांग्रेसकी हस्तीपर ही खतरा आ गया था। परन्तु सदस्योंकी सद्बुद्धि और ऐसे संकटको टालनेकी उनकी तत्परतासे घटाएँ छंट गईं, और उपर्युक्त परिवर्तन सर्वानुमतिसे स्वीकृत हो गया।

जैसे ही डर्बनमें कांग्रेसका काम कुछ ठीक तरहसे चलने लगा, सर्वश्री दाऊद मुहम्मद, मूसा हाजी आदम, मुहम्मद कासिम जीवा, पारसी रुस्तमजी, पीरन मुहम्मद और अवैतनिक मन्त्री सदस्य बनानेके लिए अपने खर्चसे पीटरमैरित्सबर्ग गये। वहाँ एक सभा हुई और लगभग ४८ सदस्य बने। इसी तरहकी एक दूसरी सभा वेरुलममें हुई। वहाँ करीब ३७ सदस्य बने। सर्वश्री हुसेन कासिम, हाजी, दाऊद, मूसा हाजी कासिम, पारसी रुस्तमजी और अवैतनिक मन्त्री वहाँ गये थे। श्री आमोद भायात, श्री हाजी मुहम्मद और श्री कमरुद्दीनने पीटरमैरित्सबर्गमें तथा श्री इब्राहीम मूसाजी आमोद, श्री आमोद मेतर और श्री पी० नायडूने वेरुलममें सक्रिय सहायता दी।

श्री अमीरुद्दीनने कांग्रेसके सदस्य न होते हुए भी उसके लिए बहुत जरूरी काम किया। श्री एन० डी० जोशीने गुजरातीमें रिपोर्टकी साफ-सुथरी नकल तैयार करनेकी कृपा की है।

कांग्रेसके इस पहले वर्षके प्रारम्भिक कालमें श्री सोमसुन्दरम्ने सभाओंमें दुभाषियेका काम करके और परिपत्रोंका वितरण करके सहायता पहुँचाई। न्यूकैसिल और चार्ल्सटाउनमें भी काम किया गया। वहाँ सदस्योंने दूसरे वर्षके लिए नाम लिखा दिये हैं।

श्री मुहम्मद सीदत, श्री सुलेमान इब्राहीम और श्री मुहम्मद मीरने न्यूकैसिलमें अथक कार्य किया है। वे और श्री दाऊद आमला अपने खर्चसे चार्ल्सटाउन भी गये। चार्ल्सटाउनके लोगोंने बड़ा शानदार परिणाम दिखाया। एक घंटेके अन्दर सभी उपस्थित लोग सदस्य बन गये। श्री दीनदार, श्री गुलाम रसूल और वांडाने बहुत सहायता की। ब्रिटिश सरकारको भेजे गये मताधिकार प्रार्थनापत्र, ट्रान्सवाल प्रार्थनापत्र और प्रवासी-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रके बारेमें प्रवासी भारतीयोंके इंग्लैंड तथा भारत-स्थित मित्रोंको लगभग १,००० पत्र भेजे गये।

प्रवासी कानूनका मंशा गिरमिटको नया करानेसे इनकार करनेवाले लोगोंपर तीन पौंडका कर लगानेका है। उसका जोरदार विरोध किया गया। संसदके दोनों सदनोंको प्रार्थनापत्र दिये गये।

ट्रान्सवाल-प्रार्थनापत्र सीधे कांग्रेसके तत्त्वावधानमें तो नहीं भेजा गया, फिर भी कांग्रेसके कामके सिंहावलोकनमें उसका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जा सकता।

कांग्रेसकी भावना या उसके ध्येयके अनुसार दोनों सदनोंके सदस्योंके नाम एक खुला पत्र लिखा गया, और इस उपनिवेश तथा दक्षिण आफ्रिकामें उसका व्यापक वितरण किया गया। अखबारोंने उसकी खूब चर्चा की और फलस्वरूप निजी तौर पर बहुतसे सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखे गये। नेटालके भारतीयोंकी स्थितिके सम्बन्धमें अखबारोंमें समय-समय पर पत्र भी प्रकाशित हुए। भूतपूर्व अध्यक्षने डाकघरमें एक ओर यूरोपीयोंके लिए और दूसरी ओर वतनी लोगों तथा भारतीयोंके लिए निर्धारित पृथक् प्रवेश-द्वारोंके सम्बन्धमें सरकारके साथ पत्र-व्यवहार भी किया।

जो परिणाम निकला है, वह बिलकुल असन्तोषजनक नहीं है। अब तीनों समाजोंके लिए पृथक् प्रवेश-द्वारोंकी व्यवस्था की जायेगी। गिरमिटिया भारतीयोंके बीच भी काम किया गया है। बालासुन्दरम्‌के साथ उसके मालिकने बहुत बुरा व्यवहार किया था। उसका तबादला श्री एस्क्यूके पास कर दिया गया है।

मोहर्रमके त्योहार तथा कोयलेके बदले लकड़ियाँ दी जानेके मामलेमें रेलवे विभागके गिरमिटिया भारतीयोंकी ओरसे भी कांग्रेसने हस्तक्षेप किया। इस विषयमें मजिस्ट्रेटने बहुत सहानुभूति प्रदर्शित की।

तुओहीका मामला भी उल्लेखनीय है। फैसला इस्माइल आमोदके पक्षमें दिया गया, जिनकी टोपी एक सार्वजनिक स्थानपर जबरदस्ती उतार ली गई थी और जिनके साथ दूसरी तरहसे भी दुर्व्यवहार किये गये थे।

विख्यात बेनेट-मुकदमेमें कांग्रेसका बहुत खर्च हुआ। परन्तु हमारा विश्वास है कि वह धन पानीमें नहीं गया। मजिस्ट्रेटके विरुद्ध हम फैसला नहीं करा सकेंगे, यह तो पहलेसे ही तय था। हम श्री मोरकामके प्रतिकूल परामर्श देनेके बावजूद अदालतमें गये थे। उससे स्थिति बहुत स्पष्ट हो गई है और अब हम जानते हैं कि अगर भविष्यमें इस तरहका कोई मामला खड़ा हो तो हमें ठीक-ठीक क्या करना चाहिए।

भारतीय पक्षको उपनिवेशके यूरोपीयोंकी तो बहुत सक्रिय सहायता नहीं मिली, फिर भी भारत तथा इंग्लैंडमें बहुत सहानुभूति जाग्रत हो गई है। लंदन 'टाइम्स'

और 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंका सक्रिय समर्थन किया है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी बहुत सावधान हो गई है। सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर, श्री ए० वेब,[1] माननीय फीरोजशाह मेहता, माननीय फजलभाई विसराम तथा अन्य व्यक्तियोंके पाससे सहानुभूतिके पत्र प्राप्त हुए हैं। अन्य भारतीय और ब्रिटिश पत्रोंने भी हमारी शिकायतोंको सहानुभूतिसे देखा है।

श्री ऐस्क्यू कांग्रेसकी बैठकोंमें शामिल होनेवाले एकमात्र यूरोपीय रहे हैं। जनताके सामने कांग्रेसकी स्थापनाकी अबतक आधिकारिक रूपसे घोषणा नहीं की गई है, क्योंकि जबतक उसके स्थायी रूपसे चलनेका विश्वास न हो जाये तबतक घोषणा न करना ही उचित समझा गया। उसने बहुत खामोशीसे काम किया है।

भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अब्दुल्ला हाजी आदमकी भारत-विदाईपर उन्हें एक मानपत्र दिया गया था। यह उचित ही होगा कि कांग्रेसके कार्यके इस सिंहावलोकनकी परि-समाप्ति उसके उल्लेखके साथ की जाये।

कांग्रेसको भेंटें

भेंटें नाना प्रकारकी और बहुत-सी प्राप्त हुई। भेंटें देनेवालोंमें श्री पारसी रुस्तमजी अग्रगण्य हैं। उन्होंने कांग्रेसको तीन बत्तियाँ, एक मेजपोश, एक घड़ी, एक पर्दा, एक कलमदान, कलमें, स्याहीसोख तथा एक फूलदान प्रदान किये। वे सारे वर्ष तेल भी पुराते रहे। हर बैठकके दिन वे सभा-भवनको झाड़ने-बुहारने और उसमें दिया-बत्ती करनेके लिए अपने आदमियोंको भेजते रहे हैं, और यह काम समयकी असाधारण पाबन्दीके साथ किया गया। उन्होंने कांग्रेसको ४,००० परिपत्र भी दिये। श्री अब्दुल कादिरने अपने खर्चसे सदस्य-सूची छपवा दी।

श्री सी० एम० जीवाने २,००० परिपत्र मुफ्त छपवा कर दिये। इनके लिए कागज कुछ तो श्री हाजी मुहम्मदने और कुछ श्री हुसेन कासिमने दिया।

श्री अब्दुल्ला हाजी आदमने एक शतरंजी और श्री मानेकजीने एक मेज भेंट की।

श्री प्रागजी भीमभाईने १,००० लिफाफे दिये।

अवैतनिक मन्त्रीने नियमावलीको अंग्रेजी और गुजरातीमें भारतसे छपवाकर मँगाया और सामान्य पाक्षिक परिपत्रोंके लिए कागज, टिकट आदि दिये।

श्री लॉरेन्स, जो कांग्रेसके सदस्य नहीं हैं, चुपचाप किन्तु बड़े उत्साहके साथ परिपत्र बाँटनेका काम करते रहे हैं।

विविध

सभाओंमें उपस्थिति बहुत ही कम रही और समयकी पाबन्दीकी जैसी उपेक्षा की गई वह दुःखकी बात थी। तमिल सदस्योंने कांग्रेसके कार्यमें ज्यादा उत्साह नहीं

१. अल्फ्रेड वेब: संसद-सदस्य। **इंडिया** और अन्य पत्रिकाओंमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी समस्याओंके बारेमें बहुधा लेख लिखते रहते थे; कांग्रेसके मद्रास अधिवेशन (१८९४) के अध्यक्ष और ब्रिटिश कमेटीके सदस्य थे।

दिखाया। कुछ भी होता, वे चन्दा देनेकी शिथिलताका प्रतिकार कमसे-कम ठीक समय पर और नियमित रूपसे सभाओंमें उपस्थित होकर तो कर ही सकते थे। छोटी-छोटी रकमोंका दान प्राप्त करनेके लिए श्री अब्दुल्ला हाजी आदम, श्री अब्दुल कादिर, श्री दोरास्वामी पिल्ले और अवैतनिक मन्त्रीने एक, दो और ढाई शिलिंगके टिकट जारी किये हैं। परन्तु इस योजनाके परिणामोंके बारेमें अभी कोई अनुमान लगाना सम्भव नहीं है।

एक प्रस्ताव इस आशयका भी स्वीकार किया गया है कि कर्मठ कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहित करनेके लिए तमगे दिये जायें। परन्तु तमगे अबतक बनवाये नहीं गये हैं।

मृत्यु और विदाई

दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि कुछ मास पूर्व श्री दिनशाका देहान्त हो गया।

लगभग १० सदस्य भारत चले गये हैं। उनमें भूतपूर्व अध्यक्ष श्री हाजी आदम के अलावा श्री हाजी सुलेमान, श्री हाजी दादा, श्री मानेकजी, श्री मुतुकृष्ण और श्री रणजीतसिंह शामिल हैं। इन्होंने कांग्रेसकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया है।

लगभग २० सदस्योंने अपना चन्दा कभी दिया ही नहीं। उन्हें भी कांग्रेसमें कभी शामिल न होनेवाले ही मानना चाहिए।

सुझाव

सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव यह है कि चन्दा जो कुछ भी हो, पूरे वर्षके लिए पेशगी देनेका नियम बना दिया जाये।

अन्य सूचनाएँ

स्मरण रहे कि कुछ खर्च ऐसा है जो यद्यपि कांग्रेसने मंजूर कर दिया था, फिर भी कभी किया नहीं गया। कमखर्चीका सख्तीके साथ पालन किया गया है। कांग्रेसकी नींव दृढ़ करनेके लिए कमसे-कम २,००० पौंडकी आवश्यकता है।

एक अंग्रेजी प्रतिसे।

७०. पत्र : 'नेटाल मर्क्युरी' को

डर्बन
२ सितम्बर, १८९५

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल मर्क्युरी'

महोदय,

दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके बारेमें हालके तारोंपर आपने जो टीका-टिप्पणी की है उसपर मैं कुछ विचार व्यक्त करनेकी धृष्टता करता हूँ। आप पहले भी ऐसा कह चुके हैं कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग भारतीयोंको अपने बराबरके राजनीतिक अधिकार देनेपर इसलिए आपत्ति करते हैं कि उन्हें भारतमें ये अधिकार प्राप्त नहीं हैं। इसी तरह, आप यह भी कहते आये हैं कि आपको उन्हें वे अधिकार देनेमें कोई आपत्ति नहीं होगी, जिनका उपभोग वे भारतमें करते हैं। जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है, मैं यहाँ भी दुहराता हूँ कि कमसे कम सैद्धान्तिक दृष्टिसे तो भारतमें भारतीयोंको यूरोपीयोंके बराबर राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं ही। १८३३ के अधिकार-पत्र और १८५८ की घोषणामें भारतीयोंको उन सभी अधिकारों और सुविधाओंका आश्वासन दिया गया है, जिनका उपभोग सम्राज्ञीके दूसरे प्रजाजन करते हैं। और इस उपनिवेश तथा दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंके भारतीयोंको अगर सिर्फ वही अधिकार प्राप्त हो जायें, जिनका उपभोग ऐसी ही परिस्थितियोंमें वे भारतमें कर सकते हैं, तो उन्हें पूरा सन्तोष हो जायेगा।

भारतमें जब कभी यूरोपीयोंको मताधिकारके प्रयोगका अवसर दिया जाता है, भारतीयोंको उससे वंचित नहीं रखा जाता। अगर नगरपालिकाके चुनावोंमें यूरोपीय मत दे सकते हैं, तो भारतीय भी दे सकते हैं। अगर यूरोपीय लोग विधान परिषदके निर्वाचित सदस्य बन सकते हैं, या उनके सदस्योंका चुनाव कर सकते हैं, तो भारतीय भी ऐसा कर सकते हैं। अगर यूरोपीय रात ९ बजेके बाद आजादीसे घूम-फिर सकते हैं, तो भारतीय भी घूम-फिर सकते हैं। हाँ, भारतीयोंको यूरोपीयोंके बराबर शस्त्रास्त्र रखनेकी स्वतन्त्रता जरूर नहीं है। मगर दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको भी अपने पास शस्त्रास्त्र रखनेकी कोई बड़ी उत्कण्ठा नहीं है। भारतमें व्यक्ति-कर देना नहीं पड़ता। इसलिए हालके प्रवासी अधिनियमका विरोध करनेका सौजन्य दिखाकर क्या आप असहाय गिरमिटिया भारतीयोंकी कृतज्ञता अर्जित करेंगे? राजनीतिक समानताके इसी मान्य सिद्धान्तके कारण श्री नौरोजी कामन्स सभाके सदस्य हो सके हैं।

अगर भारतीयोंको सबके बराबर अधिकार देनेमें आपको यह आपत्ति है कि इस उपनिवेशका निर्माण 'ब्रिटिश धन और शक्तिसे' किया गया है तो स्पष्ट ही

जर्मनों और फ्रांसीसियोंके बारेमें भी आपको आपत्ति करनी चाहिए। इस सिद्धान्तके अनुसार तो, पहले-पहल यहाँ आकर अपना खून बहानेवाले अगुओंके वंशज इंग्लैंडसे आकर उन्हें खदेड़नेवाले लोगोंके बारेमें भी आपत्ति उठा सकते हैं। क्या यह एक संकीर्ण और स्वार्थपूर्ण दृष्टि नहीं है? कभी-कभी आपके अग्रलेखोंमें बहुत ऊँची और भूतदयायुक्त भावनाओंकी अभिव्यक्ति मिलती है। दुर्भाग्यवश, जब आप भारतीयोंके प्रश्नपर लिखते हैं तब ये भावनाएँ एक ओर रख दी जाती हैं। और फिर भी तथ्य तो यह है कि भारतीय आपके बन्धु-प्रजाजन तो हैं ही चाहे आप इस चीजको पसन्द करें या न करें। इंग्लैंड नहीं चाहता कि भारतपर उसका प्रभुत्व समाप्त हो जाये, और साथ ही वह उसपर कठोरताके साथ शासन भी करना नहीं चाहता। उसके राजनीतिज्ञोंका कहना है कि वे ब्रिटिश शासनको भारतमें इतना अधिक लोकप्रिय बना देना चाहते हैं कि फिर भारतीय किसी दूसरे शासनको पसन्द ही न करें। तब क्या जैसे विचार आपने व्यक्त किये हैं, उनसे उन इच्छाओंकी पूर्तिमें बाधा नहीं पड़ेगी?

मैं ऐसे बहुत कम भारतीयोंको जानता हूँ जो चाहे कमाते एक हजार पौंड हों, परन्तु रहते इस तरह हों मानो सिर्फ पचास पौंड ही कमाते हों। सच बात तो यह है कि उपनिवेशमें शायद कोई भी भारतीय ऐसा नहीं है जो अकेले प्रतिवर्ष एक हजार पौंड कमाता हो। कुछ लोग ऐसे हैं जिनके व्यापारको देखकर कल्पना की जा सकती है कि वे 'ढेर-का-ढेर धन कमाते होंगे।' उनमेंसे कुछका व्यापार सचमुच बहुत बड़ा है, परन्तु मुनाफा वैसा नहीं है; क्योंकि उसमें हिस्सेदारी कई लोगोंकी है। भारतीयोंको व्यापार पसन्द है, और अगर वे इतना कमा लेते हैं जिससे वे भली-भाँति जीवन व्यतीत कर सकें तो उन्हें अपने मुनाफेमें दूसरोंको बड़े-बड़े हिस्से देनेमें बुरा नहीं लगता। वे सबसे ज्यादा स्वयं ले लेनेका आग्रह नहीं रखते। यूरोपीयोंके समान ही उनको भी अपना पैसा खर्च करनेका शौक होता है। इतना जरूर है कि वे उनकी तरह अँधाधुंध खर्च नहीं करते। बम्बईमें जिन व्यापारियोंने भी भारी सम्पत्ति इकट्ठी की है, उन्होंने अपने लिए महल बनवा लिये हैं। मोम्बासाकी एकमात्र विशाल इमारत एक भारतीयकी बनाई हुई है। जंजीबारमें भारतीय व्यापारियोंने खूब धन कमाया है, फलतः उन्होंने वहाँ अनेक महल खड़े किये हैं, और कुछने तो रंगमहल भी बनाये हैं। अगर डर्बन या दक्षिण आफ्रिकामें किसी भारतीयने ऐसा नहीं किया तो इसका कारण यह है कि उन्होंने इसके लायक काफी पैसा नहीं कमाया है। महोदय, यदि आप थोड़ी और बारीकीसे इस प्रश्नका अध्ययन करें तो, ऐसा कहनेके लिए क्षमा करेंगे, आपको मालूम हो जायेगा कि भारतीय इस उपनिवेशमें भरसक खर्च करते हैं — वे सिर्फ इतनी सावधानी रखते हैं कि कहीं अधिक संकटमें न पड़ जायें। यह कहना कि जो लोग अच्छी कमाई करते हैं वे अपनी दुकानोंके फर्शपर सोते हैं, मैं कहूँगा, गलत है। अगर आप भ्रममें रहना न चाहते हों और कुछ घंटोंके लिए अपनी सम्पादकीय कुर्सी छोड़नेके लिए तैयार हों तो मैं आपको कुछ भारतीय दुकानोंमें ले चलूँगा। तब शायद आप उनके बारेमें इतनी कठोरताके साथ विचार न करेंगे।

मेरी नम्र मान्यता है कि भारतीय प्रश्न कमसे कम ब्रिटिश उपनिवेशोंके लिए तो स्थानिक और साम्राज्य-व्यापी दोनों महत्त्व रखता है। और मैं निवेदन करता हूँ कि उसपर विचार करनेमें आवेशसे काम लेना, या पहलेसे स्थिर की हुई धारणाओं को पुष्ट करनेके लिए तथ्योंकी ओरसे आँखें मूँद लेना उस प्रश्नको सन्तोषजनक ढंगसे हल करनेका सही तरीका नहीं है। उपनिवेशके जिम्मेदार लोगोंका कर्तव्य है कि वे दोनों समाजोंके बीचकी खाई चौड़ी न करें, बल्कि सम्भव हो तो उसे पूरें। भारतीयोंको इस उपनिवेशमें आमन्त्रित करके जिम्मेदार उपनिवेशी उन्हें कोस कैसे सकते हैं? भारतीय मजदूरोंको लानेके स्वाभाविक परिणामोंसे वे भाग कैसे सकते हैं?

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, ५-९-१८९५

७१. पत्र : 'नेटाल मर्क्युरी' को[1]

डर्बन

१५ सितम्बर, १८९५

सेवामें

सम्पादक

'नेटाल मर्क्युरी'

महोदय,

भारतीयोंके प्रश्नपर श्री टी० मार्स्टन फ्रांसिसके पत्रके उत्तरमें मैं कुछ विचार व्यक्त करनकी धृष्टता कर रहा हूँ।

मैं मानता हूँ कि भारतीय नगरपालिकाओं और विधानपरिषदोंके बारेमें भी आपके पत्र-लेखकका कथन पूर्णतः सही नहीं है। केवल एक उदाहरण ले लीजिए। मैं नहीं समझता कि भारतीय नगरपालिकाओंके अध्यक्ष आई० सी० एस० अफसर ही होते हैं। बम्बई नगर-निगमके वर्तमान अध्यक्ष एक सालिसिटर हैं।

१. दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको मताधिकार देनेके बारेमें गांधीजीकी दलीलोंका प्रतिवाद करते हुए श्री टी० मार्स्टन फ्रांसिसने, जो अनेक वर्षोंतक भारतमें रह चुके थे, ६ सितम्बर, १८९५ को **नेटाल मर्क्युरी**को एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने कहा था कि यद्यपि भारतमें भारतीयोंको नगरपालिकाके चुनावोंमें मत देने और विधान परिषदके सदस्य बननेके अधिकार प्राप्त हैं फिर भी नियम इस तरहके बने हैं कि उनका पक्ष कभी यूरोपीय सदस्योंके पक्षसे प्रबल नहीं हो सकता, और न कभी वे यह अहंकारपूर्ण दावा ही कर सकते हैं कि उन्हें सर्वोच्च सत्ता प्राप्त है। नगरपालिकाओंका अध्यक्ष सदैव एक आई० सी० एस० अधिकारी होता है और कमिश्नर, गवर्नर, वाइसराय, भारत-मन्त्री और अन्ततः ब्रिटिश संसद भारतकी नगरपालिकाओं तथा विधान-संस्थाओंपर रोक लगा सकती है।

मैंने यह दावा कभी नहीं किया —— और न अब करता हूँ —— कि मताधिकार भारतमें उतना ही व्यापक है जितना यहाँ है। यह कहना भी व्यर्थ होगा कि भारतकी विधान परिषदें उतनी ही प्रातिनिधिक हैं, जितनी कि यहाँकी विधानसभा है। तथापि, जिस बातका मैं दावा करता हूँ वह यह है कि भारतमें मताधिकारकी मर्यादाएँ कुछ भी हों, वह बिना रंग-भेदके सबको प्राप्त है। इस बातका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता कि प्रातिनिधिक शासनको समझनेकी भारतीयोंकी योग्यता स्वीकारकी जा चुकी है। श्री फ्रांसिसका कथन है कि मताधिकारकी योग्यता भारतमें वही नहीं मानी जाती जो नेटालमें मानी जाती है। इस बातसे तो कभी इनकार किया ही नहीं गया है। इस तरहकी कसौटीके अनुसार तो यूरोपसे आनेवाले लोगोंको भी मताधिकार नहीं मिल सकेगा, क्योंकि विभिन्न यूरोपीय राज्योंमें मताधिकारकी योग्यता ठीक वही नहीं है जो यहाँ है।

इस सप्ताहकी डाकसे इस बातका सबसे ताजा प्रमाण प्राप्त हुआ है, कि भारतीय इस विषयकी एकमात्र सच्ची कसौटी पर, जो यह है कि वे प्रतिनिधित्वका सिद्धान्त समझते हैं या नहीं, कभी कम नहीं उतरे हैं। मैं 'टाइम्स' में प्रकाशित 'भारतीय मामले' शीर्षक लेखसे निम्नलिखित उद्धरण दे रहा हूँ:

> परन्तु जिन भारतीय सैनिकोंने कीर्ति कमाई है, उनकी वीरता अगर हमारे अन्दर इस बातका अभिमान जगाती है कि हमारे बन्धु-प्रजाजन ऐसे हैं . . . सचमुच उस भयानक घाटीमें उन्होंने अपने साथियोंके प्रति जिस भव्य आत्मत्यागका परिचय दिया था, उससे बढ़कर और कुछ हो ही नहीं सकता. . . सच तो यह है कि भारतीय योग्य सह-प्रजाजन माने जानेका अधिकार अनेक तरीकोंसे अर्जित कर रहे हैं। समर-भूमि सदा ही विभिन्न जातियोंके बीच सम्मान पूर्ण समानता स्थापित करनेका सरल साधन रही है; परन्तु भारतीय तो इससे कहीं अधिक मन्द और कठिन तरीकोंसें, अर्थात् नागरिकोंकी हैसियतसे अपने समुचित आचरणके द्वारा भी हमारा सम्मान प्राप्त करनेका अपना अधिकार सिद्ध कर रहे हैं। तीन वर्ष पूर्व आंशिक निर्वाचनके आधारपर भारतीय विधान परिषदके विस्तारका जो प्रयोग किया गया था, उससे बड़ा प्रयोग अधीन राज्योंके वैधानिक शासनमें पहले कभी नहीं हुआ था। . . . अनेक चर्चाएँ बहुत मददगार रही हैं। और जहाँतक बंगालका उस प्रान्तका सम्बन्ध है, जहाँ निर्वाचन-पद्धति सबसे अधिक कठिनाइयोंसे भरी मालूम होती थी, वहाँ भी एक कड़ी कसौटीके बाद यह प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है।

जैसा कि सभीको मालूम है, यह अनुच्छेद एक ऐसे इतिहासज्ञ[1] और भारतके अफसरकी कलमसे निकला है, जिसने भारतमें तीस वर्षसे अधिक सेवा की है। कुछ लोगोंको मताधिकार न दिया जाना अपने आपमें बड़ी निरर्थक चीज मालूम हो सकती

१. सर विलियम विल्सन हंटर।

है। परन्तु भारतीय समाजपर उसके जो दुष्परिणाम होंगे उनकी कल्पना करना भी बहुत भयानक है। दूसरी ओर मेरा विश्वास है कि यूरोपीय उपनिवेशियोंको उससे बिलकुल ही लाभ नहीं है। हाँ, अगर किसी जाति या राष्ट्रको नीचे गिरानेमें, या उसे अध:पतनकी अवस्थामें रखनेमें ही कोई सुख मिलता हो तो बात अलग है। "गोरे लोगों या पीले लोगोंके शासन करने"का तो कोई सवाल ही नहीं है, और मुझे आशा है कि मैं भविष्यमें कभी बता सकूँगा कि इस विषयमें जो भय रखा जाता है, वह बिलकुल निराधार है।

श्री फ्रांसिसके पत्रके कुछ अंशोंसे शायद मालूम हो जायेगा कि उन्हें भारत छोड़े बहुत दिन हो गये हैं। वहाँ नागरिक कमिश्नरके पदसे अधिक जिम्मेदार पद बहुत कम होते हैं। फिर भी हालमें ही भारत-मन्त्रीने उस पदपर एक भारतीयको नियुक्त करनेमें बुद्धिमत्ता समझी है। श्री फ्रांसिस जानते हैं कि भारतमें प्रधान न्यायाधीशका अधिकार-क्षेत्र कितना बड़ा होता है; एक भारतीय बंगालमें और इसी तरह मद्रासमें भी उस पदको सुशोभित करता रहा है। जो लोग दोनों जातियों — ब्रिटिश और भारतीयों — को 'प्रेमकी रेशमी डोरीसे' बाँधना चाहते हैं, उनके लिए दोनोंके बीच अगणित सम्पर्क-स्थल खोज लेना कठिन न होगा। दोनोंके तीन धर्मोंमें भी, दिखाऊ विरोधके बावजूद, बहुत-सी बातें एक-सी हैं; और इन तीनोंकी एक त्रिमूर्ति बना देना बुरा न होगा।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, २३-९-१८९५

७२. पत्र : 'नेटाल एडवर्टाइजर'को

डर्बन
२३ सितम्बर, १८९५

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल एडवर्टाइजर'

महोदय,

अपने शनिवारके अंकमें आपने 'भारतीय कांग्रेस' या, अधिक ठीक कहूँ तो 'नेटाल भारतीय कांग्रेस' पर जैसे आक्षेप किये हैं, वैसे आक्षेप करनेका अभी समय ही नहीं आया था, कारण यह है कि जिस मामलेमें[1] कांग्रेसका नाम आया है उसका

१. नेटाल भारतीय कांग्रेसके नेताओंपर आरोप लगाया गया था कि मार-पीटके एक मुकदमेमें एक भारतीयको गवाही न देनेके लिए धमकानेमें उनका हाथ था। प्रत्यक्ष अभियोग पदयाची नामक व्यक्तिपर था जो कांग्रेसका सदस्य था। कहा गया था कि उसने कांग्रेसके नेताओंकी प्रेरणासे वैसा किया। यह भी

फैसला अबतक नहीं हुआ है। जिन परिस्थितियोंमें कांग्रेसको इस मामलेमें शामिल किया गया है उनपर अगर मैं कुछ कहूँ तो अदालतकी मानहानि करनेकी जोखिम उठानेका डर है। इसलिए जबतक मामलेका फैसला नहीं होता, तबतक मैं अपने विचार प्रकट न करनेके लिए विवश हूँ।

मगर फिलहाल, आपके आक्षेपोंसे लोगोंके मनमें जो भी गलत छाप पड़ सकती हो, उसे मिटानेके लिए, आपकी अनुमतिसे, मैं कांग्रेसके ध्येय स्पष्ट कर दूँ। उसके ध्येय ये हैं:

"(१) उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच एक-दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह समझनेका माद्दा पैदा करना और मैत्रीभाव बढ़ाना।

"(२) समाचारपत्रोंमें लिखकर, पुस्तिकाएँ प्रकाशित करके और व्याख्यानों आदिके द्वारा भारत और भारतीयोंके बारेमें जानकारी फैलाना।

"(३) भारतीयोंको, खासकर उपनिवेशमें जन्मे भारतीयोंको, भारतीय इतिहासकी शिक्षा और भारतीय विषयोंका अध्ययन करनेकी प्रेरणा देना।

"(४) भारतीयोंके विभिन्न दुखड़ोंकी जाँच-पड़ताल करना और उन्हें दूर करनेके लिए तमाम वैध उपायोंसे आन्दोलन करना।

"(५) गिरमिटिया भारतीयोंकी हालतकी जाँच करना और उनको विशेष कठिनाइयोंसे निकलनेमें मदद करना।

"(६) गरीबों और जरूरतमन्दोंकी सब उचित तरीकोंसे मदद करना।

"(७) और आम तौरपर वे सब प्रयत्न करना, जिनसे भारतीयोंकी नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक और राजनीतिक स्थितिमें सुधार हो।"

स्वयं कांग्रेसका विधान ऐसा है कि वह व्यक्तिगत शिकायतोंमें तबतक हस्तक्षेप करनेसे रोकता है, जब तक कि उनका महत्त्व सार्वजनिक न हो।

"भारतीय कांग्रेसके अस्तित्वका पता चला, सो केवल एक आकस्मिक संयोग ही था"—यह कहना ज्ञात तथ्योंके अनुकूल नहीं है। जबकि कांग्रेसका गठन हो रहा था, तभी 'नेटाल विटनेस'ने उस हकीकतकी घोषणा कर दी थी, और, अगर मैं गलती नहीं कर रहा होऊँ तो, कांग्रेसकी स्थापना-सम्बन्धी अंशकी नकल आपने भी छापी थी। यह सच है कि पहले इसकी विधिवत् घोषणा नहीं की गई थी। इसका कारण यह था कि संगठनकर्ताओंको उसके स्थायित्वका विश्वास नहीं था, और न अभी है। उन्होंने इसमें बुद्धिमत्ता समझी कि समयको ही उसे जनताकी निगाहमें लाने दिया जाये। उसे गुप्त रखनेके कोई प्रयत्न नहीं किये गये। उलटे, उसके संगठनकर्ताओंने उन यूरोपीयोंको भी, जिन्हें कांग्रेसके प्रति सहानुभूति रखनेवाले समझा जाता था, उसमें शामिल होने या उसकी पाक्षिक बैठकोंमें हिस्सा लेनेके लिए

कहा गया था कि कांग्रेस गांधीजीके नेतृत्वमें सरकारसे लड़नेका षड्यंत्र रच रही है, उसने भारतीय मजदूरोंको अपने कष्टोंके विरुद्ध आन्दोलन करनेके लिए उभाड़ा है, गांधीजी उनसे और भारतीय व्यापारियोंसे राहत दिलानेके वादे करके रुपया ऐंठते हैं और उसका उपयोग अपने मतलबके लिए करते हैं। देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", २१-१०-१८९५ भी।

आमन्त्रित किया। अब जो सार्वजनिक रूपसे कैफियत देना आवश्यक समझा गया है, उसका कारण यह है कि व्यक्तिगत बातचीतमें कांग्रेसका मंशा गलत बताया जाने लगा था, और अब आपने (बेशक अनजाने) सार्वजनिक रूपसे उसके बारेमें गलतफहमी फैला दी है।

आपका,
मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री
नेटाल भारतीय कांग्रेस

[पुनश्च:]

आपकी जानकारीके लिए मैं इसके साथ नियमावलीकी नकलें, पहले वर्षके सदस्योंकी सूची और पहली वार्षिक रिपोर्ट भेज रहा हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइजर, २५-९-१८९५

७३. पत्र : 'नेटाल मर्क्युरी' को[1]

डर्बन
२५ सितम्बर, १८९५

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल मर्क्युरी'

महोदय,

लगता है, आपके पत्र-लेखक 'एच' को नेटाल भारतीय कांग्रेसकी स्थापना और अन्य विषयोंकी भी गलत जानकारी मिली है। कांग्रेसकी स्थापना मुख्यत: श्री अब्दुल्ला हाजी आदमके प्रयत्नोंसे हुई है; मैं कांग्रेसकी सब बैठकोंमें हाजिर रहा हूँ और मैं जानता हूँ कि किसी सरकारी कर्मचारीने उसकी किसी बैठकमें हिस्सा नहीं लिया। नियमावली और अनेकानेक प्रार्थनापत्रोंका मसविदा बनानेकी जिम्मेदारी पूरी-पूरी मुझपर है। प्रार्थनापत्रोंको, जबतक वे छपकर कांग्रेस-सदस्यों और अन्य

१. 'एच' नामसे किसी पत्र-लेखकने **नेटाल मर्क्युरी** (२१ सितम्बर, १८९५)को एक पत्र लिखा था। उसमें कहा गया था कि खबर है, कांग्रेस और उसके कामके पीछे एक सरकारी कर्मचारी — एक मजिस्ट्रेटकी अदालतके भारतीय दुभाषियेका हाथ है; उसे इस तरहकी शरारत करनेसे रोका जाये।

लोगोंमें वितरित करनेके लिए तैयार नहीं हो गये, किसी सरकारी कर्मचारीने देखा भी नहीं।

मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री
ने० भा० कां०

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, २७-९-१८९५

७४. भाषण: नेटाल भारतीय कांग्रेसकी सभामें[1]

डर्बन
२९ सितम्बर, १८९५

श्री गांधी उपस्थित जनताके सामने देरतक भाषण देते रहे। उन्होंने कहा कि अब तो भारतीय कांग्रेसकी स्थापनाका सबको पता हो गया है। अतः सदस्योंको अपना-अपना चन्दा समयपर दे देना चाहिए। श्री गांधीने कहा कि इस समय कांग्रेसके कोषमें ७०० पौंड है। पिछली बार मैं हाजिर हुआ था, तबसे यह रकम १०० पौंड अधिक है। किन्तु कांग्रेसकी वर्तमान जरूरतें पूरी करनेके लिए ४,००० पौंडकी जरूरत है। उन्होंने कहा कि प्रत्येक भारतीयको एक निश्चित समयके अन्दर अपना चन्दा देनेका वचन लिखकर दे देना चाहिए। और प्रत्येक व्यापारीको १०० पौंडकी बिक्रीपर कांग्रेसको दो शिलिंग देनेका यत्न करना चाहिए।

श्री गांधीने कहा कि इंग्लैंडमें तो कांग्रेसको अभीतक अच्छी सफलता मिली है। किन्तु अब हम भारतसे सफलताके समाचारोंकी प्रतीक्षामें हैं। बहुत सम्भव है कि मैं खुद आगामी जनवरीमें भारत जाऊँ। उन्होंने यह भी कहा कि वहाँ पहुँचनेपर मैं कई अच्छे बैरिस्टरोंको नेटाल आनेके लिए राजी करनेका प्रयत्न करूँगा।

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइजर, २-१०-१८९५

१. नेटाल भारतीय कांग्रेसके तत्त्वावधानमें रुस्तमजी भवन, डर्बनमें भारतीयोंकी एक बड़ी सभा हुई थी। उसमें गांधीजीने भाषण किया था। उपस्थिति आठ सौ और हजारके बीच थी।

७५. पत्र : 'नेटाल मर्क्युरी' को[1]

डर्बन

३० सितम्बर, १८९५

सेवामें

सम्पादक

'नेटाल मर्क्युरी'

महोदय,

आपके शनिवारके अंकमें प्रकाशित 'एच'का पत्र अगर केवल मुझसे सम्बन्ध रखता होता, तो मैंने उसकी कोई परवाह न की होती। परन्तु उसके पत्रका सरकारी कर्मचारियोंसे सम्बन्ध है, इसलिए मैं फिरसे आपके सौजन्यका लाभ उठानेको विवश हुआ हूँ। मैं कांग्रेसका वेतन-भोगी मन्त्री नहीं हूँ। उलटे, दूसरे सदस्योंके साथ-साथ मैं भी उसके कोषके लिए अपना तुच्छ योग-दान करता हूँ। कांग्रेसकी ओरसे मुझे कोई कुछ नहीं देता। कुछ भारतीय, वकीलके रूपमें उन्हें मेरी सेवाएँ उपलब्ध रहें, इसके लिए मुझे वार्षिक शुल्क अवश्य देते हैं। यह शुल्क मुझे प्रत्यक्ष रूपसे दिया जाता है। कांग्रेसके पास छिपानेके लिए कुछ नहीं है। सिर्फ वह अपना गुणगान करती नहीं फिरती। उसके बारेमें जो भी पूछताछ की जाये, चाहे वह खानगी हो या सार्वजनिक, उसका उत्तर यथासम्भव तत्परताके साथ दिया जायेगा। मैं इसके साथ कांग्रेस-सम्बन्धी कुछ कागजात भेज रहा हूँ। उनसे उसके कार्यपर कुछ प्रकाश पड़ेगा।

आपका,

मो० क० गांधी

अवैतनिक मन्त्री

ने० भा० कां०

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, ४-१०-१८९५

१. 'एच'ने **नेटाल मर्क्युरी**में २८ सितम्बर, १८९५ को फिरसे एक पत्र छपवाया था। उसमें कहा गया था कि कांग्रेस संगठनकी नियमावली भारतीय दुभाषियेने ही तैयार की है। सम्राज्ञीको प्रार्थनापत्र पेश करानेमें उसीका हाथ है और गांधीजीको उसके मन्त्रीका काम करनेके लिए ३०० पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता है।

७६. पत्र : 'नेटाल एडवर्टाइजर' को

डर्बन
९ अक्तूबर, १८९५

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल एडवर्टाइर'

महोदय,

अपने कलके अंकमें आपने जो अग्रलेख[1] प्रकाशित किया है, उसकी सामान्य विचार-धारापर कोई भी भारतीय आपत्ति नहीं कर सकता।

अगर कांग्रेसने अप्रत्यक्ष तरीकेसे भी किसी गवाहको भड़कानेका काम किया हो तो निःसन्देह वह दमनकी पात्र होगी। अभी तो मैं अपना यह दावा दुहराकर ही सन्तोष करूँगा कि उसने ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया। जिस मामलेमें कांग्रेसकी निन्दा की गई है, उसका फैसला अभी पुनर्विचाराधीन है, इसलिए मैं गवाहियोंकी विस्तृत विवेचना करनेकी स्वतन्त्रता महसूस नहीं करता। कांग्रेसके बारेमें सिर्फ एक गवाहसे सवाल पूछे गये थे, और उसने इस आरोपका खण्डन किया है कि कांग्रेसका इस मामलेमें कुछ भी हाथ है। अगर लोगोंके अपनी निजी हैसियतसे किये गये कामोंकी जिम्मेदारी उनकी संस्थाओंपर थोपी जाने लगे तब तो मैं समझता हूँ, किसी भी संस्थाके विरुद्ध लगभग कोई भी आरोप सिद्ध किया जा सकता है।

भारतीयोंका दावा प्रत्येक भारतीयके लिए मताधिकार प्राप्त करनेका नहीं है। न वे शुद्ध 'कुलियों' के लिए ही मताधिकारकी माँग करते हैं। और फिर, शुद्ध 'कुली' तो, जबतक वह कुली बना हुआ है, वर्तमान कानूनके अनुसार भी मताधिकार नहीं पा सकता। विरोध तो केवल रंगभेद या जाति-भेदका है। अगर सारे प्रश्नपर ठंडे दिमागसे विचार किया जाये तो किसीको दुर्भावनाएँ या आवेश जाहिर करनेका कोई मौका ही नहीं रहेगा।

भारतीयोंने दुनियाके किसी भागमें राज्यसत्ता प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं किया। मॉरीशसमें उनकी बहुत बड़ी संख्या है, परन्तु वहाँ भी उन्होंने कोई राजनीतिक

१. पत्रने अपने लेखमें कहा था कि यदि यह सिद्ध हो जाये कि भारतीय कांग्रेसने "गलत और सन्दिग्ध किस्मकी कार्रवाइयाँ" की हैं, तो "उसको दण्डित करनेके लिए तुरन्त निर्णायक कदम उठाना उचित होगा।" पदयाचीके मुकदमेमें न्यायाधीशने कहा था कि कांग्रेस एक षड्यन्त्रकारी ढंगकी, अनिष्टकारी संस्था है और वह इस उपनिवेशके समूचे समाजके लिए खतरनाक है। नेटाल एडवर्टाईजरने इस प्रतिकूल निर्णयका हवाला देते हुए पहलेके अपने एक अंकमें लिखा था कि यदि स्थिति ऐसी ही है तो फिर न्यायाधीशकी भर्त्सनाकी आवश्यकतासे किंचित भी कठोर नहीं कहा जा सकता।

महत्त्वाकांक्षा नहीं दिखाई। और नेटालमें भी चाहे उनकी संख्या ४०,०००के बदले चार लाख क्यों न हो जाये, उनकी यह महत्त्वाकांक्षा दिखानेकी सम्भावना नहीं है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल एडवर्टाइजर, १०-१०-१८९५

७७. पत्र : उपनिवेश सचिवको[1]

डर्बन
२१ अक्तूबर, १८९५

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

समाचारपत्रोंमें छपी कुछ बातों[2] और सम्राज्ञी बनाम रंगस्वामी पदयाचीके हालके मुकदमेमें डर्बनके आवासी न्यायाधीशके निर्णयके कारण कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे इन विषयों पर आपको लिखना मेरे लिए जरुरी हो गया है।

फैसलेमें कहा गया है कि अगस्तमें किसी एक दिन कांग्रेसने असगर नामके एक भारतीयको अपने सामने बुलाया और उसे धमकी देकर एक मुकदमेमें गवाही देनेसे रोकनेका प्रयत्न किया। उसमें यह भी कहा गया है कि कांग्रेस षड्यन्त्रकारी संघ है, आदि।

मेरा निवेदन है कि कांग्रेसने उपर्युक्त व्यक्ति या किसी भी दूसरे व्यक्तिको गवाही देनेसे रोकनेके लिए कभी अपने सामने नहीं बुलाया। इतना ही नहीं, मेरा निवेदन यह भी है कि मजिस्ट्रेटके पास ऐसे आक्षेप करनेका कोई आधार नहीं था।

जिस फैसलेमें ये आक्षेप किये गये हैं, वह अदालतमें पुनर्विचाराधीन है। इस स्थितिके कारण मैं अखबारोंमें इसकी विस्तृत चर्चा नहीं कर पा रहा हूँ। दुर्भाग्य-वश मजिस्ट्रेटने ये आक्षेप गैररस्मी तौरपर किये हैं। इसलिए हो सकता है कि इनपर न्यायाधीश पूरी तरह विचार न करें। गवाह असगरके बयान, उससे जिरह और दुबारा जिरहके दौरान कांग्रेसका कहीं जिक्र भी नहीं आया था। दुबारा जिरह हो जाने पर मजिस्ट्रेटने उससे कांग्रेसके बारेमें सवाल पूछे। सवाल-जवाबसे साफ हो गया

१. सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश मन्त्रीके नाम नेटालके गवर्नरके ३० नवम्बर, १८९५के खरीता सं० १२८का सहपत्र सं० १।

२. देखिए **अर्ली फेज**, पृष्ठ ४८५-७।

था कि जिस सप्ताह धमकी दी गई, ऐसा माना जाता है, उस सप्ताह कांग्रेसकी कोई बैठक नहीं हुई थी। मुकदमेमें दो छपे हुए परिपत्र पेश किये गये थे। एक पर १४ अगस्त और दूसरेपर १२ सितम्बरकी तारीखें थीं। इन दोनों परिपत्रों द्वारा कांग्रेस सदस्योंको इन तारीखोंके बादके मंगलवारोंकी, अर्थात् २० अगस्त और १७ सितम्बरकी बैठकोंमें आनेके लिए आमन्त्रित किया गया था।

कहा गया है, धमकी १२ अगस्तको दी गई थी। फिर यह भी कहा गया है कि उस दिन गवाहको कमरुद्दीनने मूसाके दफ्तरमें बुलवाया था, जहाँ एम० सी० कमरुद्दीन, दादा अब्दुल्ला, दाऊद मुहम्मद और दो-तीन अजनबी हाजिर थे, और वहाँ उससे मुकदमेके बारेमें कुछ सवाल पूछे गये थे। मगर गवाहने इस आशयकी गवाही दी कि कांग्रेसकी बैठकें मूसाके दफ्तरमें नहीं होतीं, उसे मूसाके दफ्तरमें बैठकमें आनेका परिपत्र नहीं मिला, वह परिपत्रके अनुसार हुई बैठकोंमें शामिल नहीं हुआ, कांग्रेसकी बैठकें कांग्रेस भवनमें होती हैं, मुकदमेके साथ परिपत्रका कोई सम्बन्ध नहीं था और वह कांग्रेसकी जो सभाएँ वास्तवमें हुईं उनमें हाजिर नहीं था। लेकिन इसके बावजूद मजिस्ट्रेटने इस बातको कांग्रेसके साथ जोड़ दिया है।

मजिस्ट्रेटके निष्कर्षकी पुष्टि सिर्फ एक ही मुद्देसे हो सकती थी। और वह मुद्दा यह है कि जिन छः या सात व्यक्तियोंको मूसाके दफ्तरमें हाजिर बताया गया था, उनमें से तीन कांग्रेसके सदस्य हैं।

गवाहीके इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले अंशोंके उद्धरण मैं इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ।

मैं निवेदन करता हूँ कि मजिस्ट्रेटके मनमें किसी-न-किसी प्रकारका विपरीत प्रभाव मौजूद था। पुन्नूस्वामी पाथेर तथा तीन अन्य लोगोंके मुकदमेमें रंचमात्र साक्षी न होने पर भी उसने अपने निर्णयके कारणोंमें कहा है कि प्रतिवादी कांग्रेसके सदस्य हैं और कांग्रेस उन्हें बल देती है। सच तो यह है कि वे सब कांग्रेसके सदस्य नहीं हैं और न कांग्रेसका इस मामलेसे कोई सरोकार ही है। रंगस्वामीके मामलेमें मैंने श्री मिलरको हिदायतें दीं, इसका बड़ा तूल बाँधा गया है। मैं बता दूँ कि पुन्नूस्वामी तथा अन्योंके मामलेसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। जबतक यह मामला बहुत बढ़ नहीं गया, तबतक मुझे पता भी नहीं था कि ऐसा कोई मामला है भी। मेरे हस्तक्षेपकी माँग तब की गई थी जब कि रंगस्वामीपर दूसरी बार वही अभियोग लगाया गया। और तब भी मुझे कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे नहीं, बैरिस्टर की हैसियतसे याद किया गया था।

मैं सरकारको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि कांग्रेसके संगठनकर्ताओंका इरादा कांग्रेसको उपनिवेशके दोनों समाजोंके लिए उपयोगी और भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले मामलोंमें उनकी भावनाओंको वाणी देनेवाली और, इस प्रकार वर्तमान सरकारको मदद करनेवाली संस्था बनाना है। यदि कांग्रेस सरकारको परेशानीमें डाल भी सकती हो, तो भी संगठनकर्ताओंका इरादा उसे ऐसी संस्था बनानेका नहीं है।

ऐसे विचार रखनेके कारण स्वाभाविक ही है कि वे कांग्रेसपर किये गये ऐसे आक्षेपोंसे चिढ़ते हैं जिनसे कि उसकी उपयोगिता कम होती है। इसलिए अगर सर-

कार मजिस्ट्रेटके आक्षेपोंको जरा भी महत्त्व देनेकी वृत्ति रखती हो, तो कांग्रेस सदस्य सबसे अधिक स्वागत इस बातका करेंगे कि संस्थाके संविधान और कार्यकी पूरी जाँच कराई जाये।

मैं यह भी कह दूँ कि कांग्रेसने अबतक भारतीयोंके किसी आपसी अदालती मामलेमें हस्तक्षेप नहीं किया और वह खानगी झगड़ोंको तबतक हाथमें लेनेसे इनकार करती रही है, जबतक कि उनका कोई सार्वजनिक महत्त्व न हो। कांग्रेसका कोई सदस्य व्यक्तिगत रूपसे कांग्रेसकी ओरसे या उसके नामपर तबतक कोई कार्रवाई नहीं कर सकता, जबतक कि कांग्रेसके नियमोंके अनुसार एकत्रित सदस्योंके बहुमतसे वैसा करनेकी स्वीकृति प्राप्त न की गई हो। और कांग्रेसकी बैठक तो अवैतनिक मन्त्रीकी लिखित सूचनासे ही हो सकती है।

अगर सरकारको विश्वास हो कि विवादग्रस्त प्रश्नसे कांग्रेसका कोई सम्बन्ध नहीं है, तो मैं कांग्रेसकी ओरसे नम्रतापूर्वक माँग करता हूँ कि इस हकीकतकी कुछ सार्वजनिक सूचना प्रकाशित कर दी जाये। दूसरी ओर, यदि उसके बारेमें जरा भी शंका हो तो मैं जाँचकी माँग करता हूँ।

मैं कांग्रेसके नियमों, २२ अगस्त, १८९५ को समाप्त होनेवाले पहले वर्षके सदस्योंकी सूची और पहली वार्षिक कार्रवाईकी एक-एक नकल इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ।

अगर और किसी जानकारीकी आवश्यकता हो तो वह देनेमें मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।[1]

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री
ने० भा० कां०

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० १७९, खण्ड १९२

१. थोड़े ही दिनों बाद सर्वोच्च न्यायालयने सम्राज्ञी बनाम पुन्नूस्वामी पाथेर तथा अन्यके मुकदमेमें सुनाई गई सजा इस आधारपर रद कर दी थी कि वह अप्रमाणित साक्ष्यपर आधारित थी। एक महीने बाद, २७ नवम्बरको पदयाचीके मुकदमेके फैसलेको भी सर्वोच्च न्यायालयने इस आधारपर रद कर दिया था कि उसमें ‘अणुमात्र भी साक्षी नहीं’ थी। देखिए **अर्ली फेज**, पृष्ठ ४८८।

७८. प्रार्थनापत्र : जो० चेम्बरलेनको[1]

जोहानिसबर्ग
द० आ० ग०
२६ नवम्बर, १८९५

सेवामें

परम माननीय जोजेफ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश मन्त्री, सम्राज्ञी सरकार
लंदन

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी
भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे इस प्रार्थनापत्रके द्वारा आदरके साथ सम्राज्ञी सरकारके सामने फरियाद कर रहे हैं। प्रार्थियोंका निवेदन दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी संसद द्वारा ७ अक्तूबर, १८९५ को स्वीकृत प्रस्तावके बारेमें है। प्रस्ताव सम्राज्ञी-सरकार और गणराज्य-सरकारके बीच हुई सन्धिकी पुष्टि करके गणराज्यवासी तमाम ब्रिटिश प्रजाजनोंको वैयक्तिक सैनिक सेवासे मुक्त करता है। अपवाद यह रखा गया है कि 'ब्रिटिश प्रजाजन' का अर्थ 'गोरे लोग' माना जायेगा।

प्रस्ताव पढ़नेपर प्रार्थियोंने २२ अक्तूबर, १८९५ को आपको एक तार[2] भेजा था। उसमें उन्होंने गोरे और काले, ब्रिटिश प्रजाजनोंके बीच बरते गये भेद भावपर विरोध प्रकट किया था।

स्पष्ट है कि इस अपवादका लक्ष्य दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें रहनेवाले भारतीयोंको ही बनाया गया है।

प्रार्थी आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करते हैं कि स्वयं सन्धिमें 'ब्रिटिश प्रजाजन' शब्दोंका कोई विशेष अर्थ नहीं किया गया है। और हमारा

१. सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश मन्त्रीके नाम दक्षिण आफ्रिका-स्थित उच्चायुक्तके १० दिसम्बर, १८९५ के खरीता सं० ६९५ का सहपत्र। यह १४ मई, १८९६ को ब्रिटिश सरकारके सामने पेश हुआ था; देखिए **अर्ली फेज, पृष्ठ ५४३।**

२. यह तार उपलब्ध नहीं। इसमें कहा गया था कि प्रार्थनापत्र भेजा जायेगा। पर तारकी प्राप्ति-सूचना संसद-सदस्य एच० ओ० आर्नोल्ड फोस्टरने दी थी; उन्होंने कहा था: "... ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंके प्रति की गई बोअरोंकी कार्रवाईको मैं घोर अपमानजनक तो मानता ही हूँ, पर इतना ही नहीं, मैं यह भी मानता हूँ कि यदि उसपर अधिक आग्रह किया जाये तो सम्भव है कि उसके फल-स्वरूप कुछ ऐसी समस्याएँ उठ खड़ी हों जिनका प्रभाव बोअर राज्यकी सीमासे बाहर भी काफी व्यापक होगा।" देखिए **अर्ली फेज, पृष्ठ ५४२।**

निवेदन है कि उक्त प्रस्ताव द्वारा सन्धिको पूर्ण रूपमें स्वीकार करनेके बजाय उसमें संशोधन कर दिया गया है। यह एक कारण ही ऐसा है, जिससे प्रार्थियोंको निश्चित लगता है कि सम्राज्ञी-सरकार इस संशोधित पुष्टीकरणको मंजूर नहीं करेगी।

प्रस्तावके द्वारा भारतीयोंको अनावश्यक ही जिस अपमानका पात्र बनाया गया है, उसकी चर्चा प्रार्थी नहीं करेंगे।

ब्रिटिश प्रजाजनोंको सैनिक सेवासे मुक्त करनेका जो कारण बताया गया था, वह मुख्य रूपसे यह था कि ब्रिटिश प्रजाजनोंको पूरे नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं और गणराज्यमें वे बाधाओं और निषेधोंके पात्र हैं; इसलिए उन्हें नागरिकोंके साथ सैनिक सेवा करनेके लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। जिस समय हलचल हो रही थी, उस समय खुल्लमखुल्ला कहा गया था कि अगर विदेशियोंको नागरिक मान लिया जाये और मताधिकार दे दिया जाये तो वे हर्षके साथ मेलाबोख युद्धमें[1] मदद करेंगे।

इसलिए, अगर यूरोपीय या जैसा कि प्रस्तावमें कहा गया है, 'गोरे' ब्रिटिश प्रजाजनोंको उनकी राजनीतिक बाधाओं और निषेधोंके कारण यह मुक्ति दी जा रही है, तो सादर निवेदन है कि भारतीय ब्रिटिश प्रजाजन तो इसके और भी अधिक पात्र हैं। कारण, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें भारतीय न सिर्फ राजनीतिक अधिकारोंसे वंचित हैं, बल्कि उन्हें माल-असबाबसे ज्यादा कुछ समझा नहीं जाता। प्रस्ताव इस वस्तुस्थितिका एक और संकेत है।

अन्तमें, निवेदन है कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको निरन्तर उत्पीड़ित किया जा रहा है। उपनिवेश या स्वतन्त्र राज्य (यहाँतक कि, बलावायो व अन्य नये प्रदेश भी) इससे मुक्त नहीं हैं। भारतीयोंपर पहले ही आम तौरपर भारी प्रतिबन्ध लदे हुए हैं और प्रार्थी तथा उनके देशभाई सम्राज्ञी सरकारके हस्तक्षेप द्वारा उन्हें दूर करानेके प्रयत्न कर ही रहे हैं। इन सब दृष्टियोंसे हम हार्दिक प्रार्थना और दृढ़ आशा करते हैं कि सम्राज्ञीकी सरकार दक्षिण आफ्रिकी सरकारके भारतीयोंकी स्वतन्त्रता पर और भी अधिक प्रतिबन्ध लगानेके इस नये प्रयत्नको बरदाश्त नहीं करेगी।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि।[2]

एम० सी० कमरुद्दीन
अब्दुल गनी
मुहम्मद इस्माइल
आदि

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० ४१७, खण्ड १५२

१. ट्रान्सवालमें सन् १८९४ के दौरान मेलाबोख जातिके विरुद्ध हॉलैंड द्वारा छेड़ा गया युद्ध।

२. 'कमांडो मेमोरियल' के नामसे प्रसिद्ध, यह प्रार्थनापत्र दादाभाई नौरोजी द्वारा उपनिवेश-सचिवको भेजा गया था। कॉमन्स सभामें भावनगरी द्वारा पूछे गये एक प्रश्नके उत्तरमें चेम्बरलेनने १४ फरवरी, १८९६ को कहा था कि कि "रंग-भेद लागू करनेको रोकनेके लिए कदम उठाये जा चुके हैं"।

७९. भारतीयोंका मताधिकार[1]

बीच ग्रोव, डर्बन
१६ दिसम्बर, १८९५

दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक अंग्रेजके नाम अपील

जहाँतक समाचार पत्रोंका सम्बन्ध है, भारतीयोंके मताधिकारके प्रश्नने इस पूरे उपनिवेशको — बल्कि वास्तवमें सारे दक्षिण आफ्रिकाको विक्षुब्ध कर दिया है। इसलिए इस अपीलके सम्बन्धमें कोई कैफियत देनेकी जरूरत नहीं है। इसके द्वारा दक्षिण आफ्रिकावासी प्रत्येक अंग्रेजके सामने, यथासम्भव संक्षेपमें, भारतीय मताधिकारकी बाबत भारतीयोंका एक दृष्टिकोण पेश करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

भारतीयोंका मताधिकार छीननेके पक्षमें कुछ दलीलें ये हैं:

(१) भारतीय भारतमें मताधिकारका उपभोग नहीं करते।

(२) दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीय सबसे निचले दर्जेके भारतीयोंके प्रतिनिधि हैं। वास्तवमें वे भारतका तलछट हैं।

(३) भारतीय समझते ही नहीं कि मताधिकार है क्या।

(४) भारतीयोंको मताधिकार नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि वतनी लोगोंको भारतीयोंके बराबर ही ब्रिटिश प्रजा होनेपर भी कोई मताधिकार प्राप्त नहीं है।

(५) भारतीयोंका मताधिकार वतनी लोगोंके हितार्थ छीन लेना चाहिए।

(६) यह उपनिवेश गोरोंका देश होगा, और रहेगा, काले लोगोंका नहीं। और भारतीयोंका मताधिकार तो यूरोपीय मतोंको सर्वथा निगल जायेगा, और भारतीयोंको राजनीतिक प्रभुता प्रदान कर देगा।

मैं इन आपत्तियोंकी क्रमसे विवेचना करूँगा।

१

बारंबार कहा गया है कि भारतीय जिन सुविधाओं व अधिकारोंका उपभोग भारतमें करते हैं उनसे ऊँची सुविधाओं व अधिकारोंका दावा न तो वे कर सकते हैं और न उन्हें करना चाहिए, भारतमें उन्हें किसी भी प्रकारका मताधिकार प्राप्त नहीं है।

अब पहली बात तो यह है कि भारतीय जिन सुविधाओं व अधिकारोंका उपभोग भारतमें करते हैं, उनसे ऊँची सुविधाओं व अधिकारोंका दावा वे नहीं कर रहे हैं। यह याद रखना चाहिए, भारतमें उस तरहका शासन नहीं है, जैसा कि यहाँ है। इसलिए साफ है कि इन दोनों शासनोंके बीच कोई तुलना नहीं हो सकती। इसके

१. गांधीजीने लोकमान्य तिलक जैसे भारतीय नेताओंके पास इसकी प्रतियाँ भेजी थीं।

जवाबमें कहा जा सकता है कि भारतीयोंको भारतमें उसी तरहका शासन प्राप्त करनेतक ठहरना चाहिए। परन्तु इस जवाबसे काम नहीं चलेगा। इस सिद्धान्तके अनुसार तो यह तर्क भी किया जा सकता है कि नेटाल आनेवाले किसी व्यक्तिको तबतक मताधिकार नहीं मिल सकता जबतक कि वह अपने देशमें उसी तरह और उन्हीं परिस्थितियोंमें मताधिकारका उपभोग न करता रहा हो — अर्थात्, जबतक उस देशका मताधिकार कानून वही न हो, जो कि नेटालमें है। यदि ऐसा सिद्धान्त सब लोगोंपर लागू किया जाये तो सरलतासे देखा जा सकता है कि इंग्लैंडसे आनेवाले किसी व्यक्तिको भी नेटालमें मताधिकार नहीं मिल सकता। कारण, वहाँका मताधिकार कानून वही नहीं है, जो नेटालमें है। जर्मनी और रूससे आनेवाले लोगोंके लिए तो उसे प्राप्त करनेकी और भी कम गुंजाइश रह जाती है। वहाँ तो कमोबेश निरंकुश शासनका बोलबाला है। इसलिए सच्ची और एकमात्र कसौटी यह नहीं है कि भारतीयोंको भारतमें मताधिकार प्राप्त है या नहीं, बल्कि यह है कि वे प्रातिनिधिक शासनका तत्त्व समझते हैं या नहीं।

परन्तु भारतमें उन्हें मताधिकार प्राप्त है। यह सच है कि वह अत्यन्त सीमित है, फिर भी है तो सही। भारतीयोंकी प्रातिनिधिक शासनको समझने और सराहनेकी योग्यताको विधान-परिषदें मान्य करती हैं। वे प्रातिनिधिक संस्थाओंके बारेमें भारतीयों की योग्यताकी स्थायी साक्षी हैं। भारतीय विधान-परिषदोंके कुछ सदस्य नामजद और कुछ निर्वाचित होते हैं। भारतमें विधान-परिषदोंकी स्थिति नेटालकी पिछली विधान-परिषदकी स्थितिसे बहुत भिन्न नहीं है। और भारतीयों पर इन परिषदोंमें प्रवेश करनेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वे यूरोपीयोंके साथ बराबरीकी शर्तोंपर चुनाव लड़ते हैं।

बम्बईकी विधान-परिषदके सदस्योंके पिछले चुनावमें एक चुनाव-क्षेत्रसे एक उम्मीदवार यूरोपीय था और एक भारतीय था।

भारतकी सब विधान-परिषदोंमें भारतीय सदस्य मौजूद हैं। चुनावोंमें भारतीय उसी तरह मतदान करते हैं, जैसे कि यूरोपीय। बेशक मताधिकार सीमित है। वह घुमावदार भी है। उदाहरणके लिए, बम्बई निगम विधान-परिषदके लिए एक सदस्यका चुनाव करता है और निगमके सदस्योंका चुनाव कर-दाता करते हैं, जो अधिकतर भारतीय हैं।

बम्बई नगरपालिकाके चुनावोंमें भारतीय मतदाताओंकी संख्या हजारों है। उपनिवेशवासी भारतीय व्यापारी उन्हींके वर्गसे या उन्हींके जैसे किसी दूसरे वर्गसे आये हैं।

फिर, भारतीयोंको बड़ेसे बड़े पद प्राप्त करनेकी सुविधा है। क्या इससे यह मालूम होता है कि उन्हें प्रातिनिधिक शासनको समझनेके अयोग्य माना गया है? एक भारतीय मुख्य न्यायाधीश हुआ है। यह एक ऐसा पद है, जिसका वेतन ६०,००० रुपये या ६,००० पौंड सालाना होता है। अभी हालमें ही एक भारतीयको, जो उसी वर्गका है जिस वर्गके यहाँके अधिकतर व्यापारी हैं, बम्बई उच्च न्यायालयका उप-न्यायाधीश नियुक्त किया गया है।

एक तमिल सज्जन मद्रास उच्च न्यायालयके उप-न्यायाधीश हैं। यहाँके कुछ गिरमिटिया भारतीय उन्हींकी जातिके हैं। बंगालमें एक भारतीय सज्जनको सिविल कमिश्नरका अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा गया है।

भारतीयोंने कलकत्ता और बम्बई विश्वविद्यालयोंमें उपकुलपतिके आसनोंको भी सुशोभित किया है।

प्रशासनिक सेवाओंकी प्रतियोगिताओंमें भारतीय यूरोपीयोंके साथ बराबरीकी शर्तोंपर शामिल होते हैं।

बम्बई निगमके वर्तमान अध्यक्ष एक भारतीय हैं। उनका चुनाव निगमके सदस्योंके द्वारा हुआ है।

सभ्य जातियोंके बराबर होनेकी भारतीयोंकी योग्यताका ताजेसे ताजा प्रमाण 'लंदन टाइम्स' के २३ अगस्त, १८९५ के अंकसे प्राप्त होता है।

सभी जानते हैं, 'टाइम्स' के "भारतीय मामलात" के लेखक और कोई नहीं, सर विलियम विल्सन हंटर ही हैं। शायद वे भारतीय इतिहासके सबसे बड़े लेखक हैं। उनका कथन है:

> यह सम्मान साहसके जिन कार्यों और, उनसे भी अधिक उज्ज्वल सहनशीलताके जिन उदाहरणोंसे कमाया गया, उनका वर्णन आश्चर्यमय आनन्दसे पुलकित हुए बिना पढ़ा नहीं जा सकता। 'आर्डर ऑफ मेरिट' पानेवाले एक सिपाहीके शरीरपर कमसे कम इकतीस घाव थे। 'इंडियन डेली न्यूज' का कथन है कि इतने ज्यादा घाव "पहले शायद किसीको नहीं लगे होंगे।" एक अन्य सिपाहीको उस दर्रेमें गोली लगी थी, जिसमें रॉसकी टुकड़ी तहस-नहस हुई थी। उसने चुपकेसे शरीरको टटोल-टटोलकर गोलीको ढूँढ़ा और दर्दकी परवाह किये बिना दोनों हाथोंसे दबा-दबाकर उसे ऊपर तक सरकाया। आखिर जब वह अँगुलियोंकी पकड़में आई तो उसे बाहर निकाल दिया। खूनकी धारा बह चली। परन्तु उसने फिरसे कंधेपर राइफल रखी और इक्कीस मीलका कूच पूरा किया।
>
> परन्तु जिन भारतीय सैनिकोंने कीर्ति कमाई है, उनकी वीरता अगर हमारे अन्दर इस बातका अभिमान जगाती है कि हमारे बन्धु-प्रजाजन ऐसे हैं, तो उतने ही साहस और दृढ़ताके दूसरे मामलोंमें भिक्षाके बतौर दिये जानेवाले तुच्छ पारितोषिक बहुत अलग तरहकी भावनाओंको जाग्रत करते हैं। 'कुरागकी लड़ाईमें वीरता और धीरता दिखानेका श्रेय' चौथी बंगाल इन्फ़ेंट्री के दो भिश्तियोंको मिला था। युद्ध-खरीतोंमें विशेष सम्मानके साथ केवल उनके ही नामोंका उल्लेख किया गया था। सचमुच उस भयानक घाटीमें उन्होंने अपने साथियोंके प्रति जिस भव्य आत्मत्यागका परिचय दिया था, उससे बढ़कर और कुछ हो ही नहीं सकता। 'विशिष्ट वीरता और निष्ठा दिखानेके कारण' उसी टुकड़ीके एक अन्य आदमीका भी उल्लेख किया गया था, जिसने स्वर्गीय

कप्तान बेयर्डको चितरालके किलेमें ले जानेवाली टुकड़ीके साथ काम किया था। . . . सच तो यह है कि भारतीय योग्य सह-प्रजाजन माने जानेका अधिकार अनेक तरीकोंसे अर्जित कर रहे हैं। समर-भूमि सदा ही विभिन्न जातियोंके बीच सम्मानपूर्ण समानता स्थापित करनेका सरल साधन रही है; परन्तु भारतीय तो इससे कहीं अधिक मन्द और कठिन तरीकोंसे, अर्थात् नागरिकोंकी हैसियतसे समुचित आचरणके द्वारा भी हमारा सम्मान प्राप्त करनेका अपना अधिकार सिद्ध कर रहे हैं। *तीन वर्ष पूर्व आंशिक निर्वाचनके आधारपर भारतीय विधान परिषदोंके विस्तारका जो प्रयोग किया गया था, उससे बड़ा प्रयोग अधीन राज्योंके वैधानिक शासनमें पहले कभी नहीं हुआ था।* (अक्षर-भेद मैंने किया है)। बंगालमें वह प्रयोग जितना शंकाजनक मालूम होता था उतना भारतके किसी दूसरे भागमें नहीं। बंगालके लेफ्टिनेंट गवर्नरके क्षेत्रकी आबादी मद्रास और बम्बई प्रदेशोंकी सम्मिलित आबादीके बराबर थी। शासनकी दृष्टिसे उसकी व्यवस्था करना भी बहुत कठिन था।

सर चार्ल्स इलियटने लॉर्ड सैलिसबरीके कानूनके अधीन गठित बृहत्तर विधान-मण्डलसे इस उलझनपूर्ण कानून (बंगाल सैनीटरी ड्रेनेज एक्ट) को स्वीकार करानेमें न केवल गुटबंदी पर आधारित विरोधके अभावकी, बल्कि मूल्यवान सक्रिय सहायता प्राप्त होनेकी भी खुले दिलसे साक्षी दी है। अनेक चर्चाएँ बहुत मददगार रहीं हैं। और जहाँतक बंगालका — उस प्रान्तका सम्बन्ध है, जहाँ निर्वाचन-पद्धति सबसे अधिक कठिनाइयोंसे भरी मालूम होती थी, वहाँ भी *एक कड़ी कसौटीके बाद यह प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है।* (अक्षर-भेद मैंने किया है।)

२

दूसरी आपत्ति यह है कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय सबसे निचले दर्जेके भारतीयोंमें से हैं। यह कथन सही हो नहीं सकता। व्यापारी समाजके बारेमें तो सही है ही नहीं, यदि सारे-के-सारे गिरमिटिया भारतीयोंके बारेमें कहा जाये तो भी यह सही नहीं है। गिरमिटिया भारतीयोंमें से कुछ तो भारतकी सबसे ऊँची जातियोंके लोग हैं। बेशक वे सभी बहुत गरीब हैं। उनमें से कुछ भारतमें आवारा थे। बहुत-से लोग सबसे निचले दर्जेके भी हैं। परन्तु मैं, किसीको चोट पहुँचानेकी इच्छाके बिना, कहनेकी इजाजत लूँगा कि अगर नेटालके भारतीय उच्चतम श्रेणीके नहीं हैं तो यूरोपीय भी तो वैसे नहीं हैं। मेरा निवेदन है कि इस बातको अनुचित महत्त्व दे दिया गया है। अगर भारतीय लोग आदर्श भारतीय नहीं हैं तो सरकारका कर्तव्य है कि वह उन्हें आदर्श बनाये। और अगर पाठक जानना चाहते हों कि आदर्श भारतीय कैसे होते हैं तो मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे मेरी 'खुली चिट्ठी' पढ़ें। उसमें

यह बतानेके लिए अनेक अधिकारी व्यक्तियोंके कथन संकलित कर दिये गये हैं कि भारतीय 'आदर्श' यूरोपीयोंके बराबर ही सभ्य हैं। और जैसे यूरोपमें निचलेसे निचले दर्जेके यूरोपीयके लिए ऊँचेसे-ऊँचे दर्जे तक उठ सकना सम्भव है, ठीक वैसे ही भारतमें निचलेसे-निचले दर्जेके भारतीयके लिए भी ऐसा कर पाना सम्भव है। दुराग्रहपूर्ण उपेक्षा या प्रतिगामी कानूनोंसे उपनिवेशके भारतीय और भी अधिक नीचे गिरते जायेंगे और इस तरह हो सकता है, वे सचमुच खतरनाक बन जायें, जो वे पहलेसे नहीं हैं। दुरियाये जानेसे, तिरस्कृत किये जानेसे, कोसे जानेसे वे निस्सन्देह वैसा ही करेंगे और वैसे ही बन जायेंगे, जैसा कि वैसी ही परिस्थितियोंमें दूसरोंने किया है, दूसरे लोग बने हैं। प्रेम और सद्व्यवहार मिले तो किसी भी राष्ट्रके किसी भी अन्य व्यक्तिके समान ही ऊँचे उठनेकी सामर्थ्य उनमें है। जबतक उन्हें वे अधिकार भी नहीं दिये जाते जो भारतमें उन्हें प्राप्त हैं, या ऐसी ही परिस्थितियोंमें प्राप्त होंगे, तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है।

३

यह कहना कि भारतीय मताधिकारको समझते ही नहीं, भारतके पूरे इतिहासकी उपेक्षा करना है। भारतीय प्राचीनतम कालसे जिसे सच्चे अर्थमें 'प्रतिनिधित्व' कहा जायेगा, उसे समझते और उसकी कद्र करते आये हैं। उसी सिद्धान्त — पंचायतके सिद्धान्त — के अनुसार भारतीयोंके सब कामकाज चलते हैं। वे अपने-आपको पंचायतके सदस्य मानते हैं। और यह पंचायत सचमुचमें वह सारा समाज होता है, जिसमें वे उस समय रहते हैं। ऐसा करनेकी उस शक्तिने — लोकसत्ताके तत्त्वको पूरी तरह समझनेकी उस शक्तिने — उन्हें दुनियामें सबसे द्रोहरहित और सबसे सीधे लोग बना दिया है। शताब्दियोंका विदेशी शासन और अत्याचार उन्हें समाजके खतरनाक सदस्य बनानेमें असफल रहा है। वे जहाँ भी जाते हैं और जैसी भी हालतोंमें होते हैं, अपने अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित बहुमतके निर्णयके सामने सिर झुका लेते हैं। कारण यह है कि वे जानते हैं, उनके ऊपर तबतक कोई अपनी सत्ता नहीं चला सकता, जबतक कि समाजके बहुसंख्यक लोग उसकी सत्ता बरदाश्त न करते हों। यह तत्त्व भारतीयोंके हृदयमें इतना गहरा अंकित है कि भारतीय देशी राज्योंके अत्यन्त स्वेच्छाचारी राजा भी महसूस करते हैं कि उन्हें प्रजाके लिए शासन करना है। हाँ, यह सही है कि सभी राजा इस सिद्धान्तके अनुसार नहीं चलते। इसके कारणोंकी चर्चा यहाँ करनेकी जरूरत नहीं है। और सबसे अधिक आश्चर्यचकित करनेवाली बात तो यह है कि जब प्रत्यक्षतः राजतन्त्र होता है तब भी पंचायत सबसे ऊँची संस्था मानी जाती है। उसके सदस्योंके कार्योंका बहुमतकी इच्छाके अनुसार नियमन किया जाता है। इस दावेके प्रमाणोंके लिए मैं पाठकोंसे निवेदन करूँगा कि वे विधानसभाको दिया गया मताधिकार सम्बन्धी प्रार्थनापत्र[1] पढ़ लें।

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: नेटाल विधान-परिषदको", २८-६-१८९४।

४

"भारतीयोंको मताधिकार नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि वतनी लोगोंको भारतीयोंके बराबर ही ब्रिटिश प्रजा होनेपर भी कोई मताधिकार प्राप्त नहीं है।"

यह आपत्ति जिस रूपमें मैंने अखबारोंमें देखी है, उसी रूपमें यहाँ पेश कर दी है। नेटालमें तो भारतीय पहलेसे ही मताधिकारका उपभोग कर रहे हैं। इसलिए यह आपत्ति सत्यके विपरीत है। वास्तवमें अब जो प्रयत्न किया जा रहा है वह तो उनसे मताधिकार छीननेका है।

मैं तुलना नहीं करूँगा। केवल ठोस वास्तविकताओंका निवेदन कर दूँगा। वतनी लोगोंके मताधिकारका नियन्त्रण एक विशेष कानूनके आधारपर होता है, जो कुछ वर्षोंसे अमलमें लाया जा रहा है। वह कानून भारतीयोंपर लागू नहीं है। हमारा यह झगड़ा भी नहीं है कि वह भारतीयोंपर लागू किया जाये। भारतमें भारतीयोंका मताधिकार (वह जो कुछ भी हो) किसी विशेष कानून द्वारा नियन्त्रित नहीं है। वह कानून सबपर एक-जैसा लागू है। भारतीयोंको १८५८ का घोषणापत्र प्राप्त है जो उनकी स्वतन्त्रताका अधिकारपत्र है।

५

मताधिकार छीननेके पक्षमें ताजीसे ताजी दलील यह दी गई है कि भारतीयोंके मताधिकारसे उपनिवेशके वतनी लोगोंको हानि पहुँचेगी। ऐसा कैसे होगा, सो बिलकुल बताया नहीं गया। परन्तु मैं मानता हूँ कि भारतीय-मताधिकारके विरोधी लोग भारतीयोंके खिलाफ इस पिटी-पिटाई आपत्तिका आश्रय भारतीयोंके इस कथित दोष के आधारपर लेते हैं कि भारतीय वतनी लोगोंको शराब मुहैया कराते हैं और इससे वतनी लोग बिगड़ते हैं। अब, मेरा निवेदन है कि भारतीय-मताधिकारसे इसमें कोई फर्क नहीं पड़ सकता। अगर भारतीय शराब मुहैया कराते हैं तो वे मताधिकारके कारण ज्यादा शराब मुहैया न कराने लगेंगे। भारतीयोंके मत इतने प्रबल तो कभी हो ही नहीं सकते कि वे उपनिवेशकी वतनी लोगों-सम्बन्धी नीतिको प्रभावित कर दें। इस नीतिपर तो १०, डाउनिंग स्ट्रीट-स्थित ब्रिटिश सरकार कड़ी चौकसी रखती है, और बहुत हदतक इसका नियन्त्रण भी उसीके द्वारा होता है। सच तो यह है कि इस मामलेमें डाउनिंग स्ट्रीटकी सरकारके आगे यूरोपीय उपनिवेशियोंकी भी कुछ नहीं चलती। परन्तु हम जरा तथ्योंको देखें। वर्तमान भारतीय मतदाताओंकी स्थिति बताने वाली जो विश्लेषणात्मक तालिका नीचे दी गई है, उससे मालूम होता है कि उसमें सबसे बड़ी और बहुत बड़ी संख्या व्यापारियोंकी हैं। सभी जानते हैं कि ये व्यापारी खुद शराब बिलकुल नहीं पीते। इतना ही नहीं, ये तो चाहेंगे कि उपनिवेशसे शराबका चलन पूरी तरह मिट ही जाये। और अगर मतदाता-सूची ऐसी ही रहे तो वतनी लोगों-सम्बन्धी नीतिपर अगर उनके मतका कोई असर हो सकता है, तो वह अच्छा ही होगा। परन्तु भारतीय प्रवास आयोगकी १८८५-१८८७ की रिपोर्टके निम्न-लिखित उद्धरणोंसे मालूम होता है कि इस विषयमें भारतीय यूरोपीयोंकी अपेक्षा बुरे नहीं हैं। ये उद्धरण देनेमें मेरा तुलना करनेका कोई इरादा नहीं है। उसको मैंने,

जहाँतक हो सकता है, टालनेका प्रयत्न किया है। इनके द्वारा मैं अपने देशवासियोंकी सफाई देना भी नहीं चाहता। अगर कोई भारतीय शराब पिये या वतनी लोगोंको शराब देता पाया जाये तो मुझसे ज्यादा दुःख किसीको न होगा। मैं पाठकोंको नम्रतापूर्वक आश्वासन देता हूँ कि यहाँ मेरी एकमात्र इच्छा यह दिखानेकी है कि इस विशेष आधारपर भारतीयोंके मताधिकारके सम्बन्धमें आपत्ति करना केवल एक छिछली बात है, और यह जाँचपर खरी नहीं उतरती।

आयुक्तोंको दूसरी बातोंके साथ भारतीयोंके मद्यपान और उससे होनेवाले अपराधोंपर खास तौरसे रिपोर्ट देनेका काम सौंपा गया था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट के पृष्ठ ४२ और ४३ पर कहा है:

> **इस विषयपर हमने बहुत-से लोगोंकी गवाही ली है। उनकी गवाही और हमारे सामने आनेवाले अपराधोंके आँकड़ोंसे यह विश्वास नहीं हुआ कि मद्यपान और उससे होनेवाले अपराधोंका अनुपात समाजके दूसरे लोगोंकी अपेक्षा, जिनके खिलाफ ऐसा कोई प्रतिबन्धक कानून बनानेका प्रस्ताव नहीं किया गया, प्रवासी भारतीयोंमें अधिक है।**
>
> **हमें कोई शंका नहीं, इस आरोपमें बहुत-कुछ सत्य है कि वतनियोंको भारतीयोंके द्वारा आसानीसे ठर्रा शराब मिल जाती है। . . . परन्तु वे शराब बेचनेवाले गोरे लोगोंसे इस विषयमें ज्यादा अपराधी हैं—इसमें हमें शंका अवश्य है।**
>
> **सावधानीसे देखनेपर पता चला है कि जो लोग भारतीय प्रवासियोंके खिलाफ वतनी लोगोंको शराब बेचनेकी शिकायतें सबसे ज्यादा जोरोंसे करते हैं, वे वही लोग हैं, जो खुद वतनियोंको शराब बेचते हैं; शराब बेचनेवाले भारतीयोंकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण उनके व्यापारमें बाधा पड़ती है और उनका मुनाफा कम होता है।**

उपर्युक्त कथनके बाद जो कुछ लिखा गया है, उसको पढ़ना ज्ञानवर्धक है। वह बताता है कि, आयुक्तोंके मतसे, भारतमें भारतीय मद्यपानकी लतसे मुक्त हैं; यहाँ आकर ही वे उसे सीखते हैं। वे कैसे और क्यों नेटालमें शराब पीने लगते हैं, इस प्रश्नका उत्तर मैं पाठकों पर छोड़ता हूँ।

आयुक्तोंने पृष्ठ ८३ पर कहा है:

> **हमें विश्वास हो गया है कि नेटालके भारतीय, और खास तौरसे स्वतन्त्र भारतीय, अपने देशकी अपेक्षा यहाँ शराबके शिकार ज्यादा होते हैं। फिर भी हमारे सामने ऐसा माननेका कोई सन्तोषजनक प्रमाण नहीं है कि इस उपनिवेशमें रहनेवाली दूसरी जातियोंकी अपेक्षा भारतीयोंमें कट्टर शराबियों और उपद्रवियोंका शतमान अधिक है। ऐसा अंकित कर देनेको हम बाध्य हैं।**

सुपरिंटेंडेंट अलेक्जैंडरने आयोगके सामने गवाही देते हुए कहा है (पृ० १४६):

> **भारतीयोंको इस समय एक अपरिहार्य बुराई मानना होगा। मजदूरोंके रूपमें उनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हाँ, वे दुकानदार न हों**

तो काम चल सकता है। गुण-अवगुणमें वे वतनी लोगोंके बराबर ही हैं; परन्तु उन्होंने अपना बहुत सुधार किया है, जब कि वतनी लोग बहुत ज्यादा नीचे गिर गये हैं। अब करीब-करीब सभी चोरियाँ वतनी लोग करते हैं। जहाँतक मेरा अनुभव है, वतनी लोग भारतीयोंसे, और दूसरे जो भी लोग उन्हें दें उन सबसे शराब लेते हैं। इस बारेमें मैंने कुछ गोरे लोगोंको भारतीयोंके बराबर ही बुरा पाया है। ये बेकार, आवारा लोग सिर्फ ६ पेंस पानेके लिए वतनी लोगोंको शराबकी बोतल थमा देते हैं।

मैं नहीं समझता कि नेटालकी वर्तमान हालतमें भारतीय आबादीको निकालकर उसके स्थानकी पूर्ति यूरोपीयोंसे कर लेना सम्भव है। मैं नहीं मानता कि हम यह कर सकते हैं। मेरे पास जो कर्मचारी हैं उनसे मैं ३,००० भारतीयोंको सँभाल सकता हूँ। परन्तु अगर उनकी जगह ३,००० गोरे मजदूर होते तो मेरे लिए उन्हें सँभालना अशक्य होता। . . .

पृष्ठ १४९ पर वे कहते हैं:

मैं देखता हूँ कि आम तौरपर लोग हरएक बुराई करने, मुर्गियाँ चुराने आदिका शक कुलियोंपर ही करते हैं। मगर सच बात यह नहीं है। मुर्गियाँ चुरानेके पिछले नौ मामलोंमें से सबका आरोप मेरे निगमके कुली भंगियोंपर मढ़ा गया था। मैंने देखा कि उन मुर्गियोंको चुरानेके अपराधमें दो वतनी लोगों और तीन यूरोपीयोंको सजा दी गई।

मैं पाठकोंका ध्यान हालमें प्रकाशित वतनी लोगों-सम्बन्धी सरकारी रिपोर्टकी ओर भी आकर्षित करूँगा। उसमें पाठक देखेंगे कि लगभग सभी मजिस्ट्रेट इस मतके हैं कि यूरोपीयोंके प्रभावसे वतनी लोगोंके नैतिक चरित्रमें बुराइयाँ आई हैं।

इन अकाट्य तथ्योंके होते हुए वतनी लोगोंके ह्रासका सारा दोष भारतीयोंपर मढ़ देना क्या अन्याय नहीं है? १८९३ में नगरोंमें शराब मुहैया करनेके अपराधमें २८ यूरोपीयोंको सजा हुई थी। सजा पानेवाले भारतीयोंकी संख्या केवल तीन थी।

६

"यह देश गोरोंका देश होगा और रहेगा, काले लोगोंका नहीं। और भारतीयोंका मताधिकार तो यूरोपीयोंके मतोंको सर्वथा निगल जायेगा और भारतीयोंको नेटालमें राजनीतिक प्रभुता प्रदान कर देगा।"

इस कथनके पहले अंशकी चर्चा मैं नहीं करना चाहता। मैं मंजूर करता हूँ कि मैं उसे पूरी तरह समझता भी नहीं। तथापि, बादके अंशकी तहमें जो गलतफहमी है उसे मैं दूर करनेका प्रयत्न करूँगा। मैं कहनेका साहस करता हूँ कि भारतीयोंके मत यूरोपीयोंके मतोंको कभी भी निगल नहीं सकते। और यह कल्पना कि भारतीय राजनीतिक प्रभुताका हक माँगनेकी कोशिश कर रहे हैं, पिछले सारे अनुभवके विरुद्ध है। मुझे अनेक यूरोपीयोंके साथ इस प्रश्नपर बातचीत करनेका सौभाग्य मिला है। और लगभग सभीने यही मानकर बहस की है कि उपनिवेशमें प्रत्येक व्यक्तिको एक मत देनेका अधिकार प्राप्त है। मताधिकारके लिए सम्पत्तिकी योग्यता आवश्यक है,

यह उनके लिए नई जानकारी थी। इसलिए मताधिकार कानूनका योग्यता-सम्बन्धी अंश यहाँ उद्धृत करनेके लिए मुझे क्षमा मिलनी ही चाहिए :

> जिन पुरुषोंको पहले छोड़ दिया गया है उनके अतिरिक्त २१ वर्षकी आयुसे ऊपरका प्रत्येक पुरुष, जिसके पास ५० पौंड मूल्यकी अचल सम्पत्ति हो, या जो किसी भी निर्वाचन-क्षेत्रमें १० पौंड सालानाकी सम्पत्ति किराये पर लिये हो, और जो आगे बताये हुए तरीकेपर बाकायदा पंजीकृत हो, उक्त क्षेत्रके सदस्यके चुनावमें मत देनेका अधिकारी होगा। जब ऐसी किसी सम्पत्तिपर, जैसी कि ऊपर बताई गई है, एकसे अधिक लोग मालिक या किरायेदारके तौरपर काबिज हों और प्रत्येक कब्जेदारका नाम बाकायदा पंजीकृत हो, तो ऐसी सम्पत्तिकी बिनापर प्रत्येक कब्जेदारको मत देनेका अधिकार होगा। इसमें शर्त यह होगी कि सम्पत्तिका मूल्य या किराया इतना हो कि अगर उसे सब संयुक्त कब्जेदारोंमें बराबर-बराबर बाँट दिया जाये तो वह प्रत्येक कब्जेदारके लिए मत देनेका अधिकार प्राप्त करनेको काफी हो।

इससे स्पष्ट है कि मताधिकार प्रत्येक भारतीयको नहीं मिल सकता। और यूरोपीयोंकी तुलनामें ऐसे भारतीय उपनिवेशमें कितने हैं, जिनके पास ५० पौंडकी अचल सम्पत्ति हो, या जो १० पौंड सालानाकी सम्पत्ति किराये पर लिये हों? यह कानून लम्बे समयसे अमलमें है। और नीचेकी तालिकासे यूरोपीयों और भारतीयोंके मताधिकारकी तुलनात्मक संख्याकी कल्पना हो जायेगी। मैंने यह तालिका 'गजट' में प्रकाशित ताजीसे ताजी सूचियोंके आधार पर तैयार की है :

मतदाता

क्रम संख्या	निर्वाचन-विभाग	यूरोपीय	भारतीय
१.	पीटरमैरित्सबर्ग	१,५२१	८२
२.	अमगेनी	३०६	नहीं
३.	लायन्स रिवर	५११	नहीं
४.	इक्सोपो	५७३	३
५.	डर्बन	२,१००	१४३
६.	काउंटी ऑफ डर्बन	७७९	२०
७.	विक्टोरिया	५६६	१
८.	अमवोटी	४३८	१
९.	वीनेन	५२८	नहीं
१०.	क्लिप रिवर	५९१	१
११.	न्यूकैसिल	९१७	नहीं
१२.	अलेक्जैंड्रा	२०१	नहीं
१३.	आल्फ्रेड	२७८	नहीं
		९,३०९	२५१
	कुल योग		९,५६०

इस तरह, ९,५६० दर्जशुदा मतदाताओंमें सिर्फ २५१ भारतीय हैं। और सिर्फ दो विभागोंमें भारतीय मतदाताओंकी संख्या बताने लायक है। भारतीय और यूरोपीय मतदाताओंका अनुपात १ : ३८ है। अर्थात् इस समय यूरोपीयोंके मत भारतीयोंके मतोंसे ३८ गुने हैं। भारतीय प्रवासियोंके संरक्षककी १८९५की रिपोर्टके[1] अनुसार, भारतीयोंकी कुल ४६,३४३ जनसंख्यामें से स्वतन्त्र भारतीयोंकी संख्या सिर्फ ३०,३०३ है। इसमें अगर व्यापारी भारतीयोंकी संख्या — लगभग ५,००० — और जोड़ दी जाये तो स्वतन्त्र और गिरमिट-मुक्त भारतीयोंकी कुल संख्या मोटे तौरपर ३५,००० है। इसलिए भारतीयोंकी जो आबादी मत देनेमें यूरोपीय आबादीसे होड़ कर सकती है वह यूरोपीयोंके बराबर बड़ी नहीं है। परन्तु इन ३५,००० लोगोंमें आधेसे ज्यादा लोगोंकी आर्थिक स्थिति गिरमिटिया भारतीयोंकी आर्थिक स्थितिसे केवल एक अंश ऊँची है और यह कहनेमें मेरा विश्वास है, मैं सचाईसे दूर नहीं जा रहा हूँ। मैं आसपासके इलाकोंमें और डर्बनसे ५० मीलके घेरेमें यात्राएँ करता आ रहा हूँ। और मैं जोखिमके बिना कह सकता हूँ कि स्वतन्त्र भारतीयोंमें से अधिकतर रोज कुआँ खोदते और पानी प्राप्त करते हैं, और निश्चय ही उनके पास ५० पौंड मूल्यकी जायदाद नहीं है। वयस्क स्वतन्त्र भारतीयोंकी संख्या उपनिवेशमें केवल १२,३६० है। इस तरह, मेरा निवेदन है कि निकट भविष्यमें भारतीयोंके मतों द्वारा यूरोपीय मतोंके निगल लिये जानेका भय बिलकुल बेबुनियाद है।

भारतीय मतदाताओंकी सूचीके नीचे दिये हुए विश्लेषणसे यह भी मालूम होता है कि अधिकतर भारतीय मतदाता वे लोग हैं जो बहुत लम्बे समयसे उपनिवेशमें बसे हुए हैं। मैं २५० भारतीय मतदाताओंकी शिनाख्त करा सका हूँ। उनमें से सभी १५ वर्षसे अधिक समयसे उपनिवेशमें रह रहे हैं और केवल ३५ व्यक्ति किसी समय गिरमिटिया रहे थे।

भारतीय मतदाताओंके निवासकी अवधि और किसी समय गिरमिटिया रहे भारतीयोंकी संख्या बतानेवाली तालिका :

४	वर्षका वास	१३
५ से ९	,, ...	५०
१० से १३	,, ...	३५
१४ से १५	,, ...	५९
स्वतन्त्र भारतीय, जो किसी समय गिरमिटिया थे, परन्तु जो १५ वर्षसे और कई २० वर्षसे अधिक समयसे उपनिवेशमें बसे हुए हैं :		३५
उपनिवेशमें जन्मे	. . . .	९
दुभाषिये	. . . .	४
अ-वर्गीकृत	. . . .	४६
		२५१

१. रिपोर्ट ऑफ द प्रोटेक्टर ऑफ इंडियन इमिग्रेन्ट्स फॉर १८९५।

बेशक, इस तालिकाको पूरा-पूरा सही बिलकुल नहीं कहा जा सकता। फिर भी मेरा खयाल है कि हमारी मौजूदा चर्चाके लिए यह काफी सही है। इस तरह, जहाँतक इन अंकोंका दायरा है, गिरमिटिया बनकर आनेवाले भारतीयोंको मतदाता-सूचीमें शामिल होनेके लिए धनकी पर्याप्त योग्यता कमानेमें १५ वर्ष या इससे ज्यादा का समय लगता है। और अगर गिरमिट-मुक्त भारतीयोंकी संख्या छोड़ दी जाये तो यह तो कोई नहीं कह सकता कि केवल व्यापारियोंकी आबादी कभी भी मतदाता-सूचीपर छा सकती है। इसके अलावा, इन ३५ गिरमिट-मुक्त भारतीयोंमें से अधिकतर व्यापारियोंके दर्जेपर चढ़ गये हैं। जो लोग शुरू-शुरूमें अपने खर्चसे आये थे, उनकी भारी बहुसंख्याको मतदाता-सूचीमें शामिल होनेमें लम्बा समय लगा है। जिन ४६की शिनाख्त मैं नहीं करा सका, उनमें बहुत-से अपने नामोंसे व्यापारी वर्गके मालूम होते हैं। उपनिवेशमें यहींके जन्मे बहुत-से भारतीय हैं। वे शिक्षित भी हैं, फिर भी मत-दाता-सूचीमें सिर्फ ९ के नाम दर्ज हैं। इससे मालूम होगा कि वे इतने गरीब हैं कि उन्हें सम्पत्तिकी बिनापर मिलनेवाला मताधिकार नहीं मिला। इसलिए, समग्र रूपमें ऐसा मालूम होगा कि मौजूदा सूचीके आधारपर यह डर काल्पनिक है कि भारतीयोंके मत खतरनाक अनुपात तक पहुँच जायेंगे। २०५ में से ४० या तो मर चुके हैं, या उपनिवेश छोड़कर चले गये हैं।

निम्नलिखित तालिकामें भारतीय मतदाताओंकी सूचीका धंधेके अनुसार विश्लेषण किया गया है:

दुकानदार (व्यापारी वर्ग)	९२
व्यापारी	३२
सुनार	४
जौहरी	३
हलवाई	१
फल बेचनेवाले	४
छोटे व्यापारी	११
टीनसाज	१
तम्बाकूके व्यापारी	२
भोजनालय-चालक	१
	१५१

मुहर्रिर और सहायक

मुहर्रिर	२१
मुनीम	६
हिसाब-लेखक	१
विक्रेता	६

शिक्षक	१
फोटोग्राफर	१
दुभाषिये	४
दुकान-नौकर	५
नाई	२
शराबकी दूकानके नौकर	१
प्रबन्धक	२
	५०

बागवान और अन्य

शाक व्यापारी	१
किसान	४
घरेलू नौकर	५
मछुए	१
बागवान	२६
दिये जलानेवाले	३
गाड़ीवान	२
सिपाही	२
मजदूर	२
हजूरिए	१
बावर्ची	३
	५०
	२५१

मेरा खयाल है कि मतदाता-सूचीमें अयोग्य या निम्नतम दर्जेके भारतीयोंके भर जानेके भयको दूर करनेमें निष्पक्ष लोगोंको इस विश्लेषणसे भी मदद मिलनी चाहिए। कारण, इसमें सबसे बड़ी — बहुत बड़ी — संख्या व्यापारी वर्गकी या तथाकथित 'अरब' वर्गकी है। इन्हें तो मत देनेके बिलकुल अयोग्य नहीं माना जाता।

दूसरे शीर्षकके नीचे जिनका वर्गीकरण किया गया है, वे या तो व्यापारी वर्गके हैं या उस वर्गके हैं, जिसने काम चलानेके लिए अच्छी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है।

तीसरे विभागके लोगोंको ऊँचे दर्जेके मजदूर कहा जा सकता है। वे औसत दर्जेके गिरमिटिया भारतीयोंसे बहुत ऊँचे हैं। ये लोग २० वर्षसे अधिक समयसे सपरिवार उपनिवेशमें बसे हुए हैं, और या तो जमीन-जायदादके मालिक हैं या अच्छा किराया चुकाते हैं। मैं यह भी कह दूँ कि अगर मेरी जानकारी सही है तो इन मतदाताओंमें से ज्यादातर अपनी मातृभाषा लिख-पढ़ सकते हैं। इस प्रकार, अगर भारतीयोंकी वर्तमान मतदाता-सूची भविष्यके लिए मार्गदर्शिकाका काम दे और मान

लिया जाये कि मताधिकार-योग्यता जैसी-की-तैसी रहती है, तो यूरोपीय दृष्टिकोणसे यह सूची बहुत सन्तोषप्रद है। पहले तो इसलिए कि संख्याकी दृष्टिसे भारतीयोंका मत-बल बहुत कम है और दूसरे, अधिकतर (¾ से ज्यादा) भारतीय मतदाता व्यापारी वर्गके हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि उपनिवेशमें व्यापार करनेवाले भारतीयोंकी संख्या लम्बे समयतक करीब-करीब यही रहेगी। क्योंकि, जहाँ अनेक लोग हर महीने यहाँ आते हैं, उतने ही भारतको लौट भी जाते हैं। साधारणतः आनेवाले लोग जानेवालोंकी जगहोंपर रहते हैं।

अबतक मैंने दोनों समाजोंकी स्वाभाविक रुचिको दलीलमें बिलकुल दाखिल नहीं किया, सिर्फ अंकोंकी चर्चा की है। फिर भी स्वाभाविक रुचिका दोनोंकी राजनीतिक प्रवृत्तियोंसे कम सम्बन्ध नहीं होगा। इस विषयमें कोई मतभेद नहीं हो सकता कि भारतीय साधारणतः राजनीतिमें सक्रिय हस्तक्षेप नहीं करते। उन्होंने कभी किसी स्थानपर राजनीतिक सत्ता हड़पनेका प्रयत्न नहीं किया। उनका धर्म (चाहे वे मुस्लिम हों चाहे हिन्दू, युग-युगकी शिक्षा सिर्फ नाम बदल जानेसे मिट नहीं जाती) उनको भौतिक प्रवृत्तियोंके प्रति उदासीन रहना सिखाता है। स्वाभाविक है कि जबतक वे इज्जतके साथ आजीविका कमा सकते हैं, तबतक उन्हें संतोष रहता है। मैं यह कहनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ कि अगर उनके व्यापार-धंधेको कुचलनेका प्रयत्न न किया गया होता, अगर उन्हें समाजमें अछूतोंके दर्जेपर गिरानेके प्रयत्न न किये गये होते और उन प्रयत्नोंको बार-बार दुहराया न गया होता, अगर सचमुच उन्हें सदाके लिए 'लकड़हारे और पनिहारे' बनाकर अर्थात् सदाके लिए गिरमिटिया या उससे बहुत ज्यादा मिलती-जुलती हालतमें रखनेका प्रयत्न न किया गया होता, तो मताधिकार-सम्बन्धी आन्दोलन होता ही नहीं। मैं तो इससे भी आगे जाऊँगा। मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि इस समय भी शब्दके सच्चे मानीमें किसी राजनीतिक आन्दोलनका अस्तित्व नहीं है। परन्तु अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात है कि अखबार भारतीयोंको इस प्रकारके आन्दोलनके जनक बतानेका प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें अपने वैध धंधे करनेको स्वतन्त्र छोड़ दीजिए, उनको नीचे गिरानेके प्रयत्न मत कीजिए, उनके साथ साधारण दयालुताका बरताव कीजिए, तो मताधिकारका कोई प्रश्न नहीं रहेगा। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि वे अपने नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज करानेका कष्ट ही नहीं उठायेंगे।

परन्तु कहा यह गया है, और सो भी जिम्मेदार लोगों द्वारा, कि कुछ गिने-चुने भारतीय राजनीतिक सत्ता चाहते हैं; ये लोग मुसलमान आन्दोलनकारी हैं, जिनकी संख्या थोड़ी-सी है; और हिन्दुओंको पिछले अनुभवोंसे सीखना चाहिए कि मुसलमानोंका राज्य उनका नाश कर देनेवाला होगा। पहला कथन बेबुनियाद है और आखिरी कथन अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखदायी है। अगर राजनीतिक सत्ता प्राप्त करनेका अर्थ विधानसभामें पैठना हो, तो उसे प्राप्त करना पूर्णतः असम्भव है। इस कथनका मतलब तो यह हुआ कि उपनिवेशमें बहुत धनी भारतीय मौजूद हैं, जिन्हें अंग्रेजी भाषाका अच्छा ज्ञान है। अब, खुशहाल और धनीका फर्क देखते हुए उपनिवेशमें तो

बहुत ही कम धनी लोग हैं और शायद उनमें कोई भी कानून बनानेवालेका काम करने योग्य नहीं है — इसलिए नहीं कि राजनीतिको समझनेकी योग्यता रखनेवाला कोई नहीं है, बल्कि इसलिए कि कानून बनानेवालोंमें अंग्रेजी भाषाके जैसे ज्ञानकी अपेक्षा की जाती है, वैसा ज्ञान किसीको नहीं है। दूसरे कथनके द्वारा उपनिवेशके हिन्दुओंको मुसलमानोंसे भिड़ा देनेका प्रयत्न किया गया है। यह बहुत आश्चर्यजनक है; उपनिवेशका कोई भी जिम्मेदार व्यक्ति इस तरहके संकटकी कामना कर ही कैसे सकता है। ऐसे प्रयत्नोंका परिणाम भारतमें अत्यन्त दुःखद हुआ है और उनसे ब्रिटिश शासनके स्थायित्व तकको खतरा पहुँचा है। इस उपनिवेशमें, जहाँ दोनों सम्प्रदाय बहुत ही मैत्रीभावसे रहते हैं, मेरी समझमें तो ऐसा प्रयत्न करना बहुत बड़ी शरारतसे भरा है।

अब जो यह स्वीकार किया जाता है कि सब भारतीयोंपर मताधिकार पानेके सम्बन्धमें प्रतिबन्ध लगा देना एक बहुत बड़ा अन्याय है, सो एक शुभ लक्षण है। कुछ लोगोंका खयाल है कि तथाकथित अरबोंको मताधिकार देना चाहिए। कुछका खयाल है कि उनमेंसे चुने हुए लोगोंको देना चाहिए। और कुछ सोचते हैं कि गिरमिटिया भारतीयोंको कभी भी मताधिकार नहीं मिलना चाहिए। ताजेसे-ताजा सुझाव स्टैंगरका है और वह बड़ा ही हास्यास्पद है। अगर उस सुझावका अनुसरण किया जाये तो सिर्फ वे लोग नेटालमें मताधिकार प्राप्त कर सकेंगे, जो यह साबित कर सकें कि वे भारतमें मतदाता थे। ऐसा नियम बेचारे भारतीयोंके ही लिए क्यों? अगर यह सबपर लागू हो तो मैं नहीं समझता कि भारतीयोंको इसपर कोई आपत्ति होगी। और अगर ऐसी परिस्थितियोंमें यूरोपीयोंको भी अपने नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज कराना कठिन गुजरे तो मुझे कोई आश्चर्य न होगा। क्योंकि उपनिवेशमें ऐसे यूरोपीय कितने हैं, जो अपने राज्योंमें मतदाता थे? तथापि यह बयान यदि यूरोपीयोंके सम्बन्धमें दिया गया होता तो उसपर उग्रतम रोष प्रकट किया गया होता। भारतीयोंके बारेमें इसका गम्भीरताके साथ स्वागत किया गया है।

यह भी कहा गया है कि भारतीय 'एक भारतीयको एक मत' के लिए आन्दोलन कर रहे हैं। मेरा निवेदन है कि यह कथन बिलकुल निराधार है। इसका मंशा भारतीय समाजके प्रति अनावश्यक दुर्भावना पैदा करना है। मैं मानता हूँ कि वर्तमान साम्पत्तिक योग्यता अगर हमेशा नहीं तो हालमें तो जरूर ही यूरोपीय मतोंकी संख्या अधिक बनाये रखनेके लिए काफी है। फिर भी अगर यूरोपीय उपनिवेशियोंका खयाल भिन्न हो तो, मुझे लगता है कि उचित और सच्ची शिक्षा-योग्यता और वर्तमानसे अधिक साम्पत्तिक योग्यता निर्धारित कर देनेपर कोई भारतीय आपत्ति नहीं करेगा। भारतीय जिस बातका विरोध करते हैं और करेंगे, वह है रंग-भेद — जातीय भेदके आधारपर अयोग्य ठहराया जाना। सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाको अत्यन्त गम्भीरताके साथ बारंबार आश्वासन दिया गया है कि उनकी राष्ट्रीयता और धर्मके कारण उनपर कोई अयोग्यताएँ अथवा प्रतिबन्ध नहीं मढ़े जायेंगे। और यह आश्वासन किन्हीं भावनात्मक आधारोंपर नहीं, बल्कि योग्यताके प्रमाण मिलनेपर दिया और

दुहराया गया है। पहला आश्वासन असन्दिग्ध रूपसे यह जान लेनेपर दिया गया था कि भारतीयोंके साथ बिना किसी खतरेके बराबरीका बरताव किया जा सकता है, वे अत्यन्त वफादार और कानूनका पालन करनेवाले हैं; और भारतपर ब्रिटेनका कब्जा स्थायी तौरपर इन्हीं शर्तोंपर कायम रखा जा सकता है, दूसरी शर्तों पर नहीं। उपर्युक्त आश्वासनमें गम्भीर व्यतिक्रम भी हुए हैं। मगर मेरा निवेदन है कि इससे उस आश्वासनके अस्तित्वकी ठोस सचाईसे इनकार नहीं किया जा सकता। मेरा खयाल है कि वे व्यतिक्रम नियमको सिद्ध करनेवाले अपवाद हैं, उसका अतिक्रमण करनेवाले नहीं। क्योंकि मेरे पास अगर समय और स्थान होता, और अगर मुझे पाठकोंको उबा देनेका डर न होता, तो मैं ऐसे असंख्य उदाहरण दे सकता, जिनमें १८५८की घोषणाका अचूक रूपसे पालन किया गया है, और आज भी भारतमें तथा अन्यत्र किया जा रहा है। और यह अवसर तो निश्चय ही उसकी अवहेलना करनेका नहीं है। इसलिए मैं निवेदन करता हूँ कि भारतीयोंका जातीय आधारपर अयोग्य ठहराये जानेका विरोध करना ओर उस विरोधके माने जानेकी अपेक्षा करना पूर्णतः उचित है। इतना कहनेके बाद मैं अपने भाइयोंकी ओरसे आश्वासन देता हूँ कि मतदाता-सूचीको आपत्तिजनक लोगोंसे मुक्त रखनेके लिए या भविष्यमें भारतीयोंके मत-बलको सबसे प्रबल न होने देनेके लिए अगर कोई कानून बनाये जायेंगे तो मेरे देशवासी उनका विरोध करनेका विचार नहीं करेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिनसे मतका मूल्य समझनेकी सम्भवतः आशा ही न की जा सकती हो, ऐसे भारतीयोंको मतदाता-सूचीमें स्थान दिलानेकी भारतीयोंकी कोई इच्छा नहीं है। उनका कहना है कि सभी भारतीय अनजान नहीं हैं; फिर ऐसे लोग कम-ज्यादा सभी समाजोंमें पाये जाते हैं। प्रत्येक सही विचारवाले भारतीयका लक्ष्य, जहाँतक हो सके, यूरोपीय उपनिवेशियोंकी इच्छाओंके अनुकूल रहना है। वे यूरोपीय और ब्रिटिश उपनिवेशियोंसे लड़कर पूरी रोटी लेनेके बजाय शान्तिसे रहकर आधी ही ले लेना पसन्द करेंगे। इस अपीलका उद्देश्य कानून बनानेवालों और यूरोपीय उपनिवेशियोंसे यह प्रार्थना करना है कि अगर कोई कानून बनाना जरूरी ही हो तो वे सिर्फ ऐसा कानून बनायें या सिर्फ ऐसे कानूनका समर्थन करें, जो उससे प्रभावित होनेवाले लोगोंको मंजूर हो। स्थितिको अधिक साफ करनेके लिए मैं एक सरकारी रिपोर्टके कुछ अंशोंको उद्धृत करके यह बतानेकी स्वतन्त्रता लूँगा कि इस प्रश्नपर सबसे प्रमुख उपनिवेशियोंके विचार क्या हैं।

पिछली विधानसभाके सदस्य श्री सांडर्स केवल इस हदतक गये:

> यह परिभाषा ही कि ये हस्ताक्षर पूरे हों, निर्वाचकके अपने ही अक्षरोंमें हों और यूरोपीय लिपिमें हों, इस जबरदस्त खतरेको रोकनेमें बहुत हद तक सहायक होगी कि एशियाइयोंके मत अंग्रेजोंके मतोंको दबा देंगे। (अफेयर्स ऑफ नेटाल, सी. ३७९६ – १८८३)

उसी पुस्तकके पृष्ठ ७ पर भूतपूर्व प्रवासी-संरक्षक कप्तान ग्रेव्जका यह कथन दिया गया है:

मेरा मत है कि केवल वही भारतीय न्यायपूर्वक मताधिकार पानेके हकदार हैं, जिन्होंने अपने और अपने परिवारोंके भारत लौटनेके मुफ्त टिकटका पूरा दावा छोड़ दिया है।

ध्यान रखना चाहिए कि ये शब्द कप्तान ग्रेव्जने अपने विभाग द्वारा मान्य किये गये भारतीयों — यानी गिरमिटिया भारतीयोंके बारेमें कहे थे।

तत्कालीन महान्यायवादी और वर्तमान मुख्य न्यायधीशका कथन है:

यह देखा जायेगा कि मैंने जिस कानूनका मसविदा बनाया है, उसमें प्रवर समितिकी सिफारिशोंसे ली हुई वे उपधाराएँ शामिल हैं, जिनमें श्री सांडर्सके पत्रमें बतायी गई वैकल्पिक योजनाको कार्यान्वित करनेकी व्यवस्था की गई है। परन्तु विदेशियोंको विशेष रूपसे मताधिकारके अयोग्य ठहरानेके सुझाव मानने योग्य नहीं समझे गये।

उसी पुस्तकके पृष्ठ १४ पर फिर उनका यह कथन है:

जहाँतक उपनिवेशके सामान्य कानूनके अन्दर पूरी तरहसे न आनेवाले प्रत्येक राष्ट्र या जातिके सब लोगोंको मताधिकार-प्रयोगसे वंचित कर देनेका सुझाव है, यह स्पष्ट है कि इस कानूनका लक्ष्य उपनिवेशवासी भारतीयों और क्रियोलोंका मताधिकार है, जिसका उपभोग वे इन दिनों कर रहे हैं। जैसा कि मैं पहले ही अपनी रिपोर्ट, क्रम संख्या १२ में कह चुका हूँ, मैं ऐसे कानूनको न्यायपूर्ण या जरूरी नहीं मान सकता।

इस सरकारी रिपोर्टमें मताधिकारके प्रश्नपर बहुत-सी रोचक सामग्री है। उससे साफ मालूम होता है कि विशेष निर्योग्यताका विषय उस समय उपनिवेशियोंको अप्रिय था।

मताधिकारके सम्बन्धमें हुई विविध सभाओंकी रिपोर्टोंसे मालूम होता है कि वक्ताओंने सदा यह कहा है कि भारतीयोंको इस देशपर कब्जा नहीं करने दिया जायेगा। इसे यूरोपीयोंके खूनसे जीता गया है और यह जो कुछ भी है, यूरोपीयोंके हाथोंसे बना है। उन रिपोर्टोंसे यह भी मालूम होता है कि भारतीयोंको इस उपनिवेशमें बिना हक घुस आनेवाले माना जाता है। पहले कथनके बारेमें मुझे इतना ही कहना है कि अगर भारतीयोंको इसलिए कोई अधिकार नहीं दिये जायेंगे कि उन्होंने इस देशके लिए अपना खून नहीं बहाया, तो यूरोपके दूसरे राज्योंके यूरोपीयोंको भी वे अधिकार नहीं मिलने चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि इंग्लैंडसे बादमें आये हुए प्रवासियोंको भी शुरू-शुरूमें यहाँ आकर बसनेवाले गोरोंके विशेष सुरक्षित अधिकारोंमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। और, निश्चय ही, अगर खून बहाना ही हकदार होनेका कोई मापदण्ड है और अगर ब्रिटिश उपनिवेशी अन्य ब्रिटिश अधिराज्योंको ब्रिटिश साम्राज्यके अंग मानते हैं, तो भारतीयोंने अनेक अवसरोंपर ब्रिटेनके लिए अपना खून बहाया है। चितरालकी लड़ाई सबसे ताजा उदाहरण है।

जहाँतक यह बात है कि उपनिवेशका निर्माण यूरोपीय हाथोंसे हुआ है और भारतीय बिना हक यहाँ घुस आये हैं, मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि सारी हकीकतें बिलकुल उलटी बात सिद्ध करती हैं।

अब मैं, अपनी टीका-टिप्पणीके बिना, ऊपर बताये हुए (भारतीय प्रवासी आयोगकी रिपोर्टके) अंश उद्धृत करूँगा। यह रिपोर्ट मुझे प्रवासी-संरक्षकसे उधार मिली है, जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ।

एक आयुक्त, श्री सांडर्स पृष्ठ ९८ पर कहते हैं:

> भारतीय प्रवासियोंके आनेसे समृद्धि आई, चीजोंकी कीमतें बढ़ गईं, अब लोगोंको चीजोंका उत्पादन या बिक्री मिट्टीके मोल नहीं करनी पड़ती थी; वे अब ज्यादा कमा सकते थे। युद्ध, और ऊन, चीनी आदिके ऊँचे भावोंसे समृद्धि कायम रही। भारतीय जिन स्थानिक पैदावारोंका व्यापार करते हैं, उनके भाव भी ऊँचे बने रहे।

पृष्ठ ९९ पर वे कहते हैं:

> मैं व्यापक लोकहितकी दृष्टिसे फिर उस प्रश्नपर विचार करूँगा। एक बात निश्चित है——गोरे लोग सिर्फ 'लकड़हारे और पनिहारे' बननेके लिए नेटालमें या दक्षिण आफ्रिकाके किसी दूसरे भागमें नहीं बसेंगे। इसके बजाय वे हमें छोड़कर या तो विस्तीर्ण भीतरी हिस्सोंमें चले जाना या समुद्रका रास्ता पकड़ना पसन्द करेंगे। जहाँ यह एक तथ्य है, वहीं हमारे और दूसरे उपनिवेशोंके कागज-पत्र साबित करते हैं कि भारतीय मजदूरोंके आनेसे भूमिकी और उसके खाली क्षेत्रोंकी छिपी हुई शक्ति प्रकट और विकसित होती है और गोरे प्रवासियोंके लिए लाभप्रद रोजगार-धंधेके अनेक नये क्षेत्र खुलते हैं।
>
> हमारे निजी अनुभव इसे सबसे ज्यादा स्पष्ट रूपमें साबित करनेवाले हैं। अगर हम १८५९ के सालपर गौर करें तो हम देखेंगे कि भारतीय मजदूरोंका हमें जो आश्वासन मिला था, उससे राजस्वमें तुरन्त वृद्धि हुई, और कुछ ही वर्षोंमें राजस्व चौगुना बढ़ गया। जिन मिस्तरियोंको काम नहीं मिलता था और जो रोजाना ५ शिलिंग या इससे कम कमाते थे, उनकी मजदूरी दूनीसे ज्यादा बढ़ गई। इस उन्नतिसे शहरसे समुद्रतट तक सब लोगोंको प्रोत्साहन मिला। परन्तु कुछ वर्ष बाद एक आतंक फैला (जिसका आधार दृढ़ था) कि भारतीय मजदूरोंका आना सब जगह एक साथ बन्द कर दिया जायेगा (अगर मेरा कथन गलत हो तो कागज-पत्र मौजूद हैं, उसे ठीक किया जा सकता है)। बस, राजस्व और मजदूरीमें गिरावट हो गई, प्रवासियोंका आना रोक दिया गया, विश्वास जाता रहा और मुख्य बात जो सोची गई वह थी——छँटनी तथा वेतनोंमें कटौती की। और कुछ वर्ष बाद १८७३ में (१८६८ में हीरेकी खानका पता चलनेके बहुत बाद) फिरसे भारतीयोंके आनेका वचन मिला

और उसने अपना काम किया -- राजस्व, मजदूरी और वेतनोंमें फिर वृद्धि हो गई और जल्दी ही छँटनीको अतीतकी चीज बताया जाने लगा (काश! अब भी ऐसा ही होता!)।

इस तरहके प्रलेख अपने-आपमें स्पष्ट हैं; उन्हें समझानेके लिए किसी भाष्यकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। और उनसे बचकानापन-भरी जातीय भावनाओं और क्षुद्र ईर्ष्याओंको शान्त हो जाना चाहिए।

गैर-गोरे मजदूरोंके आनेसे गोरे प्रवासियोंका जो हित हुआ, उसका और अधिक प्रमाण देनेके लिए मैं औपनिवेशिक हित-अहितको पूरी तरह अपना हित-अहित बना लेनेवाले मैंचेस्टरके ड्यूकके एक भाषणका हवाला दे दूँ। वे अभी-अभी क्वीन्सलैंडसे लौटे हैं और उन्होंने अपने श्रोताओंको बताया है कि वहाँ गैर-गोरे मजदूरोंके आगमनके विरुद्ध आन्दोलनका परिणाम स्वयं उन गोरे प्रवासियोंके लिए ही अत्यन्त विनाशकारी हुआ है, जिन्होंने आशा की थी कि बाहरसे गैर-गोरे मजदूरोंका आना रोककर वे प्रतिद्वन्द्विताको नष्ट कर देंगे। उनके मनमें यह गलत धारणा बन गई है कि गैर-गोरोंकी प्रतिद्वन्द्वितासे उनका काम धन्धा छिनता है।

पृष्ठ १०० पर वही सज्जन आगे कहते हैं:

जहाँतक स्वतन्त्र भारतीय व्यापारियों, उनकी प्रतिद्वन्द्विता और उसके फलस्वरूप उपभोग्य वस्तुओंकी कीमतोंमें कमीका सम्बन्ध है, जिससे जनताको लाभ होता है (और फिर भी विचित्र बात यह है कि उसकी वह शिकायत करती है), वहाँतक साफ-साफ बता दिया गया है कि इन भारतीय दुकानोंको गोरे व्यापारियोंकी बड़ी-बड़ी पेढ़ियोंने ही पूरी तरह पोसा है, और वे ही अब भी पोस रही हैं। इस तरह ये पेढ़ियाँ अपना माल बेचनेके लिए इन लोगोंको लगभग अपने नौकर बनाकर रखती हैं।

आप चाहें तो भारतीयोंका आगमन रोक दें। अगर अभी खाली मकान काफी न हों तो अरबों या भारतीयोंको, जो इस आधेसे कम आबाद देशकी उपज व खपतकी शक्ति बढ़ाते हैं, निकालकर और भी मकान खाली करा लें। परन्तु इस एक विषयको उदाहरणके तौरपर उठाकर जाँचिए, और इसके परिणामोंका पता लगाइए। पता लगाइए कि किस तरह मकानोंके खाली पड़े रहनेसे जायदाद और सेक्युरिटीजकी कीमत घटती है और इसके बाद, कैसे गृह-निर्माणका धन्धा तथा अपने मालकी खपतके लिए इस धन्धे पर निर्भर अन्य धन्धे और दुकानें अनिवार्यतः ठप हो जाती हैं। देखिए कि इससे गोरे मिस्तरियोंकी माँग कैसे कम होती है, और इतने लोगोंकी खर्च करनेकी शक्ति कम हो जानेसे कैसे राजस्वमें कमीकी अपेक्षा करनी होगी, इसी तरह छँटनी

की या कर बढ़ानेकी या दोनोंकी। इस परिणामका और दूसरे परिणामोंका, जो इतने अधिक हैं कि उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता, मुकाबला कीजिए, और फिर अगर अंधी जाति-भावना या ईर्ष्याको ही प्रबल होने देना है तो होने दीजिए।

आयोगके सामने श्री बिन्सने इस आशयकी गवाही दी थी (पृष्ठ १५६):

> मेरे खयालसे स्वतन्त्र भारतीय आबादी समाजका सबसे उपयोगी अंग है। ये भारतीय एक बहुत बड़े अनुपातमें साधारणतः जो माना जाता है उससे कहीं बड़े अनुपातमें — उपनिवेशकी नौकरियोंमें लगे हुए हैं। खास तौरसे वे शहरों और गाँवोंमें घरेलू नौकरोंका काम कर रहे हैं। वे बहुत बड़े उत्पादक भी हैं। मैंने जो जानकारी प्रयत्नपूर्वक इकट्ठी की है, उसके अनुसार स्वतन्त्र भारतीय पिछले दो-तीन वर्षोंसे लगभग एक लाख मन मकई सालाना पैदा करते हैं। भारी मात्रामें तम्बाकू और दूसरी चीजोंकी पैदावार करते हैं सो अलग। स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादी होनेके पहले पीटरमैत्सिबर्ग और डर्बनमें फल, शाक-सब्जी और मछली बिल्कुल नहीं मिलती थी। इस समय ये सब चीजें पूरी-पूरी उपलब्ध हैं।
>
> यूरोपसे कभी कोई ऐसे प्रवासी नहीं आये, जिन्होंने बड़े पैमाने पर बागवानी या मछलीके धन्धेमें रुचि दिखाई हो। और मेरा खयाल है कि अगर भारतीय न हों तो पीटरमैरित्सबर्ग और डर्बनके बाजारोंमें आज भी इन चीजों की वैसी ही कमी रहेगी, जैसी दस वर्ष पूर्व रहती थी।
>
> . . . अगर कुलियोंका आगमन पक्के तौरपर बन्द कर दिया जाये तो शायद यूरोपीय मिस्तरियोंकी मजदूरीकी दरोंमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। परन्तु थोड़े ही दिन बाद उनके लिए उतना काम नहीं रहेगा, जितना अभी है। गरम देशकी खेती भारतीय मजदूरोंके बिना न कभी हुई, न होगी।

तत्कालीन महान्यायवादी और वर्तमान मुख्य न्यायाधीशने आयोगके सामने यह गवाही दी थी (पृष्ठ ३२७):

> . . . मेरे खयालसे, भारतीय प्रवासियोंके बड़ी संख्यामें लाये जानेसे ही बहुत हदतक तटवर्ती प्रदेशमें गोरे प्रवासियोंको मात मिली है। उन्होंने वह जमीन जोती, जो उनके न जोतने पर बंजर बनी रहती, और उसमें ऐसी फसलें बोईं जो उपनिवेशवासियोंके सच्चे लाभकी हैं। भारत लौटनेके मुफ्त टिकटका फायदा न उठानेवाले बहुत-से लोग विश्वस्त और उपयोगी घरेलू नौकर साबित हुए हैं।

गिरमिट-मुक्त और स्वतन्त्र दोनों वर्गोंके भारतीय सामान्यतः उपनिवेशके लिए बहुत फायदेमन्द सिद्ध हुए हैं — यह और भी जोरदार प्रमाणोंसे सिद्ध किया जा सकता है। आयुक्त अपनी रिपोर्टके पृष्ठ ८२ पर कहते हैं:

१९. वे मछलियाँ पकड़ने और उनकी हिफाजत करनेमें प्रशंसनीय परिश्रम करते हैं। डर्बन-बेके सैलिसबरी द्वीपमें भारतीय मछुओंकी बस्ती न सिर्फ भारतीयोंके लिए, बल्कि उपनिवेशके गोरे निवासियोंके लिए भी बहुत लाभदायक हुई है।

२०. . . .अन्तःवर्ती और तटवर्ती दोनों प्रकारके जिलोंके बहुत-से क्षेत्रोंमें उन्होंने उजाड़ और बंजर जमीनको बागोंमें बदल दिया है, जिनकी हिफाजत अच्छी तरह की जाती है। उनमें साग-सब्जियों, तम्बाकू, मकई और फलोंकी उपज की जाती है। जो लोग डर्बन और पीटरमैरित्सबर्गके आसपास रहते हैं, उन्होंने स्थानीय बाजारोंको साग-सब्जी देनेका पूरा-का-पूरा व्यापार अपने अधीन कर लिया है। स्वतन्त्र भारतीयोंकी इस प्रतिद्वन्द्विताका यह परिणाम तो हुआ ही होगा कि जिन यूरोपीयोंके हाथमें अबतक इस रोजगारका एकाधिकार था उनको नुकसान पहुँचा हो। . . . स्वतन्त्र भारतीयोंके प्रति न्यायकी दृष्टिसे हमें कहना ही होगा कि प्रतिद्वन्द्विताका स्वरूप न्यायपूर्ण है और, अवश्य ही, साधारण समाजने उसका स्वागत किया है। भारतीय फेरीवाले —— पुरुष और स्त्री, बड़े और छोटे, रोज तड़के उठकर, अपने सिरोंपर भारी-भारी टोकरियाँ रखकर, घर-घर जाते हैं, और इस तरह अब नागरिकोंको गुणकारी साग-सब्जी और फल अपने दरवाजे पर ही सस्ते दामों मिल जाते हैं। अभी ज्यादा बरस नहीं हुए हैं जब कि इन्हीं चीजोंको शहरके बाजारोंमें भी, और बहुत महँगे भाव चुकानेपर भी, पा सकनेका भरोसा नहीं रहता था।

जहाँतक व्यापारियोंका सम्बन्ध है, आयुक्तोंकी रिपोर्टमें पृष्ठ ७४ पर कहा गया है :

हमें पक्का विश्वास हो गया है कि उपनिवेशकी तमाम भारतीय आबादीके खिलाफ यूरोपीय उपनिवेशियोंके मनमें जो चिढ़ है, उसका बहुत-सा अंश इन अरब व्यापारियोंकी यूरोपीय व्यापारियोंके साथ प्रतिद्वन्द्विता करनेकी असन्दिग्ध योग्यतासे पैदा हुआ है, और खासकर उनके साथ जो अबतक ऐसी वस्तुएँ —— विशेषतः चावल —— बेचनेकी ओर ही मुख्य ध्यान रखते थे, जिनकी भारतीय आबादीमें बहुत खपत होती है। . . .

हमारा खयाल है कि ये अरब व्यापारी प्रवासी कानूनके अनुसार लाये गये भारतीयोंके आकर्षणसे नेटालमें आये हैं। इस समय जो ३०,००० भारतीय प्रवासी उपनिवेशमें हैं, उनका मुख्य भोजन चावल है। और इन कुशल व्यापारियोंने चावल मुहैया करनेके व्यापारमें अपनी चतुराई और मेहनतका प्रयोग इतनी सफलताके साथ किया कि पहलेके बरसोंमें जो चावल २१ शि० फी बोरा बिकता था, उसका भाव १८८४ में १४ शिलिंग फी बोरे तक गिर गया।

कहा जाता है कि काफिर लोगोंको ६-७ बरस पहलेकी अपेक्षा अब २५-३० फी-सदी कम भावों पर अरबोंसे माल मिल जाता है।

कुछ लोग एशियाई या 'अरब' व्यापारियोंपर जो प्रतिबन्ध लगानेके इच्छुक हैं, उनपर विस्तारके साथ विचार करना आयोगके कार्यक्षेत्रके बाहर है। अतः हम व्यापक निरीक्षणके आधारपर अपना यह दृढ़ अभिप्राय अंकित करके ही सन्तोष मानते हैं कि *इन व्यापारियोंका यहाँ रहना सारे उपनिवेशके लिए हितकारी हुआ है। और उनके खिलाफ कानून बनाना अगर अन्यायपूर्ण न हुआ, तो भी अबुद्धिमत्तापूर्ण तो होगा ही!* (अक्षरोंमें फर्क मैंने किया है।)

*　　　*　　　*

८. . . . उनमें लगभग सभी मुसलमान हैं। शराब या तो वे पीते ही नहीं, या मर्यादाके साथ पीते हैं। वे स्वभावसे कमखर्च और कानूनको माननेवाले हैं।

आयोगके सामने गवाही देनेवाले ७२ यूरोपीय गवाहोंमें से उपनिवेशमें भारतीयोंकी उपस्थितिके परिणामोंकी चर्चा करनेवाले प्रत्येकने कहा है कि उपनिवेशकी भलाईके लिए वे अनिवार्य हैं।

मैंने जरा विस्तृत उद्धरण दिये हैं। इससे मेरा यह तर्क करनेका इरादा नहीं है कि भारतीयोंको मताधिकार दिया जाये (वह तो उन्हें प्राप्त ही है)। इसका मंशा इस आरोपका कि वे जबरन उपनिवेशमें घुस आये हैं, और इस वक्तव्यका कि उपनिवेश की समृद्धिसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, खण्डन करना है। हाथ कंगनको आरसी क्या? सबसे अच्छा प्रमाण तो यह है कि भारतीयोंके बारेमें कुछ भी क्यों न कहा जा रहा हो, उनकी माँग फिर भी की जाती है। संरक्षकका विभाग भारतीय मजदूरोंकी माँग पूरी करनेमें समर्थ नहीं हो रहा है।

१८९५की वार्षिक रिपोर्टके पृष्ठ ५ पर संरक्षकने कहा है:

गत वर्ष जितने आदमियोंकी माँग की गई थी, उनमें से, सालके आखिरमें, १,३३० आदमी देनेको बच गये थे। १८९५ में इस संख्याके अलावा २,७६० आदमियोंकी माँग और की गई। इस प्रकार कुल संख्या ४,०९० हो गई। इनमें से रिपोर्टके वर्षमें २,०३२ आदमी आये (१,०४९ मद्राससे और ९८३ कलकत्तेसे।) इस तरह पिछले वर्षकी माँग पूरी करनेके लिए २,०५८ (जिनमें उन १२ आदमियोंको कम कर दीजिए, जिनकी माँग रद हो गई) आदमी आने बाकी रहे।

अगर भारतीय सचमुच ही उपनिवेशको हानि पहुँचानेवाले हैं, तो सबसे अच्छा और सबसे न्यायपूर्ण तरीका यह होगा कि भविष्यमें भारतीय मजदूरोंको लाना बन्द कर दिया जाये। इससे, उचित समय आनेपर, वर्तमान भारतीय आबादी भी उपनिवेश को ज्यादा कष्ट पहुँचाना बन्द कर देगी। जिन हालतोंका मतलब गुलामी होता हो उनमें उन्हें लाना न्यायसंगत नहीं है।

तो फिर, अगर इस अपीलसे भारतीय मताधिकारके खिलाफ उठाई गई विभिन्न आपत्तियोंका जरा भी सन्तोषजनक उत्तर मिला हो; अगर पाठकोंको यह दावा स्वीकार हो कि भारतीयोंका मताधिकार-सम्बन्धी आन्दोलन उस सम्भावित अवदशाका विरोध-मात्र है, जिसमें उनके विरुद्ध चलाया जा रहा आन्दोलन उन्हें डाल देना चाहता है। और उसका उद्देश्य राजनीतिक सत्ता अथवा प्रभाव प्राप्त करना नहीं है; तो मेरा नम्र खयाल है कि मैं पाठकोंको भारतीयोंके मताधिकारका घोर विरोध करनेका निश्चय करनेके पहले रुकने और सोचनेको कहूँ तो उचित ही होगा। यद्यपि अखबारोंने 'ब्रिटिश प्रजा' की दुहाईको दीवानापन और खब्त कहकर रद कर दिया है, मुझे उसी कल्पनाका सहारा लेना होगा। उसके बिना मताधिकारका कोई आन्दोलन होता ही नहीं। उसके बिना शायद सरकारसे सहायता-प्राप्त कोई प्रवास भी नहीं होता। यदि भारतीय ब्रिटिश प्रजा न होते, तो बहुत सम्भव है, वे नेटालमें होते ही नहीं। इसलिए मैं दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक अंग्रेजसे अनुरोध करता हूँ कि 'ब्रिटिश प्रजा' के विचारको तुच्छ चीज समझकर कोई यों ही रद न कर दे। १८५८ की घोषणा सम्राज्ञीका एक कानून है, जिसके बारेमें यह माना जाना चाहिए कि सम्राज्ञीकी प्रजाने उसे स्वीकार किया है। क्योंकि, वह घोषणा मनमाने तौरसे नहीं कर दी गई थी, बल्कि उनके तत्कालीन सलाहकारोंकी सलाहके अनुसार की गई थी। और उन सलाहकारोंमें मत-दाताओंने अपने मतोंके द्वारा अपना पूरा विश्वास स्थापित किया था। भारत इंग्लैंडके आधीन है, और इंग्लैंड उसे खोना नहीं चाहता। भारतीयोंके साथ अंग्रेजोंका एक-एक व्यवहार भारतीयों तथा अंग्रेजोंके बीच आखिरी रिश्ता गढ़नेमें कुछ-न-कुछ असर किये बिना नहीं रह सकता। कुछ हो, यह तो सत्य है ही कि भारतीय दक्षिण आफ्रिकामें इसलिए हैं कि वे ब्रिटिश प्रजा हैं। कोई चाहे या न चाहे, भारतीयोंकी उपस्थिति तो बरदाश्त करनी ही है। फिर क्या ज्यादा अच्छा यह न होगा कि दोनों समाजोंके बीच कड़वाहट पैदा करनेवाला कोई काम न किया जाये? जल्दबाजीमें निष्कर्ष निकालने से, या निराधार मान्यताओंकी बिनापर निष्कर्षपर पहुँचनेसे यह बिलकुल अशक्य नहीं कि भारतीयोंके प्रति बिना इरादेके अन्याय हो जाये।

मेरा निवेदन है कि सभी विचारशील लोगोंके मनमें प्रश्न यह नहीं होना चाहिए कि भारतीयोंको उपनिवेशसे कैसे खदेड़ दिया जाये, बल्कि यह होना चाहिए कि दोनों समाजोंके बीच सन्तोषजनक सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाये। भारतीयोंके विरुद्ध अमैत्री और द्वेषका रुख रखनेका परिणाम, मेरा निवेदन है, अत्यन्त स्वार्थी दृष्टिकोणसे भी भला नहीं हो सकता। हाँ, अगर अपने पड़ोसीके प्रति अपने मनमें अमैत्रीका भाव पैदा करनेमें ही कोई सुख हो तो बात दूसरी है। ऐसी नीति ब्रिटिश संविधान और ब्रिटेनवालोंकी न्याय तथा औचित्य-बुद्धिके प्रतिकूल है। सबके ऊपर, भारतीय मता-धिकारके विरोधी जिस ईसाइयतकी भावनाका दावा करते हैं, उसकी वह द्रोही है।

अखबारों, सारे दक्षिण आफ्रिकाके लोकपरायण व्यक्तियों और धर्मगुरुओंसे मैं विशेष रूपसे अपील करता हूँ। लोकमत आपके हाथोंमें है। आप ही उसको ढालते और उसका मार्गदर्शन करते हैं। यह आपके सोचनेकी बात है कि क्या जिस नीतिका

अबतक पालन किया गया है उसे आगे जारी रखना सही और योग्य है? अंग्रेजोंकी हैसियतसे आपका कर्तव्य दोनों समाजोंमें फूट डालना नहीं, उन्हें मिलाकर एक करना ही हो सकता है।

भारतीयोंमें अनेक दोष हैं। दोनों समाजोंके बीच वर्तमान असन्तोषजनक भावनाओं की जिम्मेदारी कुछ हदतक निस्सन्देह स्वयं उनपर ही है। मेरा उद्देश्य आपको यह विश्वास कराना है कि सारा-का-सारा दोष एक ही पक्षका नहीं है।

मैंने अक्सर अखबारोंमें पढ़ा है और सुना है कि भारतीयोंके लिए शिकायतकी कोई बात ही नहीं है। मेरा निवेदन है कि न तो आप और न यहाँके भारतीय ही निष्पक्ष निर्णय करनेमें समर्थ हैं। इसलिए मैं आपका ध्यान बिलकुल बाहरी लोक-मत — इंग्लैंड और भारतके पत्रोंकी ओर आकृष्ट करता हूँ। वे लगभग एकमतसे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि भारतीयोंके पास शिकायत करनेके उचित कारण हैं। और इस सम्बन्धमें, मैं अक्सर दुहराये जानेवाले इस कथनको माननेसे इनकार करता हूँ कि बाहरी देशोंके मतका आधार दक्षिण आफ्रिकासे भारतीयों द्वारा भेजी जाने वाली अतिरंजित रिपोर्टें हैं। इंग्लैंड और भारतको भेजी जानेवाली रिपोर्टोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान रखनेका दावा मुझे है। और मुझे कहनेमें कोई संकोच नहीं कि उन रिपोर्टोंमें करीब-करीब हमेशा ही कम बतानेकी भूल की गई है। ऐसा एक भी वक्तव्य नहीं दिया गया, जिसे अकाट्य प्रमाणोंसे साबित न किया जा सकता हो। परन्तु सबसे अधिक उल्लेखनीय बात तो यह है कि जिन तथ्योंको स्वीकार कर लिया गया है, उनके बारेमें कोई झगड़ा है ही नहीं। उन्हीं तथ्योंके आधारपर बना बाहरी मत यह है कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता। मैं एक उग्र विचारोंके पत्र 'स्टार' से केवल एक उद्धरण दूँगा। दुनियाके सबसे गम्भीर पत्र 'टाइम्स' का मत तो दक्षिण आफ्रिकाके हर व्यक्तिको मालूम है।

२१ अक्तूबर, १८९५ के 'स्टार' ने श्री चेम्बरलेनसे मिलनेवाले शिष्टमण्डलके सम्बन्धमें विचार प्रकट करते हुए कहा है:

> **ब्रिटिश भारतीय प्रजाजन जिस घृणित उत्पीड़नके शिकार बनाये जा रहे हैं, उसपर प्रकाश डालनेके लिए ये विवरण काफी हैं। नया भारतीय प्रवासी कानून संशोधन विधेयक, जिसका मंशा भारतीयोंको करीब-करीब गुलामीकी हालतमें गिरा देना है, इसका एक और उदाहरण है। यह चीज एक भयानक अन्याय, ब्रिटिश प्रजाका अपमान, अपने रचयिताओंके लिए शर्मका विषय और हमपर एक कलंक है। प्रत्येक अंग्रेजका कर्तव्य है कि वह दक्षिण आफ्रिकी व्यापारियोंके लोभको ऐसे लोगोंपर तीखा अन्याय बरपा करने न दे, जिनको घोषणा और संविधि दोनोंके द्वारा समान रूपसे कानूनके सामने हमारी बराबरी का दर्जा दिया गया है।**

अगर मैं आपको सिर्फ यह विश्वास दिला सकूँ कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके प्रति 'बड़ीसे-बड़ी दयालुता' नहीं दिखाई गई और वर्तमान हालतोंका दोष यूरोपीयोंपर

भी है, तो पूरे भारतीय प्रश्नपर ठंडे दिलसे विचार करनेका मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। और तब शायद यह प्रश्न ब्रिटिश सरकारके हस्तक्षेपके बिना ही ऐसे ढंगसे तय हो जायेगा जो दोनों पक्षोंके लिए सन्तोषजनक हो। धर्मगुरुओंको इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर चुप क्यों रहना चाहिए? यह महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि सारे दक्षिण आफ्रिकाके भविष्य पर इसका असर होनेवाला है। वे शुद्ध राजनीतिमें तो भाग लेते ही हैं। भारतीयोंका मताधिकार छीननेकी माँग करनेके लिए जो सभाएँ होती हैं उनमें भी वे जाते ही हैं। फिर यह प्रश्न तो केवल राजनीतिक ही नहीं है। क्या वे एक सारी-की-सारी जातिको तर्कहीन द्वेषभावके कारण नीचे गिराये जाते तथा अपमानित किये जाते चुपचाप देखते बैठे रहेंगे? क्या ईसाका ईसाई धर्म उन्हें इस तरहकी उपेक्षाकी अनुमति देता है?

मैं फिर दुहराता हूँ कि भारतीय राजनीतिक सत्ताकी इच्छा नहीं करते। वे नीचे ढकेले जानेसे और उन अनेक अन्य नतीजों और कानूनोंसे डरते और उनका विरोध करते हैं, जो मताधिकारके छीने जानेसे निकलेंगे, और उसपर आधारित किये जायेंगे।

अन्तमें, मैं उन लोगोंका हृदयसे ऋण मानूँगा, जो इसे पढ़ेंगे और इसकी विषय सामग्रीपर अपने विचार व्यक्त करेंगे। अनेक यूरोपीयोंने खानगी तौरपर भारतीयोंके प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। भारतीय-मताधिकारके सम्बन्धमें उपनिवेशमें की गई विभिन्न सभाओंमें जो सर्वग्रासी प्रस्ताव पास किये गये हैं और जो भाषण दिये गये हैं उनकी कटु ध्वनिको भी उन्होंने जोरोंसे नापसन्द किया है। अगर ये सज्जन सामने आकर अपने विश्वास व्यक्त करनेका साहस दिखायें तो उन्हें चौहरा पुरस्कार मिलेगा। वे उपनिवेशके ४०,००० भारतीयोंकी — सचमुच तो सारे भारतकी — कृतज्ञता अर्जित कर लेंगे; यूरोपीयोंके दिलसे यह खयाल निकालकर कि भारतीय लोग उपनिवेशके लिए अभिशाप-स्वरूप हैं, उपनिवेशकी सच्ची सेवा करेंगे; वे अनावश्यक उत्पीड़नसे, जो वे जानते हैं कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें फैला हुआ है, एक प्राचीन जातिके एक भागकी रक्षा करके, या रक्षामें मदद करके, मानव-जातिकी सेवा करेंगे; और अन्तमें, किन्तु महत्त्वमें कम नहीं, उदात्ततम अंग्रेजोंके साथ मिलकर ऐसी कड़ियाँ गढ़नेवाले बनेंगे, जो इंग्लैंड तथा भारतको प्रेम तथा शान्तिके बन्धनमें बाँधेंगी। मेरा नम्र निवेदन है कि इसके लिए अग्रणियोंका जो थोड़ा-बहुत उपहास किया जायेगा, वह इसके महत्त्वकी दृष्टिसे सहने योग्य है। दो समाजोंको परस्पर फोड़ देना सरल है, परन्तु उन्हें प्रेमके 'रेशमी धागे' से बाँधकर एक करना उतना ही कठिन है। परन्तु ऐसी प्रत्येक वस्तुके लिए जो प्राप्त करने योग्य होती है, भारी मात्रामें कष्ट और परेशानी सहना भी अपेक्षित होता है।

इस विषयमें नेटाल भारतीय कांग्रेसका नाम लिया गया है और उसकी बहुत गलत तसवीर खींची गई है। एक पृथक् पुस्तिकामें[1] उसके ध्येय और कार्य-पद्धतिका पूरी तरह विवेचन किया जायेगा।

१. उपलब्ध नहीं।

जब यह पत्र लिखा जा रहा था, श्री मेडनने बेलेयरमें एक भाषण दिया, और उस सभामें एक विलक्षण प्रस्ताव पास किया गया। उक्त माननीय सज्जनके प्रति अधिकसे-अधिक सम्मान रखते हुए, मैं उनके इस कथनपर आपत्ति करता हूँ कि भारतीय सदा गुलामीकी हालतमें रहे हैं, और इसलिए स्वशासनके लिए अयोग्य हैं। यद्यपि उन्होंने अपने कथनके समर्थनमें इतिहासकी सहायता ली है, मेरा दावा है कि इतिहास उसे साबित करनेमें असमर्थ है। पहली बात तो यह है कि भारतीय इतिहास सिकन्दर महानके आक्रमणकी तारीखोंसे शुरू नहीं होता। फिर भी, मैं यह कहनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ कि उस समयका भारत आजके यूरोपकी तुलनामें बहुत अच्छा उतरेगा। मैं उन्हें हंटर-कृत 'इंडियन एम्पायर', पृष्ठ १६९-७० पर यूनानियों द्वारा किया हुआ भारतका वर्णन पढ़नेकी सलाह देता हूँ। उसका कुछ अंश मेरी "खुली चिट्ठी"में उद्धृत किया गया है। और फिर, उस तारीखके पहलेके भारतका क्या? इतिहास बताता है कि आर्योंका घर भारत नहीं था, वे मध्य एशियासे आये थे और उनकी एक शाखा भारतमें आकर बस गई, दूसरी शाखाएँ यूरोपको चली गईं। और उस समयका शासन इस शब्दके सच्चेसे-सच्चे अर्थमें सभ्य शासन था। सम्पूर्ण आर्य साहित्य उसी समय निर्मित हुआ था। सिकन्दरके समयका भारत तो पतनोन्मुख था। जब दूसरे राष्ट्रोंका निर्माण भी शायद ही हुआ था, उस समय भारत उन्नतिके शिखरपर था। और वर्तमान युगके भारतीय उसी जातिके वंशज हैं। इसलिए यह कहना कि भारतीय तो सदा गुलामीमें रहे हैं, सही नहीं है। बेशक, भारत अजेय नहीं रहा और भारतीयोंके मताधिकारको छीननेका यही कारण हो तो मुझे इसके अलावा कुछ नहीं कहना है कि दुर्भाग्यवश प्रत्येक राष्ट्र इस विषयमें ओछा पाया जायेगा। यह सच है कि इंग्लैंड भारतपर अपना 'राजदण्ड चलाता' है। भारतीय उसके लिए लज्जित नहीं हैं। वे ब्रिटिश ताजके अधीन रहनेमें गौरव अनुभव करते हैं, क्योंकि उनका खयाल है कि इंग्लैंड भारतका बन्धन-मोचक सिद्ध होगा। सब आश्चर्योंका आश्चर्य तो यह दिखाई देता है कि भारतीय जनता, 'बाइबिल' के कृपापात्र राष्ट्रके[1] समान, शताब्दियोंके अत्याचारों और पराधीनताके बावजूद, अब भी अदमनीय बनी है। और अनेक ब्रिटिश लेखकोंका खयाल है कि भारत अपनी रजामन्दीसे इंग्लैंडकी आधीनतामें है।

प्रोफेसर सीली कहते हैं:

> **भारतके राष्ट्रोंको एक ऐसी सेनासे जीता गया है, जिसका औसतन पाँचवाँ भाग ही अंग्रेजोंका था। कम्पनीके शुरू-शुरूके युद्धोंमें, जिनसे उसकी सत्ता निर्णायक रूपमें स्थापित हुई — अरकाटके घेरेमें, प्लासीमें, बक्सरमें — कम्पनीकी ओरसे लड़नेवाले यूरोपीयोंकी अपेक्षा 'सिपाही' ही ज्यादा थे। और इसके आगे भी हम देख लें कि भारतीयोंके अच्छा युद्ध न करने या यूरोपीयोंके सारा युद्ध-भार अपने ऊपर ले लेनेकी बातें भी हमें सुनाई नहीं पड़तीं। . . . परन्तु, अगर एक बार यह मान लिया जाये कि 'सिपाहियों' की संख्या अंग्रेजोंकी संख्यासे हमेशा ज्यादा रही और सैनिक दक्षतामें भी वे अंग्रेजोंके बराबर**

१. यहूदी।

रहे, तो फिर यह सारा-का-सारा सिद्धान्त ढह जाता है कि हमारी सफलताका कारण हमारी स्वाभाविक वीरता है, जो तुलनामें बहुत अधिक है — डिग्बी: 'इंडिया फॉर द इंडियन्स एंड फॉर इंग्लैंड'।

खबर है कि उन माननीय सज्जनने[1] यह भी कहा है:

> **हम (उपनिवेशवासियों) को नेटालमें कुछ निश्चित परिस्थितियोंमें उत्तरदायी शासनका अधिकार दिया गया था। आपने हमारे विधेयकोंको अनुमति देनेसे इनकार कर दिया। इससे वे परिस्थितियाँ बिलकुल बदल गई हैं। आपने एक ऐसी खतरनाक स्थिति पैदा कर दी है कि जो अधिकार हमें सौंपा गया था वह आपको वापस कर देना हमारा स्पष्ट कर्तव्य हो गया है।**

सत्यके यह सब कितना प्रतिकूल है! इसके पीछे यह मान्यता है कि ब्रिटिश सरकार अब उपनिवेशके भारतीयोंको जबरन मताधिकार दिला देनेका प्रयत्न कर रही है। परन्तु सत्य तो यह है कि उत्तरदायी सरकार स्वयं उन परिस्थितियोंमें भारी परिवर्तन करनेका प्रयत्न कर रही है, जो सत्ता हस्तान्तरित होनेके समय थी। फिर अगर डाउनिंग स्ट्रीट-स्थित सरकार यह कहे तो क्या न्याय न होगा कि "हमने आपको कुछ निश्चित परिस्थितियोंमें उत्तरदायी शासन सौंपा था। वे परिस्थितियाँ अब बिलकुल बदल गई हैं। यह आपके गत वर्षके विधेयकसे हुआ है। आपने सारे ब्रिटिश संविधान और ब्रिटिश न्यायभावनाके लिए इतनी खतरनाक हालत पैदा कर दी है कि हमारा साफ कर्तव्य हो गया है कि हम आपको उन मूल तत्त्वोंके साथ खिलवाड़ न करने दें, जिनपर ब्रिटिश संविधानकी नींव रखी गई है?"

जब उत्तरदायी शासन मंजूर किया गया उस समय, मेरा निवेदन है, श्री मेडन की आपत्ति सही हो सकती थी। यह प्रश्न दूसरा है कि अगर यूरोपीय उपनिवेशोंने भारतीयोंका मताधिकार छीननेकी जिद की होती तो उत्तरदायी शासन कभी दिया भी जाता या नहीं।[2]

मो० क० गांधी

टी० एल० कलिंग्वर्थ, मुद्रक, ४०, फील्ड स्ट्रीट, डर्बन द्वारा १८९५ में छापी गई अंग्रेजी पुस्तिकासे।

१. श्री मेडन, देखिए पृष्ठ २९९।

२. इस पुस्तिकाके बारेमें समाचारपत्रोंकी प्रतिक्रियाके लिए, देखिए *अर्ली फेज*, पृष्ठ ५९२-६।

८०. नेटालमें अन्नाहार

नेटालमें, या यों कहिए कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें, इस कार्यके लिए बड़े कठिन प्रयत्नकी जरूरत है। फिर भी, ऐसे स्थान बहुत नहीं हैं, जहाँ अन्नाहारका अवलम्बन नेटालकी अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यकारी, मितव्ययितापूर्ण या व्यावहारिक हो। बेशक फिलहाल अन्नाहार यहाँ कम खर्चमें नहीं हो पाता। निश्चय ही अन्नाहारी बने रहनेके लिए भारी आत्मनिग्रहकी आवश्यकता होती है। फिर, नये सिरेसे अन्नाहारी बनना तो लगभग असम्भव ही मालूम होता है। मैंने इस प्रश्नपर बीसियों लोगोंसे चर्चा की है और सबने मुझसे यही प्रश्न किया है कि "लंदनमें तो सब ठीक है; वहाँ बीसियों अन्नाहारी जलपान-गृह मौजूद हैं। परन्तु दक्षिण आफ्रिकामें बहुत कम पौष्टिक अन्न-आहार प्राप्त होता है। यहाँ आप अन्नाहारी कैसे बन सकते या रह सकते हैं?" दक्षिण आफ्रिकाकी आबहवा समशीतोष्ण है और यहाँ फल-शाकादिके अक्षय साधन हैं। इसलिए सोचा जा सकता है कि यहाँ ऐसा उत्तर पाना सम्भव नहीं है। फिर भी यह उत्तर है पूर्णतः उचित। यहाँ अच्छेसे अच्छे होटलमें भी दुपहरके भोजनके समय मामूली तौरपर सिर्फ आलूका शाक मिलता है, सो भी बुरी तरहसे पका हुआ। ब्यालूके समय शायद दो शाक मिल जाते हैं और उनमें मुश्किलसे ही कभी कोई फेरफार होता है। दक्षिण आफ्रिकाके इस उद्यान-उपनिवेशमें तो मौसममें फल कौड़ी-मोल मिल सकते हैं। इसलिए होटलोंमें बहुत कम फल मिलना कलंककी बातसे तनिक भी कम नहीं है। दालें तो अपने अभावके कारण ही याद आती हैं। एक सज्जनने मुझे लिखकर पूछा था कि क्या डर्बनमें दालें मिल सकती हैं? चार्ल्सटाउन और आसपासके कस्बोंमें ये उन्हें नहीं पा सके। कवची मेवे तो सिर्फ क्रिसमसके दिनोंमें मिल सकते हैं।

यह है वर्तमान परिस्थिति। इसलिए अगर मैं लगभग ९ महीनोंके विज्ञापन और व्यक्तिगत तौर पर समझाने-बुझानेके बावजूद विवरणमें बहुत कम प्रत्यक्ष प्रगति ही दिखा सकूँ तो अन्नाहारी मित्रोंको आश्चर्य नहीं होना चाहिए। अन्नाहारके प्रचारमें सिर्फ ऊपर बताई हुई कठिनाइयाँ ही नहीं हैं। यहाँके लोग स्वर्णके अलावा दूसरी बातोंके बारेमें बहुत कम सोचते हैं। यह स्वर्ण-ज्वर इस प्रदेशमें इतना संक्रामक है कि इसने आध्यात्मिक गुरुओं-समेत छोटे और बड़े सभी लोगोंको ग्रस लिया है। जीवनके उच्चतर कार्योंके लिए उनके पास समय नहीं है। इस जीवनके परेकी सोचनेके लिए उन्हें अवकाश नहीं मिलता।

'वेजिटेरियन' की प्रतियाँ हर सप्ताह नियमपूर्वक अधिकतर पुस्तकालयोंको भेज दी जाती हैं। कभी-कभी समाचारपत्रोंमें विज्ञापन भी दिये जाते हैं। अन्नाहारके तत्त्वोंका परिचय देनेके प्रत्येक अवसरका उपयोग किया जाता है। अबतक फलस्वरूप कुछ सहानुभूतिपूर्ण पत्र-व्यवहार और प्रश्न ही प्राप्त हो सके हैं। कुछ पुस्तकें भी बिकी हैं। उनके अलावा बहुत-सी मुफ्त बाँटी गई हैं। पत्र-व्यवहार और बातचीतमें दिलचस्प बातें सामने आती रही हैं। एक महिलाने 'एसॉटरिक क्रिश्चियानिटी' के विषयमें मेरे

साथ पत्र-व्यवहार किया था। जब उसे मालूम हुआ कि इस पंथका अन्नाहारके तत्त्वोंसे कुछ सम्बन्ध है तो वह नाराज हो गई। उसकी चिढ़ इस हदतक पहुँची कि उसे जो पुस्तकें पढ़नेको दी गई थीं उन्हें उसने बिना पढ़े ही वापस कर दिया। एक सज्जन मानते हैं कि आदमीका किसी प्राणीको मारना या कत्ल करना लज्जाकी बात है। वे 'अपनी जान बचानेके लिए भी किसीकी हत्या करनेको तैयार नहीं' हैं। परन्तु अपने लिए पकाया गया मांस खानेमें उन्हें कोई पसोपेश नहीं होता।

दक्षिण आफ्रिकामें और खासकर नेटालमें अन्नाहारकी दृष्टिसे इतना कुछ करना सम्भव है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कमी सिर्फ अन्नाहारके प्रचारकोंकी है। यहाँकी मिट्टी इतनी उपजाऊ है कि उसमें लगभग सभी कुछ पैदा हो सकता है। बड़े-बड़े भूखण्ड पड़े हुए सिर्फ कुशल हाथोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वे उन्हें सोनेकी सच्ची खानोंमें बदल दें। अगर थोड़े-से लोगोंको जोहानिसबर्गके सोनेकी ओरसे ध्यान हटाकर कृषिके अधिक शान्तिपूर्ण तरीकेसे धन कमानेकी ओर ध्यान देनेके लिए और अपने रंग-द्वेषसे ऊपर उठनेके लिए राजी किया जा सके, तो नेटालमें निस्सन्देह हर प्रकारके शाक और फल उपजाये जा सकते हैं। दक्षिण आफ्रिकाकी आबहवा ऐसी है कि यूरोपीय अकेले उतनी अच्छी तरह जमीनकी जुताई कभी नहीं कर सकेंगे, जितनी अच्छी तरहसे उसे जोतना सम्भव है। भारतीय उनकी मददके लिए मौजूद है, परन्तु रंग-द्वेषके कारण यूरोपीय उनसे लाभ उठाना नहीं चाहते। और यह रंग-भेद दक्षिण आफ्रिकामें बहुत प्रबल है। नेटालकी समृद्धि भारतीय मजदूरोंपर निर्भर करती है, यह बात मानी हुई है। परन्तु यहाँ भी रंग-द्वेष बहुत प्रबल है। मेरे पास एक बाग-मालिकका पत्र आया है। उसकी बड़ी इच्छा है कि भारतीय मजदूरोंको कामपर लगा लें; परन्तु वे इस भेदभावके कारण लाचार हैं। इसलिए अन्नाहारियोंको तो देशसेवाके कामका अवसर प्राप्त है। दक्षिण आफ्रिकामें दिन-प्रतिदिन गोरे ब्रिटिश प्रजाजनों और भारतीयोंका सम्पर्क बढ़ता जा रहा है। उच्चतम अंग्रेज और भारतीय राजनीतिज्ञोंका मत है कि ब्रिटेन और भारतको प्रेमकी जंजीरसे ऐसा बाँधा जा सकता है कि वे फिर कभी अलग न हो सकें। अध्यात्मवादियोंको ऐसी एकतासे अच्छे परिणामोंकी आशा है। परन्तु दक्षिण आफ्रिकी गोरे ब्रिटिश प्रजाजन ऐसी एकतामें बाधा डालने और सम्भव हो तो उसे रोकनेका शक्तिभर प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसी हालतमें, अगर कुछ अन्नाहारी आगे बढ़ें तो वे ऐसे संकटपर काबू पा सकते हैं।

मैं एक सुझाव देकर नेटालके कामका यह संक्षिप्त सिंहावलोकन समाप्त कर दूँगा। अगर कुछ साधन-सम्पन्न और अन्नाहार सम्बन्धी साहित्यसे सुपरिचित लोग संसारके भिन्न-भिन्न भागोंकी यात्रा करें, विभिन्न देशोंके साधनोंकी जाँच-पड़ताल करें, अन्नाहारके दृष्टिकोणसे उनकी सम्भावनाओंका लेखाजोखा लें और जिन देशोंको अन्नाहारके प्रचारके लिए तथा आर्थिक दृष्टिसे बसनेके लिए उपयुक्त समझें, उनमें निवास करनेके लिए अन्नाहारियोंको आमन्त्रित करें, तो अन्नाहारके प्रचारका बहुत कार्य किया जा सकता है। गरीब अन्नाहारियोंके लिए उन्नतिके नये स्थान पाये जा सकते हैं और संसारके विभिन्न भागोंमें अन्नाहारियोंके सच्चे केन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं।

परन्तु, यह सब करनेके लिए अन्नाहारके तत्त्वको धर्म मानना होगा, केवल आरोग्यकी सुविधा नहीं। उसके मंचको बहुत ऊँचा उठाना होगा।

[अंग्रेजीसे]

वेजिटेरियन, २१-१२-१८९५

८१. पत्र : 'नेटाल मर्क्युरी' को

डर्बन
३ फरवरी, १८९६

सम्पादक
'नेटाल मर्क्युरी'

महोदय,

मैं आहार-सुधारमें दिलचस्पी रखता हूँ। इस हैसियतसे मैं आपको आपके शनि-वारके "चिकित्साका नया विज्ञान" शीर्षक अग्रलेखपर बधाई देना चाहता हूँ। उसमें आपने प्राकृतिक आहार, अर्थात् अन्नाहारपर खूब ही जोर दिया है। इस 'विलास-प्रिय' युगमें कोई भी आदमी खड़ा होकर किसी भी सिद्धान्तका बौद्धिक तरीकेसे समर्थन करने लगता है, परन्तु उसके अनुसार काम करनेका तो उसका कोई इरादा नहीं होता। अगर इस युगकी यह दुर्भाग्यपूर्ण खासियत न होती तो हर आदमी अन्न-आहारी बन जाता। क्योंकि, जब सर हेनरी टॉमसन कहते हैं कि मांसाहारको जीवन-पोषणके लिए आवश्यक समझना एक मूर्खतापूर्ण बात है, और जब चोटीके शरीरशास्त्र-वेत्ता घोषित करते हैं कि मनुष्यका प्राकृतिक आहार फल है, और जब हमारे सामने बुद्ध, पाइथागोरस, प्लेटो, रे, डैनियल, वेज्ले, हॉवार्ड, शेली, सर आइजक पिटमैन, एडीसन, सर डब्ल्यू० बी० रिचर्डसन, आदि अनेकानेक महान व्यक्तियोंके अन्नाहारी होनेके उदाहरण मौजूद हैं, तब स्थिति उलटी क्यों होनी चाहिए? ईसाई अन्नाहारियों का दावा है कि ईसा भी अन्नाहारी थे और इस विचारका खण्डन करनेवाली कोई बात दिखलाई नहीं पड़ती। सिर्फ इतना उल्लेख मिलता है कि पुनरुत्थानके बाद उन्होंने भुनी हुई मछली खाई थी। दक्षिण आफ्रिकाके सबसे सफल मिशनरी (ट्रैपिस्ट) अन्नाहारी हैं। प्रत्येक दृष्टिसे देखनेपर अन्नाहारको मांसाहारकी अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ साबित किया जा चुका है। अध्यात्मवादियोंका मत है, और शायद आम प्रोटेस्टेंट धर्मशिक्षकों को छोड़कर शेष सारे धर्मोंके आचार्योंके व्यवहारसे मालूम होता है कि मनुष्यकी आध्यात्मिक शक्तिको जितनी हानि अविवेकमय मांसाहारसे पहुँचती है उतनी किसी दूसरी चीजसे नहीं पहुँचती। अत्यन्त निष्ठावान अन्नाहारियोंका कहना है कि आधुनिक युगकी ईश्वर-विषयक संशयशीलता, भौतिकवाद, और धार्मिक उदासीनताका कारण बहुत ज्यादा मांसाहार तथा मद्यपान है, और इसके परिणामस्वरूप मनुष्यकी आध्यात्मिक शक्ति अंशतः या पूर्णतः नष्ट हो गई है। मनुष्यकी बौद्धिक शक्तिके प्रशंसक अन्नाहारी

लोग संसारके बड़ेसे-बड़े बुद्धिशालियोंके अनेक उदाहरण देकर बताते हैं कि बौद्धिक जीवनके लिए यदि अन्नाहार मांसाहारकी अपेक्षा अधिक अच्छा नहीं तो अधिक पर्याप्त अवश्य है। उनका कहना है कि दुनियाके सभी बड़ेसे-बड़े प्रतिभाशाली लोग खास तौरसे अपनी श्रेष्ठ पुस्तकें लिखते समय तो मांस-मदिराका संयम करते ही रहे हैं। अन्नाहारियोंकी पत्र-पत्रिकाओंसे मालूम होता है कि जहाँ तमाम दवाइयाँ तथा गोमांस और उसके काढ़े बिलकुल व्यर्थ हो गये, वहाँ अन्नाहार शानके साथ सफल हुआ है। हृष्ट-पुष्ट अन्नाहारी यह बताकर अपने आहारकी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं कि दुनियाके किसान करीब-करीब अन्नाहारी हैं, और सबसे मजबूत और उपयोगी जानवर — घोड़ा शाकाहारी है, जब कि सबसे हिंस्र और बिलकुल निरुपयोगी जानवर — सिंह मांसाहारी है। अन्नाहारी नीतिके समर्थक इस बातपर अफसोस करते हैं कि स्वार्थी मनुष्य अपनी अति प्रबल और विकारी भूख मिटानेके लिए मनुष्य जातिके एक समुदायपर कसाईका पेशा लादते हैं, जब कि वे स्वयं ऐसा पेशा करनेसे सिहर उठेंगे। अन्नाहारी नीतिवादी इसके अलावा, प्रेमके साथ हमसे यह याद रखनेकी विनय करते हैं कि मांसाहार और शराबके बिना ही मनोविकारोंको रोकना और शैतानके पंजेसे बचे रहना हमारे लिए काफी कठिन है, इसलिए हम मांस और मदिराका आश्रय लेकर अपनी इस कठिनाईको और न बढ़ा लें। साधारणतः मांस और मदिरा तो साथ-साथ ही चलते हैं, क्योंकि उनका दावा है कि अन्नाहार, जिसमें रसीले फलोंका सबसे महत्त्व-पूर्ण स्थान होता है, शराबखोरीका सबसे सफल इलाज है, मांसाहारसे शराबकी आदत पड़ती या बढ़ती है। उनका तर्क यह भी है कि मांसाहार न केवल अनावश्यक है, बल्कि शरीरके लिए हानिकर भी है। इसलिए उसकी लत अनैतिक और पापमय भी है। उसके कारण निर्दोष पशुओंपर अनावश्यक क्रूरता बरतना और उन्हें पीड़ा पहुँचाना आवश्यक होता है। अन्तमें अन्नाहारी अर्थशास्त्री प्रतिवादकी आशंकाके बिना दावा करते हैं कि अन्नाहार सबसे सस्ता आहार है और उसे आम तौरपर अख्तियार कर लिया जाये तो आज भौतिकवादकी द्रुत प्रगति और थोड़ेसे लोगोंके पास भारी सम्पत्तिके संग्रहके साथ-साथ सामान्य लोगोंमें दरिद्रताकी जो द्रुत गतिसे वृद्धि हो रही है, उसका अन्त करनेमें नहीं तो उसे घटा देनेमें निश्चय ही बहुत मदद मिलेगी। जहाँतक मुझे याद है, डाक्टर लुई कूनेने अन्नाहारकी आवश्यकतापर केवल शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे जोर दिया है। उन्होंने उन नौसिखियोंको कोई ताकीदें नहीं कीं, जिन्हें तरह-तरहके अन्नाहारमें से अपने उपयुक्त वस्तुएँ चुन लेना और उन्हें ठीक ढंगसे पकाना हमेशा बहुत कठिन मालूम होता है। मेरे पास अन्नाहार पाक-विज्ञान सम्बन्धी चुनी हुई पुस्तकें हैं, जिनकी कीमत एक पेंससे लेकर एक शिलिंगतक है। कुछ पुस्तकें इस विषयके विभिन्न पहलुओंकी विवेचना भी करती है। इस विषयकी सस्ती पुस्तकें मुफ्त बाँटी जाती हैं। परन्तु अगर आपके कोई पाठक चिकित्साकी इस नई प्रणालीका दूरसे कौतुक करना नहीं, बल्कि उसपर अमल करना चाहते हों तो, अन्नाहारसे सम्बन्धित, जो पुस्तकें मेरे पास हैं वे मैं खुशीसे उन्हें दे सकूँगा। जो लोग 'बाइबिल' में विश्वास रखते हैं उनके विचारके लिए मैं निम्नलिखित उद्धरण पेश करता हूँ। 'पतन' के पहले हम अन्नाहारी थे :

> **परमात्माने कहा — सुनो, जितने बीजवाले छोटे-छोटे पेड़ सारी पृथ्वीपर हैं, और जितने वृक्षोंमें बीजवाले फल होते हैं, वे सब मैंने तुमको दे दिये हैं। वे तुम्हारे भोजनके लिए हैं। और जितने पृथ्वीके पशु और आकाशके पक्षी और पृथ्वीपर रेंगनेवाले जन्तु हैं, उन सबके खानेके लिए मैंने तमाम हरे-हरे छोटे पेड़ दिये हैं। और वैसा ही हो गया।**

जिसको बाकायदा ईसाई धर्मकी दीक्षा नहीं दी गई उसके मांस खानेका कोई बहाना हो सकता है; मगर जो कहते हैं, हम 'द्विज' हैं उनके लिए, अन्नाहारी ईसाइयोंके कथनानुसार, कोई बहाना नहीं है; क्योंकि उनकी हालत 'पतन' के पहलेके लोगोंकी हालतसे बेहतर नहीं तो उसके बराबर अवश्य होनी चाहिए। और फिर, पुनरुद्धारके[1] समय :

> **भेड़िया भी भेड़के साथ रहेगा, और चीता बकरीके साथ लेटेगा, और बछड़ा और सिंहका बच्चा और कत्लके लिए मोटा किया जानेवाला पशु — सब एक साथ घूमेंगे, और छोटा-सा बच्चा उनको ले जायेगा। . . . और सिंह बैलके समान घास खायेगा। . . . मेरे सारे पवित्र पहाड़ोंपर कोई किसीको चोट नहीं पहुँचायेगा, क्योंकि जैसे समुद्र पानीसे भरा रहता है, वैसे ही धरती परमात्माके ज्ञानसे परिपूर्ण होगी।**

यह समय अभी सारी दुनियाके लिए बहुत दूर हो सकता है। परन्तु ईसाई लोग — जो जानते हैं और कर सकते हैं — इसे चरितार्थ क्यों न करें? उस समयके आनेकी अपेक्षा इसके अनुसार पहलेसे ही काम करनेमें कोई हानि नहीं होगी। और हो सकता है, ऐसा करनेसे वह समय बहुत जल्द आ जाये।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल मर्क्युरी, ४-२-१८९६

१. रेस्टिट्यूशन।

८२. प्रार्थनापत्र : नेटालके गवर्नरको

डर्बन

२६ फरवरी, १८९६

सेवामें

परमश्रेष्ठ माननीय सर वॉल्टर फ्रांसिस हेली-हचिन्सन, नाइट कमांडर, गवर्नर तथा प्रधान सेनापति, तथा उप-नौसेनापति, नेटाल; देशी आबादीके सर्वोच्च अधिकारी; गवर्नर, जुलूलैंड; आदि; पीटरमैरित्सबर्ग, नेटाल

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटालवासी भारतीय
ब्रिटिश प्रजाजनोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि

२५ फरवरी, १८९६ को 'गवर्नमेंट गजट' में नोंदवेनी, जुलूलैंडके जमीन-बिक्री-सम्बन्धी नियमोंके जो अंश प्रकाशित हुए हैं, उनके सम्बन्धमें नेटालवासी भारतीयोंके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे प्रार्थी महानुभावके सामने उपस्थित हो रहे हैं। उक्त अंश ये हैं:

धारा ४ का अंश —— यूरोपीय जन्म या वंशके जो व्यक्ति ऐसे किसी नीलाममें बोली बोलनेके इच्छुक हों वे नीलामकी तारीखसे कमसे-कम बीस दिन पहले मैरित्सबर्गमें जुलूलैंड-सम्बन्धी कामकाजके सचिवको, या सरकारके सचिव, एशोवे, जुलूलैंडको, लिखित सूचना दे दें। वे जो जमीनें खरीदना चाहते हों, उनका, जहाँतक हो सके, नम्बरोंके जरिये या दूसरे तरीकोंसे विवरण भी दें।

धारा १८ का अंश —— सिर्फ यूरोपीय जन्म या वंशके व्यक्तियोंको ही मकानोंकी जमीनके कब्जेदार मंजूर किया जायेगा। यह शर्त पूरी न की जानेपर ऐसी कोई भी जमीन फिरसे सरकारके कब्जेमें लौट जायेगी, जैसा कि इसके पहलेकी धारामें बताया गया है।

धारा २० —— नोंदवेनी बस्तीमें इस नीलामके जरिये खरीदी हुई जमीनके मालिकोंको ये जमीनें या इनके हिस्से गैर-यूरोपीय जन्म या वंशके लोगोंके हाथ बेचने या उन्हें किरायेपर देनेका हक कभी न होगा। गैर-यूरोपीय लोगोंको इनपर या इनके हिस्सोंपर बिना किराया काबिज होनेकी इजाजत भी वे न दे सकेंगे। अगर कोई खरीदार इन शर्तोंको तोड़ेगा तो ऐसी कोई भी जमीन इन नियमोंकी धारा १७ के अनुसार सरकारके अधिकारमें वापस चली जायेगी।

ये जमीनें इन्हीं स्पष्ट शर्तोंके साथ बेची जायेंगी। इन नियमोंकी धारा १०, ११ और १२ के अनुसार जो अधिकारपत्र **माँगा व दिया जायेगा उसमें ये शर्तें साफ तौरसे दर्ज कर दी जायेंगी।**

प्रार्थी इन नियमोंका अर्थ यह समझते हैं कि सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाको नोंदवेनी बस्तीमें जमीन खरीदने या प्राप्त करनेसे वंचित किया जा रहा है।

यूरोपीय और भारतीय ब्रिटिश प्रजाके बीच इस प्रकार जो द्वेषजनक भेदभाव किया जा रहा है उसका आपके प्रार्थी आदरके साथ किन्तु जोरदार शब्दोंमें विरोध करते हैं।

इस प्रकार वंचित किये जानेका कोई कारण भी हम देख नहीं पाते। यह बात अलग है कि दक्षिण आफ्रिकामें रंग-द्वेषके कारण जिन अनेक मुद्दोंको मान लिया गया है, उनमें ही यह भी एक हो।

प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि सम्राज्ञीकी प्रजाके किसी एक भागपर दूसरे भागको इस तरहकी तरजीह देना न सिर्फ ब्रिटिश नीति और न्यायके प्रतिकूल है, बल्कि भारतीय समाजके मामलेमें तो १८५८ की घोषणाका उल्लंघन भी है। वह घोषणा भारतीयोंको यूरोपीयोंकी बराबरीके व्यवहारका अधिकार देती है।

प्रार्थी यह भी निवेदन करते हैं कि ट्रान्सवाल-निवासी भारतीयोंकी ओरसे सम्राज्ञी की सरकारके प्रयत्नोंको देखते हुए जमीनकी मिल्कियत-सम्बन्धी अधिकारोंके बारेमें विचाराधीन नियमोंमें किया गया भेद कुछ विचित्र और असंगत है।

प्रार्थी यह उल्लेख करनेकी भी इजाजत चाहते हैं कि जुलूलैंडके दूसरे भागोंमें बहुत-से भारतीयोंके पास जमीन है।

इसलिए प्रार्थी सविनय प्रार्थना करते हैं कि नियमोंकी धारा २३ के अन्तर्गत सुरक्षित अधिकारोंके बलपर महानुभाव इन नियमोंमें ऐसे परिवर्तनों या संशोधनोंका आदेश दें, जिनसे उपर्युक्त भेदभाव दूर हो जाये।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।[1]

अब्दुल करीम हाजी
और अन्य ३९ व्यक्ति

अंग्रेजी (एस० एन० ७५५) की फोटो-नकलसे।

१. इस प्रार्थनापत्रको २७ फरवरीको इस आधारपर नामंजूर कर दिया गया था कि वे नियम २८ सितम्बर, १८९१ के उन विनियमोंके समरूप हैं जिनको एशोवे बस्तीके मामलेमें प्रवर्तित किया गया है। देखिए "पत्र: सी० वॉल्शको", ४-३-१८९६।

८३. पत्र : 'नेटाल मर्क्युरी' को

डर्बन
२ मार्च, १८९६

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल मर्क्युरी'

महोदय,

आपके २९ फरवरीके अंकमें रॉबर्ट्स और रिचर्ड्स नामक दो व्यक्तियोंपर 'आवारा कानून' के अन्तर्गत चलाये गये मुकदमेकी अधूरी रिपोर्ट और उसके सम्बन्धमें पुलिस सुपरिंटेंडेंटका मन्तव्य प्रकाशित हुआ है। सुपरिंटेंडेंटने इन दोनों व्यक्तियोंको 'उचक्के' तथा अन्य अपशब्दोंसे याद करना पसन्द किया है। इन दोनों व्यक्तियों और भारतीय समाजके प्रति भी न्यायकी दृष्टिसे मैं आपके पत्रका कुछ स्थान लेना चाहता हूँ। रिपोर्ट और मन्तव्यसे ऐसा मालूम होता है मानो श्री वॉलरका निर्णय[1] अन्यायपूर्ण हो। इस विचारको यह रंग देनेके लिए सुपरिंटेंडेंटने गवाहीका वह अंश सामने रखा है, जिसका मैं न केवल दोनों व्यक्तियोंके प्रति, बल्कि ऐसी स्थितिमें पड़े हुए अन्य लोगोंके प्रति जनताकी सहानुभूति जगानेके लिए उपयोग करना चाहता था, और अब भी करना चाहता हूँ।

मेरे नम्र विचारसे इन दोनों व्यक्तियोंका मामला बहुत कठिन था और पुलिसने उन्हें गिरफ्तार करके और बादमें उन्हें सताकर गलती की। मैंने अदालतमें कहा था, और मैं फिर भी कहता हूँ कि अगर पुलिस भारतीयोंके प्रति थोड़ी-सी उदारता बरते और उन्हें गिरफ्तार करनेमें विवेकसे काम ले तो 'आवारा कानून' अत्याचार-पूर्ण नहीं रहेगा। उपर्युक्त दोनों व्यक्ति गिरमिटिया मजदूरोंके पुत्र हैं, यह हकीकत उनके खिलाफ नहीं पड़नी चाहिए। खास तौरसे अंग्रेज समाजमें तो, जहाँ जन्मके आधारपर नहीं, बल्कि गुणोंके आधारपर लोगोंके बारेमें विचार किया जाता है, ऐसा बिलकुल ही नहीं होना चाहिए। उस समाजमें अगर ऐसा न होता तो एक कसाईके लड़केको बड़ेसे-बड़े कविका मान न दिया जाता। इसके अलावा, सुपरिंटेंडेंटने इस बातको बहुत महत्त्व दिया है कि दूसरे अभियुक्तने लगभग दो वर्ष पूर्व अपना नाम

१. पुलिस मजिस्ट्रेट श्री वॉलरने यह कारण बताकर मामलेको खारिज कर दिया था कि अगर कोई गैर-गोरा व्यक्ति ९ बजे रातके बाद बिना परवानेके घरके बाहर पाया जाये और वह कहे कि मैं अपने घर जा रहा हूँ, तो उसका यह उत्तर उसके बरी हो जानेके लिए काफी होना चाहिए, क्योंकि कानून यह है कि अगर कोई गैर-गोरा व्यक्ति ९ बजे रात और ५ बजे सुबहके बीच घूमता-फिरता पाया जाये और उसके पास न तो उसके मालिकका परवाना हो, न वह अपने घूमने-फिरनेके बारेमें सन्तोषजनक उत्तर ही दे सके, तो उसे गिरफ्तार कर लिया जाये।

बदल लिया था। गिरफ्तार करनेवाले पुलिस सिपाहीने जानबूझकर उसका जो अपमान[1] किया था उसको इसीकी आड़में नजरअन्दाज कर देनेका सुपरिंटेंडेंटने प्रयत्न किया है। याद रखना चाहिए कि उक्त सिपाहीको कोई जानकारी नहीं थी कि नाम कब बदला गया था और सुपरिंटेंडेंटका जो यह खयाल है कि उसने आवारा कानूनकी पकड़से भाग निकलनेके लिए अपनी राष्ट्रीयताको छिपानेका प्रयत्न किया, सो अगर ऐसा होता तो क्या उसका रूप ही उसकी असली राष्ट्रीयता प्रकट कर देनेके लिए काफी नहीं था? उसे अपने नाम और जन्मके बारेमें भी कोई शर्म नहीं थी, क्योंकि उससे नाम और जन्मके बारेमें जो प्रश्न पूछे गये उनका उसने फौरन उत्तर दिया था। उसके उत्तरोंसे खुशमिजाज सुपरिंटेंडेंट ऐसा खुश दिखलाई दिया कि उसके मुँहसे बरबस उद्गार निकल पड़ा — "ठीक है, मेरे बेटे, अगर सब लोग तुम्हारे जैसे होते तो पुलिसको कोई कठिनाई न होती।"

अगर अपना धर्म बदलना गलती नहीं है, तो स्पष्ट ही अपना नाम बदलना भी कोई गलती नहीं कही जा सकती। छोटी-छोटी बातोंकी बड़ी बातोंके साथ तुलना की जाये तो श्री क्विलियम अब हाजी अब्दुल्ला बन गये हैं, क्योंकि उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया है। मनिकाके भूतपूर्व महावाणिज्य दूत श्री वेबने भी इस्लाम धर्म स्वीकार करनेपर, मुस्लिम नाम ग्रहण कर लिया है। सिपाहियोंके विचारसे तो भारतीयोंका ईसाई नाम ही नहीं, ईसाई पोशाक भी धारण करना अपराध है। और अब, सुपरिंटेंडेंटके मतानुसार, धर्म-परिवर्तन भारतीयोंको संदेहका पात्र बना देगा। परन्तु मान लें कि धर्म-परिवर्तन सच्चे विश्वासके कारण किया गया है, कानूनसे बचनेके लिए किसी चालके तौरपर नहीं, तो फिर ऐसा क्यों होना चाहिए? प्रस्तुत मामलेमें मैं मानता हूँ कि ये दोनों व्यक्ति ईमानदार ईसाई हैं, क्योंकि मुझे मालूम हुआ है कि डाक्टर बूथ[2] दोनोंका आदर करते हैं। बेशक, सुपरिंटेंडेंट कहेंगे — "मगर यह कैसे समझें कि कोई आदमी सच्चा ईसाई है, या ईसाईके वेशमें शैतान है?" इस सवालका जवाब देना कठिन है। मैंने अदालतसे निवेदन किया था कि हर मामलेका निर्णय उसके अपने ही गुण-दोषके आधारपर किया जाये और न्याय करनेमें जिन बातोंको पहलेसे मानकर चला जाता है, उनका लाभ जिस तरह दूसरे वर्गोंको दिया जाता है उसी तरह भारतीयोंको भी दिया जाये।

मैंने निवेदन किया कि अगर दो आदमी भद्र पोशाक पहने हुए साढ़े नौ बजे रातको शान्तिके साथ मुख्य मार्गसे जा रहे हैं, टोके जानेपर रुक जाते हैं और दावा करते हैं कि वे बागसे लौटकर घर जा रहे हैं; और उनका घर रोके जानेके स्थानसे केवल सात मिनटके रास्तेपर है; उनमें से एक मुहर्रिर और दूसरा शिक्षक है (जैसा कि इन दोनों अभागे लोगोंके बारेमें है) तो उन्हें साधारण न्याय-बुद्धिका लाभ मिलना

१. जब अभियुक्तने अपना नाम सैम्युएल रिचर्ड्स बताया तब पुलिसका सिपाही उसपर हँसा था।

२. डर्बनके सेंट आइडन्स चर्चके पादरी; वह भारतीयों द्वारा संस्थापित एक छोटे-से धर्मार्थ चिकित्सालयकी देख-रेख करते थे। बोअर युद्धके दौरान, १८९९ में डा० बूथने भारतीय आहत सहायक दल के प्रशिक्षणमें सहायता की थी।

चाहिए। मैंने यह भी निवेदन किया कि इस प्रकारके मामलोंमें अगर पुलिसको शक ही हो तो वह पकड़े गये लोगोंपर नजर रखकर उन्हें उनके घर पहुँचा सकती है। परन्तु यदि यह भी न हो सके तो उन्हें भद्र व्यक्तियोंके तौरपर हिरासतमें रखा जाये और पहलेसे ही चोर या डाकू न मान लिया जाये। उनकी पोशाक, धर्म और नामके सम्बन्धमें आक्षेप करना बड़ी आसानीसे तबतक स्थगित रखा जा सकता है, जबतक कि वे वंचक साबित न हो जायें।

लगभग एक वर्ष पूर्व मैं स्टैंडर्टनसे डर्बन जा रहा था। मेरे दो साथी-यात्रियों पर चोर होनेका सन्देह किया गया। फोक्सरस्टमें उनके सामानकी और उसके साथ मेरे सामानकी भी — क्योंकि मैं भी उसी डिब्बेमें था — तलाशी ली गई और एक खुफियाको डिब्बेमें बैठा दिया गया। जो मजिस्ट्रेट तलाशी लेने आया था वे उसे व्हिस्कीका प्याला दे सकते थे और खुफियाके साथ भद्र लोगोंके तौरपर बराबरीके साथ बातचीत कर सकते थे। यह शायद इसलिए सम्भव था कि वे इज्जतदारोंकी पोशाक पहने थे और पहले दर्जेमें यात्रा कर रहे थे। खुफियाने पहलेसे ही उनके बारेमें फैसला नहीं कर लिया। परन्तु मुझे यह बता देना चाहिए कि वे यूरोपीय थे। सारे रास्ते खुफिया खिन्न रहा कि उसे इस अप्रिय कर्त्तव्यका पालन करना पड़ रहा था। क्या मैं अनुरोध करूँ कि इन अभागे युवकोंके जैसे मामलोंमें भी इसी प्रकारका व्यवहार किया जाये? उनको कालकोठरीके बदले किसी दूसरी जगहमें रखा जा सकता था। अगर कालकोठरीमें रखना अनिवार्य ही था तो उन्हें सोनेके लिए साफ कम्बल दिये जा सकते थे। सिपाही उनके साथ शिष्टतासे बातचीत कर सकता था। अगर ऐसा किया गया होता तो मामला मजिस्ट्रेटके पास जाता ही नहीं।

मैं सुपरिटेंडेंटके इस बयानपर आपत्ति करता हूँ कि "इन नौजवान उचक्कोंने जमानतपर छूटनेके बजाय रातभर हवालातमें बन्द रहना पसन्द किया।" सच बात इससे उलटी है। वे जमानत दे रहे थे, मगर रातको उसे लेनेसे इनकार कर दिया गया। मजिस्ट्रेटने इस व्यवहारको पसन्द नहीं किया। सुबह उन्होंने फिरसे जमानतपर छोड़े जानेका अनुरोध किया। दूसरे अभियुक्तका अनुरोध मान लिया गया, परन्तु पहलेको जमानतपर छोड़नेसे पुलिसने इनकार कर दिया। उसके नामके आगे लिख रखा गया — 'रिहा न किया जाये।' ऐसा लिखा हुआ रजिस्टर अदालतमें पेश किया गया था। बादमें इन्स्पेक्टर बेनीके कहनेसे उसे रिहा किया गया। इन्स्पेक्टर बेनीने, जैसे ही गलतीका पता चला, उसका निवारण कर दिया।

सुपरिंटेंडेंटके प्रति आदरके साथ मेरा निवेदन है कि पहले अभियुक्तने कानूनका भंग नहीं किया। मजिस्ट्रेटने कोई आदेश तो नहीं दिया, परन्तु अपने पितृवत् और दयालु तरीकेसे सुझाव दिया कि मैं उसे मेयरसे परवाना[1] ले लेनेकी सलाह दूँ। मैंने निवेदन किया कि वैसा करना जरूरी तो नहीं है, किन्तु उनकी सलाहका सम्मान करनेके लिए मैं वैसा करूँगा। अब प्रतिवादीको टाउन-क्लार्कके पाससे जवाब मिला है कि उसे पास नहीं दिया जायेगा, क्योंकि किसी क्लर्क और रविवासरीय स्कूलके

१. रातको बाहर निकलनेका।

अध्यापकपर कभी किसी अधम अपराधका आरोप नहीं किया गया। अगर वह ९ बजे रातके बाद बाहर निकलनेके लायक नहीं है तो वह रविवासरीय स्कूलका शिक्षक होने लायक भी नहीं है। लोग तो ऐसा मानेंगे कि उसके रविवासरीय स्कूलका शिक्षक होनेसे, जहाँ कि वह सुकुमार बच्चोंके चारित्र्यका गठन करनेवाला है, उसका ९ बजे रातके बाद बाहर रहना कम खतरनाक है। सुपरिंटेंडेंटका कथन है कि उनके दलने "अरब व्यापारियों या दूसरे इज्जतदार गैर-गोरोंको रातमें कभी नहीं छेड़ा।" क्या ये दोनों युवक 'दूसरे इज्जतदार गैर-गोरों' में शामिल किये जाने लायक नहीं थे? मैं उनसे अनुरोध और प्रार्थना करता हूँ कि वे भली-भाँति विचार करें, क्या उन्होंने स्वयं इन दोनों युवकोंको गिरफ्तार किया होता? मैं उनके ही शब्दोंमें कहता हूँ कि "अगर उनका पूरा दल उनके समान ही विवेकी और खुशमिजाज होता, तो कोई कठिनाई होती ही नहीं।"

मेरा खयाल है, मेरी "खुली चिट्ठी" प्रकाशित करते हुए आपने कृपापूर्वक कहा था कि सच्ची शिकायतोंके मामले आपकी सहानुभूति तुरन्त प्राप्त करेंगे। क्या आप इस मामलेको सच्ची शिकायत मानते हैं? अगर आप मानते हैं तो मैं आपकी सहानुभूतिकी माँग करता हूँ, ताकि इस तरहके मामले फिरसे न हों। जो इज्जतदार भारतीय युवक मेरी सलाह लेना पसन्द करते हैं उन्हें यह सलाह देना मुझे कठिन मालूम हुआ है कि वे अपने मालिकोंसे परवाने ले लें। मैंने उन्हें मेयरके पाससे परवाने लेनेकी सलाह दी है। परन्तु पहली ही अर्जीके नामंजूर हो जानेसे दूसरोंका उत्साह ठंडा पड़ गया है। और जनता ऐसी गिरफ्तारियोंको पसन्द करती रहेगी तो मजिस्ट्रेटके विपरीत मन्तव्यके बावजूद पुलिसको उन्हें दुहरानेकी प्रेरणा मिल सकती है। इसलिए, समाचारपत्र अपने विचारोंसे या तो स्पष्टतः इज्जतदार भारतीयोंके लिए मेयरका परवाना पाना सरल बना सकते हैं, या फिर पुलिसके लिए भविष्यमें ऐसी गिरफ्तारियाँ करना लगभग असम्भव बना सकते हैं। इसके अलावा, निगमपर मुकदमा चलानेका भी एक तरीका है सही, परन्तु वह आखिरी तरीका है।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटाल मर्क्युरी, ६-३-१८९६

८४. पत्र : सी० वॉल्शको

डर्बन
४ मार्च, १८९६

सी० वॉल्श
जुलूलैंड-सम्बन्धी कार्योंके स्थानापन्न सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

नोंदवेनी बस्तीके नियमोंके सम्बन्धमें मैंने जुलूलैंडके परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयको जो स्मरणपत्र[1] भेजा था उसके उत्तरमें आपका पिछली २७ तारीखका पत्र प्राप्त हुआ। इस पत्र द्वारा आपने सूचित किया है कि उपर्युक्त नियम एशोवे बस्तीके उन नियमोंकी नकल-मात्र हैं, जो गवर्नर महोदयके पूर्वाधिकारीके समय प्रकाशित किये गये थे।

ऐसी स्थितिमें, मैं स्मरणपत्र-दाताओंकी ओरसे गवर्नर महोदयसे अनुरोध करूँगा कि वे दोनों ही बस्तियोंके नियमोंमें ऐसा फेरफार या संशोधन करनेका आदेश दें, जिससे उनमें दाखिल रंग-भेद दूर हो जाये। किसी भी हालतमें मैं यह निवेदन करनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे हिस्सोंमें भारतीयोंके साम्पत्तिक अधिकारोंके बारेमें अनेक घटनाएँ इस समय घटित हो रही हैं, उनका विशेष रूपसे खयाल करते हुए नोंदवेनीमें इन नियमोंको जारी करना इस आधारपर उचित नहीं ठहराया जा सकता कि ऐसे ही नियम एशोवेमें भी जारी हैं।

मेरा विचार है कि मेलमॉथ बस्तीके बारेमें ऐसे कोई नियम नहीं हैं।[2]

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सं० ४२७, खण्ड २४

१. देखिए "प्रार्थनापत्र : नेटालके गवर्नरको", २६-२-१८९६।
२. अनुरोध ठुकरा दिया गया था; देखिए "पत्र : दादाभाई नौरोजीको", ७-३-१८९६।

८५. पत्र : जुलूलैंड-सम्बन्धी कार्योंके सचिवको

सेंट्रल वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
६ मार्च, १८९६

जुलूलैंड-सम्बन्धी कार्योंके सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

यह देखते हुए कि मेलमॉथ बस्तीके नियमोंमें कोई भेदभाव नहीं है, क्या मैं जान सकता हूँ कि एशोवे बस्तीके नियमोंमें रंग-भेद दाखिल करनेका कारण क्या हुआ है? मैं मेलमॉथ बस्तीके नियमोंके प्रकाशनकी तारीख भी जानना चाहता हूँ।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सं० ४२७, खण्ड २४

८६. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

पोस्ट बॉक्स ६६
सेंट्रल वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
७ मार्च, १८९६

माननीय श्री दादाभाई नौरोजी
नेशनल लिबरल क्लब
लंदन

महोदय,

मैं इसके साथ एक कतरन भेज रहा हूँ। इसमें मताधिकार-विधेयक दिया गया है। मन्त्रिमण्डल इस विधेयकको आगामी अधिवेशनमें पेश करना चाहता है। ब्रिटिश समितिके अध्यक्षके नाम मेरे पत्रकी[1] एक प्रेस-नकल भी साथ है।

जुलूलैंडके गवर्नरने नोंदवेनीके सम्बन्धमें प्रार्थनापत्र भेजनेवालोंकी विनती मान्य करनेसे इनकार कर दिया है। अब मैं इस विषयपर ब्रिटिश सरकारके नाम एक प्रार्थनापत्र[2] तैयार कर रहा हूँ।

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए "प्रार्थनापत्र : जो० चेम्बरलेनको", ११-३-१८९६।

सैनिकों-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रके बारेमें आपके पत्रके लिए मैं नम्रतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० २२५४) की फोटो-नकलसे।

८७. पत्र : वि० वेडरबर्नको

पोस्ट बॉक्स ६६
सेंट्रल वेस्ट स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल
७ मार्च, १८९६

सर विलियम वेडरबर्न, बैरोनेट, संसद-सदस्य, आदि
अध्यक्ष, ब्रिटिश समिति, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
लंदन

महोदय,

मैं इसके साथ एक कतरन भेजनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। इसमें मताधिकार विधेयक दिया गया है। इस विधेयकको सरकार नेटाल विधानसभाके आगामी अप्रैल अधिवेशनमें पेश करना चाहती है। १८९४ के जिस कानूनके खिलाफ सरकारको प्रार्थना-पत्र[1] भेजा गया था, यह विधेयक उसका ही स्थान ग्रहण करता है। कहा जाता है कि इसे श्री चेम्बरलेनने मंजूर कर लिया है। अगर ऐसा हो तो इससे भारतीय समाज बड़ी अड़चनमें पड़ जायेगा। समाचारपत्रोंका खयाल ऐसा कुछ जान पड़ता है कि भारतमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं, इसलिए विधेयकका असर भारतीयोंपर नहीं पड़ेगा। साथ ही, विधेयकका उद्देश्य भारतीयोंपर वार करना है, इसमें भी कोई शंका नहीं। हमारा इरादा उसका विरोध करनेका है। परन्तु इसी बीच, मेरा नम्र खयाल है, कॉमन्स सभामें एक प्रश्न कर देना बहुत उपयोगी हो सकता है। सम्भव है उससे श्री चेम्बरलेनके विचारोंका कोई आभास मिल जाये। भारतीय समाजको शीघ्र ही अन्य महत्त्वपूर्ण विषयोंके सम्बन्धमें भी आपका समय और ध्यान बँटाना होगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० २२८०) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "प्रार्थनापत्र : नेटाल विधान परिषदको", २८-६-१८९४।

८८. प्रार्थनापत्र : जो० चेम्बरलेनको

डर्बन, नेटाल
११ मार्च, १८९६

सेवामें

परम माननीय जोजेफ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री
लंदन

नेटालवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधि नीचे
हस्ताक्षर करनेवाले भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

तारीख २५ फरवरी, १८९६ के नेटाल गवर्नमेंट 'गजट' में जुलूलैंडकी नोंदवेनी बस्तीके सम्बन्धमें कुछ नियम प्रकाशित हुए हैं। वे वहाँ सम्राज्ञीकी सरकारके भारतीय प्रजाजनोंके जमीन प्राप्त करनेके अधिकारोंमें बाधक हैं। जहाँतक बात ऐसी है, हम उन नियमोंके बारेमें सम्राज्ञीकी सरकारके सामने अर्ज करनेकी इजाजत लेते हैं। हमारी अर्ज जुलूलैंडकी एशोवे बस्तीके उसी तरहके नियमोंके सम्बन्धमें भी है।

नियमोंका जो अंश ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंमें बाधक होता है, वह निम्न-लिखित है :

> धारा ४ का अंश — यूरोपीय जन्म या वंशके जो व्यक्ति ऐसे किसी (अर्थात् मकानोंकी जमीनके) नीलाममें बोली बोलनेके इच्छुक हों वे नीलामकी तारीखसे कमसे-कम बीस दिन पहले जुलूलैंड-सम्बन्धी कामकाज सचिवको लिखित सूचना दे दें, आदि।
>
> धारा १८ का अंश — सिर्फ यूरोपीय जन्म या वंशके व्यक्तियोंको ही मकानोंकी जमीनके कब्जेदार मंजूर किया जायेगा। यह शर्त पूरी न की जाने-पर ऐसी कोई भी जमीन फिरसे सरकारके कब्जेमें लौट जायेगी, जैसा कि इससे पहलेकी धारामें बताया गया है।
>
> धारा २० का अंश — नोंदवेनी बस्तीमें इस नीलामके जरिये खरीदी हुई जमीनके मालिकोंको ये जमीनें या इनके हिस्से गैर-यूरोपीय जन्म या वंशके लोगोंके हाथ बेचने या उन्हें किरायेपर देनेका हक कभी न होगा। गैर-यूरोपीय लोगोंको इनपर या इनके हिस्सोंपर बिना किराया काबिज होनेकी इजाजत भी वे न दे सकेंगे। अगर कोई खरीदार इन शर्तोंको तोड़ेगा तो ऐसी कोई भी जमीन इन नियमोंकी धारा १७ के अनुसार सरकारके अधिकारमें वापस चली

जायेगी। ये जमीनें इन्हीं स्पष्ट शर्तोंके साथ बेची जायेंगी। इन नियमोंकी धारा १०, ११ और १२ के अनुसार जो अधिकारपत्र माँगा या दिया जायेगा उसमें ये शर्तें साफ तौरसे दर्ज कर दी जायेंगी।

जिस 'गजट' में नोंदवेनी-सम्बन्धी नियम थे, उसके प्रकाशित होनेके दूसरे ही दिन, प्रार्थियोंने, जुलूलैंडके गवर्नर महोदयको एक प्रार्थनापत्र भेजा था। उसमें उनसे प्रार्थनाकी गई थी कि नियमोंमें ऐसा परिवर्तन या संशोधन कर दिया जाये, जिससे उनमें निहित रंग-भेद दूर हो जाये।

उपर्युक्त प्रार्थनापत्रके[1] उत्तरमें, जिसकी नकल इसके साथ नत्थी है, प्रार्थियोंको सूचित किया गया कि वे नियम "वही हैं, जो कि पूर्वगामी गवर्नर महोदयने २८ सितम्बर, १८९१ को घोषित एशोवे बस्तीमें लागू किये थे।" इसपर ४ मार्च, १८९६ को इस आशयका निवेदन किया गया कि ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें दोनों स्थानोंके नियमोंमें परिवर्तन या संशोधन किया जाये।

५ मार्च, १८९६ को इसका उत्तर मिला। आशय यह था कि गवर्नर महोदय इस सुझावके अनुसार कार्रवाई करना उचित नहीं समझते। प्रार्थियोंका दृढ़ विश्वास है कि भारतीय समाजपर बरपा किया गया अन्याय इतना स्पष्ट है कि उसके निवारणके लिए उसे सम्राज्ञी-सरकारकी दृष्टिमें ला देना ही काफी होगा। ऐसा द्वेषजनक और, हम आदरपूर्वक कहते हैं, अनावश्यक भेदभाव तो स्वशासित उपनिवेशोंमें भी होने नहीं दिया जाता। फिर, सम्राज्ञीके शासनाधीन एक उपनिवेशमें तो इसकी और भी इजाजत नहीं होनी चाहिए।

जुलूलैंडमें आपके अनेक प्रार्थियोंकी जमीन-जायदाद है। १८८९ में, जब मेलमॉथ नामकी बस्तीकी जमीन बेची गई थी, तब भारतीय समाजने वहाँ लगभग २,००० पौंडकी जमीन खरीदी थी।

हम आदरके साथ निवेदन करते हैं कि जुलूलैंडमें भारतीयोंको स्वतन्त्रतापूर्वक जमीन खरीदने देना बिलकुल जरूरी है। भले इसका मंशा सिर्फ इतना ही क्यों न हो कि उनकी जो २,००० पौंडकी रकम वहाँ लगी है, उसका वे फायदा उठा सकें।

नेटालका सरकारी मुखपत्र[2] साधारणतः भारतीयोंकी महत्वाकांक्षाओंका विरोधी रहता है। परन्तु इस अन्यायको उसने भी इतना गम्भीर समझा है कि वह जुलूलैंडके गवर्नरको भेजे गये प्रार्थनापत्रपर बहुत अनुकूल विचार व्यक्त किये बिना नहीं रह सका। वे विचार इतने उपयुक्त हैं कि प्रार्थी उन्हें नीचे उद्धृत करनेकी अनुमति लेते हैं:

जुलूलैंडमें शीघ्र ही एक स्वतन्त्र भारतीय प्रश्न खड़ा हो जानेकी सम्भावना है। हालमें ही नोंदवेनी बस्ती बसानेकी घोषणा की गई है। उसमें मकानोंकी जमीन बेचनेके नियम गत मंगलवारके सरकारी 'गजट' में प्रकाशित हुए हैं। उनकी अनेक धाराएँ गैर-यूरोपीय जन्म अथवा वंशके लोगोंको उस बस्तीमें

१. देखिए "प्रार्थनापत्र : नेटालके गवर्नरको", २६-२-१८९६।

२. उल्लेख **नेटाल मर्क्युरी**का है : देखिए "प्रार्थनापत्र : जो० चेम्बरलेनको", ११-८-१८९५।

जमीन खरीदने और, यहाँतक कि किसी जमीन-जायदादपर काबिज होनेसे भी रोकनेवाली हैं। भारतीयोंने, जो ऐसी बातोंमें हमेशा आगे रहते हैं, ऐसे नियमोंके जारी किये जानेपर तत्परताके साथ गवर्नरको विरोधका पत्र भेजा है। जुलूलैंड अबतक सम्राज्ञीके शासनाधीन है। इसलिए, उसपर सम्राज्ञीके अधिकारियोंकी नजर ज्यादा सीधी है। इन बातोंको देखते हुए हम ठीक तरहसे समझ नहीं सकते कि वहाँ ऐसे नियमोंका अमल कैसे कराया जा सकता है। हम देखते ही हैं कि नेटालमें जो मताधिकार कानून संशोधन विधेयक पास किया गया है, उसे रोकनेके लिए सम्राज्ञी-सरकारका रुख कितना दृढ़ है। भारतीयोंने जो विरोधपत्र भेजा है उससे मालूम होता है कि उनमें से कुछकी जमीन-जायदाद वहाँ पहलेसे ही मौजूद है। और अगर ऐसा है तो, हम समझते हैं, दूसरे तमाम कारणोंको छोड़ देनेपर भी, प्रार्थियोंका मामला विचारके योग्य है। जो जुलू-देश भारतीयोंको अपने यहाँ जमीन-जायदादकी मिल्कियत रखनेसे रोकता है, उसमें जमीनपर काबिज होनेके कुछ खास कानून हो सकते हैं। परन्तु फिर भी यह हकीकत तो बनी ही है कि वह प्रदेश सम्राज्ञीके शासनाधीन है। ऐसी स्थितिमें यह बात अजीब मालूम होती है कि जो नियम उत्तरदायी शासन वाले उपनिवेश नेटालमें नहीं बनाये जा सकते, वे वहाँ बनाये जा सकें।

दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न भागोंमें प्रकाशित होनेवाले नियमों और कानूनोंमें रंग-भेद नित्यप्रति ही दाखिल होता रहता है। यह बात इतनी अधिक होने लगी है कि भारतीयोंके लिए अपने अधिकारोंपर प्रहार करनेवाले तमाम कानूनोंसे परिचित रहना और उन्हें सम्राज्ञी-सरकारकी दृष्टिमें लाना असम्भव है। फिर, भारतीय तो मुख्यतः व्यापारी और कारीगर हैं। वे सिर्फ अपने व्यापारके योग्य ही ज्ञान रखते हैं। और बहुतोंको तो उतना भी नहीं है।

और स्थिति यहाँतक पहुँच गई है कि प्रार्थी स्थानिक अधिकारियोंसे ऐसा अन्याय भी दूर करा सकनेकी आशा नहीं रखते, जो प्रस्तुत मामलेके समान ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंके अज्ञानसे हो गया हो।

प्रार्थियोंको भय है कि यदि एक सम्राज्ञी-शासनाधीन उपनिवेश सम्राज्ञीकी प्रजाके एक अंशको जमीन-जायदादके अधिकार देनेसे इनकार कर सकता है तो दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य और ऑरेंज फ्री स्टेटकी सरकारोंका भी वैसा ही करना या उससे आगे बढ़ जाना बहुत हदतक उचित ठहरेगा।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि एशोवेके नियमोंमें रंग-भेदका अस्तित्व है, इस आधार पर नोंदवेनीमें भी उसी तरहके नियम बनाना उचित नहीं होना चाहिए। अगर एशोवेके नियम बुरे हैं तो यह उचित होगा कि दोनोंमें ही ऐसा परिवर्तन या संशोधन कर दिया जाये, जिससे कि ब्रिटिश भारतीय प्रजाके न्यायपूर्ण अधिकारोंपर प्रहार न हो।

प्रार्थी आपका ध्यान एक और वस्तुस्थितिकी ओर भी आकर्षित करनेकी इजाजत लेते हैं। सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके अधिकारोंपर प्रहार करनेवाले कानूनोंसे न केवल दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय भारी परेशानीमें पड़ते हैं, बल्कि ऐसे कानूनोंको बदलानेके

लिए उन्हें बार-बार जो प्रार्थनापत्र देने पड़ते हैं, उनमें बहुत खर्च भी होता है। भारतीय समाज अति-समृद्ध तो है ही नहीं, इसलिए उसे यह खर्च बरदाश्त करना बहुत कठिन गुजरता है। फिर, लगातार अशान्ति और क्षोभकी हालतसे सारे भारतीय समाजके व्यापारमें जो बाधा पड़ती है, सो अलग है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी स्थिति और हैसियतकी जाँच कराना आवश्यक है। साथ ही, दक्षिण आफ्रिकी अधिकारियोंको यह आदेश देना भी आवश्यक है कि वे सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके प्रति अन्य सब ब्रिटिश प्रजाओंकी बराबरीका व्यवहार सुनिश्चित करें। हमारे नम्र मतसे, इससे कमतर कोई भी कार्रवाई वफादार और कानूनका पालन करनेवाली भारतीय प्रजाको सामाजिक तथा नागरिक विनाशसे बचा नहीं सकेगी।

इसलिए प्रार्थी नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि सम्राज्ञी-सरकार एशोवे और नोंदवेनी बस्तियोंके नियमोंमें परिवर्तन या संशोधन करनेका आदेश दे, जिससे सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाके मार्गमें उन नियमोंके वर्तमान स्वरूपसे आनेवाली बाधाएँ मिट जायें। हमारा यह नम्र सुझाव भी है कि भविष्यमें भारतीयोंके अधिकारोंपर प्रहार करनेवाले वर्ग-संबद्ध कानून न बनानेका आदेश दिया जाये।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।

अब्दुल करीम हाजी आदम
और अन्य

अंग्रेजी (एस० एन० ३६२०) की फोटो-नकलसे।

८९. पत्र : 'नेटाल विटनेस' को

डर्बन
४ अप्रैल, १८९६

सेवामें
सम्पादक
'नेटाल विटनेस'

महोदय,

'जी० डब्ल्यू० डब्ल्यू०' ने गत ११ मार्चको आपको पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने भारतीयोंके मताधिकारके सम्बन्धमें मेरी पुस्तिका[2] की आलोचना करके मुझे सम्मानित किया है। उसके उत्तरमें आप मेरा निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित कर दें तो मैं आभारी होऊँगा।

१. मंचरजी एम० भावनगरी द्वारा पूछे गये एक प्रश्नके उत्तरमें चेम्बरलेनने कॉमन्स सभामें १० अप्रैलको वचन दिया था कि प्रार्थनापत्र मिलनेपर उसपर गौर किया जायेगा। सम्राट्की सरकारने अन्ततोगत्वा यह प्रतिबन्ध हटा दिया था।

२. देखिए "भारतीयोंका मताधिकार", १६-१२-१८९५।

'जी० डब्ल्यू० डब्ल्यू०' ने पुस्तिकाकी आलोचना करते हुए मेरे प्रति व्यक्तिगत रूपमें जो न्याय दिखाया है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। काश! उन्होंने उस 'अपील' की विषय-सामग्रीके बारेमें भी वैसा ही न्याय किया होता! मेरा खयाल है कि अगर उन्होंने उसे निष्पक्ष भावसे पढ़ा होता तो उन्हें उसमें प्रकट किये गये विचारोंसे मत-भेदका कोई कारण न मिलता। मैंने उस विषयकी विवेचना एक ऐसे दृष्टिकोणसे की है जिससे यूरोपीय उपनिवेशियोंको भारतीयोंके सामने निःसंकोच मैत्रीका हाथ बढ़ानेकी प्रेरणा मिलेगी और ऐसा करनेमें उन्हें अपनी वर्तमान स्थितिसे बगल बचाकर हटना भी नहीं पड़ेगा। मैं अब भी कहता हूँ कि भयका जरा भी कारण नहीं है। और अगर यूरोपीय उपनिवेशी सिर्फ इतना ही करें कि आन्दोलन खत्म हो जाये और पहलेकी स्थितिको फिरसे कायम करना मंजूर कर लिया जाये, तो वे देखेंगे कि भारतीयोंके मत उनके मतोंको निगलते नहीं। मेरा यह भी निवेदन है कि अगर कभी ऐसा संयोग आ ही जाये तो उसकी व्यवस्था प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें रंग-भेदको दाखिल किये बिना ही पहलेसे की जा सकती है। मताधिकारके लिए शिक्षाकी एक सच्ची और उचित कसौटीसे भारतीय मतोंके यूरोपीय मतोंको निगल जानेका खतरा (अगर वह जरा भी हो तो) शायद हमेशाके लिए निर्मूल हो जायेगा। अगर कोई यूरोपीय मतदाता नितान्त अवांछनीय हों तो उन्हें भी इस उपाय द्वारा मतदाता-सूचीसे बाहर रखा जा सकता है।

'जी० डब्ल्यू० डब्ल्यू०' प्रत्यक्ष मतोंकी तुलनात्मक संख्याके आधारपर पेश की गई दलीलोंपर आपत्ति करते हैं और इस ओर ध्यान खींचते हैं कि 'अगले वर्षकी मतदाता-सूचीमें क्या हो सकता है।' मैं नम्रतापूर्वक उनका ध्यान इस वस्तु-स्थितिकी ओर आकर्षित करता हूँ कि यद्यपि पिछले वर्ष और उसके भी पिछले वर्ष भारतीयोंको मतदाता-सूचीपर छा जानेका मौका हर तरहसे हासिल था, और अब जो मताधिकार कानून रद किया जानेवाला है उसके नतीजेकी आशंकासे उन्हें हर तरहका प्रलोभन भी था, फिर भी भारतीय मतदाताओंकी संख्यामें बढ़ती नहीं हुई। इसका कारण या तो उनकी असाधारण उदासीनता या उनमें मतदाता बननेकी योग्यताओंका अभाव ही हो सकता है। परन्तु ऐसी उदासीनता सम्भव नहीं थी, क्योंकि 'आन्दोलन' तो गत दो वर्षोंसे चल रहा है।

तथापि, समय और स्थानकी कमीके कारण मैं 'जी० डब्ल्यू० डब्ल्यू०' के पत्रकी विस्तारके साथ मीमांसा करना नहीं चाहता। मैं उतनी ही जानकारी भर दे दूँगा, जितनी उन्होंने माँगी है और फिर आगामी अधिवेशनमें पेश किये जानेवाले विधेयकपर उसकी दृष्टिसे विचार करूँगा।

श्री कर्जनने, जो उस समय उप-भारत मन्त्री थे, 'भारतीय विधान-परिषद कानून (१८६१) संशोधन विधेयक' का दूसरा वाचन पेश करते हुए दूसरी बातोंके साथ-साथ कहा था :

> **मेरा कर्त्तव्य है कि मैं विधेयकके उद्देश्यको सदनके सामने स्पष्ट कर दूँ। उद्देश्य यह है कि भारतीय शासनके आधार और भारत सरकारके कार्यक्षेत्रको**

अधिक विस्तृत बना दिया जाये, भारतके गैर-सरकारी व्यक्तियों और भारतीय जनताको शासनके कार्यमें भाग लेनेका अधिक अवसर दिया जाये और इस प्रकार, जब १८५८ में ब्रिटिश महारानीने भारतका शासन अपने हाथोंमें लिया तबसे भारतीय समाजके ऊँचे वर्गोंमें राजनीतिक उद्योग तथा राजनीतिक क्षमता दोनोंका जो उल्लेखनीय विकास दिखाई दिया है, उसे सरकारी मान्यता दी जाये। यह विधेयक १८६१ के भारतीय विधान-परिषद कानूनमें संशोधन करनेके लिए पेश किया गया है। भारतमें बहुत लम्बे समयसे कानून बनानेके किसी-न-किसी प्रकारके अधिकारोंका अस्तित्व रहा है। परन्तु उनका स्वरूप कुछ उलझा हुआ था और वे कभी वैध और कभी अवैध माने जाते थे। वे भूतपूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासनके साथ ट्यूडर और स्टुअर्ट राजाओंके अधिकारपत्रोंके कालसे शुरू हुए थे। परन्तु भारतकी वर्तमान विधानमण्डल-प्रणालीका आरम्भ उस समय हुआ था, जब लार्ड कैनिंग वाइसराय थे, और सर सी० वुड, जिन्हें बादमें लार्डकी पदवी दे दी गई थी, भारतमन्त्री थे। सर सी० वुडने १८६१ का भारतीय विधान-परिषद कानून पास कराया था।...१८६१ के कानूनसे भारतमें वाइसरायकी सर्वोच्च परिषद और बम्बई तथा मद्रासकी प्रान्तीय परिषदें — इस तरह तीन विधान-परिषदोंका निर्माण हुआ था। वाइसरायकी सर्वोच्च परिषदमें केवल गवर्नर-जनरल और उनकी कार्य-परिषद तथा कमसे-कम छः और अधिकसे-अधिक बारह अतिरिक्त सदस्य होते हैं। इन अतिरिक्त सदस्योंकी नामजदगी वाइसराय करता है और इनमें से कमसे-कम आधे सदस्योंका गैर-सरकारी व्यक्ति होना आवश्यक है। ये गैर-सरकारी व्यक्ति यूरोपीय या भारतीय कोई भी हो सकते हैं। मद्रास और बम्बईकी विधान-परिषदोंमें भी कमसे कम चार और ज्यादासे-ज्यादा आठ अतिरिक्त सदस्य होते हैं। उनकी नामजदगी प्रादेशिक गवर्नर करते हैं और उनमें भी आधे सदस्योंका गैर-सरकारी व्यक्ति होना जरूरी है। उस कानूनके पास होनेके बादसे बंगाल और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें भी विधानपरिषदें बन चुकी हैं। बंगालकी परिषदमें लेफ्टिनेंट-गवर्नर तथा बारह नामजद सदस्य और पश्चिमोत्तर प्रदेशकी परिषदमें लेफ्टिनेंट-गवर्नर तथा ९ नामजद सदस्य होते हैं। प्रत्येकके नामजद सदस्योंमें एक तिहाईका गैर-सरकारी होना जरूरी है।...लोकसेवाकी भावनावाले अनेक प्रतिभाशाली और समर्थ भारतीय सज्जनोंको सरकारको अपनी सेवाएँ प्रदान करनेके लिए आगे बढ़नेको राजी कर लिया गया है। और इन विधान-परिषदोंका योग्यतामान निस्सन्देह ऊँचा रहा है।

संशोधन-कानून विधान परिषदोंको बजटपर बहस करने और प्रश्न पूछनेका अधिकार प्रदान करता है (यह अधिकार परिषदोंको अबतक नहीं था)। परिषदोंके सदस्योंकी संख्या बढ़ाने और एक सरसरी चुनाव-पद्धति जारी करनेकी व्यवस्था भी उसमें की गई है। बेशक, यह कानून सिर्फ अनुज्ञात्मक है।

उपर्युक्त कानूनके मातहत जो नियम जारी किये गये हैं, उनके अनुसार बम्बई परिषदमें अतिरिक्त सदस्योंके अठारह स्थानोंमें से ८ चुनावके द्वारा भरे जाते हैं। और बम्बई निगमको (जो स्वयं एक प्रातिनिधिक संस्था है), ऐसे ही अन्य नगरपालिकाके निगमों या उनके एक या एकसे अधिक समूहोंको जिन्हें स-परिषद गवर्नर समय-समयपर बनाये, जिला और स्थानीय बोर्डों या उनके एक या एकसे अधिक समूहोंको, दक्षिणके सरदारोंको या ऊपर बताये हुए जैसे बड़े-बड़े क्षेत्र-मालिकोंके वर्गों, व्यापारियोंके संघों और बम्बई विश्वविद्यालयकी सेनेटको बहुमतसे इन सदस्योंका चुनाव करनेका अधिकार है। जिन विभिन्न प्रदेशोंमें विधान-परिषदें मौजूद हैं, उनकी विभिन्न प्रातिनिधिक संस्थाओंके द्वारा या उनकी सिफारिशपर सदस्योंका चुनाव करनेके लिए भी ऐसे ही नियम प्रकाशित कर दिये गये हैं।

मताधिकारके या चुने जानेवाले सदस्योंके सम्बन्धमें रंग-भेद अथवा वर्गभेदसे काम नहीं लिया गया। सर्वोच्च विधान-परिषदके एक भारतीय सदस्यने, जिन्हें बम्बई विधान परिषदने चुनकर भेजा था, इस्तीफा दे दिया है। उस स्थानके लिए अब जो उम्मीदवार खड़े हैं, उनमें एक यूरोपीय और शेष भारतीय हैं। अगले सप्ताहकी डाक आनेपर चुनावका नतीजा मालूम हो जायेगा।

जो बड़े लोग इस विषयपर अधिकारपूर्वक बोलनेके योग्य हैं वे इसे और नगर-पालिकाके प्रतिनिधित्वको किस दृष्टिसे देखते हैं, यह बतानेके लिए मैं केवल एक उद्धरण यहाँ दे रहा हूँ। सोसाइटी ऑफ आर्ट्सके सामने भाषण करते हुए सर विल्सन हंटरने १५ फरवरी, १८९३ को कहा था:

> **हमारे अध्यक्ष लॉर्ड रिपनने जिन भारतीय नगरपालिकाओंको इतनी स्मरणीय प्रेरणा प्रदान की है, उनके प्रशासन क्षेत्रमें सन् १८९१ में डेढ़ करोड़की आबादी थी। उनके १०,५८५ सदस्योंमें से आधेसे ज्यादाका चुनाव कर-दाताओंने किया था। अब, लॉर्ड क्रॉसके १८९२ के कानूनके अनुसार, प्रतिनिधित्वके इस सिद्धान्तका दायरा, सँभाल-सँभालकर, सर्वोच्च तथा प्रान्तीय विधान-परिषदों तक बढ़ाया जा रहा है।**

१८५८ की घोषणाका एक अंश इस प्रकार है:

> **हम अपने-आपको अपने भारतीय प्रदेशके निवासियोंके प्रति कर्त्तव्यके उन्हीं दायित्वोंसे बँधा हुआ समझते हैं, जिनसे हम अपनी दूसरी प्रजाओंके प्रति बँधे हैं। . . . और हमारी यह भी इच्छा है कि हमारे प्रजाजन अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारीसे हमारी जिन नौकरियोंके कर्त्तव्य पूर्ण करनेके योग्य हों उनमें उन्हें, जहाँतक हो सके, जाति और धर्मके भेदभावके बिना, मुक्त रूप और निष्पक्ष भावसे सम्मिलित किया जाये।**

इन तथ्योंकी दृष्टिसे नये मताधिकार-विधेयकको देखा जाये तो उसे समझना बहुत कठिन होगा। उपनिवेशियोंके सामने सवाल बहुत आसान है। क्या भारतीय समाजका मताधिकार छीन लेना आवश्यक है? अगर है तो मेरा निवेदन है कि

इसका प्रमाण देनेसे कि भारतमें उन्हें प्रातिनिधिक संस्थाओंकी सुविधा उपलब्ध है, वह आवश्यकता कम नहीं होगी।[1] अगर जरूरत नहीं है तो भारतीयोंपर द्विविधाजनक कानून क्यों लादा जाये? अगर मताधिकारके प्रश्नका फैसला इस सवालके जवाबसे किया जाना हो कि भारतमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं या नहीं, तो मेरा निवेदन है कि इस विषयकी सामग्री इतनी कम नहीं है कि उपनिवेशी तत्काल और सदाके लिए इसका फैसला न कर सकें। फिर एक ऐसे कानूनकी तो कोई जरूरत ही नहीं है जो इस विषयको अनिर्णीत छोड़ दे और वह बादमें अदालत द्वारा तय होता रहे, जिसमें बेकार धनकी बरबादी होती है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नेटाल विटनेस, १७-४-१८९६

९०. प्रार्थनापत्र: नेटाल विधानसभाको

डर्बन
२७ अप्रैल, १८९६

सेवामें

समवेत संसदके नेटाल विधानसभाके
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
पीटरमैरित्सबर्ग

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटालवासी भारतीयोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

इस समय जो मताधिकार कानून संशोधन विधेयक आपके विचाराधीन है उसके सम्बन्धमें नेटालवासी भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे, और उसकी ओरसे, प्रार्थी इस सम्माननीय सदनसे निवेदन कर रहे हैं।

१. भारतमें 'प्रातिनिधिक संस्थाओं' की सुविधा उपलब्ध है या नहीं — इस प्रश्नको लेकर नेटाल विधानसभामें ९ अप्रैलको थोड़ी चर्चा हुई थी। प्रधान-मन्त्रीका यह कथन अपर्याप्त माना गया था कि 'मताधिकारपर आधारित' प्रातिनिधिक संस्थाएँ उनके यहाँ नहीं हैं। विधेयकके प्रारूपमें 'संसदीय संस्थाएँ' शब्दोंके स्थानपर 'निर्वाचित प्रातिनिधिक संस्थाएँ' शब्द रख दिये गये थे। गवर्नरने विधान सभाके समक्ष अपने अभिभाषणमें इन शब्दोंको ही प्रयुक्त किया था। २२ अप्रैलको होनेवाला विधेयकका द्वितीय वाचन कुछ समयके लिए स्थगित कर दिया गया था जिससे कि औपनिवेशिक सरकार और ब्रिटिश सरकारके बीच हुआ सम्बन्धित पत्र-व्यवहार सुलभ कराया जा सके और वे उसपर विचार कर सकें; देखिए **अर्ली फेज**, पृष्ठ ६०५-६।

प्रार्थी यह मानकर चलते हैं कि विधेयक यदि पूर्णतः नहीं तो मुख्यतः भारतीय समाजसे सम्बन्ध रखता है क्योंकि १८९४ के जिस २५वें कानूनका उद्देश्य भारतीयोंका मताधिकार छीनना था, उसे यह विधेयक रद करता है, और उसका स्थान लेता है।

जब १८९४ का २५वाँ कानून विचाराधीन था उस समय इसी विषयपर भारतीय समाजकी ओरसे सदनके सामने एक प्रार्थनापत्र[1] पेश किया गया था। उसमें दावा किया गया था कि भारतमें भारतीयोंकी चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ अवश्य हैं।

प्रस्तुत विधेयक उन सब लोगोंको मताधिकारसे वंचित करता है जो मूलतः यूरोपीय वंशके नहीं हैं और ऐसे देशोंसे आये हैं, जहाँ चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं।

इसलिए, विधेयकका विरोध करनेमें प्रार्थियोंकी स्थिति बड़ी ही अटपटी हो गई है।

फिर भी यह देखकर कि विधेयकका निहित उद्देश्य भारतीय मताधिकारके सम्बन्धमें व्यवस्था करना ही है, प्रार्थी उसके बारेमें अपने विचार व्यक्त करना कर्त्तव्य समझते हैं। भारतमें चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं, उनकी इस मान्यताका आधार क्या है — प्रार्थी यह बता देना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

२८ मार्च, १८९२ को ब्रिटिश कामन्स सभामें भारतीय विधान-परिषद कानून (१८६१)का दूसरा वाचन प्रारम्भ करते हुए तत्कालीन भारत उप-मंत्रीने कहा था :[2]

संशोधन कानून प्रत्येक विधान-परिषदमें नामजद सदस्योंकी संख्या तो बढ़ाता ही है, साथ ही हर वर्ष वित्तीय विवरण पर बहस करने और 'स्पष्टीकरणकी माँग करने' का भी अधिकार देता है। वह चुनावके सिद्धान्तका समावेश करता है। विधान परिषदोंका स्वरूप शुरूसे ही प्रातिनिधिक रहा है। दूसरा वाचन पेश करनेवाले माननीय उप-मन्त्रीने नामजद सदस्योंकी संख्या बढ़ानेके बारेमें कहा था :

> **इस परिवर्धनका उद्देश्य बताना बहुत सरल है। आशा है सदन भी उसे बहुत सरलतासे समझ लेगा। इसके द्वारा सिर्फ सदस्योंके प्रवरणका क्षेत्र विस्तृत किया जा रहा है। ऐसा करके आप परिषदोंको अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण बना रहे हैं।**

परन्तु, प्रार्थी निवेदन करना चाहते हैं कि, अब इन विधान-परिषदोंको 'मताधिकारपर आधारित' प्रातिनिधिक स्वरूप प्राप्त है।

संसद-सदस्य श्री श्वानने विधेयकमें इस आशयका एक संशोधन पेश किया था कि 'विधान-परिषदोंका कोई ऐसा सुधार सन्तोषजनक न होगा, जिसमें चुनावके सिद्धांतका समावेश न हो।' उसका उत्तर देते हुए श्री कर्जनने कहा था :

> **मैं बताना चाहूँगा कि ऐसा नहीं है कि हमारे विधेयकमें प्रवरण, निर्वाचन और प्रत्यायोजनकी पद्धति जैसे किसी सिद्धान्तकी कोई गुंजाइश है ही**

१. २८ जून, १८९४ का।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। भाषणके पाठके लिए देखिए पृष्ठ ३१६-१७

नहीं। सदनकी अनुमतिसे मैं उपधारा १ के उपखण्डके शब्द पढ़कर सुनाता हूँ। उक्त उपखण्ड इस प्रकार है : "सपरिषद गवर्नर-जनरल भारतमन्त्रीकी स्वीकृतिसे समय-समयपर नियम बनायेगा कि गवर्नर-जनरल, गवर्नर या लेफ्टिनेंट गवर्नरको किन शर्तोंके अनुसार ऐसी नामजदगियाँ — या कोई एक नामजदगी करनी होगी। यह निर्देश भी वह करेगा कि किस ढंगसे ऐसे नियमोंका पालन किया जाये। . . ."

लॉर्ड किम्बर्लेने[1] उस उपधाराके बारेमें अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था :

> इस चुनाव-सिद्धान्तपर मैं अपना पूरा सन्तोष व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता।

लॉर्ड किम्बर्लेके व्यक्त किये हुए विचारोंसे भारत मन्त्री सहमत है; जैसा इस कानूनसे व्यक्त होता है :

> वाइसरायको अधिकार होगा कि वह भिन्न-भिन्न विचारोंके प्रतिनिधियोंको इन विधान-परिषदोंमें चुनाव-कानूनोंके अनुसार नामजद होनेके लिए आमन्त्रित करे।

माननीय श्री ग्लैड्स्टनने इसी विषयपर बोलते हुए विधेयक और उसके संशोधनका दूसरा वाचन पेश करनेवाले माननीय उपमन्त्रीके भाषणके स्पष्टीकरणके बाद कहा :

> मेरा खयाल है, मैं बखूबी कह सकता हूँ कि उपमन्त्रीके भाषणमें चुनावका तत्त्व उतने ही अर्थमें निहित दिखाई पड़ता है, जितने अर्थमें हमें अपेक्षा करनी चाहिए। . . . स्पष्ट है कि सदनके सामने महान प्रश्न भारतीय शासनमें चुनावका तत्त्व दाखिल करनेका है। और यह एक भारी और गहरी दिलचस्पीका विषय है। मैं चाहता हूँ कि उनके पहले कदम खरे हों और चुनावके तत्त्वको कार्यान्वित होनेका जो भी अवसर वे दें, वह वास्तविक हो। इसमें कोई तात्त्विक मतभेद नहीं है। मैं समझता हूँ कि यद्यपि माननीय सज्जन (श्री कर्जन)ने चुनाव-तत्त्वको सतर्कताके साथ स्वीकार किया है, फिर भी वह स्पष्ट स्वीकार ही है, भिन्न कुछ नहीं।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि उपर्युक्त कानूनके अनुसार बनाये और प्रकाशित किये गये नियम ऊपर उद्धृत विचारोंको पूर्णतः चरितार्थ करनेवाले हैं। उदाहरणके लिए, बम्बई विधान-परिषदमें १८ नामजद सदस्योंमें से ८ का चुनाव विधान-परिषदोंके लिए मताधिकार-प्राप्त विभिन्न प्रातिनिधिक संस्थाओं द्वारा हुआ है; या, नियमोंके शब्दोंमें, वे उन संस्थाओंकी 'सिफारिशोंपर नामजद' किये गये हैं। बम्बई निगम (जो स्वयं चुनावके आधारपर बनी हुई संस्था है), सपरिषद गवर्नर द्वारा निर्दिष्ट बम्बई प्रदेशके अन्य नगरपालिकाके निगम और ऊपर कहे अनुसार जिला व स्थानीय बोर्ड, दक्षिणके

१. विदेश मंत्री, १८९४-५।

सरदार या ऊपर कहे अनुसार अधिकृत अन्य बड़े-बड़े जमींदार, तथा व्यापारियोंके संघ आदि और बम्बई विश्वविद्यालयकी सेनेट — ये सब इन आठ सदस्योंका चुनाव या सिफारिश करते हैं। निर्णय बहुमतसे किया जाता है। जो संस्थाएँ कानूनी तरीकेसे स्थापित नहीं होतीं वे जिन नियमोंके अनुसार अपने सामने आये हुए प्रश्नोंका निर्णय करती या प्रस्तावोंको स्वीकार करती हैं उनके ही अनुसार ये चुनाव या सिफारिशें भी करती हैं।

यह सम्माननीय सदन देखेगा कि दक्षिण भारतके सरदारोंमें तो परिषदके चुनावोंमें सीधे मत देनेवाले लोग भी मौजूद हैं।

दूसरी विधान-परिषदोंके नियम भी बहुत-कुछ ऐसे ही हैं।

इस प्रकारका स्वरूप है भारतमें विधान-परिषदों और राजनीतिक मताधिकारका। इसलिए प्रार्थी सादर बताना चाहते हैं कि अन्तर रूपका नहीं, केवल अंशोंका है। कारण यह नहीं है कि भारतीय प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तोंको समझते नहीं। इस सम्बन्धमें श्री ग्लैड्स्टनके विचारोंको ही उद्धृत कर देना सबसे अच्छा होगा। उनके कुछ विचार तो ऊपर उद्धृत किये ही गये हैं। चुनावके तत्त्वके मर्यादित स्वरूपका स्पष्टीकरण उन्होंने इन शब्दोंमें किया है :

> सम्राज्ञी सरकारको समझ लेना चाहिए कि हमें तमाम आश्वासन दे दिये गये हैं कि शासनके इस शक्तिशाली यन्त्र (अर्थात्, चुनाव-तत्त्व) को अमलमें लानेका प्रयत्न किया जायेगा। परन्तु यदि इन आश्वासनोंके बावजूद ऐसा कुछ भी परिणाम न हुआ, जैसे कि हम आशा करते हैं, तो यह नितान्त गम्भीर निराशाका विषय माना जायेगा। यहाँ मैं इस बातका विचार नहीं कर रहा हूँ कि परिणाम कितना बड़ा होगा, बल्कि इस बातका कर रहा हूँ कि वह किस कोटि का होगा। मैं समझ सकता हूँ कि हम भारत जैसे एशियाई देशमें जो कुछ करना चाहते हैं उसे करनेमें भारी कठिनाइयाँ हैं, क्योंकि उसके पास अपनी पुरानी सभ्यता है, अपनी खास संस्थाएँ हैं, विविध जातियाँ, धर्म और धन्धे हैं और इतना विशाल देश तथा इतनी अधिक जनसंख्या है जितनी कि शायद चीनको छोड़कर कभी किसी एक राज्यमें नहीं रही। परन्तु कठिनाइयाँ कितनी भी बड़ी क्यों न हों, काम महान है। उसे सफलतापूर्वक पूर्ण करनेके लिए हद दर्जेकी बुद्धिमत्ता और सावधानीकी जरूरत होगी। इन सब बातोंसे हमें आशा होती है कि भारतका भविष्य महान है और हम उत्साहपूर्वक उसकी प्रतीक्षा करते हैं। हमें यह अपेक्षा करनेका उत्साह भी होता है कि उस विशाल और लगभग अपरिमेय देशमें चुनाव-तत्त्व-को — भले वह सीमित मात्रामें ही क्यों न हो — सचाईके साथ अमलमें लानेसे सच्ची सफलता प्राप्त होगी।

भारतीय विषयोंपर बोलनेके अधिकारी सभी व्यक्ति भारतीय विधान-परिषदके प्रातिनिधिक स्वरूपके सम्बन्धमें एकमत दीखते हैं।

भारतीय विषयोंके जो विद्वान जीवित हैं उनमें सबसे अधिकारपूर्वक बोल सकने वाले सर विलियम विल्सन हंटर हैं। उनका कथन है:

> लॉर्ड क्रॉसके १८९२ के कानूनके अनुसार, अब विधान-परिषदोंमें चुनाव-तत्त्वका सावधानीके साथ विस्तार किया जा रहा है। यह विस्तार सर्वोच्च तथा प्रान्तीय, दोनों सरकारोंकी परिषदोंमें हो रहा है।

'टाइम्स' ने नेटालमें भारतीयोंके मताधिकारकी चर्चा करते हुए कहा है:

> नेटालवासी भारतीय भारतमें जिन विशेषाधिकारोंका उपभोग करते हैं, उनसे अधिककी माँग नहीं कर सकते, और उन्हें भारतमें किसी प्रकारका मताधिकार हासिल है ही नहीं — यह तर्क वस्तुस्थितिके विपरीत है। भारतमें भारतीयोंको ठीक वही मताधिकार प्राप्त है, जो अंग्रेजोंको है।

नगरपालिकाके मताधिकारकी चर्चा करनेके बाद लेखमें कहा गया है:

> हमारी भारतीय शासन-प्रणालीमें जिसे उच्च मतदाता-मण्डल कहा जा सकता है, उसपर भी इसी तरहका सिद्धान्त आवश्यक संशोधनोंके साथ लागू है। सर्वोच्च और प्रान्तीय विधान-परिषदोंके निर्वाचित सदस्योंका चुनाव मुख्यतः भारतीयोंकी संस्थाओं द्वारा होता है। और ये परिषदें २२,१०,००,००० ब्रिटिश प्रजाकी व्यवस्था करती हैं। सर्वोच्च और प्रान्तीय विधानमण्डलोंमें सरकारी प्रतिनिधियोंके अलावा लगभग आधे सदस्य भारतीय हैं। इस सादृश्यको हदसे ज्यादा खींचना गलत होगा। परन्तु ब्रिटिश उपनिवेशोंमें भारतीयोंको मताधिकार न देनेके तर्कका जवाब इसमें मिल जाता है। उस तर्कका आधार यह है कि भारतीयोंको भारतमें मताधिकार प्राप्त नहीं है। जहाँतक भारतमें मत द्वारा शासनका अस्तित्व है, अंग्रेज और भारतीय एक-बराबर हैं। और नगर-पालिका, प्रान्तीय तथा सर्वोच्च परिषदोंमें समान रूपसे भारतीयोंका प्रतिनिधित्व प्रभावशाली है।

भारतमें नगरपालिकाके मताधिकार बहुत व्यापक है। और नगरपालिकाके निगम तथा स्थानीय बोर्ड लगभग सारे देशमें बिखरे हुए हैं।

नेटालमें जो भारतीय पहलेसे मतदाता-सूचीमें शामिल हैं उनकी चर्चा करते हुए 'टाइम्स' के उपर्युक्त लेखमें कहा गया है:

> ठीक इसी वर्गके लोग भारतके नगरपालिकाके तथा अन्य मतदाता मण्डलों में सबसे अधिक महत्त्व रखते हैं। वहाँकी कुल ७५० नगरपालिकाओंमें अंग्रेज और भारतीय मतदाताओंको बराबर अधिकार है। १८९१ में नगरपालिकाओंके ८३९ यूरोपीय सदस्योंके मुकाबले भारतीय सदस्योंकी संख्या ९,७९० थी। इसलिए भारतीय नगरपालिकाके बोर्डोंमें यूरोपीय मतोंकी संख्या ८ भारतीय मतोंके पीछे केवल १ थी, जब कि नेटालके मतदाता-मण्डलमें १ भारतीय मतके पीछे ३७ यूरोपीय मत हैं। . . . याद रहे, भारतीय नगरपालिकाएँ डेढ़ करोड़की आबादी और ५ करोड़ रुपयोंके खर्चकी व्यवस्था करती हैं।

प्रातिनिधिक संस्थाओंके स्वरूप और उनकी जिम्मेदारियोंसे भारतीयोंके परिचयके बारेमें उसी लेखमें कहा गया है:

> **शायद संसारमें कोई दूसरा देश ऐसा नहीं है, जिसमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ जनताके जीवनमें इतने गहरे समा गई हों। भारतमें युग-युगसे प्रत्येक जाति, प्रत्येक धंधे और प्रत्येक गाँवकी अपनी पंचायत रही है, जो अपने छोटे-से समाजके लिए नियम बनाती और उसका शासन करती थी। जबतक गत वर्ष 'पैरिश कौन्सिल्स ऐक्ट'[1] जारी नहीं किया गया तबतक इंग्लैंडमें भी इस तरहकी ग्राम-स्वराज्य प्रणालीका अस्तित्व नहीं था।**

संसद-सदस्य श्री श्वान इसी विषयपर कहते हैं:

> **ऐसा मत मानिये कि चुनावका प्रश्न भारतमें नया है। . . . चुनावका प्रश्न तो और भी खास भारतीय है—इससे ज्यादा खास भारतीय और कोई प्रश्न नहीं। हमारी ज्यादातर सभ्यता भारतसे आई है। और इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि हम खुद ही पूर्वके चुनाव-सिद्धान्तके एक विकसित रूपको अमलमें ला रहे हैं।**

इन परिस्थितियोंमें, भारतीय समाजके लिए अपने ऊपर चोट करनेके मंशासे बनाये गये इस विधेयकको समझना बहुत कठिन गुजर रहा है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि विधेयक अस्पष्ट और दुविधाजनक है। वह अवांछनीय है, और न तो यूरोपीयोंके लिए न्यायपूर्ण है, न भारतीयोंके लिए ही। इससे दोनों त्रिशंकुकी स्थितिमें पड़ जाते हैं, जो भारतीयोंके लिए बहुत कष्टजनक है।

हम अत्यन्त आदरके साथ सदनका ध्यान खींचते हैं कि वर्तमान मतदाता-सूचीके अनुसार भारतीय मतदाताओंकी संख्या ३८ यूरोपीय मतदाताओंके पीछे केवल एक है। इसके अलावा, भारतीय मतदाता अपने समाजके सबसे आदरणीय लोग हैं। वे इस उपनिवेशमें लम्बे समयसे निवास कर रहे हैं और यहाँ उनके भारी हित दाँव पर चढ़े हैं।

तथापि, कहा जाता है कि वर्तमान मतदाता-सूचीसे यह नहीं जाना जा सकता कि भविष्यमें भारतीय मत कितना बड़ा रूप अख्तियार कर लेंगे। परन्तु भारतीय समाजके सामने गत दो वर्षोंसे मताधिकारके छीने जानेका खतरा उपस्थित है। इस बीच पहलेके अलावा किन्हीं भारतीयोंने मतदाता-सूचीमें अपने नाम नहीं लिखाये। इससे, हमारे नम्र मतके अनुसार, इस तर्कका पूरा खण्डन हो जाता है।

सच तो यह है और हम व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकते हैं कि, यद्यपि कानूनके अनुसार मताधिकार पानेके लिए बहुत कम सम्पत्तिकी आवश्यकता है, उपनिवेशमें उतनी भी योग्यता रखनेवाले भारतीयोंकी संख्या बहुत कम है।

प्रार्थियोंका आदरपूर्वक निवेदन है कि विचाराधीन विधेयकपर अनेकानेक आपत्तियाँ की जा सकती हैं। वह अत्यन्त द्वेषजनक रूपमें रंग-भेद दाखिल करने वाला है क्योंकि, जिन दूसरे देशोंमें चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं उनके

१. पादरीके विशिष्ट क्षेत्रोंकी परिषदोंका कानून।

निवासियोंको तो मत देनेका अधिकार न होगा, परन्तु यूरोपीय राज्योंसे आये हुए लोग, अपने देशोंमें ऐसी संस्थाएँ न होनेपर भी, उपनिवेशके सामान्य मताधिकार कानूनके अनुसार मतदाता बन सकेंगे।

उससे, यदि पिता यूरोपीय हो तो, संदिग्ध चरित्रकी गैर-यूरोपीय स्त्रियोंके पुत्रों को तो मत देनेका अधिकार मिल जायेगा; परन्तु यदि कोई कुलीन यूरोपीय स्त्री किसी गैर-यूरोपीय जातिके कुलीन पुरुषसे विवाह कर ले तो उसका पुत्र सामान्य मताधिकार कानूनके अनुसार मतदाता नहीं बन सकेगा। विधेयक उनके आड़े आयेगा।

अगर मान लिया जाये कि भारतीय विधेयकके दायरेमें आ जाते हैं, तो फिर जिस तरीकेसे उन्हें मतदाता-सूचीमें अपने नाम लिखाने होंगे, वह सदैव उनके लिए सन्तापका कारण रहेगा। हो सकता है कि उससे पक्षपातका कोई तरीका निकल पड़े और भारतीय समाजके बीच गम्भीर झगड़े पैदा कर दे।

इसके अलावा, विधेयकका मंशा भारतीय समाजको अपने अधिकार स्थापित करनेके लिए अनन्त मुकदमेबाजीमें फँसा देनेका है। हम समझते हैं कि उन अधिकारोंकी व्याख्या तो उपनिवेशकी किसी अदालतका आश्रय लिये बगैर ही की जा सकती है।

इस सबसे अधिक, आज तो यूरोपीय लोग भारतीयोंका मताधिकार छीननेकी कामना करते हैं और आन्दोलन उनकी ओरसे हो रहा है। विधेयकके फलस्वरूप वह आन्दोलन भारतीयोंको करना होगा। और हमें भय है, उसे सदैव चलाते रहना पड़ेगा।

हम अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करते हैं कि इस तरहकी स्थिति उपनिवेश-निवासी सभी समाजोंके हितकी दृष्टिसे अत्यन्त अवांछनीय है।

प्रार्थियोंने एक वर्षसे अधिकतक सावधानीसे जाँच की है। अब वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारतीयोंके मतोंके यूरोपीयोंके मतोंपर हावी हो जानेका डर बिलकुल ख्याली है। इसलिए हम उत्कटतासे प्रार्थना और आशा करते हैं कि यह सम्माननीय सदन भारतीयोंके मताधिकारको खास तौरसे रोकनेवाले या प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें रंग-भेद दाखिल करनेवाले किसी विधेयकको स्वीकार करनेके पहले सच्ची स्थितिकी जाँच करा लेगा, जिससे यह पता चल जाये कि इस उपनिवेशमें सम्पत्तिके आधारपर मताधिकार प्राप्त कर सकनेवाले भारतीयोंकी संख्या कितनी है।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।[1]

अब्दुल करीम हाजी आदम
तथा अन्य

अंग्रेजी (एस० एन० ९८०) की फोटो-नकलसे।

१. यह प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किये जानेपर विधेयकका द्वितीय वाचन एक सप्ताहके लिए और स्थगित कर दिया गया था और वह ६ मईको ही पूरा हो पाया। १८ मईको विधेयक विधान मण्डलोंकी एक संयुक्त समितिको सौंप दिया गया, तब उसका तृतीय वाचन हुआ। उसके बाद, गवर्नरने विधेयकको सम्राज्ञीकी अनुमतिके लिए उपनिवेश मन्त्रीको भेज दिया। देखिए अर्ली फेज पृष्ठ, ६०९-१५।

९१. तार: जो० चेम्बरलेनको[1]

डर्बन
७ मई, १८९६

भारतीय समाज आपसे हार्दिक विनती करता है कि नेटाल मताधिकार विधेयक या उसमें मन्त्रियों द्वारा गत रात्रिको पेश किये गये परिवर्तनों को मंजूर न करें। प्रार्थनापत्र[2] तैयार कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सं० १७९, खण्ड १९६

१. इसी प्रकारके तार वेडरबर्न, हंटर और दादाभाई नौरोजीको भेजे गये थे। हंटरने १३ मईको तारकी प्राप्ति-सूचना देते हुए वचन दिया था कि "प्रार्थनापत्र मिलनेपर उसपर सावधानीसे विचार किया जायेगा।" "हंटरने एक पखवाड़े पहले ही चैम्बरलेनसे भेंट की थी, जिन्होंने प्रार्थनापत्रके प्रति सहानुभूति प्रकट की, परन्तु कहा था कि, दक्षिण आफ्रिकामें हमारे सामने आई पेचीदगियोंके मौजूदा दौरमें असन्तुलन-कारी तत्त्वोंको और बढ़ानेमें कठिनाई है।" हंटरने आगे कहा था: "न्याय अवश्य होगा लेकिन कुछ धीमी गतिसे ही", क्योंकि इसे "इंगलैंडका लोकमत भारतीय कांग्रेस दल द्वारा सदासे एक ही लहजेमें की जानेवाली शिकायतसे अलग करके नहीं देख पाता . . .।" हंटरने अन्तमें सलाह दी थी: "सफलता प्राप्त करनेके लिए आपको यही करना है कि अपनी बात दृढ़तापूर्वक कहें।" (एस० एन० ९४८) २२ मईको उन्होंने फिर लिखा कि उपनिवेश मन्त्रीने आश्वस्त किया है कि वे नेटालके भारतीयोंके प्रार्थना-पत्रपर पूरी तरह गौर करेंगे। (एस० एन० ९८५)

२. दादाभाई नौरोजीने, इस तारकी प्राप्ति-सूचना देते हुए, २१ मईको लिखा था कि वेडरबर्नने वह तार ब्रिटिश कमेटीकी ओरसे उनके पास भेज दिया था। इस विषयके सम्बन्धमें चेम्बरलेनके साथ हुए पत्र-व्यवहारका उल्लेख करते हुए, उन्होंने लिखा था: "मुझे खुशी है, आपके प्रार्थनापत्रपर विचार किया जायेगा और उसके प्राप्त होने या उसपर विचार कर लेनेके पहले कोई कार्रवाई नहीं की जायेगी।" (एस० एन० ९७३)

९२. पत्र : प्रधानमन्त्रीको

डर्बन
१४ मई, १८९६

सेवामें
माननीय प्रधान मन्त्री
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

बताया जाता है कि आपने मताधिकार विधेयकके दूसरे वाचनके समय नेटाल भारतीय कांग्रेसके बारेमें यह कहा है :

शायद सदस्यगण जानते न होंगे कि इस देशमें एक संघ है। वह अपने ढंगका बहुत शक्तिशाली और बहुत ऐक्यबद्ध संघ है, हालाँकि वह करीब-करीब गुप्त है। मेरा मतलब भारतीय कांग्रेससे है।

क्या मैं पूछनेकी धृष्टता कर सकता हूँ कि आपके भाषणके उस अंशकी यह रिपोर्ट सही है अथवा नहीं? अगर सही है तो क्या इस विश्वासका कोई आधार है कि कांग्रेस 'करीब-करीब एक गुप्त संस्था है?' मैं आपका ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित करनेकी इजाजत चाहता हूँ कि जब ऐसी संस्था स्थापित करनेका इरादा किया गया था, तब इसकी सूचना अखबारोंमें दे दी गई थी। जब संस्थाकी प्रत्यक्ष स्थापना हुई, उस समय 'विटनेस'ने उसका उल्लेख किया था। संस्थाकी वार्षिक कार्रवाइयाँ और सदस्योंकी सूचियाँ बराबर पत्रोंको भेजी जाती रही हैं और पत्रोंने उनपर टीका-टिप्पणी भी की है। ये कागजात मैंने कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे सरकारको भी भेजे हैं।[1]

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री, नेटाल भारतीय कांग्रेस

अंग्रेजी (एस० एन० ९८१) से।

१. सी० बर्डने १६ मईको पत्रका यह उत्तर दिया: "प्रधान मन्त्रीके नाम इसी महीनेकी १४ तारीखके आपके पत्रमें उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दोंका उल्लेख किया गया था, जो उन्होंने मताधिकार विधेयकके द्वितीय वाचनके दौरान नेटाल भारतीय कांग्रेसके बारेमें कहे थे। सर जॉन रॉबिन्सनकी इच्छानुसार, मैं उसके उत्तरमें आपको बतला रहा हूँ कि उन्होंने कांग्रेसको एक लगभग गुप्त संस्था अपने इस विश्वासके कारण कहा था कि कांग्रेसकी बैठकोंमें आम जनता और समाचारपत्रोंको नहीं जाने दिया जाता। यदि इस मामलेमें प्रधान मन्त्रीकी जानकारी गलत हो तो मैं आपको बतलाता हूँ कि वह बड़ी खुशीसे उसे सही करनेको तैयार हैं। (एस० एन० ९८१)

९३. पत्र : सी० बर्डको

डर्बन
१८ मई, १८९६

श्री सी० बर्ड
मुख्य उपसचिव
औपनिवेशिक कार्यालय
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

माननीय प्रधान मन्त्रीके नाम नेटाल भारतीय कांग्रेस-सम्बन्धी मेरे पत्रके उत्तरमें आपका १६ ता० का पत्र सं० २८३७/९६ मुझे मिला।

इस विषयमें मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि कांग्रेसकी बैठकें हमेशा खुलेआम होती हैं और उनमें अखबारोंके लोगों तथा जनताको आनेकी इजाजत रहती है। कुछ यूरोपीय सज्जनोंको, जिनके बारेमें कांग्रेस-सदस्योंका खयाल है कि वे बैठकोंमें दिलचस्पी रखते होंगे, खास तौरसे आमन्त्रित किया गया था। एक सज्जन आमन्त्रण स्वीकार करके बैठकमें आये भी थे। अनामन्त्रित यूरोपीय प्रेक्षक भी एक-दो बार कांग्रेसकी बैठकोंमें आये हैं।

कांग्रेसके एक नियममें यह व्यवस्था है कि यूरोपीयोंको उपाध्यक्ष बननेके लिए आमन्त्रित किया जा सकता है। इस नियमके अनुसार, दो सज्जनोंसे पूछा भी गया था कि क्या वे इस सम्मानको स्वीकार करेंगे? परन्तु वे राजी नहीं हुए। कांग्रेसकी बैठकोंकी कार्रवाई नियमित रूपसे लिखी जाती है।[1]

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री, नेटाल भारतीय कांग्रेस

अंग्रेजी (एस० एन० ९८३) से।

१. सर जॉन रॉबिन्सनने संसदमें इस पत्रका उल्लेख करते हुए कहा था कि उनको कोई स्पष्टीकरण नहीं करना है और उन्होंने पत्र-व्यवहारका संक्षिप्त सार प्रस्तुत कर दिया।

९४. प्रार्थनापत्र : जो० चेम्बरलेनको

डर्बन
२२ मई, १८९६

सेवामें

परम माननीय जोजेफ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, सम्राज्ञी-सरकार
लंदन

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटालवासी भारतीय
ब्रिटिश प्रजाजनोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी मताधिकार कानून संशोधन विधेयकके सम्बन्धमें महानुभावके विचारके लिए नीचे लिखा निवेदन पेश करना चाहते हैं। यह विधेयक नेटाल सरकारकी ओरसे नेटालकी विधानसभामें पेश किया गया है। १३ मई, १८९६को कुछ संशोधनोंके साथ इसका तीसरा वाचन हुआ था।

विधेयकका पाठ, जैसा कि वह ३ मार्च, १८९६ के नेटाल गवर्नमेंट 'गजट'में प्रकाशित हुआ था, निम्नलिखित है:

मताधिकार-सम्बन्धी कानूनके संशोधनार्थ:

चूँकि मताधिकार-सम्बन्धी कानूनका संशोधन करना जरूरी है,

इसलिए नेटालकी विधान परिषद और विधानसभाके परामर्श तथा सहमतिके साथ और उनके द्वारा महामहिमामयी सम्राज्ञी निम्नलिखित कानून बनाती हैं:

१. कानून सं० २५, १८९४ रद कर दिया जाये, और वह इसके द्वारा रद किया जाता है।

२. जो लोग इस कानूनके खण्ड ३ के अमलके अन्तर्गत हैं उन्हें छोड़कर किन्हीं दूसरे व्यक्तियोंको, जो (यूरोपीय वंशके न होते हुए) इसी देशके हों, या ऐसे देशोंके निवासियोंकी पुरुष-शाखाके वंशज हों, जिनमें अबतक चुनाव-मूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं, तबतक किसी निर्वाचक सूची या मतदाता-सूचीमें नाम लिखानेका, या १८९३ के संविधान-कानूनके खण्ड २२ के, अथवा विधानसभा-सदस्योंके चुनाव-सम्बन्धी किसी अन्य कानूनके अर्थके अन्तर्गत निर्वाचककी हैसियतसे मत देनेका हक नहीं होगा, जबतक कि वे सपरिषद गवर्नरसे इस कानूनके अमलसे बरी किये जानेका आदेश प्राप्त न कर लें।

३. इस कानूनके खण्ड २ की व्यवस्थाएँ उस खण्डमें निर्दिष्ट उन लोगों पर लागू नहीं होंगी, जिनके नाम इस कानूनके अमलमें आनेकी तारीखको किसी मतदाता-सूचीमें वाजिबी तौरसे दर्ज हों और जो अन्यथा निर्वाचक बनने की योग्यता तथा हक रखते हों।

उपर्युक्त विधेयकके खण्ड १ द्वारा रद किया गया कानून निम्नलिखित है:

चूँकि मताधिकार-सम्बन्धी कानूनका संशोधन करना और संसदीय संस्थाओं के अधीन मताधिकारका प्रयोग करनेका अभ्यास न रखनेवाली एशियाई जातियोंको उससे निकाल देना जरूरी है,

इसलिए नेटालकी विधान-परिषद और विधानसभाके परामर्श तथा सहमतिके साथ और उनके द्वारा महामहिमामयी सम्राज्ञी निम्नलिखित कानून बनाती हैं:

१. इस कानूनके खण्ड २ में अपवाद माने गये लोगोंको छोड़कर एशियाई वंशोंके लोगोंको किसी निर्वाचक-सूची या मतदाता-सूचीमें अपने नाम लिखानेका या १८९३ के संविधान कानूनके खण्ड २२ के, अथवा विधानसभा-सदस्योंके चुनाव-सम्बन्धी किसी भी कानूनके अर्थके अन्तर्गत निर्वाचकोंकी हैसियतसे मत देनेका अधिकार नहीं होगा।

२. इस कानूनके खण्ड १ की व्यवस्थाएँ उस खण्डमें उल्लिखित वर्गके उन लोगोंपर लागू नहीं होंगी, जिनके नाम इस कानूनके अमलमें आनेकी तारीखको किसी मतदाता-सूचीमें वाजिबी तौरसे दर्ज हों और जो अन्यथा निर्वाचक बननेकी योग्यता तथा हक रखते हों।

३. यह कानून तबतक अमलमें नहीं लाया जायेगा जबतक गवर्नर सरकारी घोषणा करके नेटाल गवर्नमेंट 'गजट' में सूचना न निकाल दें कि सम्राज्ञी ने कृपा कर इस कानूनको अस्वीकार नहीं किया। और इसके बाद यह कानून उस तारीखसे अमलमें आयेगा जो गवर्नर इसी घोषणा द्वारा या किसी दूसरी घोषणा द्वारा सूचित करे।

विचाराधीन विधेयकके सम्बन्धमें २८ अप्रैल, १८९६ को विधानसभाको एक प्रार्थनापत्र[१] भेजा गया था। उसमें भारतीयोंके तत्सम्बन्धी विचार स्पष्ट कर दिये गये थे। उसकी एक नकल इसके साथ नत्थी है, जिसपर 'क' चिह्न लगा है।

६ मई, १८९६ को विधेयकका दूसरा वाचन हुआ था। उस समय प्रधान मन्त्री माननीय सर जॉन रॉबिन्सनने अपने भाषणके दौरान कहा था कि मन्त्रियोंने आपसे यह जाननेकी कोशिश की थी कि क्या आप पूर्वोक्त विधेयकमें 'चुनावमूलक प्राति-निधिक संस्थाएँ' शब्दोंके पहले 'मताधिकारपर आधारित' शब्द जोड़ देनेको सहमत होंगे; और आप इसके लिए राजी थे।

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: नेटाल विधान सभाको", २७-४-१८९६।

इसपर ७ मई, १८९६ को प्रार्थियोंने महानुभावको निम्नाशय का तार भेजा :

भारतीय समाज आपसे हार्दिक विनती करता है कि नेटाल मताधिकार विधेयक या उसमें मन्त्रियों द्वारा गत रात्रिको पेश किये गये परिवर्तनोंको मंजूर न करें। प्रार्थनापत्र तैयार कर रहे हैं।

तथापि, ११ मई, १८९६ को तद्विषयक समितिकी बैठकमें सर जॉन रॉबिन्सनने घोषणा की कि महानुभावने और भी परिवर्धन कर देने —— अर्थात् 'मताधिकार' के पहले 'संसदीय' शब्द जोड़ देनेकी सम्मति दे दी है।

फलतः विधेयकका प्रातिनिधिक संस्थाओं-सम्बन्धी भाग अब इस प्रकार पढ़ा जायेगा —— 'संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ।'

प्रार्थियोंका नम्र खयाल है कि जहाँतक भारतीय समाजका —— और सचमुच, सभी समाजोंका —— सम्बन्ध है, वर्तमान विधेयक उस कानूनसे भी बदतर है, जिसे वह रद करता है।

इसलिए प्रार्थियोंको दुःख है कि आपकी प्रसन्नता विधेयकको मंजूरी देनेमें रही। परन्तु उनका विश्वास है कि नीचे आपके सामने जो तथ्य और तर्क पेश किये जा रहे हैं उनसे आपको अपने विचारोंपर फिरसे गौर करनेकी प्रेरणा मिलेगी।

प्रार्थियोंका हमेशासे यह दावा रहा है कि भारतमें भारतीयोंको निश्चय ही 'चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओं' का लाभ प्राप्त है। परन्तु मताधिकारके प्रश्न पर प्रकाशित लेखादिसे मालूम होता है कि भारतीयोंके पास ऐसी संस्थाएँ हैं —— यह महानुभाव नहीं मानते। महानुभावके मतके लिए अधिकसे-अधिक आदर रखते हुए प्रार्थी संलग्न पत्र 'क' में उद्धृत अंशोंकी ओर महानुभावका ध्यान आकर्षित करते हैं। उनमें विपरीत मतका पोषण किया गया है।

भारतमें 'चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओं' के विषयमें आपके विचारों और वर्तमान विधेयककी स्वीकृतिसे नेटालके भारतीय समाजकी स्थिति अत्यन्त कष्टकर और अटपटी हो गई है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि :

(१) नेटालमें भारतीयोंके मताधिकारपर प्रतिबन्ध लगानेवाले किसी कानूनकी जरूरत नहीं है।

(२) अगर इस विषयमें कोई सन्देह हो तो पहले जाँच कराई जाये कि इस प्रकारकी आवश्यकता है या नहीं।

(३) अगर मान लिया जाये कि आवश्यकता है ही, तो भी वर्तमान विधेयक सीधे और खुले तरीकेसे कठिनाईका सामना करनेके लिए नहीं बनाया गया।

(४) अगर सम्राज्ञी-सरकारको पूरा सन्तोष हो गया है कि ऐसे कानूनकी जरूरत है और वर्गगत कानून बनाये बिना किसी विधेयकसे कठिनाई हल न होगी, तो ज्यादा अच्छा यह होगा कि मताधिकार-विधेयक कोई भी हो, उसमें भारतीयोंका उल्लेख विशेष रूपसे किया जाये।

(५) वर्तमान विधेयकसे, उसके सन्दिग्ध अर्थ और अस्पष्टताके कारण, अनन्त मुकदमेबाजीका दौर-दौरा शुरू हो जाना सम्भव है।

(६) इससे भारतीय समाज ऐसे खर्चमें पड़ जायेगा, जिसे बरदाश्त करना उसके लिए करीब-करीब असम्भव होगा।

(७) मान लिया जाये कि विधेयक भारतीय समाजके मताधिकारपर प्रतिबन्ध लगाता है। तो फिर, उस समाजके किसी सदस्यके उसके अमलसे छुटकारा पानेका जो उपाय उसमें बताया गया है, प्रार्थी आदरपूर्वक निवेदन करते हैं, वह मनमाना तथा अन्यायपूर्ण है। उससे भारतीय समाजके अन्दर झगड़े पैदा होनेकी सम्भावना है।

(८) जो कानून रद किया गया है उसके समान ही यह विधेयक भी यूरोपीयों तथा अन्य वर्गोंके बीच द्वेषजनक भेद-भाव उत्पन्न करनेवाला है।

प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि नेटालकी मतदाता-सूचीकी वर्तमान दशामें भारतीयोंके मताधिकारपर रोक लगानेके लिए कोई कानून बनाना बिलकुल अनावश्यक है। यह कानून सम्राज्ञीकी प्रजाके एक बहुत बड़े हिस्सेपर असर डालनेवाला है और इसे स्वीकार करनेमें गैर-जरूरी जल्दी की जाती दिखाई दे रही है। यह मंजूर किया जा चुका है कि ९,३०९ यूरोपीय मतदाताओंके मुकाबले भारतीय मतदाताओंकी संख्या केवल २५१ है; उनमें से २०१ या तो व्यापारी हैं या मुहर्रिर, सहायक, शिक्षक आदि; ५० बागवान तथा अन्य धंधेवाले हैं। इन मतदाताओंमें से ज्यादातर लम्बे समयसे उपनिवेशमें बसे हुए हैं। हमारा निवेदन है कि इन आँकड़ोंसे किसी रोक-थामके कानूनकी जरूरत सिद्ध नहीं होती। विचाराधीन विधेयकका मंशा एक दूरके, शक्य और सम्भाव्य खतरेके बारेमें व्यवस्था करनेका है। सच तो यह है कि एक ऐसा खतरा मान लिया गया है, जिसका अस्तित्व ही नहीं है। सर जॉन रॉबिन्सनने विधेयकका दूसरा वाचन पेश करते हुए भारतीय मतों द्वारा यूरोपीय मतोंको निगल जानेका खतरा बताया था। उन्होंने अपने इस भयके निम्नलिखित तीन कारण बताये थे :

(१) वर्तमान विधेयक द्वारा रद किये जानेवाले मताधिकार-कानूनके सम्बन्धमें सम्राज्ञी-सरकारको जो प्रार्थनापत्र भेजा गया था, उसपर लगभग ९,००० भारतीयोंने हस्ताक्षर किये थे।

(२) उपनिवेशमें आम चुनाव नजदीक आ रहे हैं।

(३) नेटाल भारतीय कांग्रेसका अस्तित्व।

जहाँतक पहले कारणका सम्बन्ध है, इस विषयके पत्र-व्यवहार तकमें नेटाल सरकारने कहा है कि वे ९,००० हस्ताक्षरकर्त्ता मतदाता-सूचीमें शामिल होना चाहते हैं। प्रार्थनापत्रका पहला अनुच्छेद इस तर्कका पर्याप्त उत्तर है। नम्र निवेदन है कि प्रार्थियोंने ऐसी किसी चीजकी कभी माँग नहीं की। उन्होंने सारेके-सारे भारतीयोंका मताधिकार छीननेका विरोध बेशक किया है। प्रार्थी मानते हैं कि प्रत्येक भारतीयपर —चाहे वह सम्पत्तिजन्य योग्यता रखता हो या न रखता हो—विधेयकका बहुत भारी असर पड़नेवाला है। वे स्वीकार करते हैं कि माननीय प्रस्तावकके बताये इस

तथ्यसे दिखलाई पड़ता है कि भारतीयोंमें एक अंशतक संगठन करनेकी शक्ति है। परन्तु वे आदरके साथ दावा करते हैं कि संगठन-शक्ति कितनी भी जबरदस्त क्यों न हो, वह प्राकृतिक बाधाओंको जीत नहीं सकती। उन ९,००० हस्ताक्षरकर्त्ताओंमें पहलेसे ही मतदाता-सूचीमें शामिल व्यक्तियोंको छोड़कर १०० भी ऐसे नहीं हैं, जो कानूनके अनुसार आवश्यक सम्पत्तिजन्य मताधिकार-योग्यता रखते हों।

दूसरे कारणके सम्बन्धमें माननीय प्रस्तावकने कहा था :

> **मैं सदस्योंको याद दिला देना चाहता हूँ कि आम चुनाव शीघ्र ही होने वाले हैं। सदस्योंको सोचना होगा कि ये आम चुनाव किस मतदाता-सूचीके आधारपर किये जाने हैं। यह बात मेरे कहनेकी नहीं है कि आगामी मतदाता सूचीमें कितने भारतीय मतदाता हों, या न हों। परन्तु सरकार समझती है कि समय आ गया है जब कि इस प्रश्नको उठानेमें और देर नहीं करनी चाहिए और इसे *हमेशाके लिए एक ही बारमें* तय कर डालना चाहिए।**

माननीय प्रस्तावकके प्रति समस्त उचित आदरके साथ प्रार्थी निवेदन करते हैं कि इस सारे भयका सचमुच कोई आधार नहीं है। प्रवासी-संरक्षककी १८९५ की रिपोर्टके अनुसार, उपनिवेशके ४६,३४३ भारतीयोंमें से ३०,३०३ स्वतन्त्र भारतीय हैं। इनमें लगभग ५,००० व्यापारी भारतीयोंको जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार ४५,००० से ऊपर यूरोपीयोंके मुकाबले केवल ३५,००० भारतीय ऐसे हैं जो उनके साथ थोड़ी-बहुत होड़ कर सकते हैं। यह तो जान लेना सरल है कि १६,००० गिरमिटिया भारतीय गिरमिटमें बँधे रहकर कभी होड़ नहीं कर सकते। परन्तु ३०,३०३ में से एक बहुत बड़ी बहुसंख्या तो गिरमिटिया भारतीयोंसे एक ही सीढ़ी ऊपर है। और प्रार्थी व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकते हैं कि इस उपनिवेशमें हजारों भारतीय ऐसे हैं, जो १० पौंड सालाना किराया नहीं देते। सच तो यह है कि हजारों लोग इतनी रकमपर ही अपनी गुजर-बसर करते हैं। प्रार्थी पूछते हैं, तो फिर भारतीयोंके अगले वर्ष मतदाता-सूचीपर छा जानेका डर कहाँ है?

मताधिकार छीने जानेका खतरा गत दो वर्षोंसे चला आ रहा है। इस बीच दो बार मतदाता-सूचीमें संशोधन किया जा चुका है। भारतीयोंको डर था कि कहीं उनमें से बहुत-से लोगोंको सूचीमें छोड़ न दिया जाये। इसलिए उन्हें हर तरहसे अपने मत बढ़ानेकी फिक्र थी। फिर भी मतदाता-सूचीमें एक भी भारतीयका नाम नहीं बढ़ा।

परन्तु माननीय प्रस्तावक आगे कहते ही गये :

> **शायद सदस्यगण जानते न होंगे कि इस देशमें एक संघ है। वह अपने ढंगका बहुत शक्तिशाली और बहुत ऐक्यबद्ध संघ है, हालाँकि वह करीब-करीब गुप्त है। मेरा मतलब भारतीय कांग्रेससे है। वह एक ऐसा संघ है जिसके पास बहुत धन है। वह एक संघ है जिसके अध्यक्ष बहुत कर्मठ और बहुत योग्य व्यक्ति हैं। और वह एक संघ है जिसका घोषित ध्येय उपनिवेशके काम-काजमें प्रबल राजनीतिक शक्तिका प्रयोग करना है।**

प्रार्थियोंका निवेदन है कि कांग्रेसके बारेमें यह अन्दाजा वस्तुस्थितिकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता। जैसा कि नेटालके प्रधान मन्त्री और कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीके पत्र-व्यवहारसे स्पष्ट हो जायेगा, गुप्तताका आरोप एक गलत खयालके कारण किया गया था (परिशिष्ट ख, ग, घ)[१]। इस विषयमें उन्होंने २० तारीखको विधानसभामें एक वक्तव्य भी दिया था।

कांग्रेसने कभी किसी रूपमें 'प्रबल राजनीतिक शक्तिका प्रयोग करने'का इरादा या प्रयत्न भी नहीं किया। कांग्रेसके ध्येय नीचे लिखे अनुसार हैं, जो पिछले वर्ष दक्षिण आफ्रिकाके प्रायः प्रत्येक पत्रमें प्रकाशित किये गये थे :

"(१) उपनिवेशवासी यूरोपीयों और भारतीयोंके बीच अधिक मेलजोल पैदा करना और मित्रताका भाव बढ़ाना।

"(२) पत्रोंमें लेख लिखकर, पुस्तिकाएँ प्रकाशित करके और व्याख्यानों द्वारा भारत और भारतीयोंके बारेमें जानकारीका प्रसार करना।

"(३) भारतीयोंको, और खास तौरसे उपनिवेशमें पैदा हुए भारतीयोंको, भारतीय इतिहासकी शिक्षा देना और उन्हें भारतीय विषयोंका अध्ययन करनेको प्रेरित करना।

"(४) भारतीयोंको जो मुसीबतें भोगनी पड़ रही हैं उनका पता लगाना और उनका निवारण करनेके लिए सब वैध उपायोंसे आन्दोलन करना।

"(५) गिरमिटिया भारतीयोंकी हालतोंकी जाँच करना और उन्हें सहायता देकर विशेष कठिनाइयोंसे उबारना।

"(६) गरीबों और जरूरतमन्दोंको सब उचित तरीकोंसे सहायता देना।

"(७) और, आम तौरपर ऐसे सब काम करना, जिनसे भारतीयोंकी नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक और राजनीतिक स्थितिमें सुधार हो।"

इस प्रकार देखा जायेगा कि कांग्रेसका ध्येय भारतीयोंके अपकर्षको रोकना ही है, राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना नहीं। जहाँतक धनकी बात है, लिखनेके समय कांग्रेसके पास लगभग १,०८० पौंडकी जायदाद है, और १४८ पौंड ७ शि० ८ पेंसकी रकम बैंकमें जमा है। यह धन धर्मार्थ कार्यों, प्रार्थनापत्रोंकी छपाई और चालू खर्चके लिए है। प्रार्थियोंके विनम्र मतसे यह धन कांग्रेसके ध्येय पूरे करनेके लिए भी काफी नहीं है। धन न होनेसे शिक्षा-सम्बन्धी कार्यमें भारी बाधा पड़ रही है। इसलिए प्रार्थी निवेदन करना चाहते हैं कि वर्तमान विधेयकका मंशा जिस खतरेसे रक्षा करनेका है, उसका कोई अस्तित्व है ही नहीं।

तथापि सम्राज्ञी-सरकारसे प्रार्थियोंकी यह विनती नहीं है कि उनके अपने कथनके आधारपर ही उपर्युक्त तथ्योंको स्वीकार कर लिया जाये। अगर इनमें से किसीके भी बारेमें कोई सन्देह हो तो प्रार्थियोंका निवेदन है, उचित तरीका यह होगा कि उनके बारेमें जाँच कराई जाये। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि हजारों लोगोंमें मतदाता बननेके लिए आवश्यक सम्पत्तिजन्य योग्यता नहीं है। इसलिए इसकी खास तौरसे जाँच की जानी चाहिए कि उपनिवेशमें ऐसे भारतीय कितने हैं, जिनके पास ५०

१. देखिए "पत्र : प्रधान मन्त्रीको", १४-५-१८९६ और "पत्र : सी० बर्डको", १८-५-१८९६।

पौंड मूल्यकी अचल सम्पत्ति है, या जो १० पौंड वार्षिक किराया अदा करते हैं। ऐसा हिसाब तैयार करनेमें न तो बहुत समय लगेगा और न बहुत व्यय ही होगा। साथ ही इससे मताधिकारके प्रश्नको सन्तोषजनक रूपसे हल करनेमें बहुत मदद मिलेगी। *कोई-न-कोई* कानून मंजूर कर लेनेकी सरगर्म जल्दबाजी प्रार्थियोंके नम्र मतसे, समग्र उपनिवेशियोंके सर्वोत्तम हितोंके लिए हानिकारक होगी। भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे जहाँतक प्रार्थियोंका सम्बन्ध है, वे सम्राज्ञी-सरकारको आश्वासन देते हैं कि उनका इरादा आगामी वर्षके आम चुनावोंकी मतदाता-सूचीमें एक भी भारतीयका नाम शामिल करानेका नहीं है। यही आश्वासन वे अधिकारी रूपसे उस संस्थाकी ओरसे भी देते हैं, जिसके सदस्य होनेका उन्हें सम्मान प्राप्त है।

सरकारी मुखपत्रने वर्तमान विधेयककी चर्चा करते हुए सम्भवतः एक पर-प्रेरित लेखमें इस विचारका समर्थन किया है कि 'खतरा काल्पनिक' है। उसने कहा है:

> और हमें निश्चय है कि यदि कभी एशियाई मतोंसे इस उपनिवेशमें यूरोपीय शासनकी स्थिरतापर खतरा आ ही जाये, तो सम्राज्ञी सरकार इस प्रकारकी कठिनाईपर पार पानेके उपाय निकाल लेगी। नया विधेयक उन सब लोगोंके मताधिकार प्राप्त करनेपर कुछ मर्यादाएँ लादता है, जो यूरोपीय वंशके नहीं हैं। अभी, वतनी लोगों सम्बन्धी कानूनके अनुसार, केवल वतनियोंको छोड़कर शेष सब जातियों और वर्गोंकी ब्रिटिश प्रजाको मताधिकार सुलभ है। फिर भी कुल ९,५६० मतदाताओंमें से भारतीय मतदाताओंकी संख्या सिर्फ २५० के लगभग है; या, यों कहा जा सकता है कि ३८ यूरोपीय मतदाताओंके पीछे सिर्फ एक भारतीयको मत देनेका अधिकार प्राप्त है। इस स्थितिमें हमारा विश्वास है कि नये विधेयकसे अगर हमेशाके लिए नहीं तो भी बहुत वर्षोंके लिए इस विषयकी सभी अपेक्षाएँ पूरी हो जायेंगी। उदाहरणके लिए, दक्षिण कैरोलीनामें २१ वर्षसे ऊपरके नीग्रो लोगोंकी संख्या १,३२,९४९ है। इसके विपरीत २१ वर्षसे ऊपरके गोरे १,०२,५६७ ही हैं। फिर भी, अल्पसंख्यक होनेपर भी, गोरोंने प्रभुत्व शक्ति अपने हाथोंमें कायम रखी है। सच बात यह है कि संख्याके बावजूद शासनकी बागडोर हमेशा वरिष्ठ जातिके हाथोंमें ही रहेगी। *इसलिए हमारा ऐसा विश्वास बनता है कि भारतीय मतों द्वारा यूरोपीय मतोंको निगल जानेका खतरा काल्पनिक है।* हम जो कुछ जानते हैं उससे हमारा खयाल है कि भारतको 'चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओं'वाला देश करार दिया जायेगा। वास्तवमें, बार-बार पेश की जानेवाली यह दलील कि भारतीय उन संस्थाओंके स्वरूप और दायित्वोंसे अपरिचित हैं, सचमुच ठीक निशानेपर नहीं बैठती। कारण यह है कि भारतमें लगभग ७५० नगरपालिकाएँ हैं। उनमें ब्रिटिश और भारतीय मतदाताओंको बराबर अधिकार है। १८९१ में ८३९ यूरोपीय नगरपालिकाके सदस्योंके मुकाबले भारतीय, सदस्य ९७९० थे।

. . . फिर, अगर हम मान भी लें कि भारतीयोंको 'चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाओं'के देशसे आये हुए करार दिया जायेगा, तो भी *हम नहीं मानते कि हमारे आक्रान्त हो जानेका खतरा जरा भी सम्भव है; क्योंकि पिछले अनुभवने साबित कर दिया है कि भारतीयोंका जो वर्ग साधारणतः यहाँ आता है वह मताधिकारकी चिन्ता नहीं करता। इसके अलावा, उनमें से अधिकतर मताधिकारके लिए आवश्यक थोड़ी-सी सम्पत्तिजन्य योग्यता भी नहीं रखते।* फिर हम एक ही साम्राज्यके अंग हैं। उसके प्रति हमारा उत्तरदायित्व हमें भारतीयोंको भारतीयोंके ही नाते मताधिकार-जैसे विशेषाधिकारके प्रयोगसे वंचित करनेकी इजाजत नहीं देता। इसलिए, जहाँतक हमारा सम्बन्ध है, ऐसा रुख कारगर होनेवाला नहीं है। और उसे छोड़ देना ही अच्छा है। अगर नये कानूनकी व्यवस्थाएँ मतदाता-सूचीमें अवांछित लोगोंका आना न रोक सकें तो हम मताधिकारके लिए अपेक्षित योग्यताको बढ़ा सकते हैं। इससे हमें रोकनेवाली चीज क्या है? अभी साम्पत्तिक योग्यता बहुत थोड़ी है। इसलिए उसे बढ़ाकर दूना भी किया जा सकता है। शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताकी शर्त भी मढ़ी जा सकती है। इससे यूरोपीय मतदाता तो एक भी खारिज न होगा, परन्तु भारतीय मतदाताओंपर व्यापक असर पड़ेगा। भारतीयोंमें लगभग १०० पौंडकी अचल सम्पत्ति रखनेवालों या २० पौंड सालाना किराया देनेवालों और अंग्रेजी लिखपढ़ सकनेवालोंकी संख्या बहुत ही कम होगी। यदि यह उपाय विफल हो जाये तो हम मिसिसिपि योजना या परिस्थितियोंके अनुकूल उसका कोई संशोधित रूप स्वीकार कर सकते हैं। इससे हमें रोकनेवाली कोई चीज नहीं होगी। (५ मार्च, १८९६)

इस तरह, सरकारी मुखपत्रके अनुसार ही स्पष्ट है कि वर्तमान सम्पत्तिजन्य योग्यता, मतदाता-सूचीमें भारतीयोंकी किसी भी अनुचित भरमारको रोकनेके लिए काफी है। और यह भी कि वर्तमान विधेयकका एकमात्र उद्देश्य भारतीय समाजको सताना — उसे खर्चीली मुकदमेबाजीमें झोंक देना है।

१८९५ के 'मॉरिशस आलमैनक'के अनुसार, १८९४ में 'सामान्य आबादी' शीर्षकके अन्तर्गत मॉरिशसकी आबादी १,०६,९९५ थी। इसके मुकाबले भारतीयोंकी संख्या २,५९,२२४ बताई गई थी। वहाँ मताधिकारकी योग्यता इस प्रकार है:

प्रत्येक पुरुषको किसी भी वर्ष किसी भी निर्वाचन-क्षेत्रकी मतदाता-सूचीमें नाम दर्ज करानेका, और नाम दर्ज हो जानेपर उस क्षेत्रसे परिषदके सदस्यके चुनावमें मत देनेका हक होगा। उसमें ये योग्यताएँ होनी चाहिए:

१. उसने २१ वर्षकी उम्र प्राप्त कर ली हो।

२. उसपर कोई कानूनी प्रतिबन्ध न हो।

३. वह जन्म अथवा निवासके आधारपर ब्रिटिश प्रजा हो।

४. वह नाम दर्ज करानेके पहले कमसे-कम तीन वर्षतक उपनिवेशमें रह चुका हो और नीचे लिखी योग्यताओंमें से कोई एक उसमें हो :

(क) प्रत्येक वर्षकी पहली जनवरीको और उससे पहलेके ६ महीनोंमें उसके पास उस क्षेत्रके अन्दर सारा खर्च और देनदारी छोड़ कर ३०० रुपये मूल्यकी या २५ रुपये मासिक आयकी अचल सम्पत्ति रही हो।

(ख) नाम दर्ज करानेकी तारीखको वह उस क्षेत्रमें स्थित अचल सम्पत्तिका कमसे-कम २५ रुपये मासिक किराया दे रहा हो। इसी तरह वह उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्वके छः महीनोंमें इतना किराया देता रहा हो।

(ग) वह उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्व तीन महीनेसे उस क्षेत्रमें रह रहा हो। या, उसमें उसके व्यापार अथवा नौकरीका मुख्य स्थान रहा हो। और, वह उपनिवेशके अन्दर कमसे-कम ३,००० रुपयोंकी अचल सम्पत्तिका मालिक हो।

(घ) वह उपर्युक्त योग्यताओंमें से कोई भी एक योग्यता रखनेवाली स्त्रीका पति या ऐसी विधवाका सबसे बड़ा लड़का हो।

(ङ) वह उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्व तीन महीनेसे उस क्षेत्रमें रहा हो या उसमें उसके व्यापार अथवा नौकरीका मुख्य स्थान रहा हो। और, उसे कमसे-कम ६०० रुपये वार्षिक या ५० रुपये मासिक वेतन मिलता हो।

(च) वह उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्व तीन महीनेसे उस क्षेत्रमें रहा हो। या, उसमें उसके व्यापार अथवा नौकरीका मुख्य स्थान रहा हो। और, वह कमसे-कम ५० रुपये वार्षिक परवाना-शुल्क देता हो।

शर्तें ये हैं कि :

(१) ऐसे किसी आदमीको मतदाता-सूचीमें नाम लिखाने या परिषदके सदस्यके चुनावमें मत देनेका हक नहीं होगा, जिसे हमारे राज्यकी किसी अदालत द्वारा जालसाजीके अपराधमें सजा दी गई हो; या जिसे ऐसी अदालतने मौत, गुलामी, सख्त कैद या १२ महीनेसे ज्यादा कैदकी सजा दी हो; और जिसने वह सजा या उसके बदलेमें दी गई सजा न भोगी हो, या हमसे अप्रतिबन्धित क्षमा प्राप्त न की हो।

(२) ऐसे किसी व्यक्तिको किसी वर्षमें मतदाता नहीं बनाया जायेगा जिसने उस वर्षकी पहली जनवरीके पूर्व १२ महीनोंके अन्दर सरकार या गिरजाघरसे किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता पाई हो।

(३) ऐसे किसी व्यक्तिको किसी वर्षमें मतदाता नहीं बनाया जायेगा, जो नाम दर्ज करनेवाले अधिकारी या किसी मजिस्ट्रेटकी उपस्थितिमें अपना नाम दर्ज करानेके कागजपर अपने हाथसे हस्ताक्षर न करे, तारीख न डाले

और वे योग्यताएँ न लिखे, जिनके आधारपर वह नाम दर्ज करानेका हक पेश करता है।

(४) ऐसे किसी व्यक्तिको, जो (ग), (घ), (ङ) या (च)में बताई गई योग्यताओंके अनुसार अपने निवासके क्षेत्रसे मतदाता-सूचीमें नाम दर्ज करानेका दावेदार हो, उसी योग्यताके आधारपर उसके व्यापार या नौकरीके मुख्य स्थानसे मतदाता नहीं बनाया जायेगा। इसका उलटा भी न किया जायेगा।

मॉरिशसमें इन योग्यताओंके होते हुए कोई झगड़ा-झंझट दिखलाई नहीं पड़ता, हालाँकि वहाँ भारतीयोंकी संख्या सामान्य आबादीसे दूनी है और वहाँके भारतीय नेटालके भारतीयोंके ही वर्गके हैं। फर्क सिर्फ यह है कि वे अपने नेटालवासी भारतीयोंसे बहुत ज्यादा समृद्ध हैं।

तथापि, यदि मान लिया जाये कि भारतीयोंके मताधिकारके प्रश्नको सुलझानेकी जरूरत है ही, तो भी प्रार्थी आदरपूर्वक कहना चाहते हैं कि प्रस्तुत विधेयकका मंशा सीधे और खुले ढंगसे उसे सुलझानेका नहीं है। बताया गया है कि नेटालके माननीय और विद्वान महान्यायवादीने दूसरे वाचनकी बहसके दौरान वर्तमान कानूनमें थोड़ा-सा परिवर्तन करनेके एक सुझावकी चर्चा करते हुए कहा था :

मैंने कानूनमें परिवर्तन करनेसे इनकार किया, इसका कारण यह था कि वैसा परिवर्तन करनेका अर्थ अप्रत्यक्ष और गुपचुप तरीकेसे काम साधना होता, जब कि सरकारका इरादा उसे खुलेआम करनेका है।

प्रस्तुत विधेयकको स्वीकार करनेकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे 'अप्रत्यक्ष और गुपचुप तरीके' की कल्पना करना कठिन है। प्रस्तुत विधेयक तो हर व्यक्तिको अँधेरेमें रखनेवाला है। ८ मई, १८९६ के 'नेटाल एडवर्टाइजर' का कथन है :

. . . प्रस्तुत विधेयक अगर अप्रत्यक्ष ढंगका नहीं तो क्या है? उसका सारा लक्ष्य यह प्रयत्न करनेका है कि पिछले सत्रका कानून जो कुछ करनेमें असफल रहा उसे गुपचुप और अप्रत्यक्ष ढंगसे पूरा कर लिया जाये। श्री एस्कम्बने स्वीकार किया है कि वह कानून क्रूरतापूर्ण और सीधी मार करनेवाला था। और उन्होंने ठीक ही कहा कि इसी कारण उसे सम्राज्ञी-सरकारकी सम्मति नहीं मिली। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि वर्तमान विधेयकका ठीक वही लक्ष्य है, जो कि उस 'क्रूर' विधेयकका था। फर्क सिर्फ इतना है कि यह विधेयक अपने उद्देश्यको ईमानदारी और खरेपनके साथ व्यक्त नहीं करता। दूसरे शब्दोंमें, इसका मंशा सरल तरीकेसे अप्राप्य लक्ष्यको गुपचुप और अप्रत्यक्ष तरीकेसे प्राप्त करना है।

अगर सम्राज्ञी-सरकारको विश्वास हो गया है कि नेटालमें भारतीयोंके मताधिकारको मर्यादित करनेकी सच्ची जरूरत है, अगर उसे सन्तोष हो गया है कि वर्गगत कानूनके सिवा इस प्रश्नको हल किया ही नहीं जा सकता और अगर वह उपनिवेशके

इस विचारको स्वीकार करती है कि १८५८की घोषणाके बावजूद भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंके साथ यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनोंसे भिन्न आधारपर व्यवहार किया जा सकता है, तो प्रार्थी निवेदन करते हैं कि गोलमोल कानून बनाकर मुकदमेबाजी और मुसीबतोंके लिए दरवाजा खोल देनेसे कहीं अच्छा यह होगा कि सम्राज्ञी-सरकारकी रायमें जो अधिकार और विशेषाधिकार भारतीयोंको नहीं मिलने चाहिए उनसे उन्हें स्पष्ट उनका नाम लेकर वंचित कर दिया जाये।

अगर विधेयक मंजूर हो गया तो मानी हुई बात है कि वह अपने गोल-मोल अर्थके कारण अनन्त मुकदमेबाजीको जन्म देगा। यह भी पहले दर्जेके महत्त्वकी बात मानी गई है कि भारतीय मताधिकारका प्रश्न नेटालके प्रधान मन्त्रीके शब्दोंमें, 'हमेशाके लिए एक ही बारमें तय' कर दिया जाये। और फिर भी नेटाली लोकमतके अधिकतर नेताओंके मतानुसार, विधेयकसे वह प्रश्न 'हमेशाके लिए एक ही बार में तय' नहीं होगा।

नेटाल विधानसभाके विपक्षी नेता श्री बिन्सने यह सिद्ध करनेके लिए कि भारतमें संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ मौजूद हैं, बड़े ही सटीक प्रमाण पेश किये। बादमें, रिपोर्टके अनुसार, उन्होंने कहा :

> मेरी समझमें मैंने सिद्ध कर दिया है, उस आधारपर विधेयक गलत है। भारतमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ और चुनावका सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है। भारतीयोंको संसदीय मताधिकार प्राप्त है। नगरपालिकाका मताधिकार तो बहुत व्यापक है। वह स्थानीय शासनपर असर डालता है। फिर, अगर यह स्थिति है तो आपके इस विधेयकको स्वीकार करनेका क्या उपयोग? मैंने विधानसभाके सामने जो तथ्य पेश किये हैं वे बड़ेसे-बड़े अधिकारी विद्वानोंके जो ग्रन्थ मैं पा सका उनसे लिये गये हैं। उनसे अत्यन्त निर्णायक रूपमें सिद्ध हो जाता है कि भारतमें इन संस्थाओंका अस्तित्व है। एक विषयमें तो बिलकुल सन्देह है ही नहीं। अगर यह विधेयक कानून बन गया तो *आप लम्बी मुकदमेबाजी, कठिनाइयों और मुसीबतोंमें फँस जायेंगे। विधेयक काफी स्पष्ट या निश्चयात्मक नहीं है।* हम कुछ अधिक स्पष्ट और निश्चयात्मक वस्तु चाहते हैं। मैं चाहता हूँ कि इस प्रश्नका फैसला हो जाये और मैं फैसला करनेमें जो भी मदद कर सकूँगा, सब करूँगा। परन्तु मेरा खयाल है कि *यह विधेयक गलत तरीकेपर बनाया गया है।* इसमें एक बात ऐसी है, *जो सही नहीं है। यह हमें अन्तहीन मुकदमेबाजी, कठिनाई और मुसीबतमें डाल देगा।* इस विधेयकके दूसरे वाचनके पक्षमें मत देना मेरे लिए असम्भव होगा।

श्री बेल विधानसभाके एक प्रमुख सदस्य और नेटालके एक प्रमुख वकील हैं। वे उपनिवेशके सामान्य कानूनके अन्तर्गत भारतीयोंका मताधिकार कायम रखनेके विरोधी हैं। फिर भी वे श्री बिन्सके विचारोंसे सहमत थे। उन्होंने भारतीयों और समस्त

उपनिवेशकी ओरसे विधानसभासे भावपूर्ण अनुरोध किया कि वह विधेयकको स्वीकार न करे:

> *यह मुकद्दमेबाजीको जन्म देना, शत्रुताका भाव पैदा करेगा और स्वयं भारतीयोंके बीच क्षोभ उत्पन्न कर देगा।* इसके अलावा, इससे प्रीवी कौंसिलके पास मामले भेजनेकी प्रेरणा मिलेगी और सभाके सदस्योंके चुनावपर बुरा असर पड़ेगा। इस विधेयकके साथ जो बड़े प्रश्न जुड़े हुए हैं, उनके खयालसे मैं आशा करता हूँ कि इसका दूसरा वाचन स्वीकार नहीं किया जायेगा।

'नेटाल विटनेस' ने ८ मईको परिस्थितिका सार इस प्रकार दिया है:

> अगर विधेयकको जैसा है वैसा ही स्वीकार करके कानूनका रूप दे दिया गया तो उपनिवेश गम्भीर मुकदमेबाजीमें फँस जायेगा — हमारी इस चेतावनीका श्री बिन्स और श्री जेलने समर्थन किया है। और श्री स्मिथकी आधी रोटी, जो न-कुछसे अच्छी है, इन दामों बहुत महँगी पड़ेगी। हमारा खयाल है कि सम्राज्ञीके कानूनी सलाहकारोंने विधेयकपर विचार किया ही नहीं। हमारे इस खयालका कारण विधेयकसे उठनेवाले अत्यन्त नाजुक प्रश्न हैं। अगर विधेयकके शब्दोंमें ऐसा परिवर्तन न कर दिया गया जिससे कानूनका आश्रय लेनेकी सम्भावना निकल जाये, तो निश्चय ही उन प्रश्नोंको अदालतमें ले जाया जायेगा? उन प्रश्नोंमें से कुछ ये हैं: क्या कोई उपनिवेश ऐसा कानून बना सकता है, जो इंग्लैंडके उस नागरिकता कानूनका उल्लंघन करता हो, जिसके अनुसार ब्रिटिश साम्राज्यकी समस्त प्रजाको ब्रिटिश नागरिकताका अधिकार मिल जाता है? ब्रिटिश भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं या नहीं? दूसरे शब्दोंमें, *विधेयक ब्रिटिश साम्राज्यमें ब्रिटिश भारतकी स्थितिके समूचे प्रश्नको उपस्थित कर देता है।* क्या १८५८ की घोषणाके बाद उसके द्वारा प्रदान किये गये विशेषाधिकारोंके किसी अंशका हरण करनेके लिए नेटालमें विशेष कानून बनाये जा सकते हैं?

अपने ८ मईके अग्रलेखमें विधेयकके गोलमोल अर्थ और उसकी अस्पष्टतापर खेद प्रकट करनेके बाद 'नेटाल एडवर्टाइज़र' ने कहा है:

> सच्ची स्थिति यह है, प्रस्तुत विधेयककी एक-एक पंक्ति विवादोंका गुप्त गढ़ है। ये सब विवाद एक दिन खुलकर खेलने लगेंगे। और इनसे भारतीयों और यूरोपीयोंके बीचका मत-सम्बन्धी संघर्ष शायद अधिक कटुताके साथ वर्षोंके लिए स्थायी बन जायेगा।

यह मनहूस सम्भावना — यह सतत आन्दोलन — किसलिए? सिर्फ एक ऐसे खतरेको टालनेके लिए जिसका अस्तित्व है ही नहीं। प्रार्थी सम्राज्ञी-सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि वह अगर सारे उपनिवेशको नहीं, तो केवल भारतीय समाजको ही सही, इससे बचा ले।

ऐसे संघर्षका खर्च भारतीयोंकी शक्तिके परे है। इसे साबित करनेके लिए किसी दलीलकी जरूरत नहीं। साराका सारा संघर्ष बेजोड़ पक्षोंके बीच है।

अब, यह भी मान लिया जाये कि सर्वोच्च न्यायालयने अपना मत दे दिया है कि भारतीयोंके पास 'संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ' नहीं हैं। तो फिर, विधेयकमें भारतीयोंको मतदाता-सूचीमें शामिल करनेकी जो पद्धति बताई गई है वह, प्रार्थियोंके नम्र मतसे, हर तरह असन्तोषप्रद हो जाती है।

विधेयकका जो भाग गवर्नरको अधिकार प्रदान करता है उसको तो यूरोपीयोंने भी उतने ही जोरोंसे नापसन्द किया है। 'नेटाल विटनेस' ने उस विषयमें कहा है:

> . . . वह महान संवैधानिक सिद्धान्तोंपर हमला करता है। इसके अलावा नेटालकी प्रातिनिधिक संस्थाओंके कार्यमें वह एक ऐसे तत्वको दाखिल करता है, जिसे अज्ञात राशि कहा जा सकता है। वह है, उन संस्थाओंपर पड़नेवाला तीसरी उपधाराका असर। यह उपधारा मतदाता-सूचीके लिए योग्य एशियाइयों का चुनाव करनेके हेतु छः व्यक्तियोंके निर्वाचक-मण्डलकी व्यवस्था करती है। . . . मालूम होता है कि मन्त्रिमण्डल इस कल्पनासे (अर्थात् अप्रत्यक्ष चुनावसे) चिपटा हुआ है। परन्तु उसने अपने-आपको और गवर्नरको अप्रत्यक्ष निर्वाचक-मण्डलकी हस्ती देकर न सिर्फ एक अनर्थकारी बल्कि अत्यन्त अनुचित कार्य भी किया है।

उसी प्रश्नको फिर उठाते हुए वह कहता है:

> विधानसभाने एक ऐसे विधेयकको स्वीकार करके जनताका आदर नहीं कमाया, जिसपर अधिकतर प्रमुख सदस्योंको अविश्वास है। वे देख सकते हैं कि यह विधेयक एक समझौता है — एक ऐसा समझौता जो बिलकुल निष्फल हो सकता है। जब वह पहले-पहल प्रकाशित हुआ था तब हमने कहा था कि वह विधानसभाके विशेषाधिकारों और संवैधानिक सिद्धान्तोंपर भी बहुत खतरनाक वार करनेवाला है। और, प्रत्येक सदस्यसे अपेक्षा तो यह थी कि वह इन सिद्धान्तोंको अक्षुण्ण रखनेके लिए अपने-आपको गम्भीर उत्तरदायित्वसे बँधा हुआ मानेगा। कुछ सदस्योंको इस अन्तिम आपत्तिकी याद दिलानेकी जरूरत न होगी। श्री बेलने कहा था कि गवर्नर तथा मन्त्रिमण्डल सत्ताधारी हैं, इसलिए चुनाव करनेका अधिकार उनको नहीं देना चाहिए; वह तो सिर्फ जनताके हाथोंमें रहना चाहिए। बेशक, उसका प्रयोग तो उसके प्रतिनिधि ही करेंगे। . . . परन्तु अखबारोंको तो वर्तमान संसदकी नहीं, भावी संसदोंकी चिन्ता है। . . . एक महान संवैधानिक सिद्धान्तको एक बार तोड़ दिया गया तो, भले ही सेंध कितनी ही छोटी क्यों न हो, कोई भी सत्तालोभी सरकार उसे कभी भी बढ़ा लेगी — यह खतरा हमेशाके लिए खड़ा हो जायेगा।

यह आपत्ति यूरोपीयोंके दृष्टिकोणसे है। प्रार्थी इस विचारसे तो सहमत हैं ही, परन्तु उक्त उपधाराके सिद्धान्तपर उनको इससे भी भारी एक आपत्ति है। भारतीय समाज मतदाता-सूचीमें भारतीय नामोंकी संख्या देखनेको उतना व्यग्र नहीं, जितना कि ब्रिटिश प्रजाके नाते अपने अधिकारों और विशेषाधिकारोंकी रक्षाके लिए है। वे ब्रिटिश प्रजाके साथ बराबरीकी मान-मर्यादा चाहते हैं। सम्राज्ञीने एकाधिक अवसरों पर ब्रिटिश भारतीयोंको इसका आश्वासन दिया है। भूतपूर्व मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके एक विशेष खरीते द्वारा नेटालके भारतीय समाजको सम्राज्ञी सरकारने यह आश्वासन विशेष रूपसे दिया है। यदि अमुक योग्यता रखनेवाले ब्रिटिश प्रजाजन अधिकारपूर्वक मताधिकार माँग सकते हैं तो, प्रार्थी नम्रतापूर्वक पूछते हैं, भारतीय ब्रिटिश प्रजाजन क्यों नहीं माँग सकते?

तरीका दुःसाध्य है और वह मताधिकारके संघर्षको सदा कायम रखेगा। इसके अलावा वह संघर्षको यूरोपीयोंके हाथोंसे भारतीयोंके हाथोंमें तबदील कर देगा। विधान-सभामें दूसरे वाचनपर दिये गये भाषणोंसे मालूम होता है कि गवर्नर यदि अपने अधिकारका किंचित प्रयोग करेंगे भी, तो बहुत बचा-बचाकर ही करेंगे।

विधेयकका मंशा भारतीय समाजमें फूट पैदा करना है; क्योंकि जिस उम्मीदवार को त्यागा जायेगा वह अगर अपने-आपको दूसरेके बराबर योग्य मानता हो तो अपने भाईके प्रति की गई कृपासे नाराज होगा।

महानुभावने मताधिकार-सम्बन्धी अपने खरीतेमें भारतीयोंको मताधिकारका हक देनेवाली तीन योग्यताएँ बताई हैं। वे हैं—शिक्षा, ज्ञान और धन। प्रार्थियोंका निवेदन है कि अगर शिक्षा, ज्ञान और धनकी अमुक मात्रा उपनिवेशवासी भारतीयोंके मताधिकार पानेके लिए काफी है तो सपरिषद गवर्नरके हाथोंमें अधिकार सौंपनेके बजाय इसी तरहकी कसौटी लागू की जा सकती है। यहाँ हम महानुभावका ध्यान 'नेटाल मर्क्युरी' के अग्रलेखके ऊपर उद्धृत अंशकी ओर आकर्षित करते हैं। अगर विधेयककी मर्यादाके अन्दर आनेवाले लोगोंके लिए आवश्यक योग्यताओंका वर्णन कर दिया जाये तो इससे विधेयकके उस भागका विवादात्मक स्वरूप मिट जायेगा। और तब उसकी मर्यादामें आनेवाले लोगोंको ठीक-ठीक ज्ञान रहेगा कि किन योग्यताओंके होनेपर उन्हें मत देनेका अधिकार मिलेगा। ८ मईके 'नेटाल एडवर्टाइजर' में स्थितिको साररूपमें भली-भाँति पेश किया गया है:

> **वर्तमान विधेयकके दुरंगेपनका एक और प्रमाण इस व्यवस्थामें निहित है कि सपरिषद गवर्नरको कुछ भारतीयोंको मतदाता-सूचीमें शामिल करनेका अधिकार होगा। स्पष्टतः यह उपधारा सम्राज्ञी-सरकारको यह खयाल करानेके विचारसे जोड़ी गई है कि साधारण नियमसे मुक्त करनेके इस अधिकारका उपयोग कभी-कभी किया जायेगा—शायद बचा-बचाकर किया जायेगा, फिर भी किया अवश्य जायेगा। इसपर भी महान्यायवादीने घोषित किया: "वर्तमान विधेयक द्वारा ऐसी परिस्थितियोंमें दिया गया मतदाता-सूचीमें शामिल करनेका अधिकार सिर्फ सपरिषद गवर्नरके जरिये प्राप्त किया जा सकेगा। समाजका**

प्रत्येक अंग अब समझने लगा है कि मन्त्रियोंकी जिम्मेदारियोंका सच्चा अर्थ क्या है और वह भली-भाँति जानता है कि अगर मन्त्रियोंने भारतीयोंको मतदाता बनाकर चुनाव-क्षेत्रोंमें मिलावट करनेकी जिम्मेदारी उठाई तो वे चौदह दिन भी अपने पदपर ठहर न सकेंगे।" आगे उन्होंने कहा: "दक्षिण आफ्रिकामें एक छोरसे दूसरे छोरतक इसके सिवा कोई दूसरी आवाज न होगी कि देशकी मतदाता-सूची पूर्णतः यूरोपीय जातितक सीमित रहे। यह हमारा पहला खयाल था, जिसे लेकर हम आगे बढ़े; सदा यही हमारा लक्ष्य रहा है।" . . . अगर मन्त्रियोंकी इन घोषणाओंका कोई अर्थ है तो यह कि नियमसे मुक्त करनेके अधिकारको काममें लानेका इस सरकारका कोई इरादा नहीं है। फिर इसे विधेयकमें रखा क्यों गया? विधेयकमें एक व्यवस्था जोड़ी जाती है और उसके निर्माता उसे स्वीकृतिके लिए पेश करते हुए घोषित करते हैं कि वे उसे निरुपयोगी मानेंगे। क्या इसमें कपट, और यदि यह शब्द अत्युक्तिपूर्ण लगे तो, अप्रत्यक्ष तरीकेसे काम करनेका आभास नहीं मिलता?

विधेयकके अमलसे मुक्त किये जानेकी अर्जी देना और फिर अपनी अर्जीके खारिज हो जानेकी जोखिम भी उठाना किसी धनी भारतीय व्यापारीको प्रिय न होगा। यह समझमें आना कठिन है कि जिन देशोंमें अबतक संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं उनसे आनेवाले यूरोपीयोंको उपनिवेशके सामान्य कानूनके अनुसार मत देनेका अधिकार क्यों मिले, जब कि वह उसी स्थितिके गैर-यूरोपीयोंको नहीं मिल सकता।

सरकारके विचारसे वर्तमान विधेयक प्रयोगात्मक है। दूसरे वाचनमें माननीय महान्यायवादीने कहा है: "अगर हमारे विश्वास और दृढ़ विश्वासके विपरीत विधेयक अपेक्षासे कम उतरा तो उपनिवेशमें कभी शान्ति नहीं रह पायेगी", आदि। इसलिए विधेयक निश्चयवाचक नहीं है। ऐसी हालतमें जबतक वर्गगत कानूनका आश्रय लिये बिना सब साधनोंका प्रयोग करके उन्हें असफल नहीं पाया जाता (अर्थात्, यह मानकर कि भारतीय मतों द्वारा यूरोपीय मतोंको निगल जानेका खतरा उपस्थित है), तबतक वर्तमान विधेयक जैसा कोई विधेयक स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। प्रार्थियोंका निवेदन है कि यह सम्राज्ञीके केवल मुट्ठीभर प्रजाजनोंको हानि पहुँचानेवाला कानून नहीं, बल्कि ३० करोड़ वफादार प्रजाजनोंपर प्रहार करनेवाला है। प्रश्न यह नहीं है कि कितने और किन भारतीयोंको मताधिकार दिया जाये, बल्कि यह है कि भारतके बाहर और ब्रिटिश उपनिवेशोंमें तथा सह-राज्योंमें भारतीयोंका दर्जा क्या होगा? क्या कोई सम्भ्रान्त भारतीय व्यापार या किसी अन्य उद्यमके लिए भारतके बाहर जा सकता है और वहाँ कोई मान-मर्यादा रखनेकी आशा कर सकता है? भारतीय प्रवासी दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिक भविष्यको ढालनेके इच्छुक नहीं हैं परन्तु वे इतना जरूर चाहते हैं कि उनपर बिना कोई अपमानजनक शर्त लादे उन्हें निर्विघ्न रूपसे शान्तिपूर्ण ढंगसे अपने धन्धे करने दिये जायें। इसलिए प्रार्थी निवेदन करते

हैं कि अगर भारतीयोंके मत प्रबल हो जानेका जरा भी खतरा हो तो सबके लिए समान रूपसे एक शिक्षा-सम्बन्धी कसौटी निर्धारित कर दी जाये। उसके साथ सम्पत्ति-जन्य योग्यतामें भी चाहे तो वृद्धि कर दी जाये, या न की जाये। इससे, सरकारी मुखपत्रके मतानुसार भी, सब भय निर्मूल हो जायेगा। अगर यह असफल रहे तो बादमें ज्यादा सख्त कसौटी लागू की जा सकती है, जो यूरोपीयोंके मतोंमें बाधा डाले बिना भारतीयोंपर असर करनेवाली हो। अगर नेटाल-सरकारको भारतीयोंको मताधिकारसे पूरी तरह वंचित कर देनेसे कम किसी बातसे सन्तोष न हो और अगर सम्राज्ञी-सरकार ऐसी माँगको मंजूर करनेके अनुकूल हो तो, प्रार्थियोंका निवेदन है, भारतीयोंको नाम लेकर वंचित करनेसे ही कठिनाईका सन्तोषजनक हल निकल सकेगा। इससे कम कोई कार्रवाई काफी न होगी।

परन्तु प्रार्थी आपका ध्यान आकर्षित करते हैं कि यूरोपीय उपनिवेशियोंकी समग्र रूपसे ऐसी कोई माँग नहीं है। वे बिलकुल उदासीन दिखलाई पड़ते हैं। 'नेटाल एडवर्टाइजर' ने इस उदासीनतापर खरी-खोटी सुनाई है:

> जिस ढंगसे संसदने इस सर्व-महत्त्वपूर्ण विषयपर विचार किया है उससे शायद एक चौथी बात भी प्रकट होती है। वह है अपनी राजनीतिके सम्बन्धमें उपनिवेशकी उदासीनता। अगर पता लगाया जा सके तो यह जानना बड़ा रोचक होगा कि कितने उपनिवेशियोंने विधेयकको पढ़नेका भी कष्ट उठाया है। शायद जिन लोगोंने नहीं पढ़ा उनका अनुपात बहुत बड़ा होगा। इस विषयमें उपनिवेशियोंकी आम उपेक्षा इस बातसे प्रकट होती है कि उपनिवेशके कोने-कोनेकी तो बात ही क्या हर केन्द्रमें भी यह माँग करनेके लिए सभाएँ नहीं की गईं कि संसद सिर्फ ऐसा विधेयक स्वीकार करे जिससे कि इस विषयमें आगे तमाम वाद-विवाद व्यर्थ हो जाये। अगर उपनिवेश परिस्थितिकी सच्ची गम्भीरताके प्रति जागरूक होता तो अखबारोंके पन्ने इस प्रश्नपर गम्भीर और बुद्धिमत्तापूर्ण पत्र-व्यवहारसे भर जाते। परन्तु इनमेंसे कोई भी बात हुई नहीं। फलतः सरकार एक ऐसा विधेयक स्वीकार करनेमें सफल हो गई है जो स्थितिको निबटानेवाला माना जाता है। परन्तु सचमुचमें तो वह स्थितिको इतनी बदतर और खतरनाक बना देनेवाला है, जितनी कि पहले कभी नहीं रही।

ऊपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जायेगा कि वर्तमान विधेयक किसी भी पक्षको सन्तोष देनेवाला नहीं है। नेटालके मन्त्रिमण्डल और दोनों विधानमण्डलोंके प्रति अधिक-से-अधिक आदरके साथ प्रार्थी निवेदन करना चाहते हैं कि उन्होंने विधेयकको स्वीकार कर लिया है, इसमें बहुत अर्थ नहीं है। विधेयकके सक्रिय विरोधसे अलग रहनेवाले सदस्य स्वयं ही 'नेटाल विटनेस' के कथनानुसार, उसके बारेमें अविश्वाससे ग्रस्त हैं।

प्रार्थियोंको आशा है कि उन्होंने सन्तोषजनक रूपमें सिद्ध कर दिया है कि ऊपर बताया हुआ खतरा काल्पनिक है। वर्तमान विधेयक उन लोगोंकी दृष्टिसे भी जो

भारतीयोंका मताधिकार छिनवाना चाहते हैं, और स्वयं भारतीयोंकी दृष्टिसे भी असन्तोष-जनक है। किसी भी हालतमें, आपके प्रार्थियोंका दावा है कि उन्होंने यह बतानेके लिए काफी तथ्य और तर्क पेश कर दिये हैं कि विधेयकका फैसला जल्दबाजीमें नहीं होना चाहिए। ऐसा करनेकी कोई जरूरत भी नहीं है। 'नेटाल विटनेस' का खयाल है कि "विधेयकको जल्दबाजीमें पास करनेका कोई स्पष्टीकरण — कमसे-कम, कोई सन्तोषजनक स्पष्टीकरण — नहीं किया गया।" 'नेटाल एडवर्टाइजर' का मत है कि "भारतीयोंके मताधिकारका यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसे हमेशाके लिए तय करनेमें कोई जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए। सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि इस विषयको स्थगित कर दिया जाये और चुनाव-क्षेत्रोंको, जब उनके सामने सही-सही जानकारी मौजूद हो, इसपर विचार करने दिया जाये।" (२८-३-१८९६)

भारतीय समाजकी भावनाएँ लन्दन 'टाइम्स' के शब्दोंमें भली-भाँति व्यक्त की जा सकती हैं। उस पत्रने (अपने २० मार्च, १८९६ के साप्ताहिक संस्करणमें) कहा है :

> भारतीय जिन विदेशों और ब्रिटिश उपनिवेशोंमें काम-धंधेकी खोजके लिए जाते हैं वहाँ अगर उन्हें उनकी ब्रिटिश प्रजाकी *हैसियत* बरकरार रखते हुए जाने दिया जाये, तो दक्षिण आफ्रिकाके विकासमें भारतीय मजदूरोंके लिए नई सम्भावनाएँ मौजूद हैं। भारत सरकार और स्वयं भारतीयोंका विश्वास है कि उनकी मान-मर्यादाके प्रश्नका निर्णय दक्षिण आफ्रिकामें ही होना चाहिए। अगर दक्षिण आफ्रिकामें उन्हें ब्रिटिश प्रजाका पद मिल जाता है तो दूसरे स्थानोंमें देनेसे इनकार करना लगभग असम्भव हो जायेगा। अगर वे दक्षिण आफ्रिकामें उसे पानेमें असफल रहते हैं तो अन्यत्र पाना अत्यन्त कठिन होगा। वे निःसंकोच स्वीकार करते हैं कि भारतीय मजदूर सहायता-प्राप्त प्रवासके बदलेमें निश्चित वर्षोंतक सेवा करनेका जो इकरार करते हैं उसकी शर्तोंको उन्हें पूरा करना ही चाहिए, भले ही इसमें उनके अधिकार कितने ही कम क्यों न हो जाते हों। परन्तु वे मानते हैं कि किसी भी देश या उपनिवेशमें क्यों न बसें, गिरमिटकी अवधि समाप्त कर लेनेपर उन्हें ब्रिटिश प्रजाकी *हैसियत* प्राप्त करनेका अधिकार है।... भारत सरकारका यह माँग करना उचित ही होगा कि भारतीय मजदूरोंको, अपने जीवनका सर्वोत्तम काल दक्षिण आफ्रिकाको अर्पित कर देनेके बाद, उनके उस अपनाये हुए देशमें ब्रिटिश प्रजाकी हैसियत देनेसे इनकार करके, वापस भारतमें खदेड़ा न जाये। निर्णय कुछ भी हो, उससे भारतीय मजदूरोंके प्रवासकी भावी वृद्धिमें गम्भीर बाधा पड़े बिना न रहेगी।

मताधिकारके इस प्रश्नकी, और नेटाल गवर्नमेंट 'गजट' से संकलित तथा अब सही माने जानेवाले आँकड़ोंकी खास तौरसे चर्चा करते हुए वही पत्र ३१ जनवरी, १८९६ के अंक (साप्ताहिक संस्करण) में कहता है :

इस विवरणके अनुसार, उपनिवेशमें ९,३०९ यूरोपीय मतदाताओंके मुकाबले २५१ ब्रिटिश भारतीय मतदाता हैं। . . . और अगर श्री गांधीका कथन सही है तो इस नीतिके अमलके दौरान यह कभी सम्भव नहीं दिखलाई पड़ता कि भारतीय मत यूरोपीय मतोंको निगल जायेंगे। . . . सब गिरमिटिया भारतीय ही मताधिकारसे वंचित नहीं हैं, बल्कि सारेके-सारे ब्रिटिश भारतीय वंचित हैं। उनके सिर्फ एक बहुत ही छोटेसे वर्गको, जो अपनी बुद्धि तथा उद्योगशीलतासे खुशहाल बन गया है, मताधिकार प्राप्त है। . . .

विवरण बताता है कि वर्तमान कानूनके अन्तर्गत भी ब्रिटिश भारतीयोंको मताधिकार पानेमें बहुत समय लगता है। कुल २५१ ब्रिटिश भारतीय मतदाताओंमें से केवल ६३ दस वर्षसे कम समयसे उपनिवेशमें रह रहे हैं। इनमें से अनेकोंने अपनी पूँजीसे कारोबार शुरू किया था। शेष १० वर्षसे ज्यादा और अधिकतर १४ वर्षसे ज्यादासे यहाँ निवास कर रहे हैं। जो लोग इस प्रश्नको हल हुआ देखना चाहते हैं उनके लिए ब्रिटिश भारतीय मतादाताओंकी सूचीके धन्धेवार विश्लेषणके नतीजे बहुत प्रोत्साहक होंगे। . . .

भारतमें ठीक इसी वर्गके लोग नगरपालिका तथा अन्य चुनावोंके सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हैं। नेटालके भारतीय भारतमें प्राप्त सुविधाओंसे ज्यादाका दावा नहीं कर सकते, और भारतमें उन्हें किसी प्रकारका कोई मताधिकार प्राप्त नहीं है — यह दलील वस्तुस्थितिके अनुकूल नहीं है। . . . भारतमें मतदान द्वारा शासनका अस्तित्व जहाँतक है, वहाँतक अंग्रेज और भारतीय बराबर हैं। उसी तरह नगरपालिकाकी प्रान्तीय और सर्वोच्च परिषदोंमें भी भारतीयोंके हितोंका प्रतिनिधित्व सबल है। यह दलील भी कसौटीपर खरी नहीं उतरती कि भारतीय प्रातिनिधिक शासनके स्वरूप और उत्तरदायित्वसे अपरिचित हैं। शायद दुनियामें दूसरा कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिसमें प्रातिनिधिक संस्थाएँ लोगोंके जीवनमें इतनी गहरी समाई हुई हैं। . . .

इस समय श्री चेम्बरलेनके सामने जो प्रश्न है, *वह सैद्धान्तिक नहीं है। वह प्रश्न दलीलोंका नहीं, जातीय भावनाका है। सम्राज्ञीकी १८५८की घोषणामें भारतीयोंको ब्रिटिश प्रजाके पूरे-पूरे अधिकार दिये हैं। वे इंग्लैंडमें मत देते हैं और अंग्रेजोंकी बराबरीस ब्रिटिश संसद्में आसन ग्रहण करते हैं।* परन्तु अनेक राष्ट्रोंके योगसे बने हुए एक विशाल साम्राज्यमें ये प्रश्न अनिवार्य हैं। और जैसे-जैसे जहाज बृहत्तर ब्रिटेनमें शामिल सभी आबादियोंको एक-दूसरेके ज्यादा घनिष्ठ सम्पर्कमें लायेंगे, वैसे-वैसे ये प्रश्न ज्यादा उग्र रूपमें प्रकट होते जायेंगे। दो बातें साफ हैं। ऐसे प्रश्न उनकी उपेक्षा करनेसे हल नहीं होंगे और ब्रिटेनस्थित शक्तिशाली सरकार इन प्रश्नोंका न्यायपूर्ण समाधान करनेके लिए उत्तम न्यायालय सिद्ध हो सकती है। *हम अपनी*

ही प्रजाओंके बीच जातियुद्ध नहीं होने दे सकते। भारत सरकारके लिए नेटालको मजदूर भेजना बन्द करके उसकी प्रगतिको रोक देना उतना ही गलत होगा, जितना कि नेटालके लिए ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंको नागरिक अधिकार देनेसे इनकार करना। भारतीयोंने तो वर्षोंकी मितव्ययिता और अच्छे कामसे अपने-आपको नागरिकोंके वास्तविक दर्जेतक उठा ही लिया है। (सब जगह अक्षरोंका फर्क प्रार्थियोंने किया है)

अब प्रार्थी अपना मामला आपके हाथोंमें छोड़ते हैं। ऐसा करते हुए वे उत्कटतासे प्रार्थना और दृढ़ आशा करते हैं कि उपर्युक्त विधेयकको सम्राज्ञीकी अनुमति प्राप्त नहीं होगी और अगर भारतीय मतों द्वारा यूरोपीय मतोंको निगल जानेका कोई भी भय हो तो जाँचका आदेश दिया जायेगा कि क्या वर्तमान कानूनके अन्तर्गत सचमुच ही कोई ऐसा खतरा मौजूद है या फिर कोई दूसरी ऐसी राहत दी जायेगी, जिससे न्यायका उद्देश्य पूरा हो।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि।[1]

अब्दुल करीम हाजी आदम
तथा अन्य

अंग्रेजी (एस० एन० ९७९-८३) की फोटो-नकलसे।

९५. भाषण : भारतीयोंकी सभामें[2]

४ जून, १८९६

मानपत्र भेंट कर दिया जानेपर उसका जवाब देते हुए श्री गांधीने इस कृपाके लिए सबके प्रति आभार प्रकट किया और कहा कि इस प्रसंगसे यह बात साफ हो गई है कि नेटालमें आये हुए भारतीय चाहे किसी जातिके हों, वे सब यहाँ एकताके नये बन्धनमें अपनेको बाँधना चाहते हैं। श्री गांधीने कहा कि मैं मानता हूँ कि कांग्रेसके उद्देश्यके बारेमें भारतीयोंमें कोई मतभेद नहीं है। क्योंकि अगर ऐसी कोई

१. सी० बर्डने २५ सितम्बर, १८९६ को प्रार्थियोंको चेम्बरलेनका निर्णय सूचित किया कि "सम्राज्ञी सरकारने उनके प्रार्थनापत्रपर पूरी सावधानीके साथ विचार कर लिया है, परन्तु वह सम्राज्ञीको विधेयकको मंजूरी न देनेकी सलाह देना उचित नहीं समझती। (एस० एन० १६०)

२. गांधीजीके भारतके लिए जहाज द्वारा रवाना होनेके एक दिन पहले नेटाल भारतीय कांग्रेसके सभा भवनमें डर्बनके तमिल और गुजराती भारतीयोंकी एक सभा हुई थी, जिसमें दूसरे समाजोंके लोग भी शामिल थे। गांधीजीने नेटाल भारतीय कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे भारतीयोंकी जो सेवाएँ की थीं उनका उनकी ओरसे सम्मान करना सभाका उद्देश्य था। उपस्थिति बहुत काफी थी और उत्साह भी बहुत था। सभापतिका आसन दादा अब्दुल्लाने ग्रहण किया था।

बात होती तो आप सब उसके मन्त्रीको अभिनन्दनपत्र भेंट करनेके लिए एकत्र नहीं होते। श्री गांधीने आगे कहा कि अगर मेरा अनुमान सही है तो अभी पिछली शाम[1] कांग्रेसकी सभामें मैंने जो बात मद्रासी भाइयोंकी उपस्थितिके बारेमें कही थी वही यहाँ भी कहना चाहूँगा कि अबतक भी उनकी उपस्थिति सन्तोषजनक नहीं है। परन्तु मुझे आशा है कि भविष्यमें वे अधिक संख्यामें उपस्थित होंगे। श्री गांधीने कहा मुझे इस बातका दुःख है कि मैं तमिल भाषामें नहीं बोल सकता; परन्तु उन्होंने कहा कि जो मद्रासी भाइयोंके अलग रहनेके बारेमें कहा गया है उसका उनकी अथवा भारतकी अन्य कौमोंकी बुराईके रूपमें कोई गलत अर्थ न लगा लिया जाये। उन्होंने कहा कि सब जानते हैं कि कांग्रेसके उद्देश्य क्या हैं। किन्तु वे केवल बातोंसे पूरे नहीं हो सकते। इसलिए मैं सबसे विनती करता हूँ कि कांग्रेसके प्रति अपना प्रेम केवल शब्दोंमें नहीं बल्कि प्रत्यक्ष कार्योंमें प्रकट करके बतायें। श्री गांधीने कहा, मैं सबसे खास तौरपर विनती करता हूँ कि आप अपनेमें से कुछ प्रतिनिधियोंको मैरित्सबर्ग, लेडीस्मिथ तथा ऐसे ही अन्य स्थानोंको भेजें जहाँ प्रत्येक वर्गके भारतीय बसे हुए हैं और जो कांग्रेसके सदस्य नहीं बने हैं। आप उन्हें कांग्रेसके सदस्य बनानेका प्रयत्न करें।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइजर, ५-६-१८९६

९६. भेंट: 'नेटाल एडवर्टाइजर' के प्रतिनिधिसे[2]

[४ जून, १८९६]

श्री गांधीसे अनेक प्रश्न पूछे गये। उनके जवाब देते हुए उन्होंने बताया कि कांग्रेसकी सदस्य-संख्या इस समय ३०० है। उसका सालाना अग्रिम चन्दा ३ पौंड है। कांग्रेस ऐसे सज्जनोंको सदस्य बनाना चाहती है जो न केवल अपना चन्दा दे सकें बल्कि जो कांग्रेसके उद्देश्योंके लिए प्रत्यक्ष काम भी कर सकें। हम कांग्रेसके लिए एक बड़ी रकम भी एकत्र करना चाहते हैं, जिससे कोई जायदाद खरीदी जा सके। इससे कांग्रेसके उद्देश्य पूर्ण करनेके लिए स्थायी आमदनीका एक साधन हो जायेगा।

प्रतिनिधिने पूछा — "ये उद्देश्य क्या हैं?"

वे दो प्रकारके हैं। राजनीतिक और शैक्षणिक। शैक्षणिक उद्देश्य यह है कि उपनिवेशमें पैदा हुए बच्चोंको छात्रवृत्ति देकर हम उन्हें वे सारे विषय सीखनेके लिए

१. इससे पहले एक सभा २ जूनको हुई थी। उस सभामें नेटाल भारतीय कांग्रेसकी ओरसे एक मानपत्र भेंट किया गया था। पर उस सभा और वहाँ दिये गये गांधीजीके भाषणका विवरण उपलब्ध नहीं हो सका।

२. गांधीजीके भारतको विदा होनेके अवसरपर नेटाल एडवर्टाइजरका एक प्रतिनिधि नेटालवासी भारतीयोंकी तत्कालीन सामान्य स्थितिके बारेमें उनके विचार जाननेके लिए उनसे मिला था।

प्रेरित करें, जिन्हें एक कौमकी हैसियतसे अपनी भलाईके लिए सीखना जरूरी है। इसमें भारत और उपनिवेशका इतिहास, निर्व्यसनता, आदि विषय रहेंगे।

क्या कांग्रेसका सदस्य बननेके लिए और भी किसी योग्यताकी आवश्यकता होती है?

जी, हाँ। सदस्यमें अंग्रेजी भाषामें लिखने और पढ़नेकी योग्यता होनी चाहिए। परन्तु इधर कुछ समयसे इस शर्तका पालन कड़ाईसे नहीं किया जा रहा है।

कांग्रेसकी आर्थिक स्थिति कैसी है?

संस्थाके पास इस समय १९४ पौंडकी रकम नकद है। इसके अलावा अमगेनी रोडपर एक जायदाद भी है। मैं चाहता हूँ कि मेरी अनुपस्थितिमें यह रकम १,१०० पौंड हो जाये। और यह मुश्किल नहीं है। इससे संस्थाकी नींव काफी मजबूत हो जायेगी।

राजनीतिक दृष्टिसे कांग्रेसका रुख क्या है?

राजनीतिमें वह अधिक प्रभाव नहीं डालना चाहती। उसका उद्देश्य अभी तो यही है कि सन् १८५८की घोषणामें दिये गये वचनोंपर अमल हो। भारतमें भारतीयोंकी जो मान-मर्यादा है वह उपनिवेशमें भी उनको प्राप्त हो जाये तो हम समझ लेंगे कि कांग्रेसका राजनीतिक उद्देश्य सफल हो गया। किसी दूसरे दलपर वह हावी नहीं होना चाहती।

उपनिवेशमें भारतीय मतदाताओंकी संख्या क्या है?

मतदाता-नामावलीमें २५१ भारतीय नाम हैं, जब कि यूरोपीय मतदाताओंकी संख्या ९,३०३ है। भारतीय मतदाताओंमें से १४३ डर्बनमें हैं। और अगर कांग्रेस अपनी पूरी ताकत लगा दे तो भी वह अन्य २०० से अधिक मतदाता नहीं बना सकती। हमारी सारी महत्त्वाकांक्षा यही है कि उपनिवेशमें भारतीयोंकी भी वही मान-मर्यादा हो जो यूरोपीयोंकी है। हाँ, योग्यताकी कसौटी जो चाहें रख दें। और अगर आप चाहें तो जायदाद-सम्बन्धी शर्त भी ऊँची कर सकते हैं। हम खुश ही होंगे। परन्तु जो भी शर्त रखें, सब कौमोंके लिए समान हो।

आपका आगेका कार्यक्रम क्या रहेगा?

वही, जो अबतक रहा है। कांग्रेस इसी प्रकार सारे उपनिवेशमें, भारतमें और इंग्लैंडमें भी साहित्य द्वारा और समय-समयपर जनताके सामने आनेवाले प्रश्नोंके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें लेखों आदि द्वारा भारतीयोंके दुखड़ोंका प्रकाशन करती रहेगी और इस कामके लिए धन-संग्रह भी करती रहेगी। अबतक अपनी सभाओंमें कांग्रेस समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंको निमन्त्रित नहीं करती थी। किन्तु उसने निश्चय किया है कि अब वह कभी-कभी उनको भी अपनी सभाओंमें बुला लिया करेगी और अपने प्रयत्नोंके समाचार उनको दे दिया करेगी। कांग्रेसकी इच्छा यह थी कि वह ऐसा करनेके पहले अपने संगठनको स्थायित्व प्रदान कर दे। मैं एक भूल-सुधार करना चाहता हूँ। मुझे जो मानपत्र दिया गया है उसमें लिखा है कि कांग्रेसके विभिन्न

उद्देश्य पूरे किये जा चुके हैं। लेकिन दरअसल बात ऐसी नहीं है। वास्तवमें कांग्रेस अभी उनपर विचार कर रही है। और हर वाजिब तरीकेसे उनको पूर्ण करनेका वह यत्न करेगी। उपनिवेशके कानूनोंमें भारतीयोंको लक्ष्य करके रंग-भेदको स्थापित करनेका अगर प्रयत्न किया गया तो कांग्रेस इसका विरोध करेगी, क्योंकि यदि यह प्रयत्न यहाँ सफल हो गया तो उसे दूसरे उपनिवेशोंमें और संसारके दूसरे हिस्सोंमें भी लागू किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

नेटाल एडवर्टाइजर, ५-६-१८९६

सामग्रीके साधन-सूत्र

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: औपनिवेशिक कार्यालय, लंदनमें सुरक्षित इन कागज-पत्रोंमें यह सामग्री शामिल है: ब्रिटिश उपनिवेश मन्त्रीके नाम दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेश सचिव, नेटालके गवर्नर और केपटाउन स्थित ब्रिटिश उच्चायुक्तके खरीते; नेटालकी विधानसभाओंके मतदान तथा कार्रवाइयाँ, उनको दिये गये प्रार्थनापत्र और उनके आदेशोंसे प्रकाशित पत्र-व्यवहार; और दक्षिण आफ्रिका तथा लंदनमें प्रकाशित दक्षिण आफ्रिकी मामलोंके कागज-पत्र तथा सरकारी रिपोर्टें (ब्ल्यू बुक्स)।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी स्मारक निधि द्वारा संचालित गांधी-साहित्य तथा फोटो-नकलों, माइक्रोफिल्म-नकलों और मूल पत्रों तथा अन्य कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद: साबरमती आश्रम संरक्षण और स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित इस संग्रहालयमें यह सामग्री है: गांधीजी द्वारा और उनके सम्बन्धमें लिखी हुई पुस्तकें; एक दर्जनसे अधिक दक्षिण आफ्रिकी पत्रोंकी १८९३ से १९०१ तककी कतरनोंकी फाइलें; सरकारी रिपोर्टें (ब्ल्यू बुक्स); और गांधीजीके १८९३ से १९३३ तकके कागज-पत्र, जिनमें से कुछ नेटाल भारतीय कांग्रेससे सम्बन्ध रखनेवाले भी हैं।

'काठियावाड़ टाइम्स': राजकोटसे प्रकाशित अंग्रेजी तथा गुजराती साप्ताहिक पत्र।

'टाइम्स ऑफ नेटाल' (१८५१-१९२७): पीटरमैरित्सबर्गसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नेटाल एडवर्टाइजर': डर्बनसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नेटाल मर्क्युरी': (१८५२—): डर्बनसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नेटाल विटनेस' (१८४६—): पीटरमैरित्सबर्गसे प्रकाशित स्वतन्त्र विचारों का अंग्रेजी दैनिक।

'वेजिटेरियन' (१८८८—): पहले-पहल इसका प्रकाशन एक स्वतन्त्र अंग्रेजी पत्रके रूपमें हुआ था; परन्तु बादमें यह लंदनके अन्नाहारी मण्डलका साप्ताहिक मुख-पत्र बन गया।

'वेजिटेरियन मेसेंजर': मैंचेस्टरके अन्नाहारी मण्डलका अंग्रेजी मुखपत्र।

'दादाभाई नौरोजी: ग्रैंड ओल्डमैन ऑफ इंडिया' (अंग्रेजी): लेखक, श्री आर० पी० मसानी; एलन ऐंड अनविन, लंदन, १९३९।

'महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी' (अंग्रेजी): लेखक डी० जी० तेंदुलकर; आठ खण्ड; प्रकाशक, झवेरी और तेंदुलकर, बम्बई, १९५१–५४।

'श्रीमद् राजचन्द्र' (गुजराती): सम्पादक और प्रकाशक, मनसुखलाल रावजी मेहता, १९१४।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' (गुजराती): लेखक, महात्मा गांधी; नव-जीवन प्रकाशन मन्दिर; अहमदाबाद, अगस्त १९५२।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(२ अक्तूबर, १८६९ से ५ जून, १८९६ तक)

१८६९

२ अक्तूबर: पोरबन्दरमें मोहनदास करमचन्द गांधीका जन्म।

१८७६

राजकोटकी प्राथमिक पाठशालामें प्रविष्ट। कस्तूरबाईके साथ सगाई।

१८८१

आल्फ्रेड हाईस्कूलमें प्रविष्ट।
कस्तूरबाईके साथ विवाह।

१८८४–८५

मांसाहारका प्रयोग, परन्तु बड़े-बूढ़ोंको धोखा न देनेके खयालसे त्याग।
पिताकी मृत्यु — त्रेसठ वर्षकी उम्रमें।

१८८७

नवम्बर: मैट्रिक परीक्षामें उत्तीर्ण और भावनगरके सामलदास कालेजमें प्रविष्ट।

१८८८

अप्रैल-मई: पढ़ाईमें आत्मविश्वासकी कमी। इंग्लैंड जाकर कानूनकी शिक्षा प्राप्त करनेकी सलाह दी गई। मांस, मदिरा और स्त्रियोंसे बचकर रहनेका वचन देकर मातासे अनुमति प्राप्त।

१० अगस्त: राजकोटसे बम्बईके लिए रवाना, जहाँ जातिभाइयोंने विलायत जानेसे रोकनेका प्रयत्न किया।

४ सितम्बर: जातिके मुखियोंका जोरदार विरोध होनेपर भी इंग्लैंडको रवाना।

२८ अक्तूबर: लंदन पहुँचे।

६ नवम्बर: इनर टेम्पलमें भरती।

१८८९

अन्नाहारी होनेके कारण समाजमें अधिक मिलनेजुलनेकी दृष्टिसे 'सभ्य' वेशमें रहनेका निश्चय और भाषण-कला, फ्रेंच भाषा, नृत्य तथा पश्चिमी संगीतका अभ्यास आरम्भ। परन्तु शीघ्र ही अपनी गलती महसूस।

सितम्बर: महीनेके अन्तमें कार्डिनल मैनिंगके पास जाकर उनसे भेंट की और लंदन जहाजघाटकी हड़तालको समाप्त करनेमें उनके योगपर उन्हें बधाई दी।
पेरिसकी प्रदर्शनी देखने गये (मई और अक्तूबरके बीच किसी समय)।

नवम्बर: ब्लैवेस्की और एनी बसेंटके साथ परिचय कराया गया; परन्तु थियोसॉफिकल सोसाइटीका नियमित सदस्य होनेसे इनकार कर दिया।

दिसम्बर: लंदनकी मैट्रिक परीक्षामें बैठे, परन्तु असफल रहे।

इस वर्षमें थियोसॉफिकल प्रभावके कारण बहुत-सा थियोसॉफिकल और अन्य धार्मिक साहित्य पढ़ा, जिसमें एडविन आर्नोल्डकी 'साँग सेलेस्टियल', 'लाइट ऑफ एशिया', मूल 'भगवद्गीता' और 'बाइबिल' भी शामिल थीं। गिरजाघरकी प्रार्थनाओंमें गये और डा० जोजेफ पार्कर जैसे प्रसिद्ध धर्मोपदेशकोंके प्रवचन सुने।

१८९०

इस वर्षके आरम्भमें मैंचेस्टरके 'वेजिटेरियन मेसेंजर' और लंदनके 'वेजिटेरियन' तथा दोनों स्थानोंके अन्नाहारी मण्डलोंका परिचय हुआ। जोशुआ ओल्डफील्डके साथ अन्तर्राष्ट्रीय अन्नाहारी मण्डलकी बैठकमें गये। सादगीसे रहना शुरू किया। आहारके प्रयोग जारी रखे। कुछ समयतक वेजिटेरियन क्लबका संचालन किया, जिसके अध्यक्ष जोशुआ ओल्डफील्ड, उपाध्यक्ष एडविन आर्नोल्ड और मन्त्री गांधीजी स्वयं थे।

जून: मैट्रिक परीक्षामें उत्तीर्ण।

१९ सितम्बर: अन्नाहारी मण्डलमें शामिल हुए और उसकी कार्यकारिणीके सदस्य बने।

१८९१

३० जनवरी: चार्ल्स ब्रैडलाके दफन संस्कारमें शामिल हुए। उनके नास्तिकवादका प्रभाव मनपर नहीं पड़ा। उलटे, श्रीमती बेसेंटकी पुस्तक 'हाउ आई बिकेम ए थियोसॉफिस्ट' पढ़नेपर उसके प्रति अरुचि पक्की हो गई।

२० फरवरी: अन्नाहारी मण्डलकी बैठकमें सर्वप्रथम भाषण — डा० एलिन्सनके इस दावेके समर्थनमें कि गर्भ-निरोधके बारेमें शुद्धिवादियोंके मतके विरुद्ध विचार रखनेके बावजूद उन्हें मण्डलका सदस्य बननेका हक है, हालाँकि गांधीजी स्वयं उनके विचारोंसे सहमत नहीं थे।

२१ फरवरी: 'वेजिटेरियन'में एक लेख लिखकर शराबको 'मानवजातिका वह शत्रु, सभ्यताका वह अभिशाप' कहा।

२६ मार्च: लंदन थियोसॉफिकल सोसाइटीके सह-सदस्य बनाये गये।

१ मई: अन्नाहारी मण्डलोंके संयुक्त संघकी बैठकके लिए मण्डलके प्रतिनिधि नियुक्त किये गये।

१० जून: बैरिस्टर बने।

कानूनका अध्ययन करते समय दादाभाई नौरोजीके व्याख्यान सुनने जाते रहे। फ्रेडरिक पिनकॉटने ईमानदारी और मेहनतपर जोर दिया, जिससे आगे चलकर बैरिस्टरके रूपमें सफलता प्राप्त करनेकी आशा प्रबल हुई।

११ जून: उच्च न्यायालयमें बैरिस्टरके तौरपर नाम दर्ज।

१२ जून: भारतको रवाना।

५-९ जुलाई : बम्बई पहुँचे। माताके देहान्तका समाचार सुनकर शोकविह्वल। जौहरी, कवि और सन्त श्री राजचन्द्रसे भेंट, जिन्हें आगे चलकर उन्होंने धार्मिक प्रज्ञामें टॉल्स्टॉयसे बड़ा माना और जो उनके जीवनपर प्रभाव डालनेवाले तीन महापुरुषोंमें से एक हुए। विलायत-यात्राके बारेमें जातीय निषेधका भंग करनेके कारण नासिक जाकर प्रायश्चित्त किया।

राजकोट पहुँचे और अपने भाई लक्ष्मीदासके साथ रहे।

२० जुलाई : फिर जातिमें शामिल किये गये, यद्यपि अब भी जातिके एक हिस्सेने बहिष्कार कायम रखा।

१६ नवम्बर : बम्बईके उच्च न्यायालयमें बैरिस्टरीकी इजाजतके लिए आवेदन।

१८९२

मार्च-अप्रैल : परिवारके बच्चोंको आधुनिक ढंगकी शिक्षा देना आरम्भ किया। पोशाक और भोजनमें पश्चिमी ढंग अपनाया।

१४ मई : काठियावाड़ एजेन्सीकी अदालतोंमें बैरिस्टरी करनेकी इजाजत 'गजट' में सूचना निकालकर दी गई।

राजकोटमें बैरिस्टरी करना कठिन महसूस करके अनुभव प्राप्त करनेके लिए बम्बई गये। एक मित्रके साथ आहार-सम्बन्धी प्रयोग। घबराहटके कारण पहला मुकदमा छोड़ दिया और अर्जियाँ लिखनेका काम पसन्द किया। शिक्षकका काम करनेकी विवशता महसूस की, परन्तु ग्रैजुएट न होनेके कारण नियुक्ति नहीं हुई। छ: मासके बाद बम्बईका सारा कामकाज समेटकर भाईके साथ काम करनेके लिए राजकोट वापस। उनके साथ काम करते हुए अर्जियाँ, आवेदनपत्र आदि लिखकर तीन सौ रुपये मासिकतक कमाने लगे।

१८९३

अप्रैल : दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनीने दक्षिण आफ्रिकामें कानूनी कामके लिए आमन्त्रित किया। इस अवसरका लाभ उठाकर तत्परतासे डर्बनके लिए रवाना। एक वर्षमें वापस आनेके इरादेसे पत्नी और बच्चेको राजकोटमें ही छोड़ दिया।

मई : महीनेके अन्त-अन्तमें नेटाल बन्दरगाह पहुँचे। वहाँ भारतीयोंके प्रति अनादरकी भावना महसूस करके चकित और उद्विग्न हुए।

मई-जून : पहुँचनेके दूसरे या तीसरे दिन डर्बनकी अदालतमें गये। जब पगड़ी उतारनेके लिए कहा गया, अदालत छोड़कर चले जाना पसन्द किया। इस घटनाके बारेमें पत्रोंको लिखा। उन्हें 'अवांछनीय अतिथि' कहकर पुकारा गया, परन्तु उनके नामका प्रचार बहुत हुआ। सात या आठ दिन बाद मुवक्किलके कामसे प्रिटोरिया गये। रेल और घोड़ागाड़ीकी यात्रामें रंगभेदका बहुत कटु अनुभव। रंगभेदके 'रोगको समूल नष्ट कर देने' और 'इस कार्यमें जो भी कठिनाइयाँ आयें उन्हें सहने'का संकल्प किया। अटर्नी और धर्मोपदेशक बेकरने उन्हें रंगभेदकी चेतावनी दी और उनके लिए एक गरीब स्त्रीके धाबेमें रहनेका प्रबन्ध कर दिया।

बेकरकी प्रार्थना-सभाओंमें गये और श्री कोट्स जो क्वेकर थे तथा कुमारी हैरिस व कुमारी गैब-जैसे ईसाइयोंसे परिचय और मित्रता। प्रिटोरियावासके पहले हफ्तेमें सेठ तैयब हाजी खाँ से भेंट और ट्रान्सवालके भारतीयोंकी हालतपर मेमन व्यापारियोंकी सभामें भाषण। भारतीय निवासियोंके कष्टोंको दूर करानेके लिए संघ बनानेका सुझाव और इस काममें मदद करनेका आश्वासन दिया। प्रिटोरियावाससे उन्हें ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेटके भारतीयोंकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितिका गहरा ज्ञान हुआ। अध्यक्ष क्रूगरके निवास-स्थानके पास पैदल पटरीसे धक्के और लात मारकर ढकेल दिये गये; परन्तु गोरे हमलावरपर मुकदमा चलानेसे इस आधारपर इनकार कर दिया कि मैं निजी शिकायतोंको दूर करानेके लिए कभी अदालतमें नहीं जाऊँगा। इस घटनासे भारतीयोंके पैदल-पटरियोंपर चलनेके विरुद्ध लगी पाबन्दियोंका अनुभव।

२२ अगस्त – २ सितम्बर: प्राणयुक्त आहारके प्रयोग। इस बीच श्री कोट्स तथा अन्य ईसाई मित्रोंके निरन्तर सम्पर्कसे ईसाई धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने और उन मित्रोंके साथ विचार-विमर्श करनेकी प्रेरणा हुई। परन्तु 'बाइबिल' और ईसाई धर्मकी उनकी व्याख्याएँ स्वीकार करना कठिन मालूम हुआ।

१८९४

अप्रैल: अपने मुवक्किल दादा अब्दुल्लाका मुकदमा तैयार करते हुए महसूस किया कि कानूनी काममें सत्यका महत्त्व सर्वोपरि है। विश्वास हो गया कि मुकदमे-बाजी एक गलत चीज है, और मुकदमेको मध्यस्थ द्वारा निबटा दिया। काम पूरा हो जानेपर डर्बन वापस।

विदाईकी दावतके समय 'नेटाल मर्क्युरी' में यह घोषणा पढ़ी कि भारतीयोंका मताधिकार छीननेके लिए कानून बनाया जानेवाला है। उपस्थित भारतीय व्यापारियोंको उसका प्रतिरोध करनेकी सलाह। उनका अनुरोध कि एक महीने तक ठहरकर आन्दोलनका नेतृत्व करें।

एक भाग्य-निर्णायक निश्चय।

इस समय गंभीर धार्मिक अध्ययन आरम्भ किया। टॉल्स्टॉय कृत 'किंगडम ऑफ गॉड इज़ विदिन यू' का उनके मनपर बहुत प्रभाव पड़ा। इंग्लैंडके ईसाई मित्रोंसे पत्र-व्यवहार। भारतमें भी रायचन्दभाई जैसे धर्मचिन्तकोंके साथ, जिनके पाससे हिन्दूधर्मके सम्बन्धमें अपने प्रश्नोंके उत्तर पाकर उनकी शंकाओंका निवारण हुआ, लिखा-पढ़ी।

२२ मई (?): प्रमुख भारतीय व्यापारियोंकी सभामें रंगभेदके कानूनका विरोध करनेके लिए कमेटीकी स्थापना।

२७ जून: नेटाल विधानसभाके अध्यक्ष, प्रधानमन्त्री रॉबिन्सन और महान्यायवादी एस्कम्बके नाम तार कि जबतक भारतीयोंका प्रार्थनापत्र पेश न हो जाये, मताधिकार कानून संशोधन विधेयकपर विचार स्थगित रखा जाये। विधेयकपर विचार दो दिनके लिए स्थगित।

२८ जून : ५०० भारतीयोंके हस्ताक्षरोंसे विधानसभाको प्रार्थनापत्र दिया, जिसमें विधेयकका विरोध और एक जाँच-आयोगकी नियुक्तिकी माँग की गई थी।

२९ जून : प्रधानमन्त्रीके पास शिष्टमण्डल ले गये और उनसे अनुरोध किया कि भारतीयोंके पक्षको अधिक विस्तारके साथ पेश करनेके लिए एक सप्ताहका समय दिया जाये।

१ जुलाई : फील्ड स्ट्रीटमें भारतीयोंकी सभामें शामिल हुए और भाषण दिया।

३ जुलाई : नेटालके गवर्नरके पास अपने नेतृत्वमें एक शिष्टमण्डल ले गये और उनसे अनुरोध किया कि मताधिकार विधेयकको, जिसका विधानसभामें तीसरा वाचन हो चुका था, स्वीकृति न दी जाये।

५ जुलाई : दादाभाई नौरोजीके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। उनसे अनुरोध किया कि दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंका इंग्लैंडमें मामला पेश करें।

६ जुलाई : भारतीयोंने विधान-परिषदको दूसरा प्रार्थनापत्र दिया और अनुरोध किया कि विधेयकको अस्वीकार कर दिया जाये।

७ जुलाई : मताधिकार विधेयकका विधान-परिषदमें तीसरा वाचन।

१० जुलाई : गवर्नरको प्रार्थनापत्र दिया कि विधेयकको सम्राज्ञीकी अनुमतिके लिए तबतक ब्रिटिश सरकारके पास न भेजा जाये जबतक कि सम्राज्ञीके नाम भारतीयोंका प्रार्थनापत्र प्राप्त न हो जाये।

१७ जुलाई : उपनिवेश-मन्त्री लॉर्ड रिपनके नाम १०,००० भारतीयोंके हस्ताक्षरोंसे एक प्रार्थनापत्र नेटाल-गवर्नरके सुपुर्द किया।
सार्वजनिक काम करनेके लिए नेटालमें रह गये।

२२ अगस्त : रंगभेदके कानूनोंके खिलाफ लगातार आन्दोलन करनेके लिए नेटाल भारतीय कांग्रेसकी स्थापना की। उसके प्रथम मन्त्री नियुक्त। उपनिवेशमें जन्मे भारतीयोंका संघ भी बनाया।

३ सितम्बर : नेटाल वकील संघके विरोधके बावजूद सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नेटालकी अदालतोंमें वकालत करनेकी इजाजत मिली। अदालतमें पगड़ी उतारनेको कहा गया। 'ज्यादा बड़ी लड़ाइयाँ लड़नेके लिए' शक्ति बचानेके इरादेसे अदालतकी प्रथा मानना स्वीकार कर लिया।

१९ सितम्बर : गोपी महाराजके मुकदमेकी पैरवी की और उसमें जीत हुई। शायद यह दक्षिण आफ्रिकामें उनका पहला मुकदमा था। . . . परन्तु कानून-पेशेमें तरक्कीको सार्वजनिक कार्यके सामने गौण रखा।

२६ नवम्बर : एसॉटरिक ईसाई विचारधाराकी पुस्तकोंके एजेंट बने, जिससे व्यक्त हुआ कि उस विचारधारामें उनकी दिलचस्पी बढ़ रही है।

दिसम्बर (१९ ता० से पूर्व) : नेटाल विधानमण्डलके सदस्योंके नाम 'खुली चिट्ठी' भेजी, जो उद्धरणों और प्रमाणोंसे पूर्ण थी।

१९ दिसम्बर : नेटालके यूरोपीयोंके नाम अपील निकाली कि वे भारतीय प्रवासियोंके प्रश्नोंपर सहानुभूतिके साथ विचार करें।

१८९५

अप्रैल: डर्बनके पास ट्रैपिस्ट मठ देखने गये। वहाँ आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे अन्नाहारका प्रयोग होते देखकर बहुत प्रभावित हुए।

६ अप्रैल: भारतीय पंच-फैसलेके मामलेमें असन्तोषजनक निर्णयके विरुद्ध ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी कमेटीके द्वारा उच्चायुक्तको प्रार्थनापत्र भेजा।

५ मई से पूर्व: भारतीय प्रवासी विधेयकमें गिरमिटको नया करनेकी धाराओंके विरुद्ध नेटाल विधानसभासे अपील।

१४ मई के पश्चात्: पंच-फैसलेमें भारतीयोंके व्यापारिक अधिकारोंको अदालतोंकी दयापर छोड़ दिया गया था, उस अन्यायके विरुद्ध लॉर्ड रिपनसे फिर अपील। भारतके वाइसराय लॉर्ड एलगिनसे भारतीयोंके खिलाफ भेदभावके कानूनों और उनपर लादी गई निर्योग्यताओंके विषयमें हस्तक्षेप करनेकी माँग।

१७ जून: गिरमिटिया भारतीय मजदूर बालसुन्दरम्के मामलेकी पैरवी की और उसे मुक्त कराया। इस मामलेसे गिरमिटिया मजदूरोंके साथ सम्पर्क स्थापित हुआ।

२६ जून: प्रवासी विधेयककी उन धाराओंके विरुद्ध विधान-परिषदको प्रार्थनापत्र, जिनका असर गिरमिटिया मजदूरोंपर पड़ता था।

११ अगस्त: चेम्बरलेनको लम्बा प्रार्थनापत्र, जिसमें गिरमिट-मुक्त भारतीयोंसे ३ पौंड शुल्क वसूल करनेकी व्यवस्थापर आपत्ति की गई थी। लॉर्ड एलगिनसे हस्तक्षेप करने या और अधिक मजदूरोंको भेजना बन्द करनेका अनुरोध।

२९ अगस्त: लंदनमें, दादाभाई नौरोजी दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके दुखड़ोंके सम्बन्धमें चेम्बरलेनके पास एक शिष्टमण्डल ले गये।

१२ सितम्बर: चेम्बरलेनने नेटाल सरकारको सूचित किया कि सम्राज्ञी सरकार मताधिकार विधयककी ज्योंका-त्यों स्वीकार नहीं करती।

२५ – ३० सितम्बर: गांधीजीने अखबारोंको लिखकर इस आरोपको नामंजूर किया कि कांग्रेस एक गुप्त संस्था है, या वे स्वयं उसके वेतनभोगी कर्मचारी हैं। परन्तु यह जिम्मेदारी स्वीकार की कि उसका विधान मैंने ही तैयार किया है।

२२ अक्तूबर: नागरिकोंको अनिवार्य सैनिक सेवासे मुक्त रखनेवाली सैनिक भरती संधिमें 'ब्रिटिश नागरिकों' का जो यह अर्थ लगाया गया था कि ये शब्द केवल गोरे लोगोंतक ही सीमित हैं, उसके विरोधमें ब्रिटिश भारतीय रक्षा समिति और जोहानिसबर्गके भारतीयों द्वारा चेम्बरलेनको तार।

१८ नवम्बर: नेटाल सरकारने उपनिवेश-मन्त्रीको मताधिकार विधेयकका नया मसविदा भेजा। यूरोपीयोंने लेडीस्मिथ, सैलिसबरी और बेलेयर आदि स्थानोंमें एशियाई कानूनोंके समर्थनमें सभाएँ कीं।

२६ नवम्बर: गांधीजीने सैनिक भरती संधिमें भारतीयोंके प्रति भेदभावके विरुद्ध चेम्बरलेनको प्रार्थनापत्र भेजा।

१६ दिसम्बर: 'इंडियन फ्रैंचाइज: एन अपील टु एवरी ब्रिटन इन साउथ आफ्रिका' नामक पुस्तिका प्रकाशित की।

१८९६

२३ जनवरी : गांधीजीने नेटालकी अदालतमें गुजराती दुभाषिएके कामके लिए आवेदन किया।

२७ जनवरी : लंदनके 'टाइम्स'ने गांधीजीका उल्लेख इन शब्दोंमें किया : "एक ऐसा व्यक्ति, जो अपने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय बन्धु-प्रजाजोंके हितके प्रयत्नोंके कारण आदरका अधिकारी है।"

२६ फरवरी : बस्ती बसानेके नियमोंके विरुद्ध जुलूलैंडके गवर्नरको प्रार्थनापत्र भेजा।

३ मार्च : नेटालके सरकारी 'गजट' में मताधिकार विधेयकका नया मसविदा, जो विधानसभामें पेश किया गया था, प्रकाशित।

५ मार्च : बस्ती बसानेके नियमोंके विरुद्ध प्रार्थनापत्र सरकार द्वारा नामंजूर कर दिया गया।

११ मार्च : गांधीजीने बस्ती बसानेके नियमोंके विरुद्ध चेम्बरलेनको प्रार्थनापत्र भेजा।

२७ अप्रैल : अपने-अपने देशमें मताधिकारका उपभोग न करनेवाले विदेशियोंको मताधिकारसे वंचित करनेवाला विधेयक संशोधित रूपमें नेटालकी संसदमें पेश। नेटालके भारतीयों द्वारा उक्त विधेयकके विरुद्ध विधानसभा, पीटरमैरित्सबर्गको प्रार्थनापत्र।

६ मई : मताधिकार विधेयकका दूसरा वाचन।

७ मई : गांधीजीने चेम्बरलेन और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिको तार दिया कि जबतक भारतीयोंका प्रार्थनापत्र पेश न कर दिया जाय तबतक मताधिकार विधेयक या उसमें किये गये संशोधन स्वीकार न हों।

१३ मई : विधानसभामें मताधिकारका तीसरा वाचन समाप्त और स्वीकार।

२६ मई : डर्बनके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंने गांधीजीको, जो भारत जानेवाले थे, अधिकार दिया कि वे "भारतके सत्ताधीशों, नेताओं और लोक-संस्थाओंको दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके दुखड़ोंका परिचय दें।"

२ जून : नेटाल भारतीय कांग्रेसकी ओरसे गांधीजीको मानपत्र भेंट।

४ जून : डर्बनके भारतीयों द्वारा कांग्रेस सभा भवनमें आयोजित विदाई-सभामें गांधीजीको मानपत्र भेंट।

५ जून : गांधीजी भारतके लिए रवाना।

दक्षिण आफ्रिकाका वैधानिक तन्त्र

(१८९० – १९१४)

केप उपनिवेश

सन् १८५३ के संविधान अध्यादेशके अनुसार केप उपनिवेशके शासनतन्त्रमें एक गवर्नरकी व्यवस्था थी। गवर्नरको कार्यपालक अधिकार तो थे, किन्तु वह विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं था। विधानमण्डलके दो सदन थे — विधानसभा और विधान-परिषद। दोनों ही चुनाव-मूलक सदन थे। १८७२ में उपनिवेशको सात विभागोंमें बाँट कर और प्रत्येक विभागके प्रतिनिधियोंको शामिल करके विधानमंडलका पुनर्गठन कर दिया गया। उसका स्वरूप थोड़ा-बहुत कैनेडा तथा आस्ट्रेलियाके औपनिवेशिक विधान-मंडलोंका जैसा था। परन्तु उसे स्थानीय आवश्यकताओंके अनुकूल ढाल लिया गया था।

विधान-परिषद सम्बन्धी मताधिकार बहुत कम लोगोंको था। उसके लिए बहुत ज्यादा साम्पत्तिक योग्यता निश्चित की गई थी। १८९२ के मताधिकार और मत-पत्र अधिनियममें व्यवस्था थी कि मतदाता बननेके लिए या तो ५० पौंड वार्षिककी आय होनी चाहिए या ७५ पौंड मूल्यकी अचल सम्पत्ति। लेखन-योग्यताकी एक कसौटी भी निर्धारित कर दी गई थी। यद्यपि ये नियम सब लोगोंपर समान रूपसे लागू थे, फिर भी व्यवहारमें इनसे गैर-गोरे मतदाताओंकी संख्या बहुत सीमित हो गई थी। गोरे मतदाताओंका अनुपात उनसे बहुत अधिक था।

संविधान उदार, औपनिवेशिक स्वरूपका था, जिसमें अपनी दृष्टिके अनुसार स्वदेश-नीति निर्धारित करनेका अधिकार शामिल था। परन्तु उसे प्रत्यक्ष कार्यान्वित करनेमें मूल देश — ब्रिटेन — का अनुमोदन अपेक्षित था। यह संविधान वास्तविक रूपमें १९१० तक, जब कि केप उपनिवेश दक्षिण आफ्रिकी संघका प्रदेश बना, जारी रहा।

सन् १८९४ के ग्लेन-ग्रे अधिनियमसे ग्राम और जिला परिषदोंके द्वारा वतनी लोगोंको आंशिक स्वायत्त शासन प्राप्त हुआ। ये परिषदें बृहत् परिषदके दायरेके अन्दर थीं। प्रत्येक परिषदके ६ सदस्य होते थे — ४ निर्वाचित और २ नामजद। अध्यक्ष कोई यूरोपीय मजिस्ट्रेट होता था। बृहत् परिषदमें प्रत्येक जिला परिषदके तीन आफ्रिकी प्रतिनिधि होते थे — दो निर्वाचित और एक नामजद। बृहत् परिषदकी आयका साधन बेगारसे मुक्ति पानेका कर और झोंपड़ी-कर था। उसे स्वायत्त शासनका बहुत अधिकार था। जिला परिषदोंको कर लगानेका कोई मौलिक अधिकार नहीं था। १८९९ से १९०३ तकके कालमें ग्लेन-ग्रे अधिनियमका विस्तार उपनिवेशके केंटनी तथा अन्य जिलोंमें हो गया था।

सन् १९०९ के जिस दक्षिण आफ्रिका अधिनियमके अनुसार दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यका निर्माण हुआ, उसके द्वारा केप उपनिवेशके 'रंग-निरपेक्ष' मताधिकारको यह नियम बनाकर सुरक्षित कर दिया गया था कि केवल रंग या जातिके आधारपर

केप प्रदेशके लोगोंके मताधिकारको घटानेकी वृत्तिवाला कोई भी कानून तभी बनाया जा सकेगा जब कि संघीय संसदके दोनों सदनोंकी संयुक्त बैठकमें वह दो-तिहाई बहुमतसे स्वीकार किया जाये।

केप टाउन, जो १९०१ तक ब्रिटिश उच्चायुक्तका सदर मुकाम था, अब संघीय विधानमण्डलका केन्द्र-स्थान बन गया। दक्षिण आफ्रिकाकी सारी राजनीति तबतक ब्रिटिश उच्चायुक्तके आसपास ही केन्द्रित थी जबतक कि प्रभावकारी सत्ता १९१० में दक्षिण आफ्रिकी मन्त्रिमंडलके हाथोंमें नहीं आई।

नेटाल

नेटालने १८९३ में उत्तरदायी शासनका अधिकार प्राप्त किया। विधान-परिषद द्वारा स्वीकृत और सम्राज्ञी-सरकार द्वारा अनुमोदित विधानमें एक द्विसदनीय विधान-मंडलकी व्यवस्था थी। ये दो सदन थे: १० वर्षके लिए नामजद ११ सदस्योंकी एक विधान-परिषद, और ४ वर्षके लिए निर्वाचित ३७ सदस्योंकी एक विधान-परिषद और ४ वर्षके लिए निर्वाचित ३७ सदस्योंकी एक विधानसभा। कार्यपालिकाका संगठन गवर्नर तथा एक मन्त्रिपरिषदको मिलाकर किया गया था। जहाँतक मताधिकारका सम्बन्ध था, १८९६ में मताधिकार अपहरण अधिनियम तथा प्रवासी अधिनियम स्वीकार करानेकी जिम्मेदारी नेटालके प्रथम प्रधानमन्त्री सर जॉन रॉबिन्सनकी थी। पहले कानूनसे एशियाइयोंका मताधिकार छिन गया और दूसरेके द्वारा उपनिवेशमें स्वतन्त्र भारतीयोंका प्रवेश लगभग वर्जित कर दिया गया। १९०६ में नेटाल सरकारने अनेक वतनी लोगोंको प्राण-दण्ड देनेका एक आदेश निकाला, जिसे सम्राट्-सरकारने रोक दिया। इससे एक वैधानिक संकट उत्पन्न हो गया और नेटालके मन्त्रिमण्डलने विरोधमें त्यागपत्र दे दिया। परन्तु, बादमें उपनिवेश मन्त्रीके यह आश्वासन देनेपर कि सम्राट् सरकारका उत्तरदायी औपनिवेशिक शासनमें हस्तक्षेप करनेका कोई इरादा नहीं है, मन्त्रिमण्डलने फिरसे कार्य सँभाल लिया।

ऑरेंज रिवर उपनिवेश

ऑरेंज रिवर उपनिवेश सन् १८९० तक अपना शासन 'रस्टेनबर्ग ग्रोंडवेट' या १८५८-६० के विधानके आधारपर चलाता रहा। इस विधानमें एक निर्वाचित अध्यक्ष और एक कार्यपालिका परिषदकी व्यवस्था थी। परिषदके कुछ सदस्योंकी नियुक्ति अध्यक्ष और कुछकी 'फोक्सराड'– राष्ट्रीय विधानसभा द्वारा की जाती थी। स्वयं 'फोक्सराड' वयस्क मताधिकारके आधारपर निर्वाचित की जाती थी। प्रधान सेनापति परिषदका एक विशिष्ट सदस्य होता था। जिस विधानके द्वारा लोक-प्रभुत्वकी स्थापना हुई उसमें घोषणा की गई थी कि उपनिवेश गोरे और गैर-गोरे लोगोंके बीच समानताका इच्छुक नहीं है। यह समानता न तो गिरजेमें इष्ट है, न राज्यमें। ब्लूमफॉन्टीनकी सन्धिने सन् १८९७ और उसके बादके दो वर्षोंमें ऑरेंज रिवर उपनिवेश तथा ट्रान्सवालके बीच अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दिया। ब्लूमफॉन्टीन और प्रिटोरियामें दोनों देशोंके प्रतिनिधियोंकी संयुक्त परिषदकी

बैठकें हुईं। उनमें संघ-निर्माणके आदर्शको दृष्टिमें रखते हुए शिक्षा, न्याय, देशी लोगोंके शासन-प्रबन्ध आदि जैसे विषयोंमें अधिक एकरूपता लानेकी व्यवस्था की गई।

बोअर युद्ध समाप्त होनेपर जब उपनिवेश ब्रिटिश सत्ताके अधीन हो गया, तब सैनिक सरकारने शासन अपने हाथमें लिया। परन्तु वेरीनिगिंगकी सन्धिसे, जिसके द्वारा १९०२ में लेफ्टिनेंट गवर्नर और दूसरे मुख्य अधिकारियोंकी एक कार्यपालिकाकी स्थापना हुई, इस सैनिक शासनका अन्त हो गया। १९०३ में एक विधान-परिषदकी स्थापना हुई। उसमें स्थानीय हितोंके प्रतिनिधियोंके रूपमें एक अल्प संख्यामें गैर-सरकारी सदस्योंको नामजद करनेकी व्यवस्था थी। बादमें एक आन्तर-औपनिवेशिक परिषदका संगठन किया गया। उसके १४ सरकारी और ४ गैर-सरकारी नामजद सदस्य थे। उसका काम दोनों उपनिवेशोंके सामान्य हित-सम्बन्धी मामलोंका प्रबन्ध करना था। स्वशासनका दर्जा उपनिवेशको १९०७ में मिला। उसके विधानमें गोरे पुरुषोंको मताधिकार और, जैसा कि पुराने गणराज्यमें था, सख्त रंगभेदकी व्यवस्था की गई। यह नियम भी बनाया गया कि विधानमण्डलका दूसरा सदन — विधान-परिषद — नामजद स्वरूपका हो और उसके सदस्योंकी नियुक्ति पहले तो गवर्नर और बादमें सपरिषद गवर्नर करे।

ट्रान्सवाल

ट्रान्सवालको शाही उपनिवेशके रूपमें १८७९ में जो शासन विधान प्राप्त हुआ था — अर्थात् एक नामजद कार्यपालिका परिषद और एक विधानसभाका — उसका प्रिटोरिया-समझौते द्वारा, जिसमें ब्रिटिश प्रभुत्वके अधीन पूर्ण स्वशासनका आश्वासन दिया गया था, संशोधन कर दिया गया। परन्तु लंदन-समझौतेमें समझौतेकी प्रस्तावना निकाल दी गई, और इस तरह यह संशोधन व्यर्थ हो गया। १८९७ में ट्रान्सवालमें ऑरेंज रिवर उपनिवेशके साथ गठ-बन्धन करके सामान्य हितके विषयोंमें सलाह देनेके लिए एक स्थायी परिषदकी स्थापना की।

सन् १९०० में अंग्रेजोंके ट्रान्सवालपर अधिकार करनेपर मिलनरको वहाँका प्रशासक नियुक्त किया गया। पुरानी कानून-पुस्तकोंमें व्यापक परिवर्तन कर दिये गये और सॉलोमन आयोगकी सिफारिशोंपर राजकीय घोषणा द्वारा केप उपनिवेशके जैसे बहुतसे कानून बना दिये गये। १९०१ में जोहानिसबर्गको और अगले वर्ष प्रिटोरियाको म्युनिसिपल शासनका अधिकार प्रदान किया गया। वेरीनिगिंगकी सन्धिमें शाही उपनि-वेशका दर्जा देनेकी व्यवस्था थी, और यह भी निश्चय किया गया था कि धीरे-धीरे यह दर्जा उत्तरदायी शासनतक बढ़ाया जायेगा। १९०२ में ट्रान्सवालको कार्यपालिका परिषद और विधानसभाका अधिकार प्राप्त हुआ। दोनों नामजद की जाती थीं और लेफ्टिनेंट गवर्नरके साथ-साथ उनके सदस्य विभिन्न विभागोंके कार्यपालक मुख्याधिकारी होते थे। १९०३ में विधान-परिषदकी स्थापना हुई और उसके कुछ बाद, उसी वर्षमें, आन्तर-औपनिवेशिक परिषद भी बन गई। १९०५ में लिटल्टन संविधान लागू किया गया। उसके द्वारा एक निर्वाचित विधान-सभाकी व्यवस्था हुई, परन्तु अधिकार गवर्नरके

प्रति उत्तरदायी सरकारी अफसरोंके हाथमें रहे। सभा ४४ सदस्योंकी थी। ताज द्वारा नियुक्त अधिकारियोंको छोड़कर शेष सब सदस्योंके निर्वाचनकी व्यवस्था थी।

१९०६ में शाही फरमानके द्वारा लिटल्टन संविधान रद कर दिया गया और उपनिवेशको स्वशासनका अधिकार प्राप्त हुआ। इसपर ट्रान्सवालने गोरे लोगोंके लिए पुराने गणराज्यके नमूनेका वयस्क पुरुष-मताधिकार प्रचलित किया। परन्तु गैर-गोरे लोगोंको कानूनी अधिकार प्रदान किये गये। वतनी लोगोंको मताधिकार देनेका प्रश्न तबतकके लिए स्थगित रखा गया, जबतक कि प्रातिनिधिक संस्थाओंकी स्थापना और गोरे लोगोंके बहुमतका शासन सुनिश्चित न हो जाये। द्वितीय सदन या विधान-परिषदको ऑरेंज रिवर उपनिवेशके नमूनेको नामजद संस्था बना दिया गया। १९०८ के आम चुनावोंके बाद सरकारने बहुत-से प्रतिबन्धात्मक कानून बनाये।

संघ

दक्षिण आफ्रिकाके चारों राज्योंका १९१० में एक संघीय राज्य बना दिया गया। संघीय राज्यके शासनतन्त्रमें सपरिषद गवर्नर-जनरल, और उसकी मददके लिए अनिश्चित संख्यामें कार्यपालिकाके सदस्य तथा राज्य विभागोंके मन्त्री थे। मन्त्रियोंकी संख्या १० से अधिक नहीं हो सकती थी।

संघीय राज्यकी प्रभुसत्ता उसकी संसदके हाथोंमें थी, जिसका संगठन सम्राट् और संसदके दोनों सदनों — सीनेट और विधानसभाको मिलाकर हुआ था। दोनों सदनोंको वित्तीय विषयोंको छोड़कर शेष सब विषयोंमें कानून बनानेके बराबर अधिकार थे। सब विधेयकोंका दोनों सदनोंमें स्वीकृत होना आवश्यक था। अगर कोई गतिरोध उत्पन्न हो जाये, तो वह दोनों सदनोंकी संयुक्त बैठक द्वारा हल किया जाता था। संसदको अपना ही संविधान बदल देनेका अधिकार था। केवल तीन उपधाराएँ ऐसी थीं जिनको बदलनेके लिए दोनों सदनोंकी संयुक्त बैठकमें दो-तिहाई बहुमतकी आवश्यकता थी। ये उपधाराएँ (१) अंग्रेजी और डचको राज्य-भाषाएँ मान्य करने, (२) मताधिकारमें कोई ऐसे परिवर्तन करने, जिनसे कि रंग या जातिके आधारपर केप-निवासियोंके मत देनेके अधिकार घटते हों, और (३) संसदको उपर्युक्त दो तथा स्वयं इस उपधाराको छोड़कर शेष विधानमें साधारण द्विसदनीय प्रक्रिया द्वारा संशोधन करनेका अधिकार देनेसे सम्बन्ध रखती थीं।

विधानसभाका चुनाव प्रत्यक्ष सार्वजनिक मत द्वारा ५ वर्षके लिए होता था। उसमें १५९ स्थान थे और वे सब यूरोपीयोंके लिए निश्चित थे। इनमें से १५० का चुनाव चारों प्रान्तोंके मतदाता, ६ का दक्षिण-पश्चिमी आफ्रिकाके यूरोपीय मतदाता और ३ का केपके आफ्रिकी मतदाता करते थे। मतदाता (१) २१ वर्षकी आयुके ऊपरके यूरोपीय होते थे। प्रवासी ६ वर्षतक और ब्रिटिश प्रजाजन ५ वर्षतक संघमें रहनेके बाद नागरिकता प्राप्त करनेके लिए अर्जी दे सकते थे। यह विषय गृहमन्त्रीके विवेकाधिकारमें था। (२) केप उपनिवेश और नेटालके साक्षर रंगीन पुरुषोंको, जिनकी या तो ७५ पौंड वार्षिक आय हो या जिनके पास ५० पौंड मूल्यकी अचल सम्पत्ति हो, मत देनेका अधिकार था। और केवल केपमें साक्षर आफ्रिकी पुरुषोंको, जो या

तो ७५ पौंड कमाते हों या जिनके पास ५० पौंडकी अचल सम्पत्ति हो, पृथक् मतदाता-सूचीमें नाम लिखानेका अधिकार था। वे तीन सदस्योंका चुनाव कर सकते थे। निर्वाचन-क्षेत्रोंमें मतदाताओंकी संख्या बराबर थी। किन्तु घट-बढ़ बराबर करनेके लिए निश्चित संख्यामें १५ प्रतिशत कम-ज्यादाकी गुंजाइश रखी गई थी।

सीनेटकी अवधि १० वर्ष और सदस्य-संख्या ४८ थी। सब सदस्य यूरोपीय जमीन-जायदादके मालिक थे। इनमें से आठ-आठका चुनाव प्रत्येक प्रान्तके संसद-सदस्य और प्रान्तीय परिषद तथा दो का दक्षिण-पश्चिमी आफ्रिकाके संसद-सदस्य और विधानसभा करती थी; १० की नियुक्ति सरकार करती और ४ का चुनाव ५ वर्षके लिए मुखियों, देशी परिषदों और देशी सलाहकार मण्डलोंके द्वारा अप्रत्यक्ष पद्धतिसे संघके आफ्रिकी लोग करते थे।

प्रान्तीय सरकारें

प्रान्तीय सरकारोंमें (१) एक प्रशासक होता था, जिसकी नियुक्ति ५ वर्षके लिए संघ सरकार करती थी। वह केवल सपरिषद गवर्नर-जनरल द्वारा संसदकी जानकारीसे पदच्युत किया जा सकता था। (२) ४ सदस्योंकी एक कार्यपालिका परिषद होती थी। इन सदस्योंका चुनाव सानुपातिक मतदान द्वारा प्रान्तीय परिषदोंके सदस्य तीन वर्षके लिए करते थे। और (३) प्रान्तीय परिषदें होती थीं, जो तीन वर्षके अन्तमें भंग हो जाती थीं। उनका चुनाव उसी मताधिकार द्वारा होता था, जो संघीय विधानसभाके लिए निश्चित था।

प्रशासकका क्षेत्र दो प्रकारका था। कार्यपालिका समितियोंके अध्यक्षकी हैसियतसे वह उनकी कार्रवाइयोंमें शामिल होता था। वह वित्तीय विनियोगकी सिफारिशें तो करता था, किन्तु उसपर मत नहीं देता था। संघीय राज्य सरकारके प्रतिनिधिकी हैसियतसे वह प्रान्तीय परिषदोंके अधिकार-क्षेत्रसे बाहरकी बातोंका प्रबन्ध करता था।

कार्यपालिका समितियोंको अवशिष्ट अधिकार प्राप्त थे। प्रान्तीय परिषदमें विधान-मण्डलोंके सब गुण मौजूद थे। उन्हें निश्चित विषयोंपर अध्यादेश निकालनेका भी अधिकार था। शर्त केवल यह थी कि वे संसदके अधिनियमोंके विरुद्ध न हों और सपरिषद गवर्नर-जनरल उन्हें मंजूरी दे दे। उनके अधिकाराधीन विषय थे—शिक्षा (उच्च शिक्षाको छोड़कर), अस्पताल, म्युनिसिपल संस्थाएँ और रेलवेको छोड़ कर शेष सब स्थानीय निर्माण कार्य। संसदीय और म्युनिसिपल संस्थाओंका यह अनोखा मेल संघीय भावनाके प्रति एक रियायत-जैसा था। इससे संघ सरकारकी सत्ता क्षीण नहीं होती थी। संघीय संसदको उनके कार्योंको रद करने या बदलनेका अधिकार प्राप्त था।

दक्षिण आफ्रिकाके सर्वोच्च न्यायालयका पुनर्विचार-विभाग (अपीलेट डिवीजन) ब्लूमफॉन्टीनमें था और प्रान्तोंमें उसकी शाखाएँ थीं। उसे प्रान्तीय अध्यादेशोंकी वैधताका फैसला करनेका अधिकार था।

प्रान्तकी आयका ४० प्रतिशत तक प्रान्तीय करोंसे वसूल किया जा सकता था। शेषकी पूर्ति केन्द्रीय आयसे सहायताके रूपमें होती थी। प्रान्तोंके बीच वित्तीय सम्बन्धोंका नियमन १९१३ के वित्तीय-सम्बन्ध अधिनियम द्वारा होता था।

दक्षिण आफ्रिकाका संक्षिप्त इतिवृत्त

इस इतिवृत्तका उद्देश्य घटनाओंका पूरा विवरण देना नहीं है। इसमें केवल उन घटनाओंका उल्लेख किया गया है, जिनसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और थोड़ी-बहुत मात्रामें उन शक्तियोंको समझनेमें मदद मिल सकती है जो गांधीजीके कार्यकालमें दक्षिण आफ्रिकामें काम कर रही थीं।

१७९५ ब्रिटिश फौजोंने डचोंके साथ सन्धि करके केपपर कब्जा किया। भारतके मार्गपर केप एक सामरिक महत्त्वका स्थान था। ब्रिटिशोंकी कार्रवाईका यही मुख्य कारण था। इस समय वहाँ गोरे वासियोंकी संख्या १६,००० थी।

१८०२ ऐमियन्सकी सन्धिके अनुसार केप उपनिवेश डच गणराज्य सरकारको वापस दे दिया गया।

१८०६ ब्रिटेनने केपको फिरसे जीता।

१८१५ वियनाकी कांग्रेसने ब्रिटेनको केप उपनिवेश समर्पित कर देनेकी पुष्टि की।

१८२० ब्रिटिश प्रवासियोंका पहला जत्था केप उपनिवेशके तटपर उतरा।

१८२३ केपके मामलोंकी जाँच करनेके लिए आयोगकी नियुक्ति।

१८३४ केप उपनिवेशमें विधान-परिषदकी स्थापना और जनमत द्वारा निर्वाचित म्युनिसिपल कमेटियोंका आरम्भ। गुलामी प्रथाका अन्त।

१८३६ महानिष्क्रमणका आरम्भ।

१८३८ नेटालमें गणराज्यकी स्थापना।

१८४१ केप उपनिवेशके नागरिकोंने विधानसभाकी स्थापनाके लिए प्रार्थना की।

१८४३ ब्रिटेन द्वारा नेटाल हस्तगत और केप कालोनीमें सम्मिलित।

१८४५ नेटालमें, जो अबतक केप उपनिवेशके गवर्नर तथा विधान-परिषदके अधीन था, न्यायतन्त्रका सूत्रपात।

१८४६ केप उपनिवेशके गवर्नरको उच्चायुक्त नियुक्त किया गया।

१८४७ नेटालके शहरी क्षेत्रोंमें चुनी हुई नगरपालिकाओंकी स्थापना।

१८४८ नेटालको नामजद विधान-परिषदका अधिकार दिया गया। फ्री स्टेटने ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी प्रभुसत्ता घोषित कर दी।

१८५२ सैंड रिवर सम्मेलनने ट्रान्सवालमें बोअरोंकी स्वतन्त्रता मान्य कर ली।

१८५३ केप उपनिवेश संविधान अध्यादेश जारी किया गया।

१८५४ ब्लूमफॉन्टीन सम्मेलनके फलस्वरूप ऑरेंज फ्री स्टेट और ट्रान्सवाल स्वतन्त्र हो गये। डर्बन और पीटरमैरित्सबर्गमें नगरपालिकाओंकी स्थापना।

१८५५ सम्राज्ञीसे कैदी-मजदूरोंको लाने देनेके लिए नेटालकी असफल प्रार्थना।

१८५६ नेटालको शाही उपनिवेशका दर्जा और प्रातिनिधिक शासन तथा संसदीय मताधिकार प्रदान किया गया। निर्वाचित सदस्योंके बहुमतकी विधान-परिषद भी स्थापित की गई। किन्तु मताधिकारके लिए साम्पत्तिक योग्यता इतनी अधिक रखी गई थी कि वतनी लोग मत देनेसे वंचित रहे।

१८५७ नेटालके सर्वोच्च न्यायालयका पुनर्गठन और आरोप योग्य मामलोंमें जूरीके द्वारा मुकदमेकी व्यवस्था। पीटरमैरित्सबर्गमें विधान-परिषदकी पहली बैठक।

१८५८ अमाटोंगा कबीलेके लोगोंको मजदूर बनानेके नेटालके प्रयत्न असफल। जावासे चीनी और मलायी मजदूर लाये गये। भारत सरकारसे मजदूर लाने देनेकी प्रार्थना सफल।

१८५९ नेटालकी विधान-परिषदने भारतीय मजदूरोंको लानेके लिए कानून मंजूर किया।

१८६० नेटालके ईखके खेतोंमें काम करनेके लिए मद्राससे भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंके पहले जत्थेका दक्षिण आफ्रिकी भूमिपर आगमन।

१८६६ नेटालमें भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंकी संख्या ५,००० तक पहुँच गई।

१८६८ बसूटोलैंड ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया।

१८६९ फ्री स्टेटमें हीरेकी खानें मिलीं।

१८७० किम्बरलेमें हीरेकी खानें पाई गईं।
नेटालमें गिरमिटकी अवधि पूरी कर लेनेवाले मजदूरोंको भूमि देनेके लिए १८७० का कानून २ स्वीकृत।
बसूटोलैंडका सम्राज्ञी सरकार और फ्री स्टेटके बीच बँटवारा कर दिया गया।

१८७२ केप उपनिवेशमें पूर्ण उत्तरदायी शासनकी स्थापना।

१८७६ वतनी मामलोंके आयोगने कार्यपालिकाको वतनी लोगोंपर अधिक शासनाधिकार प्रदान किया। प्रिटोरिया नगरकी नींव पड़ी।
रेलवे-निर्माण और बन्दरगाह सुधारके कार्योंके लिए भारतीय मजदूरोंको लाना फिर शुरू।

१८७७ ट्रान्सवालको ब्रिटिश शासनमें शामिल कर लिया गया।

१८७८ ट्रान्सवालसे ब्रिटिश सत्ताको हटवानेके प्रयत्नोंके लिए क्रूगर इंग्लैंड गये।

१८७९ ट्रान्सवालको शाही उपनिवेशका दर्जा दिया गया।
नामजद कार्यपालिका परिषद और विधानसभाकी व्यवस्था।
'अपने ही झंडेके नीचे संयुक्त दक्षिण आफ्रिका' का निर्माण करनेके उद्देश्यसे 'आफ्रिकैंडर बॉन्ड' नामक संघकी स्थापना।

१८८०-१ ट्रान्सवालका स्वातन्त्र्य-संग्राम या बोअर युद्ध।

१८८१ प्रिटोरिया-समझौते द्वारा ट्रान्सवालको 'सम्राज्ञी-सरकारकी प्रभुसत्ताके अधीन पूर्ण स्वशासन'का आश्वासन।
भारतीय व्यापारियोंका नेटालसे ट्रान्सवालमें प्रवेश।

१८८२ ट्रान्सवालमें पृथक् बस्तियों-सम्बन्धी आयोगका संगठन। वतनी लोगोंको पृथक् बस्तियोंमें हटाना स्वीकार कर लिया गया, किन्तु इस निर्णयको अमलमें नहीं लाया गया।

१८८३ ट्रान्सवालके निर्वाचित अध्यक्ष क्रूगरकी प्रिटोरिया समझौतेमें संशोधन करानेके लिए लंदन-यात्रा।

१८८४ ब्रिटेन और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके बीच लंदनका समझौता। उसके द्वारा देशी लोगोंको छोड़कर शेष सबको गणराज्यमें प्रवेश, यात्रा तथा निवासकी स्वतन्त्रता और जो कर डच नागरिकोंपर नहीं लगाये जाते थे उनसे मुक्ति। व्यापारकी स्वतन्त्रता भी प्राप्त।
हाफमियर संसदके सदस्य चुने गये — ३२ सदस्योंके आफ्रिकैंडर दलके नेताके रूपमें।
नेटाल विधान-परिषदने उपनिवेशकी एशियाई आबादीको सफलतापूर्वक नियन्त्रणमें रखनेके सर्वोत्तम उपाय निकालनेके लिए आयोग नियुक्त करनेका निश्चय किया।
ट्रान्सवालकी जनताकी प्रतिबन्धक कानून बनानेकी माँग सम्राज्ञी-सरकारके सामने पेश कर दी गई।

१८८५ ट्रान्सवालमें एशियाइयोंके अधिकारोंपर प्रतिबन्ध लगानेवाला १८८५ का कानून ३ बना। यह कानून यूरोपीयोंकी इस माँगके कारण बनाया गया कि एशियाइयोंको पृथक् बस्तियोंमें रखा जाये। इसे बनानेके लिए सम्राज्ञी-सरकारकी अनुमति प्राप्त कर ली गई थी। न्यायाधीश रैगकी अध्यक्षतामें नेटाल

सरकार द्वारा भारतीय प्रवासी आयोगकी नियुक्ति। आयोगके निष्कर्षोंसे प्रकट हुआ कि उपनिवेशके यूरोपीयोंका जबरदस्त लोकमत इस बातके खिलाफ था कि 'भारतीय कृषि अथवा वाणिज्य-व्यापारमें उनके प्रतिद्वन्द्वी या बराबरीवाले बनकर रहें।' बेकवानालैंड ब्रिटिश रक्षित राज्य घोषित। दक्षिणी क्षेत्रको सम्राज्ञीके शासनाधीन उपनिवेश बना दिया गया।

१८८६ बेकवानालैंडका कुछ हिस्सा केप उपनिवेशमें मिला दिया गया। ट्रान्सवालमें सोनेकी खानें पाई गईं।

भारतीयोंके खिलाफ नेटालके यूरोपीयोंके आरोपोंकी जाँच करनेके लिए आयोग-की नियुक्ति। ब्रिटिश सरकारने घोषणा की कि १८८५ के कानून ३ के अर्थके अन्दर जो एशियाई-विरोधी कानून बनाये जायें उनका विरोध करनेका उसका इरादा नहीं है। परन्तु उसने व्यापारके लिए ट्रान्सवालमें बसनेका भारतीयोंका अधिकार स्वीकार किया।

१८८७ १८८५ के कानून ३ में संशोधन।

नेटाल सरकारके अधीन रखे गये जुलूलैंडके एक हिस्सेपर ब्रिटिश प्रभुसत्ताकी घोषणा। केप उपनिवेशमें संसदीय मतदाता पंजीकरण अधिनियम स्वीकृत। पहले औपनिवेशिक सम्मेलनमें घनिष्ठतर राजनीतिक संघकी योजनाओंपर बहस करना नामंजूर।

जोहानिसबर्गका आविर्भाव।

१८८८ काफिरोंके वर्गमें शामिल किये जाने और ९ बजे रातके बाद सड़कोंपर चलने-फिरनेपर पाबन्दीके विरुद्ध ट्रान्सवाल सरकारके नाम भारतीयोंका प्रार्थनापत्र नामंजूर।

इस्माइल ऐंड कम्पनीके मामलेमें निर्णय दिया गया कि एशियाई लोग पृथक् बस्तियोंके अलावा और कहीं व्यापार नहीं कर सकते। झगड़ा पंच-फैसलेके लिए ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके सुपुर्द। पंचने अपने फैसलेमें मान्य किया कि सरकारको अदालतें जैसी व्याख्या करें उसके अनुसार, १८८५ के कानून ३ का अमल करानेका अधिकार है।

१८८९ रोड्सने मेटाबेलेसे खानें चलानेकी रियायत प्राप्त की। मेटाबेलेका युद्ध और विद्रोह; रोडेशिया पराजित।

सम्राज्ञीके अधिकारपत्र द्वारा ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिका कम्पनीकी स्थापना।

१८९० केपमें रोड्सने अपना पहला मन्त्रिमण्डल बनाया।

ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिका कम्पनीने माशोनालैंडपर अधिकार कर लिया।

१८९२ केप उपनिवेशमें मताधिकार और मतपत्र कानून बनाया गया। ट्रान्सवालमें विदेशियोंके राष्ट्रसंघका[1] निर्माण।

१८९३ फोक्सराडने भारतीयोंके विरुद्ध १८८५ के कानून ३ को कार्यान्वित करानेके उपाय और साधन निकालनेका प्रस्ताव स्वीकार किया।

नेटालको उत्तरदायी शासन प्राप्त। सर जॉन रॉबिन्सनने नेटालका पहला मन्त्रिमण्डल बनाया।

केप उपनिवेशमें वतनी मजदूरों-सम्बन्धी आयोगने सिफारिश की कि प्रत्येक वतनी पुरुषपर लगा हुआ विशेष कर ऐसे व्यक्तियोंसे वसूल न किया जाये, जो वर्षभर घरमें गैरहाजिर और कामपर हाजिर रहनेका प्रमाण दे सकें।

ट्रान्सवालमें खान-संघने वतनी मजदूर आयोगके मातहत मजदूरों-सम्बन्धी एक विशेष संगठनकी स्थापना की।

१८९४ नेटालमें उत्तरदायी शासनके अधीन पहली सरकारने भारतीय मजदूरोंको लानेके लिए वार्षिक रूपमें दी जानेवाली आर्थिक सहायता बन्द करनेके लिए संसदकी स्वीकृति प्राप्त की।

नेटालमें मताधिकार कानून संशोधन विधेयक पेश।

ग्लेन-ग्रे अधिनियमने केप उपनिवेशको वतनी पुरुषोंपर कर लगानेकी कानूनी स्वीकृति प्रदान की।

नेटाल द्वारा ट्रान्सवालके साथ समझौता।

विटवॉटर्सरैंडमें सोने और हीरेकी खानें खोज ली गईं।

पोंडोलैंड केपके साथ मिला दिया गया।

स्वाजीलैंडको वतनी लोगोंके हितोंको सुरक्षित करके दक्षिण आफ्रिकी गण-राज्यके संरक्षणमें सौंपा गया।

केपकी संसदने ईस्ट लंदन नगरपालिकाको अधिकार दिया कि वह भारतीयोंको शहरकी पैदल-पटरियोंपर चलनेके अधिकारसे वंचित कर दे।

१८९५ ट्रान्सवालने स्वाजीलैंडको संरक्षित राज्य बना लिया। ब्रिटिश बेकवानालैंड केप उपनिवेशके साथ मिला दिया गया।

केपमें गवर्नर-जनरलके अधीन बृहत् परिषदकी स्थापना।

नेटालमें १८९५ का १७ वाँ कानून स्वीकृत।

ट्रान्सवालमें १८८५ के कानून ३ के अमलमें लाये जानेके प्रश्नकी जाँच करनेके लिए आयोगकी नियुक्ति।

१. नेशनल यूनियन ऑफ दी एटलैंडर्स।

जोहानिसबर्गपर जेमसनका हमला। ब्रिटिश उच्चायुक्तने प्रतिवाद प्रकाशित किया।

१८९६ नेटालमें १८९६का मताधिकार अपहरण कानून ८ पेश।

केपके प्रधानमन्त्री पदसे रोड्सका इस्तीफा।

ट्रान्सवालके वतनी मजदूर आयोगने पोर्तुगीज पूर्वी आफ्रिकामें मजदूर भरती कार्यालय खोलनेका एकाधिकार प्राप्त कर लिया।

ट्रान्सवालमें १८८५के कानून ३ पर आयोगकी रिपोर्ट फोक्सराड द्वारा स्वीकृत।

१८९७ कानून ३ से गोरों और गैर-गोरोंके बीच विवाह वर्जित।

नेटालमें चुनाव। एस्कम्बके स्थानपर बिन्स पदारूढ़।

नेटालमें १८९७ का प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम १ जारी।

१८९७ का विक्रेता परवाना अधिनियम १८ स्वीकृत।

ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटके बीच ब्लूमफॉन्टीनका समझौता।

मिलनर केपमें उच्चायुक्त नियुक्त।

सम्राज्ञीकी हीरक-जयंती।

लंदनमें ब्रिटेन तथा उपनिवेशोंके प्रधानमंत्रियोंका पहला सम्मेलन।

१८९८ ब्लूमफॉन्टीनमें ट्रान्सवाल तथा ब्रिटेनके प्रतिनिधियोंका सम्मेलन। नेटाल कस्टम्स यूनियनमें सम्मिलित।

बॉन्ड दलके नेताके रूपमें श्राइनर केपके प्रधानमन्त्री बने। क्रूगर फिरसे अध्यक्ष निर्वाचित।

ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटकी 'संघीय रैंड' की पहली बैठक।

१८९९ बोअर युद्ध आरम्भ। ब्रिटिश प्रवक्ताओंने भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहारको युद्धका एक कारण बताया।

भारतसे ब्रिटिश फौजोंका डर्बनमें आगमन।

१९०० ऑरेंज फ्री स्टेटके ब्रिटिश क्षेत्रका नाम ऑरेंज रिवर कालोनी घोषित।

ट्रान्सवाल ब्रिटिश शासनमें मिला लिया गया। २०,००० बोअर शरणार्थी स्त्रियों और बच्चोंकी ब्रिटिश कारागार शिविरोंमें मृत्यु।

भूमि बन्दोबस्त आयोगकी रिपोर्ट प्रकाशित।

१९०१ जोहानिसबर्गमें म्यूनिसिपल शासन स्थापित।

१९०२ वेरीनिगिंगकी सन्धिसे बोअर युद्धका अन्त।

रोड्सकी मृत्यु।

प्रिटोरियामें म्यूनिसिपल शासनकी स्थापना।

पोर्तुगीज पूर्वी आफ्रिकाकी सरकारने दक्षिण आफ्रिकामें मजदूरी करनेके लिए अपने क्षेत्रसे भरती किये जानेवाले हर देशी व्यक्तिके पीछे १३ शि० शुल्क देना स्वीकार किया।

ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें नई सरकारोंकी घोषणा। चेम्बरलेन-की दक्षिण आफ्रिका यात्रा। सन्धिकी शर्तोंमें ढिलाई करनेकी बाबत बोअरों-की दलीलें प्रिटोरिया और ब्लूमफॉन्टीनमें नामंजूर कर दी गईं।

१९०३ शान्ति रक्षा अध्यादेशसे ट्रान्सवालमें भारतीयोंके प्रवेशका नियमन।

ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशनकी स्थापना और उसके द्वारा एशियाई दफ्तरके कामके तरीकेके खिलाफ प्रार्थनापत्र।

ब्लूमफॉन्टीनमें कस्टम्स यूनियनकी स्थापना।

सामान्य स्वार्थोंके विषयोंपर उच्चायुक्तको सलाह देनेके लिए ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशके गैर-सरकारी प्रतिनिधियोंके साथ आन्तर-औपनिवेशिक परिषदकी स्थापना।

ब्लूमफॉन्टीन सम्मेलन द्वारा देशी मामलात आयोगकी नियुक्ति।

ट्रान्सवाल विधान-परिषदने गैर-गिरमिटिया मजदूरोंके आकर बसनेके सम्बन्धमें प्रस्ताव स्वीकार किया।

ट्रान्सवालमें तीन पौंड सालाना कर १६ वर्षसे ऊपरके पुरुषों और १३ वर्षसे ऊपरकी स्त्रियोंपर लागू कर दिया गया।

१९०४ क्रूगरकी मृत्यु। जोहानिसबर्गमें प्लेग फैला।

लॉर्ड कर्जनका खरीता। उसमें बताया गया कि 'नेटालका कटु उदाहरण' मौजूद होनेके कारण भारतमें ट्रान्सवालको मजदूर भेजनेका उत्साह नहीं है।

औपनिवेशिक कार्यालयने चीनी मजदूरोंको लानेका अध्यादेश मंजूर कर लिया।

१९०५ दक्षिण आफ्रिकाके लिए स्वशासनकी माँगके हेतु स्मट्सकी ब्रिटेन-यात्रा।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री कैम्बेल-बैनरमनसे वचन प्राप्त।

ट्रान्सवालमें हेटफोक (लोकदल) का संगठन।

लिटल्टन विधान जारी किया गया।

१९०६ ट्रान्सवालमें शाही फरमानसे लिटल्टन विधान रद और उसे उत्तरदायी शासन प्रदान। केप सरकारका लॉर्ड सेलबोर्नसे अनुरोध कि दक्षिण आफ्रिकी राज्यों-का राजनीतिक एकीकरण करनेके विषयमें विचार किया जाये।
एशियाई पंजीयन अध्यादेश जारी किया गया। भविष्यमें एशियाइयोंको ट्रान्सवालमें न आने देनेका कानून मंजूर।
केप उपनिवेशमें १९०६ का प्रवासी अधिनियम स्वीकृत।
जुलू विद्रोह।

१९०७ ऑरेंज रिवर उपनिवेशको उत्तरदायी शासन दिया गया।
भारतीय मजदूरों-सम्बन्धी आयोगने भारतीय मजदूरोंको लानेकी सिफारिश की।
ट्रान्सवालमें आम चुनावोंके फलस्वरूप हेटफोक सत्तारूढ़।
बोथा प्रधानमन्त्री बने। एशियाई चीनी मजदूर अध्यादेशका अन्त।
दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिक एकीकरणके सम्बन्धमें सेलबोर्नका ज्ञापन प्रकाशित।
लंदनमें प्रधान मंत्रियोंका सम्मेलन।

१९०८ केपमें आम चुनावोंके फलस्वरूप मेरीमनके नेतृत्वमें दक्षिण आफ्रिकी-दल सत्तारूढ़।
डर्बनमें राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, जिसमें फेडरल संघकी अपेक्षा संघ (यूनियन)के संविधानकी अधिकतर धाराएँ स्वीकार की गईं।
स्वेच्छासे पंजीयन करानेको वैध रूप देनेके लिए कानून ३६ स्वीकार।
पंजीयन कानून रद नहीं किया गया; इसलिए भारतीय नेताओं द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलनका निश्चय।
आन्तर-औपनिवेशिक परिषद भंग।
हर्टजोगने ट्रान्सवालमें अंग्रेजी और डच भाषाओंका अनिवार्य उपयोग जारी कराया।
जुलूलैंडका विद्रोह दबा दिया गया।

१९०९ राष्ट्रीय सम्मेलनने संघ विधानके मसविदेके रूपमें एक रिपोर्ट तैयार की, जिसे ब्रिटिश संसदने स्वीकार कर लिया।

१९१० दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यका आविर्भाव। दक्षिण आफ्रिकी दलके नेता जनरल बोथाके अधीन संयुक्त राज्यके पहले मन्त्रिमण्डलका निर्माण। हर्टजोग और स्मट्स सम्मिलित।
भारतीयों द्वारा १९०८ के प्रवासी कानूनकी सविनय अवज्ञा।

१९११ दक्षिण आफ्रिकी सरकारने आजाद भारतीयोंके निर्बाध आगमनपर प्रतिबन्ध लगाया।

पहली शाही मंत्रणा-परिषद जिसमें, बोथाके नेतृत्वमें दक्षिण आफ्रिकी संयुक्त राज्यके प्रतिनिधि शामिल हुए।

भारतमें गिरमिट प्रथाका अन्त।

१९१२ हर्टजोग बोथाके पक्षसे अलग हो गये। उन्होंने 'दक्षिण आफ्रिका पहले, साम्राज्य बादमें'का नारा लेकर राष्ट्रीय दलका संगठन किया।

वित्तीय सम्बन्ध जाँच आयोग।

१९१३ भूमि कानून स्वीकृत।

नेटालमें भारतीयोंका सत्याग्रह। नेटालकी सीमा पार करके ट्रान्सवालमें महान कूच।

आम हड़ताल।

सन् १९१३ का प्रवासी नियमन अधिनियम या १९१३ का बाईसवाँ कानून बना।

भारतीयोंको राहत देनेके कानून[१] द्वारा तीन-पौंडी कर हटा दिया गया।

भारतीयों द्वारा दक्षिण आफ्रिकी सरकारके सॉलोमन आयोगका बहिष्कार।

स्मट्स-गांधी पत्र-व्यवहार। माँगें मंजूर हो जानेपर सत्याग्रह संग्राम रोक दिया गया।

वित्तीय-सम्बन्ध अधिनियम, १९१३ का कानून १०, स्वीकृत। प्रवासी अधिनियम — १९१३ का कानून १३, स्वीकृत।

१९१४ आम हड़ताल। स्मट्सने सिंडिकैलिस्ट नेताओंको निर्वासित करके गैरकानूनी काम किया। हड़ताल भंग, असफल।

स्मट्स-गांधी समझौता। गांधीजी दक्षिण आफ्रिकासे भारतके लिए रवाना।

१. इंडियन रिलीफ ऐक्ट।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

अ

आ

इ

ख

ग

फ

ब

भ

स

ह